THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

विषयानुक्रमणिका.

विषय	पृष्ठ
प्रथम अध्याय १	
मंगलाचरण ...	१
गुरुमहिमा नमस्कार	१
स्वरवर्णोंका विवरण	१
व्यंजनवर्णोंका विवरण	१
संयुक्ताक्षरोंका वर्णन	२
बारहअक्षरीका वर्णन	२
बारहअक्षरीका स्वरूप	३
दो अक्षरोंके शब्द	३
तीन अक्षरोंके शब्द	३
चार अक्षरोंके शब्द	३
छोटे वाक्य	४
कुछ बडे वाक्य	४
कुछ आवश्यक शिक्षायें	४
व्याकरणविषय।	
शुद्धाशुद्ध उच्चारण	५
प्रथमसंधिका विवरण	६
वर्णविचार ...	९
वर्णके स्थान और प्रयत्न	१०
प्रयत्नवर्णन ...	११
प्रथमभेद–दीर्घ	११
दूसराभेद–गुण	१२
तीसराभेद–वृद्धि	१२
चौथाभेद–यण्	१२
पांचवांभेद–अयादि	१३
व्यंजनसंधि ...	१३
विसर्गसंधि ...	१४
शब्दविचार ...	१५
संज्ञाका विशेष वर्णन	१५
सर्वनामका विशेष वर्णन	१६
विशेषणका विशेषत्व.	१७
क्रियाका विशेष वर्णन	१७
कालविवरण	१७
पुरुषविवरण	१९

विषय	पृष्ठ
लिङ्गविवरण	१९
वचनवर्णन	२०
कारकोंका वर्णन	२०
अव्ययोंका विशेष वर्णन	२१
वाक्यविचार	२२
द्वितीय अध्याय २	
चाणक्यनीतिसार दोहावली	२७
सुभाषितरत्नावलीके दोहे	५८
चेला गुरु प्रश्नोत्तर	७४
तृतीय अध्याय ३	
स्त्रीपुरुषोंका धर्म	८१
स्त्रीका पतिके साथ कर्तव्य	८१
पतिका स्त्रीके साथ कर्तव्य	८८
पतिव्रता स्त्रीके लक्षण	९३
पतिव्रताका प्रताप	९६
पतिके पश्चात् पतिव्रताके नियम	९८
स्त्रीका ऋतुमती होना	१००
रजोदर्शनसे शरीरमें फेरफार	१००
रजोदर्शन होनेका समय	१०१
रक्तस्रावका साधारण समय	१०१
नियमित रजोदर्शन	१०२
रजोदर्शनके पहले चिह्न	१०२
रजोदर्शन बंद [illegible]के कारण	१०३
रजोदर्शन [illegible] करनेसे हानि	१०३
रजोदर्शन[illegible] समय स्त्रीका कर्तव्य	१०४
रजो० [illegible]चित वर्ताव न करनेसे	१०५
रजो[illegible] योग्य संभाल न होनेसे [illegible]लकपर असर	१०६
[illegible]र्भिणीस्त्रीके वर्ताव	११०
गर्भिणीस्त्रीका दोहद	१११
पेटमें बालकका फिरना	११२
गर्भिणीके दिन पूरे हुएका चिह्न	११२
मासपरत्व गर्भस्थितिकी दशा	११२
गर्भसमय विपरीत पदार्थ	११६

विषय	पृष्ठ
गर्भवतीको आवश्यक शिक्षायें	११७
बालरक्षण	१२०
नाल	१२६
स्नान	१२७
वस्त्र	१२९
दूध पिलाना	१३१
दूध पिलानेका समय	१३२
दूध पिलानेके समय हिफाजत	१३३
पूरा दूध न होनेपर कर्तव्य उपाय ...	१३३
धात्रीके लक्षण	१३४
खुराक	१३४
हवा	१३७
निद्रा	१३७
कसरत	१३९
दांतोंकी रक्षा	१४०
चरणरक्षा	१४१
मस्तक	१४१
लग्न वा विवाह	१४२
कर्णरक्षा	१४३
शीतलारोगसे रक्षण	१४३
बालगुटिका	१४४
आख	१४५
चतुर्थ अध्याय ४	
वैद्यकशास्त्रकी उपयोगिता	१४७
स्वास्थ्य वा आरोग्यता	१४८
वायुवर्णन	१५३
स्वच्छहवाके तत्त्व	१५५
हवाके बिगाडनेवाले कारण	१५७
स्वभावजन्य हवाकी शुद्धि	१६३
पानीकी आवश्यकता	१६७
पानीके भेद	१६९
अंतरीक्षजल	१७०
भूमिजल	१७०
जांगलजल...	१७१
आनूपजल	१७१
नदीका जल...	१७१
कुएका पानी	१७४
कुंडका पानी	१७५
नलका पानी	१७६
तालावका पानी	१७७
ऋतुके अनुसार पानीका उपयोग... ...	१७८
खराब पानीसे होनेवाले उपद्रव	१७९
ज्वर	१७९
दस्त वा मरोड़ा	१७९
अजीर्ण	१८०
कृमि वा जतु	१८०
नहरुवा	१८०
त्वचा चमडीके रोग	१८०
विषूचिका हैजा	१८०
अश्मरी पथरी	१८०
पानीकी परीक्षा तथा स्वच्छ करनेकी युक्ति	१८१
पानीका औषधरूपमें उपयोग	१८३
रक्तस्राव खूनका गिरना	१८३
सकोचन	१८४
दाहशमन	१८५
सेक...	१८५
नस्य देना	१८६
पिचकारी लगाना	१८६
कुरला करना	१८६
पानीमें बैठना	१८६
खुराककी आवश्यकता	१८८
खुराकका वर्ग	१९१
जीवनके लिये अवश्य खुराक	१९४
पौष्टिक तत्त्व...	१९५
चरबीवाले तत्त्व	१९५
आटेके सत्ववाले तत्त्व	१९५
क्षार	१९५
पानी	१९६
खुराकके मुख्य पदार्थोंमे पांचों तत्त्वोंका कोष्टक	१९७
छः रस	२०१
छओ रसोंके मिश्रित गुण...	२०१
वैद्यकभाग निघंटु	२०३
धान्यवर्ग	२०३
गेहू	२०४
बाजरी	२०५
ज्वार	२०५

विषय	पृष्ठ
मूंग	२०५
अरहर	२०६
उड़द	२०६
मटर	२०८
शाकवर्ग	२०९
चंदलया चौलाई	२११
पालक	२१२
वथुआ	२१२
पानमोगी	२१२
पानमेथी	२१२
अरुईके पत्ते	२१२
मोगरी	२१२
मूलीके पत्ते	२१२
परवल	२१२
मीठा तूवा	२१२
कोला पेठा	२१३
बैंगन	२१३
घिया तोरई	२१३
तोरी	२१३
केरला	२१३
ककडी	२१३
कलींदा मतीरा	२१४
सेमकी फली	२१४
गुवारफली	२१४
सहजनेकी फली	२१४
सूरणकद	२१४
आलू	२१४
रतालू तथा सकरकंद	२१५
मूली	२१५
गाजर	२१५
कादा	२१५
दुग्धवर्ग	
कालीगायका दूध	२१६
लालगायका दूध	२१६
सफेदगायका दूध	२१६
तुरत ब्याई हुई गायका दूध	२१६
बिना बछडेकीका	२१७
भैंसका दूध	२१७
बकरीका दूध	२१७
भेंडका दूध	२१७
ऊंटनीका दूध	२१७
स्त्रीका दूध	२१७
धारोष्ण दूध	२१७
खराब दूध	२१८
दूधके मित्र	२२०
दूधके शत्रु	२२१
घीके सामान्य गुण	२२२
गायका मक्खन	२२३
भैंसका मक्खन	२२३
दधिवर्ग	
दहीके सामान्य गुण	२२३
स्वादु	२२३
स्वाद्वम्ल	२२४
अम्ल	२२४
अत्यम्ल	२२४
दहीके मित्र	२२४
तक्रवर्ग	
तक्रके भेद	२२६
तक्रसेवनविधि	२२६
तक्रसेवननिषेध	२२७
फलवर्ग	
कच्चे आम	२२८
पक्के आम	२२८
जामुन	२२८
बेर	२२८
अनार	२२९
केला	२२९
आवला	२२९
नारिंगी-संतरा	२३०
दाख वा अंगूर	२३०
नींबू	२३०
मीठा नींबू	२३१
नींबूका बाहिरी उपयोग	२३२
खजूर	२३१
फालसा पीलू और करोंदेके फल	२३२
सीताफल	२३२

पांचवां भेद—अयादि ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मेल ॥	किस स्वर को क्या हुआ ॥
ए, ऐ, ओ, औ,	ने+अन=नयन ।	ए+अ=अय ।
इनसे परे कोई स्वर	गै+अन=गायन ।	ऐ+अ=आय ।
रहे तो क्रमसे उनके	पो+अन=पवन ।	ओ+अ=अव ।
स्थानमें अय्, आय्	पौ+अक=पावक ।	औ+अ=आव ।
अव्, आव्, हो जाते	भौ+इनी=भाविनी ।	औ+इ=आवि ।
हैं तथा अगला स्वर	नौ+आ=नावा ।	औ+आ=आवा ।
पूर्व व्यञ्जनमें मिला	शै+ई=शायी ।	ऐ+ई=आयी ।
दिया जाता है ॥	शे+आते=शयाते ।	ए+आ=अया ।
	भौ+उक=भावुक ।	औ+उ=आवु ॥

व्यञ्जनसन्धि ॥

इस के नियम बहुत से है—परन्तु यहां थोड़े से दिखाये जाते हैं:—

नम्बर ॥	नियम ॥	व्यञ्जनों के द्वारा शब्दों का मेल ॥
१	यदि क् से घोष, अन्तस्थ वा स्वर वर्ण परे रहे तो क् के स्थानमें ग् हो जाता है॥	सम्यक्+दर्शन=सम्यग्दर्शन। दिक्+अम्बर=दिगम्बर। दिक् + ईशः=दिगीशः इत्यादि ॥
२	यदि किसी वर्ग के प्रथम वर्ण से परे सानुनासिक वर्ण रहे तो उसके स्थान में उसी वर्ग का सानुनासिक वर्ण हो जाता है ॥	चित् + मूर्ति=चिन्मूर्ति । चित् + मय=चिन्मय । उत्+मत्त=उन्मत्त । तत्+नयन=तन्नयन । अप्+मान=अम्मान ॥
३	यदि च्, ट्, प्, वर्ण से परे घोष, अन्तस्थ वा स्वर वर्ण रहे तो क्रमसे ज्, ड् और ब् होता है ॥	अच्+अन्त=अजन्त । पट्+वदन=पड्वदन । अप्+जा=अब्जा, इत्यादि ॥
४	यदि ह्रस्व स्वर से परे छ वर्ण रहे तो वह च् सहित हो जाता है, परन्तु दीर्घ स्वरसे परे कहीं २ होता है ॥	वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया । अव+छेद=अवच्छेद । परि+छेद=परिच्छेद। परन्तु लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मीछाया ॥
५	यदि त् से परे चवर्ग अथवा टवर्ग का प्रथम वा द्वितीय वर्ण हो तो त् के स्थान में च् वा ट् हो जाता है. और तृतीय वा चतुर्थ वर्ण परे रहे तो ज् वा ड् हो जाता है॥	तत्+चारु+तच्चारु । सत्+जाति=सज्जाति । उत्+ज्वल=उज्ज्वल । तत्+टीका=तट्टीका । सत्+जीवन=सज्जीवन । जगत्+जीव=जगज्जीव । सत्+जन=सज्जन ॥

६	यदि त् से परे ग्, घ्, द्, ध्, ब्, भ्, य्, र्, व्, अथवा स्वर वर्ण रहे तो त् के स्थान में द् हो जाता है ॥	सत्+भक्ति=सद्भक्ति । जगत्+ईश=जगदीश । सत्+आचार=सदाचार । सत्+धर्म=सद्धर्म, इत्यादि ॥
७	यदि अनुस्वार से परे अन्तस्थ वा ऊष्म वर्ण रहे तो कुछ भी विकार नहीं होता॥	सं+हार=संहार । सं+यम=संयम । सं+रक्षण=संरक्षण । सं+वत्सर=संवत्सर ॥
८	यदि अनुस्वार से परे किसी वर्ग का कोई वर्ण रहे तो उस अनुस्वार के स्थान में उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है॥	सं+गति=सङ्गति । अपरं+पार=अपरम्पार । अहं+कार=अहङ्कार । सं+चार=सञ्चार । सं+बोधन=सम्बोधन, इत्यादि ॥
९	यदि अनुस्वार से परे स्वर वर्ण रहे तो मकार हो जाता है ॥	सं+आचार=समाचार । सं+उदाय=समुदाय । सं+ऋद्धि=समृद्धि, इत्यादि ॥

विसर्गसन्धि ॥

इस सन्धि के भी बहुत से नियम है उनमें से कुछ दिखाते हैं:—

नम्बर ॥	नियम ॥	विसर्गद्वारा शब्दों का मेल ॥
१	यदि विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर, अथवा य्, र्, ल्, व्, ह्, हो तो ओ हो जाता है॥	मनः+गत=मनोगत । पयः+धर=पयोधर । मनः+हर=मनोहर । अहः+भाग्य=अहोभाग्य । अधः+मुख=अधोमुख, इत्यादि ॥
२	यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क्, ख्, ट्, ठ्, प्, फ्, रहे तो मूर्धन्य ष्, च्, छ् रहे तो तालव्य श् और त्, थ्, रहे तो दन्त्य स् हो जाता है ॥	निः+कारण=निष्कारण । निः+चल=निश्चल । निः+तार=निस्तार । निः+फल=निष्फल । निः+छल=निश्छल । निः+पाप=निष्पाप । निः+टङ्क=निष्टङ्क, इत्यादि ॥
३	यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर वा स्वर वर्ण रहे तो र् होता है॥	निः+विघ्न=निर्विघ्न । निः+बल=निर्बल । निः+मल=निर्मल । निः+जल=निर्जल । निः+धन=निर्धन, इत्यादि ॥
४	यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे रेफ हो तो विसर्गका लोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥	निः+रस=नीरस । निः+रोग=नीरोग । निः+राग=नीराग । गुरुः+रम्यः=गुरूरम्यः, इत्यादि ॥

यह प्रथम अध्यायका वर्णविचार नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—शब्दविचार ॥

१– शब्द उसे कहते हैं–जो कान से सुनाई देता है, उस के दो भेद हैः—

(१) वर्णात्मक अर्थात् अर्थबोधक–जिसका कुछ अर्थ हो, जैसे—माता, पिता, घोड़ा, राजा, पुरुष, स्त्री, वृक्ष, इत्यादि ॥

(२) ध्वन्यात्मक अर्थात् अपशब्द–जिसका कुछ भी अर्थ न हो, जैसे—चक्की या बादल आदि का शब्द ॥

२– व्याकरण में अर्थबोधक शब्द का वर्णन किया जाता है और वह पांच प्रकार का है– संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय ॥

(१) किसी दृश्य[1] वा अदृश्य पदार्थ अथवा जीवधारी के नाम को संज्ञा कहते हैं. जैसे— रामचन्द्र, मनुष्य, पशु, नर्मदा, आदि ॥

(२) संज्ञा के बदले में जिस का प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसे—मैं, यह, वह, हम, तुम आप, इत्यादि। सर्वनाम के प्रयोग से वाक्य में सुन्दरता आती है, द्विरुक्ति नहीं होती अर्थात् व्यक्तिवाचक शब्द का पुनः २ प्रयोग नहीं करना पड़ता है, जैसे—मोहन आया और वह अपनी पुस्तक ले गया, यहां मोहन का पुनः प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु उस के लिये वह सर्वनाम लाया गया ॥

(३) जो संज्ञा के गुण को अथवा उस की संख्या को बतलाता है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—लाल, पीली, दो, चार, खट्टा, चौथाई, पांचवां, इत्यादि ॥

(४) जिस से करना, होना, सहना, आदि पाया जावे उसे क्रिया कहते हैं। जैसे— खाता था, मारा है, जाऊंगा, सो गया इत्यादि ॥

(५) जिसमें लिंग, वचन और पुरुष के कारण कुछ विकार अर्थात् अदल बदल न हो उसे अव्यय कहते हैं, जैसे—अब, आगे, और, पीछे, ओहो, इत्यादि ॥

संज्ञाका विशेष वर्णन ॥

१– संज्ञा के स्वरूप के भेद से तीन भेद है–रूढि, यौगिक और योगरूढि ॥

(१) रूढ़ि संज्ञा उसे कहते है जिसका कोई खण्ड सार्थक न हो, जैसे—हाथी, घोड़ा, पोथी, इत्यादि ॥

(२) जो दो शब्दों के मेल से अथवा प्रत्यय लगा के बनी हो उसे यौगिक संज्ञा कहते है, जैसे—बुद्धिमान्, बाललीला, इत्यादि ॥

(३) योगरूढि संज्ञा उसे कहते है–जो रूप में तो यौगिक संज्ञा के समान दीखती हो

१. जो दीख पड़े उसे दृश्य तथा न दीख पड़े उसे अदृश्य कहते हैं ॥

६ यदि त् से परे ग्, घ्, द्, ध्, ब्, भ्, य्, र्, व्, अथवा स्वर वर्ण रहे तो त् के स्थान में द् हो जाता है ॥	सत्+भक्ति=सद्भक्ति। जगत्+ईश=जगदीश। सत्+आचार=सदाचार। सत्+धर्म=सद्धर्म, इत्यादि ॥
७ यदि अनुस्वार से परे अन्तस्थ वा ऊष्म वर्ण रहे तो कुछ भी विकार नहीं होता ॥	सं+हार=संहार। सं+यम=संयम। सं+रक्षण=संरक्षण। सं+वत्सर=संवत्सर ॥
८ यदि अनुस्वार से परे किसी वर्ग का कोई वर्ण रहे तो उस अनुस्वार के स्थान में उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है ॥	सं+गति=सङ्गति। अपरं+पार=अपरम्पार। अहं+कार=अहङ्कार। सं+चार=सञ्चार। सं+बोधन=सम्बोधन, इत्यादि ॥
९ यदि अनुस्वार से परे स्वर वर्ण रहे तो मकार हो जाता है ॥	सं+आचार=समाचार। सं+उदाय=समुदाय। सं+ऋद्धि=समृद्धि, इत्यादि ॥

विसर्गसन्धि ॥

इस सन्धि के भी बहुत से नियम हैं उनमें से कुछ दिखाते हैं:—

नम्बर ॥ नियम ॥	विसर्गद्वारा शब्दों का मेल ॥
१ यदि विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर, अथवा य्, र्, ल्, व्, ह्, हो तो ओ हो जाता है॥	मनः+गत=मनोगत। पयः+धर=पयोधर। मनः+हर=मनोहर। अहः+भाग्य=अहोभाग्य। अधः+मुख=अधोमुख, इत्यादि ॥
२ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क्, ख्, ट्, ठ्, प्, फ्, रहे तो मूर्धन्य ष्, च्, छ् रहे तो तालव्य श् और त्, थ्, रहे तो दन्त्य स् हो जाता है ॥	निः+कारण=निष्कारण। निः+चल=निश्चल। निः+तार=निस्तार। निः+फल=निष्फल। निः+छल=निश्छल। निः+पाप=निष्पाप। निः+टङ्क=निष्टङ्क, इत्यादि ॥
३ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर वा स्वर वर्ण रहे तो र् होता है॥	निः+विघ्न=निर्विघ्न। निः+बल=निर्बल। निः+मल=निर्मल। निः+जल=निर्जल। निः+धन=निर्धन, इत्यादि ॥
४ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे रेफ हो तो विसर्गका लोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥	निः+रस=नीरस। निः+रोग=नीरोग। निः+राग=नीराग। गुरुः+रम्यः=गुरूरम्यः, इत्यादि ॥

यह प्रथम अध्यायका वर्णविचार नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—शब्दविचार ॥

१– शब्द उसे कहते हैं–जो कान से सुनाई देता है, उस के दो भेद हैं:—

(१) वर्णात्मक अर्थात् अर्थबोधक–जिसका कुछ अर्थ हो, जैसे—माता, पिता, घोड़ा, राजा, पुरुष, स्त्री, वृक्ष, इत्यादि ॥

(२) ध्वन्यात्मक अर्थात् अपशब्द–जिसका कुछ भी अर्थ न हो, जैसे—चक्की या बादल आदि का शब्द ॥

२– व्याकरण में अर्थबोधक शब्द का वर्णन किया जाता है और वह पांच प्रकार का है–संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय ॥

(१) किसी दृश्य वा अदृश्य पदार्थ अथवा जीवधारी के नाम को संज्ञा कहते हैं, जैसे—रामचन्द्र, मनुष्य, पशु, नर्मदा, आदि ॥

(२) संज्ञा के बदले में जिस का प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसे—मैं, यह, वह, हम, तुम आप, इत्यादि। सर्वनाम के प्रयोग से वाक्य में सुन्दरता आती है, द्विरुक्ति नहीं होती अर्थात् व्यक्तिवाचक शब्द का पुनः २ प्रयोग नहीं करना पड़ता है, जैसे—मोहन आया और वह अपनी पुस्तक ले गया, यहां मोहन का पुनः प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु उस के लिये वह सर्वनाम लाया गया ॥

(३) जो संज्ञा के गुण को अथवा उस की संख्या को बतलाता है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—लाल, पीली, दो, चार, खट्टा, चौथाई, पांचवां, इत्यादि ॥

(४) जिस से करना, होना, सहना, आदि पाया जावे उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—खाता था, मारा है, जाऊंगा, सो गया इत्यादि ॥

(५) जिसमें लिंग, वचन और पुरुष के कारण कुछ विकार अर्थात् अदल बदल न हो उसे अव्यय कहते हैं, जैसे—अब, आगे, और, पीछे, ओहो, इत्यादि ॥

संज्ञाका विशेष वर्णन ॥

१– संज्ञा के स्वरूप के भेद से तीन भेद हैं–रूढि, यौगिक और योगरूढि ॥

(१) रूढि संज्ञा उसे कहते हैं जिसका कोई खण्ड सार्थक न हो, जैसे—हाथी, घोड़ा, पोथी, इत्यादि ॥

(२) जो दो शब्दों के मेल से अथवा प्रत्यय लगा के बनी हो उसे यौगिक संज्ञा कहते हैं, जैसे—बुद्धिमान, बाललीला, इत्यादि ॥

(३) योगरूढि संज्ञा उसे कहते हैं–जो रूप में तो यौगिक संज्ञा के समान दीखती हो

१. जो दीख पड़ें उन्हें दृश्य तथा न दीख पड़ें उन्हें अदृश्य कहते हैं ॥

परन्तु अपने शब्दार्थ को छोड़ दूसरा अर्थ बताती हो, जैसे—पङ्कज, पीताम्बर, हनूमान्, आदि ॥

२– अर्थ के भेद से संज्ञा के तीन भेद है–जातिवाचक व्यक्तिवाचक और भाववाचक ॥

(१) जातिवाचक संज्ञा उसे कहते हैं–जिस के कहने से जातिमात्र का बोध हो, जैसे— मनुष्य, पशु, पक्षी, पहाड़, इत्यादि ॥

(२) व्यक्तिवाचक संज्ञा उसे कहते है जिस के कहने से केवल एक व्यक्ति (मुख्यनाम) का बोध हो, जैसे—रामलाल, नर्मदा, रतलाम, मोहन, इत्यादि ॥

(३) भाववाचक संज्ञा उसे कहते है जिस से किसी पदार्थ का धर्म वा स्वभाव जाना जाय अथवा किसी व्यापार का बोध हो, जैसे—ऊंचाई, चढ़ाई, लेनदेन, बालपन, इत्यादि ॥

सर्वनाम का विशेष वर्णन ॥

सर्वनाम के मुख्यतया सात भेद हैं–पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, संबन्धवाचक, आदरसूचक तथा निजवाचक ॥

१– पुरुषवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से पुरुष का बोध हो, यह तीन प्रकार का है–उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष ॥

(१) जो कहनेवाले को कहे–उसे उत्तम पुरुष कहते हैं, जैसे मै ॥

(२) जो सुनने वाले को कहे–उसे मध्यम पुरुष कहते है, जैसे तू ॥

(३) जिस के विषयमें कुछ कहा जाय उसे अन्य पुरुष कहते है, जैसे—वह इत्यादि॥

२– निश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते है–जिससे किसी बात का निश्चय पाया जावे, इसके दो भेद है–निकटवर्ती और दूरवर्ती ॥

(१) जो पास में हो उसे निकटवर्ती कहते हैं, जैसे यह ॥

(२) जो दूर हो उसे दूरवर्ती कहते है, जैसे वह ॥

३– अनिश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से किसी बात का निश्चय न पाया जावे, जैसे—कोई, कुछ, इत्यादि ॥

४– प्रश्नवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं जिस से प्रश्न पाया जावे, जैसे—कौन, क्या, इत्यादि॥

५– सम्बंधवाचक सर्वनाम उसे कहते है जो कही हुई संज्ञा से सम्बंध बतलावे, जैसे—जो, सो, इत्यादि ॥

६– आदरसूचक सर्वनाम उसे कहते है–जिस से आदर पाया जावे, जैसे—आप, इत्यादि॥

७– निजवाचक सर्वनाम उसे कहते है–जिस से अपनापन पाया जावे, जैसे—अपना इत्यादि ॥

विशेषण का विशेष वर्णन ॥

विशेषण के मुख्यतया दो भेद हैं–गुणवाचक और संख्यावाचक ॥

१– गुणवाचक विशेषण उसे कहते है–जो संज्ञा का गुण प्रकट करे, जैसे–काला, नीला, ऊंचा, नीचा, लम्बा, आज्ञाकारी, अच्छा, इत्यादि ॥

२– संख्यावाचक विशेषण उसे कहते हैं–जो संज्ञा की संख्या बतावे, इस के चार भेद हैं–शुद्धसंख्या, क्रमसंख्या, आवृत्तिसंख्या, और संख्यांश ॥

(१) शुद्धसंख्या उसे कहते है जो पूर्ण संख्या को बतावे, जैसे एक, दो, चार ॥

(२) क्रमसंख्या उसे कहते है जो संज्ञा का क्रम बतलावे, जैसे—पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, इत्यादि ॥

(३) आवृत्तिसंख्या उसे कहते हैं जो संख्या का गुणापन बतलावे, जैसे-दुगुना, चौगुना, इत्यादि ॥

(४) संख्यांश उसे कहते है जो संख्या का भाग बतावे, जैसे पंचमांश, आधा, तिहाई, चतुर्थांश, इत्यादि ॥

क्रिया का विशेष वर्णन ॥

क्रिया उसे कहते है जिस का मुख्य अर्थ करना है, अर्थात् जिस का करना, होना, सहना, इत्यादि अर्थ पाया जावे, इस के दो भेद है–सकर्मक और अकर्मक ॥

(१) सकर्मक क्रिया उसे कहते हैं–जो कर्म के साथ रहती है, अर्थात् जिस में क्रिया का व्यापार कर्ता में और फल कर्म में पाया जावे, जैसे–बालक रोटी को खाता है, मै पुस्तक को पढ़ता हूं, इत्यादि ॥

(२) अकर्मक क्रिया उसे कहते है–जिसमें कर्म नहीं रहता, अर्थात् क्रिया का व्यापार और फल दोनों एकत्र होकर कर्ता ही में पाये जावें, जैसे लड़का सोता है, मै जागता हूं, इत्यादि ॥

स्मरण रखना चाहिये कि–क्रिया का काल, पुरुष और वचन के साथ नित्य सम्बंध रहता है, इस लिये इन तीनों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

काल–विवरण ॥

क्रिया करने में जो समय लगता है उसे काल कहते हैं, इस के मुख्यतया तीन भेद हैं–भूत, भविष्यत् और वर्तमान ॥

१– भूतकाल उसे कहते है–जिस की क्रिया समाप्त हो गई हो, इस के छः भेद हैं–सामान्यभूत, पूर्णभूत, अपूर्णभूत, आसन्नभूत, सन्दिग्धभूत और हेतुहेतुमद्भूत ॥

(१) सामान्यभूत उसे कहते है-जिस भूतकाल से यह निश्चय न हो कि-काम थोड़े समय पहिले हो चुका है या बहुत समय पहिले, जैसे खाया, मारा, इत्यादि ॥

(२) पूर्णभूत उसे कहते है कि जिस से मालूम हो कि काम बहुत समय पहिले हो चुका है, जैसे—खाया था, मारा था, इत्यादि ॥

(३) अपूर्णभूत उसे कहते हैं जिस से यह जाना जाय कि क्रिया का आरंभ तो हो गया है परन्तु उस की समाप्ति नहीं हुई है, जैसे—खाता था, मारता था, पढ़ाता था, इत्यादि ॥

(४) आसन्नभूत उसे कहते हैं जिस से जाना जाय कि काम अभी थोड़े ही समय पहिले हुआ है, जैसे—खाया है, मारा है, पढ़ाया है, इत्यादि ॥

(५) सन्दिग्धभूत उसे कहते है जिस से पहिले हो चुके हुए कार्य में सन्देह पाया जावे, जैसे—खाया होगा, मारा होगा ॥

(६) हेतुहेतुमद्भूत उसे कहते हैं जिसमें कार्य और कारण दोनों भूत काल में पाये जावें, अर्थात् कारण क्रिया के न होने से कार्य क्रिया का न होना बतलाया जावे, जैसे—यदि वह आता तो मैं कहता, यदि सुवृष्टि होती तो सुभिक्ष होता, इत्यादि ॥

२– भविष्यत् काल उसे कहते हैं जिसका आरंभ न हुआ हो अर्थात् होनेवाली क्रिया को भविष्यत् कहते है. इसके दो भेद हैं—सामान्यभविष्यत् और सम्भाव्यभविष्यत् ॥

(१) सामान्यभविष्यत् उसे कहते है जिस के होने का समय निश्चित न हो, जैसे—मैं जाऊंगा, मै खाऊंगा, इत्यादि ॥

(२) सम्भाव्यभविष्यत् उसे कहते है जिसमें भविष्यत् काल और किसी बात की इच्छा पाई जावे, जैसे—खाऊं, मारे, आवे, इत्यादि ॥

३– वर्तमानकाल उसे कहते है जिस का आरम्भ तो हो चुका हो परन्तु समाप्ति न हुई हो, इस के दो भेद है—सामान्यवर्तमान और सन्दिग्धवर्तमान ॥

(१) सामान्यवर्तमान उसे कहते है जहां कर्ता क्रिया को उसी समय कर रहा हो, जैसे—खाता है, मारता है, पढ़ता है, इत्यादि ॥

(२) सन्दिग्ध वर्तमान उसे कहते है जिस में प्रारंभ हुए काम में सन्देह पाया जावे, जैसे—खाता होगा, पढ़ता होगा, इत्यादि ॥

४– इनके सिवाय क्रिया के तीन भेद और माने गये हैं—पूर्वकालिका क्रिया, विधिक्रिया और सम्भावनार्थ क्रिया ॥

(१) पूर्वकालिका क्रिया से लिंग, वचन और पुरुष का बोध नहीं होता किन्तु उस का काल दूसरी क्रिया से बोधित होता है, जैसे—पढ़कर जाऊंगा, खाकर गया, इत्यादि ॥

(२) विधिक्रिया उसे कहते हैं जिस से आज्ञा, उपदेश वा प्रेरणा पाई जावे, जैसे—खा, पढ़, खाइये, पढ़िये, खाना चाहिये, इत्यादि ॥

(३) सम्भावनार्थ क्रिया से सम्भव का बोध होता है, जैसे—खाऊं, पढ़ूं, आ जावे, चला जावे, इत्यादि ॥

५– प्रथम कह चुके है कि क्रिया सकर्मक और अकर्मक भेद से दो प्रकार की है, उस में से सकर्मक क्रिया के दो भेद और भी हैं–कर्तृप्रधान और कर्मप्रधान ॥

(१) कर्तृप्रधानक्रिया उसे कहते हैं–जो कर्ता के आधीन हो, अर्थात् जिसके लिंग, और वचन कर्ता के लिंग और वचन के अनुसार हों, जैसे–रामचन्द्र पुस्तक को पढ़ता है, लड़की पाठशाला को जाती है, मोहन बहिन को पढ़ाता है, इत्यादि ॥

(२) कर्मप्रधानक्रिया उसे कहते है कि जो क्रिया कर्म के आधीन हो अर्थात् जिस क्रियाके लिंग और वचन कर्म के लिंग और वचन के समान हों, जैसे—रामचन्द्र से पुस्तक पढ़ी जाती है, मोहन से बहिन पढ़ाई जाती है, फल खाया जाता है, इत्यादि ॥

पुरुष–विवरण ॥

प्रथम वर्णन कर चुके है कि—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष, ये ३ पुरुष है, इन का भी क्रिया के साथ नित्य सम्बंध रहता है, जैसे–मै खाता हूं, हम पढ़ते हैं, वे जावेंगे, वह गया, तू सोता था, तुम वहां जाओ, मै आऊंगा, इत्यादि, पुरुष के साथ लिंग का नित्य सम्बन्ध है इस लिये यहां लिंग का विवरण भी दिखाते हैं:—

लिंग–विवरण ॥

१– जिस के द्वारा सजीव वा निर्जीव पदार्थ के पुरुषवाचक वा स्त्रीवाचक होने की पहिचान होती है उसे लिंग कहते है, लिंग भाषा में दो प्रकार के माने गये हैं–पुल्लिंग और स्त्रीलिङ्ग ॥

(१) पुल्लिंग—पुरुषबोधक शब्द को कहते हैं, जैसे—मनुष्य, घोड़ा, कागज़, घर, इत्यादि ॥

(२) स्त्रीलिंग—स्त्रीबोधक शब्द को कहते हैं, जैसे—स्त्री, कलम, घोड़ी, मेज़, कुर्सी, इत्यादि ॥

२– प्राणिवाचक शब्दों का लिंग उन के जोड़े के अनुसार लोकव्यवहार से ही सिद्ध है, जैसे—पुरुष, स्त्री, घोड़ा, घोड़ी, बैल, गाय, इत्यादि ॥

१–पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने की रीतियों का वर्णन यहा विशेष आवश्यक न जानकर नहीं किया गया है, इस का विषय देखना हो तो दूसरे व्याकरणों को देखो ॥

३– जिन अप्राणिवाचक शब्दों के अन्त में अकार वा आकार रहता है और जिन का आदिवर्दी अक्षर त नहीं रहता, वे शब्द प्रायः पुल्लिंग होते है, जैसे—छाता, लोटा, घोड़ा, कागज, घर, इत्यादि ॥

(दीवार, कलम, स्लेट, पेन्सिल, दील आदि शब्दों को छोड़कर) ॥

४– जिन अप्राणिवाचक शब्दों के अन्तमें म, ई, वा त हो वे सब स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे—कलम, चिट्ठी, लकड़ी, दवात, जात, आदि (घी, दही, पानी, खेत, पर्वत, आदि शब्दोंको छोड़कर) ॥

५– जिन भाववाचक शब्दों के अन्त में आव, त्व, पन, और पा हो, वे सब पुल्लिंग होते है, जैसे— चढ़ाव, मिलाव, मनुष्यत्व, लड़कपन, बुढ़ापा आदि ॥

६– जिन भाववाचक शब्दों के अन्त में आई, ता, वट, हट हो, वे सब स्त्रीलिंग होते है, जैसे— चतुराई, उत्तमता, सजावट, चिकनाहट आदि ॥

७– समास में अन्तिम शब्द के अनुसार लिंग होता है, जैसे—पाठशाला, पृथ्वीपति, राजकन्या, गोपीनाथ, इत्यादि ॥

वचन–वर्णन ॥

१– वचन व्याकरण में संख्या को कहते हैं, इस के दो भेद हैं–एकवचन और बहुवचन ॥

(१) जिस शब्द से एक पदार्थ का बोध हो उसे एकवचन कहते है, जैसे—लड़का पढ़ता है, वृक्ष हिलता है, घोड़ा दौड़ता है ॥

(२) जिस शब्द से एक से अधिक पदार्थों का बोध होता है उसे बहुवचन कहते है, जैसे—लड़के पढ़ते है, घोड़े दौड़ते है, इत्यादि ॥

२– कुछ शब्द कर्त्ता कारक में एकवचन में तथा बहुवचन में समान ही रहते हैं, जैसे—घर, जल, वन, वृक्ष, बन्धु, बान्धव, इत्यादि ॥

३– जहां एकवचन और बहुवचन में शब्दों में भेद नहीं होता वहां शब्दों के आगे गण, जाति, लोग, जन, आदि शब्दों को जोड़कर बहुवचन बनाया करते हैं, जैसे—ग्रहगण, पण्डित लोग, मूढ जन, इत्यादि ॥

वचनोंका सम्बंध नित्य कारकों के साथ है इसलिये कारकों का विषय संक्षेप से दिखाते हैं–हिन्दी में आठ कारक माने जाते हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन[1] ॥

कारकों का वर्णन ॥

१– कर्ता उसे कहते हैं जो क्रिया को करे, उस का कोई चिन्ह नहीं है, परन्तु सकर्मक

१–कोई लोग सम्बध और सम्बोधन को कारक न मानकर शेष छः ही कारकों को मानते हैं ॥

क्रिया के कर्ता के आगे अपूर्णभूत को छोड़कर शेष भूतों में 'ने' का चिह्न आता है, जैसे—लड़का पढ़ता है, पण्डित पढ़ाता था, परन्तु पूर्णभूत आदि में गुरु ने पढ़ाया था, इत्यादि ॥

२– कर्म उसे कहते हैं जिस में क्रिया का फल रहे, इस का चिह्न 'को' है. जैसे मोहन को बुलाओ, पुस्तक को पढ़ो, इत्यादि ॥

३– करण उसे कहते हैं जिस के द्वारा कर्ता किसी कार्य को सिद्ध करे, इस का चिह्न 'से' है, जैसे—चाकू से कलम बनाई, इत्यादि ॥

४– सम्प्रदान उसे कहते हैं जिस के लिये कर्ता किसी कार्य को करे, इस के चिह्न 'को' के लिये हैं, जैसे—मुझ को पोथी दो, लड़के के लिये खिलौना लाओ, इत्यादि ॥

५– अपादान उसे कहते हैं कि जहां से क्रिया का विभाग हो, इस का चिह्न 'से' है, जैसे—वृक्ष से फल गिरा, घर से निकला, इत्यादि ॥

६– सम्बन्ध उसे कहते है–जिस से किसी का कोई सम्बंध प्रतीत हो, इस का चिह्न का, की, के, है, जैसे—राजा का घोड़ा, उस का घर, इत्यादि ॥

७– अधिकरण उसे कहते हैं–कि कर्ता और कर्म के द्वारा जहां पर कार्य का करना पाया जावे, उसका चिह्न में, पर, है, जैसे—आसन पर बैठो, फूल में सुगन्धि है, चटाईपर सोओ, इत्यादि ॥

८– सम्बोधन उसे कहते हैं जिस से कोई किसी को पुकारकर या चिताकर अपने सम्मुख करे, इस के चिह्न—हे, हो, अरे, रे, इत्यादि है ॥

जैसे—हे भाई, अरे नौकर, अरे रामा, अय लड़के इत्यादि ॥

अव्ययों का विशेष वर्णन ॥

प्रथम कह चुके हैं कि—अव्यय उन्हें कहते हैं जिनमें लिंग, वचन और कारक के कारण कुछ विकार नहीं होता है, अव्ययों के छः भेद हैं क्रियाविशेषण, सम्बंधबोधक, उपसर्ग, संयोजक, विभाजक और विसयादिबोधक ॥

१– क्रियाविशेषण अव्यय वह है—जिस से क्रिया का विशेष, काल और रीति आदि का बोध हो, इस के चार भेद हैं—कालवाचक, स्थानवाचक, भाववाचक और परिमाणवाचक ॥

(१) कालवाचक—समय बतलानेवाले को कहते है, जैसे—अब, तब, जब, कल, फिर, सदा, शाम, प्रातः, परसों, पश्चात्, तुरन्त, सर्वदा, शीघ्र, कब, एकबार, बारंबार, इत्यादि ॥

(२) स्थानवाचक—स्थान बतलानेवाले को कहते हैं, जैसे—यहां, जहां, वहां, कहां, तहां, इधर, उधर, समीप, दूर, इत्यादि ॥

(३) भाववाचक उन को कहते है—जो भाव को प्रकट करें, जैसे—अचानक, अर्थात्, केवल, तथापि, वृथा, सचमुच, नही, मत, मानो, हां, स्वयम्, झटपट, ठीक, इत्यादि ॥

(४) परिमाणवाचक—परिमाण बतलानेवालों को कहते हैं, जैसे—अत्यन्त, अधिक, कुछ, प्रायः, इत्यादि ॥

२— सम्बंधबोधक अव्यय उन्हें कहते है—जो वाक्य के एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बंध बतलाते है, जैसे—आगे, पीछे, संग, साथ, भीतर, बदले, तुल्य, नीचे, ऊपर, बीच, इत्यादि ॥

३— उपसर्गों का केवल का प्रयोग नहीं होता है, ये किसी न किसी के साथ ही में रहते हैं, संस्कृत में जो—प्र आदि उपसर्ग हैं वे ही हिन्दी में समझने चाहियें, वे उपसर्ग ये हैं—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, अभि, उप ॥

४— संयोजक अव्यय उन्हें कहते हैं—जो अव्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखंडों में आते हैं और अन्वय का संयोग करते है, जैसे—और, यदि, अथ, कि, तो, यथा, एवम्, भी, पुनः, फिर, इत्यादि ॥

५— विभाजक अव्यय उन्हें कहते है जो अव्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखण्डों के मध्य में आते है और अन्वय का विभाग करते है, जैसे—अथवा, परन्तु, चाहें, क्या, किन्तु, वा, जो, इत्यादि ॥

६— विस्मयादिबोधक अव्यय उन्हें कहते हैं जिनसे—अन्तःकरण का कुछ भाव या दशा प्रकाशित होती है, जैसे—आह, हहह, ओहो, हाय, धन्य, छीछी, फिस, धिक्, दूर, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का शब्दविचार नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पांचवां प्रकरण—वाक्यविचार ॥

पहिले कह चुके हैं कि—पदों के योग से वाक्य बनता है, इस में कारकसहित संज्ञा तथा क्रिया का होना अति आवश्यक है, वाक्य दो प्रकार के होते हैं—एक कर्तृप्रधान और दूसरा कर्मप्रधान ॥

१— जिसमें कर्ता प्रधान होता है उस वाक्य को कर्तृप्रधान कहते हैं, इस प्रकार के वाक्य में यद्यपि आवश्यकता के अनुसार सब ही कारक आ सकते हैं परन्तु इस में

कर्ता और क्रिया का होना बहुत जरूरी है और यदि क्रिया सकर्मक हो तो उस के कर्म को भी अवश्य रखना चाहिये ॥

२– वाक्य में पदों की योजना का क्रम यह है कि—वाक्य के आदि में कर्त्ता अन्त में क्रिया और शेष कारकों की आवश्यकता हो तो उन को बीच में रखना चाहिये ॥

३– पदों की योजना में इस बात का विचार रहना चाहिये कि—सब पद ऐसे शुद्ध और यथास्थान पर, रखना चाहिये कि उन से अर्थ का सम्बंध ठीक प्रतीत हो, क्योंकि पद असम्बद्ध होने से वाक्य का अर्थ ठीक न होगा और वह वाक्य अशुद्ध समझा जायगा ॥

४– शुद्ध वाक्य का उदाहरण यह है कि–राजा ने बाण से हरिण को मारा, इस कर्तृप्रधान वाक्य में राजा कर्ता, बाण करण, हरिण कर्म और मारा, यह सामान्य भूत की क्रिया है, इस वाक्य में सब पद शुद्ध है और उन की योजना भी ठीक है, क्योंकि एक पद का दूसरे पद के साथ अन्वय है, इस लिये सम्पूर्ण वाक्य का 'राजा के बाण से हरिण का मारा जाना' यह अर्थ हुआ ॥

५– व्याकरण के अनुसार पदयोजना ठीक होने पर भी यदि पद असम्बद्ध हों तो वाक्य अशुद्ध माना जाता है, जैसे—बनिया बसूले से कपड़े को सींता है, इस वाक्य में यद्यपि सब पद कारकसहित शुद्ध है तथा उनकी योजना भी यथास्थान है परन्तु पद असम्बद्ध हैं अर्थात् एक पद का अर्थ दूसरे पद के साथ अर्थ के द्वारा मेल नही रखता है, इस कारण वाक्य का कुछ भी अर्थ नही निकलता है, इसलिये ऐसे वाक्यों को भी अशुद्ध कहते है ॥

६– जैसे कर्तृप्रधान वाक्य में कर्ता का होना आवश्यक है वैसे ही कर्मप्रधान वाक्य में कर्म का होना भी आवश्यक है, इस में कर्ता की विशेष आकांक्षा नहीं रहती है, इस कर्मप्रधान वाक्य में भी शेष कारक कर्म और क्रिया के बीच में यथास्थल रक्खे जाते हैं ॥

७– कर्मप्रधान वाक्य में यदि कर्ता के रखने की इच्छा हो तो करण कारक के चिन्ह 'से' के साथ लाना चाहिये, जैसे—लड़के से फल खाया गया, गुरु से शिष्य पढ़ाया जाता है, इत्यादि ॥

८– वाक्य में जिस विशेष्य का जो विशेषण हो उस विशेषण को उसी विशेष्य से पहिले लाना चाहिये, ऐसी रचना से वाक्य का अर्थ शीघ्र ही जान लिया जाता है, जैसे—निर्दयी सिंह ने अपनी पैनी दाढ़ों से इस दीन हरिण को चावडाला, इस वाक्य में सब विशेषण यथास्थान पर है, इस लिये वाक्यार्थ शीघ्र ही जान लिया जाता है ॥

९– यदि विशेषण अपने विशेष्य के पूर्वः न रक्खे जांय तो दूरान्वय के कारण अर्थ समझने में कठिनता पड़ती है, जैसे– बड़े बैठा हुआ एक लड़का छोटा घोड़े पर चला जाता है। इस वाक्य का अर्थ विना सोचे नहीं जाना जाता, परन्तु इसी वाक्य में यदि

अपने २ विशेष्य के साथ विशेषण को मिला दें-तो शीघ्र ही अर्थ समझ में आ जायगा, जैसे एक छोटा लड़का बड़े घोड़े पर बैठा चला जाता है, यद्यपि ऐसे वाक्य अशुद्ध नहीं माने जाते हैं, किन्तु क्लिष्ट माने जाते हैं ॥

१०-जब वाक्य में कर्ता और क्रिया दो ही हों तो कर्ता को उद्देश्य और क्रिया को विधेय कहते हैं ॥

११-जिस के विषय में कुछ कहा जावे उसे उद्देश्य कहते हैं और जो कहा जावे उसे विधेय कहते है, जैसे-बैल चलता है, यहां बैल उद्देश्य और चलता है यहां विधेय है ॥

१२-उद्देश्य को विशेषण के द्वारा और विधेय को क्रियाविशेषण के द्वारा बढ़ा सकते हैं, जैसे अच्छा लड़का शीघ्र पढ़ता है ॥

१३-यदि कर्ता को कह कर उसका विशेषण क्रिया के पूर्व रहे तो कर्ता को उद्देश्य और विशेषणसहित क्रिया को विधेय कहेंगे, जैसे- कपड़ा मैला है, यहां कपड़ा उद्देश्य और मैला है विधेय है ॥

१४-यदि एक क्रिया के दो कर्ता हों और वे एक दूसरे के विशेष्य विशेषण न हो सकें तो पहिला कर्ता उद्देश्य और दूसरा कर्ता क्रियासहित विधेय माना जाता है, जैसे- यह मनुष्य पशु है, यहां 'यह मनुष्य' उद्देश्य और 'पशु है' विधेय जानो ॥

१५-जो शब्द कर्ता से सम्बंध रखता हो उसे कर्ता के निकट और जो क्रिया से सम्बंध रखता हो उसे क्रिया के निकट रखना चाहिये, जैसे- मेरा टट्टू जंगल में अच्छीतरह फिरता है, इत्यादि ॥

१६-विशेषण संज्ञा के पूर्व और क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व रहता है, जैसे-अच्छा लड़का शीघ्र पढ़ता है ॥

१७-पूर्वकालिका क्रिया उसी क्रिया के निकट रखनी चाहिये जिससे वाक्य पूर्ण हो, जैसे- लड़का रोटी खाकर जीता है ॥

१८-वाक्य में प्रश्नवाचक सर्वनाम उसी जगह रखना चाहिये जहां मुख्यतापूर्वक प्रश्न हो, जैसे-यह कौन मनुष्य है जिसने मेरा भला किया ॥

१९-यदि एक ही क्रिया के जुदे २ लिंग के अनेक कर्ता हों तो क्रिया बहुवचन हो जाती है, तथा उस का लिंग अन्तिम कर्ता के लिंग के अनुसार रहेगा, जैसे-बकरियां, घोड़े और बिल्ली जाती हैं ॥

२०-यदि एक ही क्रिया के अनेक कर्ता लिंग और वचन में एक से न हों परन्तु उन के समुदाय से एकवचन समझा जाय तो क्रिया भी एकवचनान्त होगी, और यदि बहुवचन समझा जाय तो क्रिया भी बहुवचनान्त होगी, जैसे- मेरा धन माल और रुपये पैसे आज मिलेंगे । मेरे घोड़े बैल ऊंट और बिल्ली खो गई ॥

२१–आदर के लिये क्रिया में बहुवचन होता है, चाहें आदरसूचक शब्द कर्ता के साथ हो वा न हो, जैसे– राजाजी आये है। पिताजी गये है, आप वहां जावेंगे, इत्यादि ॥

२२–यदि एक क्रिया के बहुत कर्म हों और उन के बीच में विभाजक शब्द रहे तो क्रिया एकवचनान्त रहेगी, जैसे—मेरा भाई न रोटी, न दाल, न भात, खावेगा ॥

२३–यदि एक क्रिया के उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष कर्ता हों तो क्रिया उत्तम पुरुष के अनुसार और यदि मध्यम तथा अन्य पुरुष हों तो मध्यम पुरुष के अनुसार होगी, जैसे—तुम, वह और मैं चलूंगा। तुम और वह जाओगे ॥

२४–वाक्य में कभी २ विशेषण भी क्रियाविशेषण हो कर आता है, जैसे—घोड़ा अच्छा दौड़ता है, इत्यादि ॥

२५–वाक्य में कभी २ कर्ता, कर्म तथा क्रिया गुप्त भी रहते है, जैसे—खेलता है, दे दिया, घर का बाग ॥

२६–सामान्यभूत, पूर्णभूत, आसन्नभूत और सन्दिग्धभूत, इन चार कालों में सकर्मक क्रिया के आगे 'ने' चिन्ह रहता है, परन्तु अपूर्णभूत और हेतुहेतुमद्भूत में नहीं रहता है, जैसे—मैं ने दिया, उस ने खाया था, लड़के ने लिया है, भाई ने दिया होगा, माता खाती थी, इत्यादि ॥

२७–बकना, बोलना, भूलना, जनना, जाना, ले जाना, खा जाना, इन सात क्रियाओं के किसी भी काल में कर्ता के आगे 'ने' नहीं आता है ॥

२८–जहां उद्देश्य विरुद्ध हो वहां वाक्य असंभव समझना चाहिये, जैसे—आग से सींचते है, पानी से जलाते है, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का वाक्यविचार नामक पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैन श्वेताम्बर धर्मोपदेशक, यतिप्राणाचार्य, विवेकलब्धिशिष्य, शीलसौभाग्य–निर्मितः। जैनसम्प्रदायशिक्षायाः।

प्रथमोऽध्यायः ॥

मागने वाले) से भी क्या प्रीति है (यह भी व्यर्थ रूपही है, क्योंकि इस से भी कुछ प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है किन्तु लघुता ही होती है) ॥ २९ ॥

नर चित कों दुख देत हैं, कुच नारी के दोय ॥
होत दुखी वह पड़न तें, इस विधि सब कों जोय ॥ ३० ॥

देखो ! स्त्रियों के दोनों कुच पुरुषों के चित्त को दुःख देते हैं, आखिरकार वे आप भी दुःख पाकर नीचे को गिरते है, इसी प्रकार सब को जानना चाहिये अर्थात् जो कोई मनुष्य किसी को दुःख देगा अन्त में वह आप भी सुख कभी नहीं पावेगा ॥ ३० ॥

सिंघरूप राजा हुवै, मन्त्री बाघ समान ॥
चाकर गीध समान तब, प्रजा होय क्षय मान ॥ ३१ ॥

राजा सिंह के समान हो अर्थात् प्रजा के सब धन माल को लूटने का ही खयाल रक्खे, मन्त्री बाघके[1] समान हो अर्थात् रिश्वत खाकर झूंठे अभियोग को सच्चा कर देवे अथवा वादी और प्रतिवादी (मुद्दई और मुद्दायला) दोनों से घूष खा जावे और चाकर लोग गीध के समान हों अर्थात् प्रजा को ठगने वाले हों तो उस राजा की प्रजा अवश्य नाश को प्राप्त हो जाती है ॥ ३१ ॥

उपज्यो धन अन्याय करि, दशहिँ बरस ठहराय ॥
सबहि सोलवें वर्ष लौं, मूल सहित विनसाय ॥ ३२ ॥

अन्याय से कमाया हुआ धन केवल दश वर्ष तक रहता है और सोलहवें वर्ष तक वह सब धन मूलसहित नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

विद्या में व्है कुशल नर, पावै कला सुजान ॥
द्रव्य सुभाषित को हुँ पुनि, संग्रह करि पहिचान ॥ ३३ ॥

विद्या में कुशल होकर सुजान पुरुष अनेक कलाओं को पा सकता है अर्थात् विद्या सीखा हुआ मनुष्य यदि सब प्रकार का गुण सीखना चाहे तो उस को वह गुण शीघ्र ही प्राप्त हो सकता है, फिर–विद्या पढ़े हुये मनुष्य को चतुराई प्राप्त करनी हो तो—सुभाषित ग्रन्थ (जो कि अनेक शास्त्रों में से निकाल कर बुद्धिमान् श्रेष्ठ कवियों ने बनाये हैं, जैसे–चाणक्यनीति, भर्तृहरिशतक और सुभाषितरत्नभाण्डागार आदि) सीखने चाहियें, क्योंकि जो मनुष्य सुभाषितमय द्रव्य का संग्रह नहीं करता है वह सभा के बीच में अपनी वाणी की विशेषता (खूबी) को कभी नहीं दिखला सकता है ॥ ३३ ॥

शूर वीर पण्डित पुरुष, रूपवती जो नार ॥
ये तीन हुँ जहँ जात हैं, आदर पावें सार ॥ ३४ ॥

१—छोटा नाहर ॥

शूर वीर पुरुष, पण्डित पुरुष और रूपवती स्त्री, ये तीनों जहां जाते हैं, वहीं सम्मान (आदर) पाते हैं ॥ ३४ ॥

नृप अरु पण्डित जो पुरुष, कबहुँ न होत समान ॥
राजा निज थल मानिये, पण्डित पूज्य जहान ॥ ३५ ॥

राजा और पण्डित, ये दोनों कभी तुल्य नहीं हो सकते है (अर्थात् पण्डित की बराबरी राजा नहीं कर सकता है) क्योंकि राजा तो अपने ही देश में माना जाता है और पण्डित सब जगत् में मान पाता है ॥ ३५ ॥

रूपवन्त जो मूर्ख नर, जाय सभा के बीच ॥
मौन गहे शोभा रहे, जैसे नारी नीच ॥ ३६ ॥

विद्यारहित रूपवान् पुरुष को चाहिये कि–किसी सभा (दर्बार) में जाकर मुंह से अक्षर न निकाले (कुछ भी न बोले) क्योंकि मौन रहने से उस की शोभा बनी रहेगी, जैसे दुष्टा स्त्री को यदि उस का पति बाहर न निकलने देवे तो घर की शोभा (आबरू) बनी रहती है ॥ ३६ ॥

कहा भयो जु विशाल कुल, जो विद्या करि हीन ॥
सुर नर पूजहिँ ताहि जो, मेधावी अकुलीन ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य विद्याहीन है, उस को उत्तम जाति में जन्म लेने से भी क्या सिद्धि मिल सकती है, क्योंकि देखो ! नीच जातिवाला भी यदि विद्या पढ़ा है तो उस की मनुष्य और देवता भी पूंजा करते है ॥ ३७ ॥

विद्यावन्त सपूत वरु, पुत्र एक ही होत ॥
कुल भासत नर श्रेष्ठ सें, ज्यों शशि निशा उदोत ॥ ३८ ॥

चाहें एक भी लड़का विद्यावान् और सपूत हो तो वह कुल में उजाला कर देता है, जैसे चन्द्रमा से रात्रि में उजाला होता है, अर्थात् शोक और सन्ताप के करनेवाले बहुत से लड़कों के भी उत्पन्न होने से क्या है, किन्तु कुटुम्ब का पालनेवाला एक ही पुत्र उत्पन्न हो तो उसे अच्छा समझना चाहिये, देखो ! सिंहनी एक ही पुत्र के होने पर निडर होकर सोती है और गधी दश पुत्रों के होने पर भी बोझे ही को लादे हुए फिरती है[1] ॥ ३८ ॥

शुभ तरुवर ज्यों एक ही, फूल्यो फल्यो सुवास ॥
सब वन आमोदित करे, त्यों सपूत गुणरास ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार फूला फला तथा सुगन्धित एक ही वृक्ष सब वन को सुगन्धित कर देता है, इसी प्रकार गुणों से युक्त–एक भी सपूत लड़का पैदा होकर कुल की शोभा को बढ़ा देता है ॥ ३९ ॥

१–इस बात को वर्तमान में प्रत्यक्ष ही देख रहे है ॥

निर्गुणि शत सें हूँ अधिक, एक पुत्र गुणवान ॥
एक चन्द्र तम को हरै, तारा नहिँ शतमान ॥ ४० ॥

निर्गुणी लड़के यदि सौ भी हों तथापि वे किसी काम के नहीं है, किन्तु गुणवान् पुत्र यदि एक भी हो तो अच्छा है, जैसे—देखो ! एक चन्द्रमा उदित होकर अन्धकार को दूर कर देता है, किन्तु सैकड़ों तारों के होने पर भी अंधेरा नहीं मिटता है, तात्पर्य यह है कि—गुणी पुत्र को चन्द्रमा के समान कुल में उद्योत करनेवाला जानो और निर्गुणी पुत्रों को तारों के समान समझो अर्थात् सौ भी निर्गुणी पुत्र अपने कुल में उद्योत नहीं कर सकते हैं॥

सुख चाहो विद्या तजो, विद्यार्थी सुख त्याग ॥
सुख चाहे विद्या कहाँ, कहँ विद्या सुख राग ॥ ४१ ॥

यदि सुख भोगना चाहे तो विद्या को छोड़ देना चाहिये और विद्या सीखना चाहे तो सुख को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि सुख चाहनेवाले को विद्या नही मिलती है ॥ ४१ ॥

नहिँ नीचो पाताल तल, ऊँचो मेरु लिगार ॥
व्यापारी उद्यम करै, गहिरो दधि नहिँ धार ॥ ४२ ॥

उद्यमी (मेहनती) पुरुष के लिये मेरु पहाड़ कुछ ऊंचा नहीं है और पाताल भी कुछ नीचा नहीं है तथा समुद्र भी कुछ गहरा नही है, तात्पर्य यह है कि—उद्यम से सब काम सिद्ध हो सकते है ॥ ४२ ॥

एकहि अक्षर शिष्य कों, जो गुरु देत बताय ॥
धरती पर वह द्रव्य नहिँ, जिहिँ दै ऋण उतराय ॥ ४३ ॥

गुरु कृपा करके चाहें एक ही अक्षर शिष्य को सिखलावे, तो भी उस के उपकार का बदला उतारने के लिये कोई धन संसार में नहीं है, अर्थात् गुरु के उपकार के बदले में शिष्य किसी भी वस्तु को देकर उऋण नही हो सकता है ॥ ४३ ॥

पुस्तक पर आप हि पढ्यो, गुरु समीप नहिँ जाय ॥
सभा न शोभै जार सें, ज्यों तिय गर्भ धराय ॥ ४४ ॥

जिस पुरुष ने गुरु के पास जाकर विद्या का अभ्यास नहीं किया, किन्तु अपनी ही बुद्धि से पुस्तक पर आप ही अभ्यास किया है, वह पुरुष सभा में शोभा को नही पा सकता है, जैसे—जार पुरुष से उत्पन्न हुआ लड़का शोभा को नहीं पाता है, क्योंकि जार से गर्भ धारण की हुई स्त्री तथा उसका लड़का अपनी जातिवालों की सभा में शोभा नहीं पाते हैं, क्योंकि—लज्जा के कारण बाप का नाम नहीं बतला सकते हैं ॥ ४४ ॥

१—तात्पर्य यह है कि—विद्याभ्यास के समय में यदि मनुष्य भोग विलास मे लगा रहेगा तो उस को विद्या की प्राप्ति कदापि नहीं होगी, इस लिये विद्यार्थी सुख को और सुखार्थी विद्या को छोड देवे ॥

कुलहीन हु धनवन्त जो, धनसें वह सुकुलीन ॥
शशि समान हू उच्च कुल, निरधन सब से हीन ॥ ४५ ॥

नीच जातिवाला पुरुष भी यदि धनवान् हो तो धन के कारण वह कुलीन कहलाता है और चन्द्रमा के समान निर्मल कुल अर्थात् ऊंचे कुलवाला भी पुरुष धन से रहित होने से सब से हीन गिना जाता है ॥ ४५ ॥

वय करि तप करि वृद्ध है, शास्त्रवृद्ध सुविचार ॥
वे सब ही धनवृद्ध के, किङ्कर ज्यों लखि द्वार ॥ ४६ ॥

इस संसार में कोई अवस्था में बड़े हैं, कोई तप में बड़े है और कोई बहुश्रुति अर्थात् अनेक शास्त्रों के ज्ञान से बड़े हैं, परन्तु इस रुपये की महिमा को देखो कि—वे तीनों ही धनवान् के द्वार पर नौकर के समान खड़े रहते है ॥ ४६ ॥

वन में सुख सें हरिण जिमि, तृण भोजन भल जान ॥
देहु हमैं यह दीन वच, भाषण नहिँ मन आन ॥ ४७ ॥

जंगल में जाकर हिरण के समान सुखपूर्वक घास खाना अच्छा है परंतु दीनता के साथ किसी सूम (कञ्जूस) से यह कहना कि "हम को देओ" अच्छा नहीं है ॥ ४७ ॥

कोई विद्यापात्र हैं, कोई धन के धाम ॥
कोई दोनों रहित हैं, कोइ उभयविश्राम ॥ ४८ ॥

देखो ! इस संसार में कोई तो विद्या के पात्र हैं, कोई धन के पात्र हैं, कोई विद्या और धन दोनों के पात्र हैं और कोई मनुष्य ऐसे भी हैं जो न विद्या और न धन के पात्र हैं ॥ ४८ ॥

पांच होत ये गर्भ में, सब के विद्या वित्त ॥
आयु कर्म अरु मरण विधि, निश्चय जानो मित्त ॥ ४९ ॥

हे मित्र ! इस बात को निश्चय कर जान लो कि—पूर्वकृत कर्म के योग से जीवधारी के लिये—विद्या, धन, आयु, कर्म और मरण, ये पांच बातें गर्भ ही में रच दी जाती हैं ॥४९॥

चित्रगुप्त की भाल में, लिखी जु अक्षर माल ॥
बहु श्रम सें हू नहिँ मिटै, पण्डित बरु भूपाल ॥ ५० ॥

जो कर्म के अक्षर ललाट में लिखे है उसी को चित्रगुप्त कहते हैं (अर्थात् छिपा हुआ लेख) और इसी को लौकिक शास्त्रवाले विधाता के लिखे हुए अक्षर भी कहते हैं, तथा जैनधर्मवाले पूर्वकृत कर्म के स्वाभाविक नियम के अनुसार अक्षर मानते हैं, तात्पर्य इस का यही है कि—जो पूर्वकृत कर्म की छाप मनुष्य के ललाट पर लगी हुई है उस को

१—इस बात को वर्तमान में पाठकगण आखों से देख ही रहे होंगे ॥ २—इन्हीं बातो को लोक मे विधाता का छठी का लेख कहते है, क्योंकि दैव और विधाता ये दोनों

वर्द्धमान ज्ञानागार

लोग नहीं जान सकते हैं और न उस लेख को कोई मिटा सकता है, चाहें पण्डित और राजा कोई भी कितना ही यत्न क्यों न करे ॥ ५० ॥

वन रण वैरी अग्नि जल, पर्वत शिर अरु शुन्य ॥
सुप्त प्रमत अरु विषम थल, रक्षक पूरब पुन्य ॥ ५१ ॥

जंगल में, लड़ाई में, दुश्मनों के सामने, अग्नि लगने पर, जल में, पर्वत पर, शून्य स्थान में, निद्रा में, प्रमाद की अवस्था में और विषम स्थान में, इतने स्थानों में मनुष्य का किया हुआ पूर्व जन्म का अच्छा कर्म ही रक्षा करता है ॥ ५१ ॥

मूर्ख शिष्य उपदेश करि, दारा दुष्ट बसाय ॥
वैरी को विश्वास करि, पण्डित हू दुख पाय ॥ ५२ ॥

मूर्ख शिष्य को सिखला कर, दुष्ट स्त्री को रखकर और शत्रु का विश्वास कर पण्डित पुरुष भी दुःखी होता है ॥ ५२ ॥

दुष्ट भारजा मित्र शठ, उत्तरदायक भृत्य ॥
सर्पसहित घर वास ये, निश्चय जानो मृत्य ॥ ५३ ॥

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देनेवाला नौकर और जिस मकान में सर्प रहता हो वहां का निवास, ये सब बातें मृत्युस्वरूप हैं, अर्थात् इन बातों से कभी न कभी मनुष्य की मृत्यु ही होनी सम्भव है ॥ ५३ ॥

विपति हेत रखिये धनहिँ, धन तें रखिये नारि ॥
धन अरु दारा दुहुँन तें, आतम नित्य विचारि ॥ ५४ ॥

विपत्तिसमय के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये और धन तथा स्त्री, इन दोनों से नित्य अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

एकहिँ तजि कुल राखिये, कुल तजि रखिये ग्राम ॥
ग्राम त्यागि रखु देश कों, आतमहित वसु धाम ॥ ५५ ॥

एक को छोड़कर कुल की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् एक मनुष्य के लिये तमाम कुल को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु एक मनुष्य को ही छोड़ना चाहिये, कुल को छोड़कर ग्राम

१—तात्पर्य यह है कि–इस संसार में मनुष्य की हानि और लाभ का हेतु केवल पूर्व जन्म का किया हुआ कर्म ही होता है, यही मनुष्य को विपत्ति में डालता है और यही मनुष्य को विपत्तिसागर से पार निकालता है, इस लिये उस कर्म के प्रभाव से जो सुख या दुःख अपने को प्राप्त होनेवाला है उस को देवता और दानव आदि कोई भी नहीं हटा सकता है, इस लिये हे बुद्धिमान् पुरुषो ! जरा भी चिन्ता मत करो क्योंकि जो अपने भाग्य का है वह पराया कभी नहीं हो सकता है ॥ २—तात्पर्य यह है कि–धन के नाश का कुछ भी विचार न कर विपत्ति से पार होना चाहिये तथा स्त्री की रक्षा करना चाहिये और धन और स्त्री, इन दोनों के भी नाश का कुछ विचार न करके अपनी रक्षा करनी चाहिये अर्थात् इन दोनों का यदि नाश होकर भी अपनी रक्षा होती हो तो भी अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥

की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् कुल के लिये तमाम ग्राम को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु ग्राम की रक्षा के लिये कुल को छोड़ देना चाहिये, ग्राम का त्याग कर देश की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् देश की रक्षा के लिये ग्राम को छोड़ देना चाहिये और अपनी रक्षा के लिये तमाम पृथिवी को छोड़ देना चाहिये ॥ ५५ ॥

नहीं मान जिस देश में, वृत्ति न बान्धव होय ॥
नहिँ विद्या प्रापति तहाँ, वसिय न सज्जन कोय ॥ ५६ ॥

जिस देश में न तो मान हो, न जीविका हो, न भाई बन्धु हों और न विद्या की ही प्राप्ति हो, उस देश में सज्जनों को कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

पण्डित राजा अरु नदी, वैद्यराज धनवान ॥
पांच नहीं जिस देश में, वसिये नाहिँ सुजान ॥ ५७ ॥

सब विद्याओं का जाननेवाला पण्डित, राजा, नदी (कुआ आदि जल का स्थान), रोगों को मिटानेवाला उत्तम वैद्य और धनवान्, ये पांच जिस देश में न हो उस में बुद्धिमान् पुरुष को नही रहना चाहिये ॥ ५७ ॥

भय लज्जा अरु लोकगति, चतुराई दातार ॥
जिसमें नहिँ ये पांच गुण, संग न कीजै यार ॥ ५८ ॥

हे मित्र ! जिस मनुष्य में भय, लज्जा, लौकिक व्यवहार अर्थात् चालचलन, चतुराई और दानशीलता, ये पांच गुण न हों, उस की संगति नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

काम भेज चाकर परख, बन्धु दुःख में काम ॥
मित्र परख आपद् पड़े, विभव छीन लख वाम ॥ ५९ ॥

कामकाज करने के लिये भेजने पर नौकर चाकरों की परीक्षा हो जाती है, अपने पर दुःख पड़ने पर भाइयों की परीक्षा हो जाती है, आपत्ति आने पर मित्र की परीक्षा हो जाती है और पास में धन न रहने पर स्त्री की परीक्षा हो जाती है ॥ ५९ ॥

आतुरता दुख हू पड़े, शत्रु सङ्कटौ पाय ॥
राजद्वार मसान में, साथ रहै सो भाय ॥ ६० ॥

आतुरता (चित्त में घबड़ाहट) होने पर, दुःख आने पर, शत्रु से कष्ट पाने पर, राजदर्बार का कार्य आने पर तथा श्मशान (मौतसमय) में जो साथ रहता है, उसी को अपना भाई समझना चाहिये ॥ ६० ॥

सींग नखन के पशु नदी, शस्त्र हाथ जिहि होय ॥
नारी जन अरु राजकुल, मत विश्वास हु कोय ॥ ६१ ॥

सींग और नखवाले पशु, नदी, हाथ में शस्त्र लिये हुए पुरुष, स्त्री तथा राजकुल, इन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये ॥ ६१ ॥

लेवो अम्मृत विषहु तें, कञ्चन अशुचिहुँ थान ॥
उत्तम विद्या नीच से, अकुल रतन तिय आन ॥ ६२ ॥

अमृत यदि विष के भीतर भी हो तो उस को ले लेना चाहिये, सोना यदि अपवित्र स्थान में भी पड़ा हो तो उसे ले लेना चाहिये, उत्तम विद्या यदि नीच जातिवाले के पास हो तो भी उसे ले लेना चाहिये, तथा स्त्रीरूपी रत्न[1] यदि नीच कुल की भी हो तो भी उस का अङ्गीकार कर लेना चाहिये ॥ ६२ ॥

तिरिया भोजन द्विगुण अरु, लाज चौगुनी मान ॥
जिद् होत तिहि छः गुनी, काम अष्टगुण जान ॥ ६३ ॥

पुरुष की अपेक्षा स्त्री का आहार दुगुना होता है, लज्जा चौगुनी होती है, हठ छः-गुणा होता है और काम अर्थात् विषयभोग की इच्छा आठगुनी होती है ॥ ६३ ॥

मिथ्या हठ अरु कपटपन, मौढ्य कृतघ्नी भाव ॥
निर्दयपन पुनि अशुचिता, नारी सहज सुभाव ॥ ६४ ॥

झूंठ बोलना, हठ करना, कपट रखना, मूर्खता, किये हुये उपकार को भूल जाना, दया का न होना और अशुचिता अर्थात् शुद्ध न रहना, ये सात दोष स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं ॥ ६४ ॥

भोजन अरु भोजनशकति, भोगशक्ति वर नारि ॥
गृह विभूति दातारपन, छवुँ अति तप निर्धार ॥ ६५ ॥

उत्तम भोजन के पदार्थों का मिलना, भोजन करने की शक्ति होना, स्त्री से भोग करने की शक्ति का होना, सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होना और धन की प्राप्ति होना तथा दान देने का स्वभाव होना, ये छवों बातें उन्हीं को प्राप्त होती हैं जिन्हों ने पूर्व भव में पूरी तपस्या की है ॥ ६५ ॥

नारी इच्छागामिनी, पुत्र होय वस जाहि ॥
अल्प धन हुँ सन्तोष जिहि, इहैं स्वर्ग है ताहि ॥ ६६ ॥

जिस पुरुष की स्त्री इच्छा के अनुसार चलनेवाली हो, पुत्र आज्ञाकारी हो और थोड़ा भी धन पाकर जिस ने सन्तोष कर लिया है, उस पुरुष को इसी लोक में स्वर्ग के समान सुख समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

१—परम दिव्य स्त्रीरूप रत्न चक्रवर्ती महाराज को प्राप्त होता है-क्योंकि दिव्यागना की प्राप्ति पूर्ण तपस्या का फल माना गया है—अतः पुण्यहीन को उस की प्राप्ति नहीं हो सकती है, इस लिये यदि वह स्त्रीरूप रत्न अनार्य म्लेच्छ जाति का भी हो किन्तु सर्वगुणसम्पन्न हो तो उस की जाति का विचार न कर उस का अंगीकार कर लेना चाहिये ॥

सुत वोही पितुभक्त जो, जो पालै पितु सोय ॥
मित्र वही विश्वास जिहि, नारी सो सुख होय ॥ ६७ ॥

पुत्र वही है जो माता पिता का भक्त हो, पिता वही है जो पालन पोषण करे, मित्र वही है जिस पर विश्वास हो और स्त्री वही है जिस से सदा सुख प्राप्त हो ॥ ६७ ॥

पीछे काज नसावही, मुख पर मीठी बान ॥
परिहरु ऐसे मित्र को, मुख पय विष घट जान ॥ ६८ ॥

पीछे निन्दा करे और काम को बिगाड़ दे तथा सामने मीठी २ बातें बनावे, ऐसे मित्र को अन्दर विष भरे हुए तथा मुख पर दूध से भरे हुए घड़े के समान छोड़ देना चाहिये ॥६८॥

नहिँ कुमित्र विश्वास कर, मित्रहुँ को न विसास ॥
कबहुँ कुपित ह्वै मित्र हू, गुह्य करै परकास ॥ ६९ ॥

खोटे मित्र का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, किन्तु मित्र का भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि संभव है कि—मित्र भी कभी क्रोध में आकर गुप्त बात को प्रकट कर दे ॥ ६९ ॥

मन में सोचे काम को, मत कर वचन प्रकास ॥
मन्त्र सरिस रक्षा करै, काम भये पर भास ॥ ७० ॥

मन से विचारे हुए काम को वचन के द्वारा प्रकट नहीं करना चाहिये, किन्तु उस की मन्त्र के समान रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि कार्य होने पर तो वह आप ही सब को प्रकट हो जायगा ॥ ७० ॥

मूरख नर सें दूर तुम, सदा रहो मतिमान ॥
विन देखे कंटक सरिस, वेधै हृदय कुवान ॥ ७१ ॥

साक्षात् पशु के समान मूर्ख जन से सदा बच कर रहना अच्छा है, क्योंकि वह विना देखे कांटे के समान कुवचन रूपी कांटे से हृदय को वेध देता है ॥ ७१ ॥

कण्टक अरु धूरत पुरुष, प्रतीकार द्वै जान ॥
जूती सें मुख तोड़नो, दूसर त्यागन जान ॥ ७२ ॥

धूर्त मनुष्य और कांटे के केवल दो ही उपाय (इलाज) है—या तो जूते से उस के मुख को तोड़ना अथवा उस से दूर हो कर चलना ॥ ७२ ॥

१—क्योंकि कार्य के सिद्ध होने से पूर्व यदि वह सब को विदित हो जाता है तो उस में किसी न किसी प्रकार का प्रायः विघ्न पड़ जाता है, दूसरा यह भी कारण है कि—कार्य की सिद्धि से पूर्व यदि वह सब को प्रकट हो जावे कि अमुक पुरुष अमुक कार्य को करना चाहता है और दैवयोग से उस कार्य की सिद्धि न हो तो उपहास का स्थान होगा ॥

शैल शैल माणिक नहीं, मोती गज गज नाहिं ॥
वन वन में चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहिं॥ ७३ ॥

सब पर्वतों पर माणिक पैदा नहीं होता है, सब हाथियों के कुम्भस्थल (मस्तक) में मोती नही निकलते हैं, सब वनों में चन्दन के वृक्ष नहीं होते हैं और सब स्थानों में साधु नहीं मिलते हैं ॥ ७३ ॥

पुत्रहि सिखवै शील को, बुध जन नाना रीति ॥
कुल में पूजित होत है, शीलसहित जो नीति ॥ ७४ ॥

बुद्धिमान् लोगों को उचित है कि अपने लड़कों को नाना भांति की सुशीलता में लगावें, क्योंकि नीति के जानने वाले यदि शीलवान् हों तो कुल में पूजित होते हैं ॥ ७४ ॥

ते माता पितु शत्रु सम, सुत न पढ़ावैं जौन ॥
राजहंस बिच बकसरिस, सभा न शोभत तौन ॥ ७५ ॥

वे माता और पिता वैरी हैं जिन्हों ने लाड़ के वश में होकर अपने बालक को नहीं पढ़ाया, इस कारण वह बालक सभा में जाकर शोभा नहीं पाता है, जैसे हंसों की पंक्ति में बगुला शोभा को नहीं पाता है ॥ ७५ ॥

पुत्र लाड़ सें दोष बहु, ताड़न सें बहु सार ॥
यातें सुत अरु शिष्य को, ताड़न ही निरधार ॥ ७६ ॥

पुत्रों का लाड़ करने से बहुत दोष (अवगुण) होते हैं और ताड़न (धमकाने) से बहुत लाभ होता है, इस लिये पुत्र और शिष्य का सदा ताड़न करना ही उचित है॥७६॥

पांच बरस सुत लाड़ कर, दश लौं ताड़न देहु ॥
बरस सोलवें लागते, कर सुत मित्र सनेहु ॥ ७७ ॥

पांच वर्ष तक पुत्र का (खिलाने पिलाने आदि के द्वारा) लाड़ करना चाहिये, दश वर्ष तक ताड़न करना चाहिये अर्थात् त्रास देकर विद्या पढ़ानी चाहिये—परन्तु जब सोलहवां वर्ष लगे तब पुत्र को मित्र के समान समझ कर सब वर्ताव करना चाहिये ॥ ७७ ॥

रूप भयो यौवन भयो, कुल हू में अनुकूल ॥
विन विद्या शोभै नहीं, गन्धहीन ज्यों फूल ॥ ७८ ॥

रूप तथा यौवनवाला हो और बड़े कुल में उत्पन्न भी हुआ हो तथापि विद्यारहित पुरुष शोभा नहीं पाता है, जैसे—गन्ध से हीन होने से टेसू (केसूले) का फूल ॥ ७८ ॥

१—साधु नाम सत्पुरुष का है ॥ २—शील का लक्षण ९१ वें दोहे की व्याख्या में देखो ॥

३—तात्पर्य यह है कि-सोलह वर्ष के पीछे ताडन कर विद्या पढ़ाने का समय नहीं रहता है क्योंकि सोलह वर्ष तक में सब इन्द्रियां और मन आदि परिपक्व होकर जैसा संस्कार हृदय में जम जाता है, उस का मिटना अति कठिन होता है, जैसे कि बडे वृक्ष की शाखा सुदृढ़ होने से नहीं नमाई जा सकती है ॥

पर को वसनरु अन्न पुनि, सेज परस्त्री नेह ॥
दूरि तजहु एते सकल, पुनि निवास परगेह ॥ ७९ ॥

पराया वस्त्र, पराया अन्न, पराई शय्या, पराई स्त्री और पराये मकान में रहना, इन पांचों बातों को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ॥ ७९ ॥

जग जन्में फल धर्म अरु, अर्थ काम पुनि मुक्ति ॥
जासें सधत न एक हु, दुःख हेत तिहिँ भुक्ति ॥ ८० ॥

संसार में मनुष्यजन्म का फल यही है कि–धर्म[1], अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करे, किन्तु इन चारों में से जिस ने एक भी प्राप्त नहीं किया–उस का सब भोग केवल दुःख के लिये है ॥ ८० ॥

परनिन्दा विन दुष्ट नर, कबहुँ नहिँ सुख पाय ॥
त्यागि काक जिमि सर्व रस, विष्ठा चित्त सुहाय ॥ ८१ ॥

दुर्जन मनुष्य पराई निन्दा किये विना कभी सुखी नहीं होता है (अर्थात् पराई निन्दा करने से ही सुखी होता है), जैसे कौआ अनेक प्रकार का उत्तम भोजन छोड़ कर विष्ठा खाये विना नहीं रहता है ॥ ८१ ॥

स्तुति विद्या की लोक में, नहिँ शरीर की चाहिँ ॥
काली कोयल मधुर धुनि, सुनि सुनि सकल सराहिँ ॥ ८२ ॥

लोक में विद्या से प्रशंसा होती है–किन्तु शरीर की प्रशंसा नहीं होती है, देखो! कोयल यद्यपि काली होती है–तथापि उस के मीठे स्वर को सुन कर सब ही उस की प्रशंसा करते है ॥ ८२ ॥

सवैया[2]—पितु धीरज औ जननी जु क्षमा, मननिग्रह भ्रात सहोदर है।
सुत सत्य दया भगिनी गृहिणी, शुभ शान्ति हु सेवमें तत्पर है॥
सुखसेज सजी धरणी दिशि अम्बर, ज्ञानसुधा शुभ आहर है।
जिन योगिन के जु कुटुम्बि यहैं, कहु मीत तिन्हैं किन्ह को डर है॥८३

जिन का धीरज पिता है, क्षमा माता है, मन का संयम भ्राता है, सत्य पुत्र है, दया बहिन है, सुन्दर शान्ति ही सेवा करनेवाली भार्या (स्त्री) है, पृथिवी सुन्दर सेज है, दिशा वस्त्र है तथा ज्ञानरूपी अमृत के समान भोजन है, हे मित्र! जिन योगी जनों के उक्त कुटुम्बी है बतलाओ उन को किस का डर हो सकता है ॥ ८३ ॥

बादल छाया तृण अगनि, अधम सेव थल नीर ॥
वेश्यानेह कुमित्र ये, बुदबुद ज्यों नहिँ थीर ॥ ८४ ॥

१—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का स्वरूप सुभाषितावलि के २२३ से २२८ वें तक दोहों में देखो ॥
२—यह सवैया "धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी" इत्यादि भर्तृहरिशतक के श्लोक का अनुवादरूप है ॥

बादल की छाया, तिनकों (फूस) की अग्नि, नीच स्वामी की सेवा, रेतीली पृथिवी पर वृष्टि, वेश्या की प्रीति और दुष्ट मित्र, ये छओं पदार्थ पानी के बुलबुले के समान हैं अर्थात् क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं, इस लिये ये कुछ भी लाभदायक नहीं हैं ॥ ८४ ॥

नगर शरीर रु जीव नृप, मन मन्त्रीन्द्रिय लोक ॥
मन विनशे कछु वश नहीं, कौरव करण विलोक ॥ ८५ ॥

इस शरीररूपी नगरी में जीव राजा के समान है, मन मन्त्री अर्थात् प्रधान के समान है, और इन्द्रियां प्रजा के समान हैं, इस लिये जब मनरूपी मन्त्री नष्ट हो जाता है अर्थात् जीत लिया जाता है तो फिर किसी का भी वश नहीं चलता है, जैसे कर्ण[1] राजा के मर जाने से कौरवों का पाण्डवों के सामने कुछ भी वश नहीं चला ॥ ८५ ॥

धर्म अर्थ अरु काम ये, साधहु शक्ति प्रमाण ॥
नित उठि निज हित चिन्तहू, ब्राह्म मुहूरत जाण ॥ ८६ ॥

मनुष्य को चाहिये कि- अपनी शक्ति के अनुसार धर्म, अर्थ और काम का साधन करे तथा प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर अपने हित का विचार करना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-पिछली चार घड़ी रात्रि रहने पर मनुष्य को उठना चाहिये, फिर अपने को क्या करना अच्छा है और क्या करना बुरा है-ऐसा विचारना चाहिये, प्रथम धर्म का आचरण करना चाहिये, अर्थात् समता का परिणाम रख कर ईश्वर की भक्ति और किये हुए पापों का आलोचन दो घड़ी तक करके भावपूजा करे, फिर देव और गुरु का वन्दन तथा पूजन करे, पीछे व्याख्यान अर्थात् गुरुमुख से धर्मकथा सुने, इस के पीछे सुपात्रों को अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर पथ्य भोजन करे, फिर अर्थ का उपार्जन करे अर्थात् व्यापार आदि के द्वारा धन को पैदा करे परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि—वह धन का पैदा करना न्याय[2] के अनुकूल होना चाहिये किन्तु अन्याय से नहीं होना चाहिये, फिर काम का व्यवहार करे अर्थात् कुटुम्ब, मकान, लड़का, माता, पिता और स्त्री आदि से यथोचित वर्त्ताव करे, इस के पश्चात् मोक्ष का आचरण करे अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके वैराग्ययुक्त भाव के सहित जो साधु धर्म (दुःख के मोचन का श्रेष्ठ उपाय) है उस को अंगीकार करे ॥ ८६ ॥

कौन काल को मित्र है, देश खरच क्या आय ॥
को मैं मेरी शक्ति क्या, नित उठि नर चित ध्याय ॥ ८७ ॥

यह कौन सा काल है, कौन मेरा मित्र है, कौन सा देश है, मेरे आमदनी कितनी है और खर्च कितना है, मैं कौन जाति का हूँ औ क्या मेरी शक्ति है, इन बातों को मनुष्य को

१—इस इतिहास को पांडवचरित्रादि ग्रन्थों में देखो ॥ २—क्योंकि अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष के पश्चात् मूलसहित नष्ट हो जाता है, यह पहिले ३२ वें दोहे में कहा जा चुका है ॥

प्रतिदिन विचारते रहना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य इन बातों को विचार कर चलेगा वह अपने जीवन में कभी दुःख नहीं पावेगा ॥ ८७ ॥

भयत्राता पतिनी पिता, विद्याप्रद गुरु जौन ॥
मन्त्रदानि अरु अशनप्रद, पञ्च पिता छितिरौन ॥ ८८ ॥

हे राजन्! भय से बचानेवाला, भार्या का पिता (श्वशुर), विद्या का देनेवाला (गुरु) मन्त्र अर्थात् दीक्षा अथवा यज्ञोपवीत का देनेवाला तथा भोजन (अन्न) का देनेवाला, ये पांच पिता कहलाते है ॥ ८८ ॥

राजभारजा दार गुरु, मित्रदार मन आन ॥
पतनी माता मात निज, ये सब माता जान ॥ ८९ ॥

राजा की स्त्री, गुरु (विद्या पढ़ानेवाले) की स्त्री, मित्र की स्त्री, भार्या की माता (सासू) और अपने जन्म की देनेवाली तथा पालनेवाली, ये सब मातायें कहलाती हैं ॥ ८९ ॥

ब्राह्मण को गुरु वह्नि है, वर्ण विप्र गुरु जान ॥
नारी को गुरु पति अहै, जगतगुरू यति मान ॥ ९० ॥

ब्राह्मणों का गुरु अग्नि है, सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण[1] है, स्त्रियों का गुरु पति ही है तथा सब संसार का गुरु यति[2] है ॥ ९० ॥

तपन घिसन छेदन कुटन, हेम यथा परखाय ॥
शास्त्र शील तप अरु दया, तिमि बुध धर्म लखाय ॥ ९१ ॥

जैसे अग्नि में तपाने से, कसौटी पर घिसने से, छेनी से काटने से और हथौड़े से कूटने से, इन चार प्रकारों से सोना परखा जाता है, उसी प्रकार से बुद्धिमान् पुरुष धर्म की भी परीक्षा चार प्रकार से करके फिर धर्म का ग्रहण करते हैं, उस धर्म की परीक्षा का प्रथम उपाय यह है कि—उस धर्म का यथार्थ ज्ञान देखना चाहिये अर्थात् यदि शास्त्रों के बनानेवाले मांसाहारी तथा नशा पीनेवाले आदि होते हैं तो वे पुरुष अपने बनाये हुए ग्रन्थों में किसी देव के बलिदान आदि का बहाना लगाकर "मांस खाने तथा मद्य पीने से दोष नही होता है" इत्यादि बातें अवश्य लिख ही देते हैं, ऐसे लेखों में परस्पर विरोध भी प्रायः देखा जाता है अर्थात् पहिला और पिछला लेख एक सा नहीं होता है, अथवा उन के लेख में परस्पर विरोध इस प्रकार भी देखा जाता है कि—एक स्थान में किसी बात का अत्यन्त निषेध लिखकर दूसरे स्थान में वही ग्रन्थकर्त्ता अपने ग्रन्थ में कारणविशेष को न

१—जन्म और मरण आदि का सब संस्कार कराने से सब शास्त्रों को जाननेवाला तथा ब्रह्म को जाननेवाला ब्राह्मण ही वर्णों का गुरु है किन्तु मूर्ख और क्रियाहीन ब्राह्मण गुरु नहीं हो सकता है ॥

२—इन्द्रियों का दमन करनेवाले तथा कञ्चन और कामिनी के त्यागी को यति कहते हैं ॥

बतलाकर ही उसी बात का विधान लिख देते है, अथवा चार प्रमाणों में से एक भी प्रमाण जिस शास्त्र के वचनों में नहीं मिलता हो वह भी माननीय नहीं हो सकता है, वे चार प्रमाण न्यायशास्त्र में इस प्रकार बतलाये हैं-नेत्र आदि इन्द्रियों से साक्षात् वस्तु के ग्रहण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है, लिंग के द्वारा लिङ्गी के ज्ञान को अनुमान प्रमाण कहते हैं-जैसे धूम को देख कर पर्वत में अग्नि का ज्ञान होना आदि, तीसरा उपमान प्रमाण है-इस को सादृश्यज्ञान भी कहते हैं, चौथा शब्द प्रमाण है अर्थात् आप्त पुरुष का कहा हुआ जो वाक्य है उस को शब्द प्रमाण तथा आगम प्रमाण भी कहते है। परन्तु यहां पर यह भी जान लेना चाहिये कि-आप्तवाक्य अथवा आगम प्रमाण वही हो सकता है जो वाक्य रागद्वेष से रहित सर्वज्ञ का कथित है और जिस में किसी का भी पक्षपात तथा स्वार्थसिद्धि न हो और जिस में मुक्ति के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया गया हो, ऐसे कथन से युक्त केवल सूत्रग्रन्थ हैं, इस लिये वे ही बुद्धिमानों के मानने योग्य हैं, यह धर्म की प्रथम परीक्षा कही गई ॥

दूसरे प्रकार से शील के द्वारा धर्म की परीक्षा की जाती है—शील आचार को कहते हैं, उस (शील) के द्रव्य और भाव के द्वारा दो भेद है—द्रव्य के द्वारा शील उस को कहते हैं कि—ऊपर की शुद्धि रखना तथा पांचों इन्द्रियों को और क्रोध आदि (क्रोध, मान, माया और लोभ) को जीतना, इस को भावशील कहते है, इस लिये दोनों प्रकार के शील से युक्त आचार्य जिस धर्म के उपदेशक और गुरु हों तथा कञ्चन और कामिनी के त्यागी हों उन को श्रेष्ठ समझना चाहिये और उन्हीं के वाक्य पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु—गुरु नाम धरा के अथवा देव और ईश्वर नाम धरा के जो दासी अथवा वेश्या आदि के भोगी हों तो न तो उन को देव और गुरु समझना चाहिये और न उन के वाक्य पर श्रद्धा करनी चाहिये, इसी प्रकार जिन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य से रहित पुरुषों को देव अथवा गुरु लिखा हो—उन को भी कुशास्त्र समझना चाहिये और उन के वाक्यों पर श्रद्धा नहीं रखनी चाहिये, यह धर्म की दूसरी परीक्षा कही गई ॥

धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है—वह तप मुख्यतया बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है—फिर उस (तप) के बारह भेद कहे हैं—अर्थात् छः प्रकार का बाह्य (बाहरी) और छः प्रकार का आभ्यन्तर (भीतरी) तप है, बाह्य तप के छः भेद—अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और संलीनता हैं। अब इन का विशेष स्वरूप इस प्रकार से समझना चाहियेः—

१—जिस में आहार का त्याग अर्थात् उपवास किया जावे, वह अनशन तप कहलाता है।

१—प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणो का वर्णन न्यायदर्शन आदि ग्रन्थों में देखो ॥

२—एक, दो अथवा तीन ग्रास भूख से कम खाना, इस को ऊनोदरी तप कहते हैं।

३—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव विषयसम्बन्धी अभिग्रह (नियम) रखना, इस को वृत्तिसंक्षेप तप कहते है—जैसे-श्री महावीर स्वामी का चतुर्विध अभिग्रह चन्दनवाला ने पूर्ण किया था।

४—रस अर्थात् दूध, दही, घृत, तैल, मीठा और पक्वान्न आदि सब सरस वस्तुओं का त्याग करना, इस को रसत्याग तप कहते हैं।

५—शरीर के द्वारा वीरासन और दण्डासन आदि अनेक प्रकार के कष्टों के सहन करने को कायक्लेश तप कहते हैं।

६—पांचों इन्द्रियों को अपने २ विषय से रोकने को संलीनता तप कहते हैं।

आभ्यन्तर तप के छः भेद ये हैं कि—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग, इन का विशेष स्वरूप इस प्रकार से जानना चाहिये:—

१—जो पाप पूर्व किये है उन को फिर न करने के लिये प्रतिज्ञा करना तथा उन पूर्वकृत अपने पापों को योग्य गुरु के सामने कह कर उन की निवृत्ति के लिये गुरु के समीप उस की आज्ञा के अनुसार दण्ड का ग्रहण करना, इस को प्रायश्चित्त तप कहते हैं।

२—अपने से गुणों में अधिक पुरुष के विनय करने को विनय तप कहते हैं।

३—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी और दुःखी पुरुषों को अन्न लाकर देना तथा उन को विश्राम (आराम) देना, इस को वैयावृत्त्य तप कहते है।

४—आप पढ़ना और दूसरों को पढ़ाना, संशय उत्पन्न होने पर गुरु से पूंछना, पढ़े हुए विषय को वारंवार याद करना और जो कुछ पढ़ा हो उस के तात्पर्य (आशय) को एकाग्र चित्त होकर विचारना तथा धर्मकथा करना, इस को स्वाध्याय तप कहते हैं।

५—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये चार ध्यान कहलाते है, इनमें से पहिले दो ध्यानों का त्याग कर पिछले दो ध्यानों को (धर्मध्यान और शुक्लध्यान को) अंगीकार करना, इस को ध्यान तप कहते हैं।

१—इस विषय का वर्णन कल्पसूत्र की टीका मे देखो ॥

२—अच्छे प्रकार से अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं, क्योंकि यही स्वाध्याय शब्द का अर्थ है, वह अच्छे प्रकार से पढना तब ही हो सकता है—जब कि ऊपर लिखी विधि के अनुसार किया जावे, क्योंकि महाभाष्य आदि ग्रन्थो में लिखा है कि—चतुर्भि. प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेन च, इत्यादि, अर्थात् चार प्रकार से विद्या का लाभ ठीक रीति से होता है—गुरुमुख से अच्छे प्रकार से पढना, फिर उस को एकान्त मे बैठ कर विचारना, शका रहने पर गुरु से पूछना, फिर उस का स्वयं वर्णन करना तथा पीछे सभा आदि में उस का व्यवहार करना ॥

३—पहिले दो ध्यानों का त्याग इसलिये कहा गया है कि—ये परिणाम मे अति हानिकारक होते है, देखो आर्तध्यानके ४ भेद है—प्रथम अनिष्टार्थसंयोगार्तध्यान अर्थात् इन्द्रियसुख के नाशक अनिष्ट (अप्रिय) शब्दादि विषयों के सयोग न होने की चिन्ता करना, दूसरा—इष्टवियोगार्तध्यान अर्थात् अपने सुखदायक

६—सर्व उपाधियों के परित्याग करने को उत्सर्ग तप कहते हैं।

इस प्रकार से यह बारह प्रकार का तप है, इस तप का जिस धर्म में उपदेश किया गया हो वही धर्म मानने के योग्य समझना चाहिये तथा उक्त बारह तपों का जिस ने ग्रहण और धारण किया हो उसी को तपस्वी समझना चाहिये तथा उसी के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु जो पुरुष उपवास का तो नाम करे और दूध, मिठाई, मावा (खोया), घी, कन्द, फल और पकान्न आदि सुन्दर २ पदार्थों का घमसान करे (भोजन करे) अथवा दिनभर भूखा रहकर रात्रि में उत्तमोत्तम पदार्थों का भोजन करे—उस को तपस्वी नहीं समझना चाहिये क्योंकि—देखो ! बुद्धिमानों के सोचने की यह बात है कि—सूर्य इस जगत् का नेत्ररूप है क्योंकि सब ही उसी के प्रकाश से सब पदार्थों को देखते हैं और इसी महत्त्व को विचार कर लोग उस को नारायण तथा ईश्वरस्वरूप मानते हैं, फिर उसी के अस्त होने पर भोजन करना और उस को व्रत अर्थात् तप मानना कदापि योग्य नहीं है, इसी प्रकार से तप के अन्य भेदों में भी वर्त्तमान में अनेक त्रुटियां पड़ रही हैं, जिन का निदर्शन फिर कभी समयानुसार किया जावेगा—यहां पर तो केवल यही समझ लेना चाहिये कि ये जो तप के बारह भेद कहे हैं–इन का जिस धर्म में पूर्णतया वर्णन हो और जिस धर्म में ये तप यथाविधि सेवन किये जाते हों–वही श्रेष्ठ धर्म है, यह धर्म की तीसरी परीक्षा कही गई।

धर्म की चौथी परीक्षा दया के द्वारा की जाती है—एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों को अपने समान जानना तथा उन को किसी भी प्रकार का क्लेश न पहुंचाना, इसी का नाम दया है और यही पूर्णरूप से (बीस[1] विश्वा) दया कहलाती है—परन्तु इस पूर्णरूप दया का वर्त्ताव मनुष्यमात्र से होना अति कठिन है–किन्तु इस (पूर्णरूप) दयाका पालन तो संसार के त्यागी, ज्ञानवान् मुनिजन ही कर सकते हैं, हां केवल शुद्ध गृहस्थ पुरुष सवा विश्वामात्र दया का पालन कर सकता है, इस लिये समझदार गृहस्थ

द्रव्य तथा कुटुम्ब आदि इष्ट (प्रिय) पदार्थों के वियोग के न होने की चिन्ता करना, तीसरा—रोगनिदानार्त ध्यान अर्थात् रोग के कारण से डरना और उस को पास मे न आने देने की चिन्ता करना, चौथा—अग्रशोचनामार्तध्यान—अर्थात् आगामि समय के लिये सुख और द्रव्य आदि की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के मनोरथो की चिन्ता करना। एवं रौद्रध्यान के भी चार भेद हैं—प्रथम–हिंसानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की जीवहिंसा कर के (परापकार वा गृहरचना आदि के द्वारा) मन में आनन्द मानना, दूसरा—मृषानन्दरौद्रध्यान—अर्थात् मिथ्या के द्वारा लोगों को धोखा देकर मन में आनंद मानना, तीसरा—चौर्यानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की चोरी (परद्रव्य का अपहरण आदि) करके आनद मानना, चौथा—संरक्षणानन्दरौद्रध्यान—अर्थात् अधर्मादि का भय न करके द्रव्यादि का सग्रह कर तथा उस की रक्षा कर मन में आनन्द मानना, इन का विशेष वर्णन जैनतत्त्वादर्श आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

१—बीस विश्वा दया का वर्णन ओसवाल वंशावलि में आगे किया जायगा ॥

पुरुष को चाहिये कि—चलते, बैठते, और सोतेसमय में, वर्तन आदि के उठाने और रखने के समय में, खाने और पीने के समय में, रसोई आदि में, लकड़ी, थेपड़ी आदि ईंधन में, तथा तेल, छाछ, घी, दूध, पानी आदि में यथाशक्य (जहां तक हो सके) जीवों की रक्षा करे—किन्तु प्रमादपूर्वक (लापरवाही के साथ) किसी काम को न करे, दिन में दो वक्त जल को छाने तथा छानने के कपड़े में जो जीव निकलें—यदि वे जीवें कुएं के हों तो उन को कुएं में ही गिरवा दे तथा बरसाती पानी के हों तो उन को बरसात के पानी में ही गिरवा दे, मुख्यतया व्यापार करनेवाले (हिलने चलनेवाले) जीव तीन प्रकार के होते हैं—जलचर, स्थलचर, और खचर, इन में से पानी में उत्पन्न होनेवाले और चलनेवालों को जलचर कहते है, पृथिवी पर अनेक रीति से उत्पन्न होने वाले और फिरने वाले चीटी से लेकर मनुष्य पर्यन्त जीवों को स्थलचर कहते है तथा आकाश में उड़नेवाले जीवों को खचर (आकाशचारी) कहते है, इन सब जीवों को कदापि सताना नहीं चाहिये, यही दया का स्वरूप है, इस प्रकार की दया का जिस धर्म में पूर्णतया उपदेश किया गया है तथा तप और शील आदि पूर्व कहे हुए गुणों का वर्णन किया गया हो उसी धर्म को बुद्धिमान् पुरुष को स्वीकार करना चाहिये—क्योंकि वही धर्म संसार से तारनेवाला हो सकता है क्योंकि—दान, शील, तप और दया से युक्त होने के कारण वही धर्म है—दूसरा धर्म नहीं है ॥ ९१ ॥

राजा के सब भृत्य को, गुण लक्षण निरधार ॥
जिन से शुभ यश ऊपजै, राजसम्पदा भार ॥ ९२ ॥

अब राजा के सब नौकर आदि के गुण और लक्षणों को कहते है—जिस से यश की प्राप्ति हो, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि हो तथा प्रजा सुखी हो ॥ ९२ ॥

आर्य वेद व्याकरण अरु, जप अरु होम सुनिष्ठ ॥
ततपर आशिर्वाद नित, राजपुरोहित इष्ट ॥ ९३ ॥

चार आर्य वेद, चार लौकिक वेद, चार उपवेद और व्याकरणादि छः शास्त्र, इन चौदहों विद्याओं का जाननेवाला, जप, पूजा और हवन का करनेवाला तथा आशीर्वाद का बोलनेवाला, ऐसा राजा का पुरोहित होना चाहिये ॥ ९३ ॥

सोरठा—भलो न कबहुँ कुराज, मित्र कुमित्र भलो न गिन ॥
असती नारि अकाज, शिष्य कुशिष्य हु कब भलो ॥ ९४ ॥

१—क्योंकि जो जीव जिस स्थान के होते हैं वे उसी स्थान में पहुचकर सुख पाते हैं ॥

२— धर्म शब्द का अर्थ प्रथम अध्याय के विज्ञप्ति प्रकरण में कर चुके हैं कि दुर्गति से बचाकर यह शुभ स्थानमें धारण करता है इसलिये इसे धर्म कहते हैं ॥

खोटे राजा का राज्य होने से राजा का न होना ही अच्छा है, दुष्ट मित्र की मित्रता होने से मित्र का न होना ही अच्छा है, कुभार्या के होने से स्त्री का न होना ही अच्छा है और खराब चेले के होने से चेले का न होना ही अच्छा है ॥ ९४ ॥

राज कुराज प्रजा न सुख, नहिं कुमित्र रति राग ॥
नहिँ कुदार सुख गेह को, नहिँ कुशिष्य यशभाग ॥ ९५ ॥

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख नहीं होता, कुमित्र से आनंद नहीं होता, कुभार्या से घर का सुख नहीं होता और आज्ञा को न माननेवाले शिष्य से गुरु को यश नहीं मिलता है ॥ ९५ ॥

इक इक बक अरु सिंघ से, कुक्कुट से पुनि चार ॥
पांच काग अरु श्वान षट्, खर त्रिहुँ शिक्षा धार ॥ ९६ ॥

बगुले और सिंह से एक एक गुण सीखना चाहिये, कुक्कुट (मुर्गे) से चार गुण सीखने चाहियें, कौए से पांच गुण सीखने चाहियें, कुत्ते से छः गुण सीखने चाहियें और गर्दभ (गदहे) से तीन गुण सीखने चाहियें ॥ ९६ ॥

छोटे मोटे काज को, साहस कर के यार ॥
जैसे तैसे साधिये, सिंघ सीख इक धार ॥ ९७ ॥

हे मित्र! सिंह से यह एक शिक्षा लेनी चाहिये कि—कोई भी छोटा या बड़ा काम करना हो उस में साहस (हिम्मत) रख कर जैसे बने वैसे उस काम को सिद्ध करना चाहिये, जैसे कि सिंह शिकार के समय अपनी पूर्ण शक्ति को काम में लाता है ॥ ९७ ॥

करि संयम इन्द्रीन को, पण्डित बकुल समान ॥
देश काल बल जानि के, कारज करै सुजान ॥ ९८ ॥

बगुले से यह एक शिक्षा लेनी चाहिये कि—चतुर पुरुष अपनी इन्द्रियों को रोक कर बगुले के समान एकाग्र ध्यान कर तथा देश और काल का विचार कर अपने सब कार्यों को सिद्ध करे ॥ ९८ ॥

समर प्रबल अति रति प्रबल, नित प्रति उठत सवार ॥
खाय अशन सो बांटि के, ये कुक्कुट गुन चार ॥ ९९ ॥

लड़ाई में प्रबलता रखना (भागना नहीं), रति में अति प्रबलता रखना, प्रतिदिन तड़के उठना और भोजन बांट के खाना, ये चार गुण कुक्कुट से सीखने चाहियें ॥ ९९ ॥

१—गुणग्राही होना सत्पुरुषों का स्वाभाविक धर्म है—अतः इन बक आदि से इन गुणों के ग्रहण करने का उपदेश किया गया है ॥

मैथुन गुप्तरु धृष्टता, अवसर आलय देह ॥
अप्रमाद विश्वास तज, पांच काग गुण लेह ॥ १०० ॥

गुप्तरीति से (अति एकान्त में) स्त्री से भोग करना, धृष्टता (ढिठाई), अवसर पाकर घर बनाना, गाफिल न रहना और किसी का भी विश्वास[1] न करना, ये पांच गुण कौए से सीखने चाहिये ॥ १०० ॥

बहुभुक थोड़े तुष्टता, सुखनिद्रा झट जाग ॥
स्वामिभक्ति अरु शूरता, षट गुण श्वान सुपाग ॥ १०१ ॥

अधिक खानेवाला होकर भी थोड़ा ही मिलने पर सन्तोष करना, सुख से नींद लेना परन्तु तनिक आवाज होने पर तुरन्त सचेत हो जाना, स्वामि में भक्ति (जिस का अन्न जल खावे पीवे उस की भक्ति) रखना और अपने कर्तव्य में शूर वीर होना, ये छः गुण कुत्ते से सीखने चाहियें ॥ १०१ ॥

थाक्यो हू ढोवै सदा, शीत उष्ण नहिँ चीन्ह ॥
सदा सुखी मातो रहै, रासभशिक्षा तीन्ह ॥ १०२ ॥

अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ को ढोते ही रहना (परिश्रम में लगे ही रहना) तथा गर्मी और सर्दी पर दृष्टि न देना और सदा सुखी[2] व मस्त रहना, ये तीन गुण रासभ(गधे) से सीखने चाहियें ॥ १०२ ॥

जो नर धारण करत हैं, यह उत्तम गुण बीस ॥
होय विजय सब काम में, तिन्ह छलिया नहिँ दीस ॥ १०३ ॥

ये बीस गुण जो शिक्षा के कहे है—इन गुणों को जो मनुष्य धारण करेगा वह सब कामों में सदा विजयी होगा (उस के सब कार्य सिद्ध होंगे) और उस पुरुष को कोई भी नहीं छल सकेगा ॥ १०३ ॥

अर्थनाश मनताप को, अरु कुचरित निज गेहु ॥
नीच वचन अपमान ये, धीर प्रकाशि न देहु ॥ १०४ ॥

धन का नाश, मन का दुःख (फिक्र), अपने घर के खोटे चरित्र, नीच का कहा हुआ वचन और अपमान, इतनी बातों को बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकाशित[3] न करे॥१०४॥

धन अरु धान्य प्रयोग में, विद्या संग्रह कार ॥
आहाररु व्यवहार में, लज्जा अवस निवार ॥ १०५ ॥

१—क्योंकि नीतिशास्त्र में किसी का भी विश्वास न करने का उपदेश दिया गया है, देखो पिछला ६९ वां दोहा ॥ २—अर्थात् चिन्ता को अपने पास न आने देना, क्योंकि चिन्ता अत्यन्त दुःखदायिनी होती है ॥ ३—क्योंकि इन बातों को प्रकाशित करने से मनुष्य का उलटा उपहास होता है तथा लघुता प्रकट होती है ॥

धन और धान्य का सञ्चय करने के समय, विद्या सीखने के समय, भोजन करने के समय और देन लेन करने के समय मनुष्य को लज्जा अवश्य त्याग देनी चाहिये ॥१०५॥

सन्तोषामृत तृप्त को, होत जु शान्ती सुक्ख ॥
सो धनलोभी को कहां, इत उत धावत दुक्ख ॥ १०६ ॥

सन्तोष रूप अमृत से तृप्त हुए पुरुष को जो शान्ति और सुख होता है वह धन के लोभी को कहां से हो सकता है-किन्तु धन के लोभी को तो लोभवश इधर उधर दौड़ने से दुःख ही होता है ॥ १०६ ॥

तीन थान सन्तोष कर, धन भोजन अरु दार ॥
तीन सँतोष न कीजिये, दान पठन तपचार ॥ १०७ ॥

मनुष्य को तीन स्थानों में सन्तोष रखना चाहिये—अपनी स्त्री में, भोजन में और धन में, किन्तु तीन स्थानों में सन्तोष नहीं रखना चाहिये—सुपात्रों को दान देने में, विद्याध्ययन करने में और तप करने में ॥ १०७ ॥

पग न लगावे अग्नि के, गुरु ब्राह्मण अरु गाय ॥
और कुमारी बाल शिशु, विद्वज्जन चित लाय ॥ १०८ ॥

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुमारी कन्या, छोटा बालक और विद्यावान्, इन के जान बूझकर पैर नहीं लगाना चाहिये ॥ १०८ ॥

हाथी हाथ हजार तज, घोड़ा से शत भाग ॥
शृंगि पशुन दश हाथ तज, दुर्जन ग्रामहि त्याग ॥ १०९ ॥

हाथी से हजार हाथ, घोड़े से सौ हाथ, बैल और गाय आदि सींग वाले जानवरों से दश हाथ दूर रहना चाहिये तथा दुष्ट पुरुष जहां रहता हो उस ग्राम को ही छोड़ देना चाहिये ॥ १०९ ॥

लोभिहिँ धन से वश करै, अभिमानिहिँ कर जोर ॥
मूर्ख चित्त अनुवृत्ति कारि, पण्डित सत के जोर ॥ ११० ॥

लोभी को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उस के कथन के अनुसार चलकर और पण्डित पुरुष को यथार्थता (सच्चाई) से वश में करना चाहिये ॥ ११० ॥

१—क्योंकि इन कामों में लज्जा का त्याग न करने से हानि होती है तथा पीछे पछताना पड़ता है ॥ २—क्योंकि दान अध्ययन और तप में सन्तोष रखने से अर्थात् थोड़े ही के द्वारा अपने को कृतार्थ समझ लेने से मनुष्य आगामी मे अपनी उन्नति नहीं कर सकता है ॥ ३—इन में से कई तो साधुवृत्ति वाले होने से तथा कई उपकारी होने से पूज्य हैं अतः इन के निकृष्ट अग पैर के लगाने का निषेध किया गया है ॥ ४—इस बात को अवश्य याद रखना चाहिये अर्थात् मार्ग में हाथी, घोडा, बैल और ऊट आदि जानवर खडे हों तो उन से दूर होकर निकलना चाहिये क्योंकि यदि इस में प्रमाद (गफलत) किया जावेगा तो कभी न कभी अवश्य दुःख उठाना पड़ेगा ॥

बलबन्तहिँ अनुकूल है, निबलहिँ है प्रतिकूल ॥
वश कर पुनि निज सम रिपुहिँ, शक्ति विनय ही मूल ॥ १११ ॥

बलवान् शत्रु को उस के अनुकूल होकर वश में करे, निर्बल शत्रु को उस के प्रतिकूल होकर वश में करे और अपने बराबर के शत्रु को युद्ध करके अथवा विनय करके वश में करे ॥ १११ ॥

जिन जिन को जो भाव है, तिन तिन को हित जान ॥
मन में घुसि निज वश करै, नहिँ उपाय बस आन ॥ ११२ ॥

जिस २ पुरुष का जो २ भाव है (जिस जिस पुरुष को जो २ वस्तु अच्छी लगती है) उस २ पुरुष के उसी २ भाव को तथा हित को जानकर उस के मन में घुस कर उस को वश में करना चाहिये, क्योंकि इस के सिवाय वश में करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ११२ ॥

अतिहिँ सरल नहिँ हूजिये, जाकर वन में देख ॥
सरल तरू तहँ छिद्त हैं, बांके तजै विशेख ॥ ११३ ॥

मनुष्य को अत्यन्त सीधा भी नहीं हो जाना चाहिये—किन्तु कुछ टेढापन भी रखना चाहिये, क्योंकि—देखो ! जंगल में सीधे वृक्षों को लोग काट ले जाते हैं और टेढ़ों को नहीं काटते हैं ॥ ११३ ॥

जिनके घर धन तिनहिँ के, मित्ररु बान्धव लोग ॥
जिन के धन सोई पुरुष, जीवन ताको योग ॥ ११४ ॥

जिस के पास धन है उसी के सब मित्र होते हैं, जिस के पास धन है उसी के सब भाई बन्धु होते है, जिस के पास धन हैं वही संसार में मनुष्य गिना जाता है और जिस के पास धन है उसी का संसार में जीना योग्य है ॥ ११४ ॥

मित्र दार सुत सुहृद् हू, निरधन को तज देत ॥
पुनि धन लखि आश्रित हुवैं, धन बान्धव करि देत ॥ ११५ ॥

जिस के पास धन नही है उस पुरुष को मित्र, स्त्री, पुत्र और भाई बन्धु भी छोड़ देते है और धन होने पर वे ही सब आकर इकट्ठे होकर उस के आश्रित हो जाते हैं, इस से सिद्ध है कि—जगत् में धन ही सब को बान्धव बना देता है ॥ ११५ ॥

अर्थहीन दुःखित पुरुष, अल्प बुद्धि को गेह ॥
तासु क्रिया सब छिन्न हों, ग्रीष्म कुनदि जल जेह ॥ ११६ ॥

१—क्योंकि बलवान् शत्रु प्रतिकूलता से (लडाई आदि के द्वारा) वश में नहीं किया जा सकता है ॥

२—गुसाईं तुलसीदास जी ने सत्य कहा है कि-"टेढ जानि शका सब काहू । वक्र चन्द्र जिमि ग्रसै न राहू" ॥ अर्थात् टेढ़ा जानकर सब भय मानते हैं-जैसे राहु भी टेढ़े चन्द्रमा को नहीं ग्रसता है ॥

धनहीन पुरुष सदा दुःखी ही रहता है और सब लोग उस को अल्पबुद्धि का घर (मूर्ख) समझते हैं तथा धनहीन पुरुष का किया हुआ कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है—किन्तु उस के सब काम नष्ट हो जाते हैं–जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी २ नदियां सूख जाती है ॥ ११६ ॥

धनी सबहि तिय जीत ही, सभा जु वचन विशाल ॥
उद्यमि लक्ष्मिहिँ जीतही, साधु सुवाक्य रसाल ॥ ११७ ॥

धनवान् पुरुष स्त्रियों को जीत लेता है, वचनों की चतुराईवाला पुरुष सभा को जीत लेता है, उद्यम करने वाला पुरुष लक्ष्मी को जीत लेता है और मधुर वचन बोलने वाला पुरुष साधु जनों को जीत लेता है ॥ ११७ ॥

दीमक मधुमाखी छता, शुक्ल पक्ष शशि देख ॥
राजद्रव्य आहार ये, थोड़े होत विशेख ॥ ११८ ॥

दीमक (उदई), मधुमक्खी का छता, शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, राजाओं का धन और आहार, ये पहिले थोड़े होकर भी पीछे वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ११८ ॥

धन संग्रह पथ चलन अरु, गिरि पर चढ़न सुजान ॥
धीरे धीरे होत सब, धर्म काम हू मान ॥ ११९ ॥

हे सुजान ! धन का संग्रह, मार्ग का चलना, पर्वत पर चढना तथा धर्म और काम आदि का सेवन, ये सब कार्य धीरे धीरे ही होते[1] हैं ॥ ११९ ॥

अञ्जन क्षयहिँ विलोकि नित, दीमक वृद्धि विचार ॥
वन्ध्य दिवस नहिँ कीजिये, दान पठन हित कार ॥ १२० ॥

अंजन के क्षय और दीमक के सञ्चय को देखकर–मनुष्य को चाहिये कि—दान, पठन और अच्छे कार्यों के द्वारा दिन को सफल करे[2] ॥ १२० ॥

क्रिया कष्ट करि साधु हो, विन क्षत होवै शूर ॥
मद्य पिये नारी सती, यह श्रद्धा तज दूर ॥ १२१ ॥

क्रियाकष्ट करके साधु वा महात्मा हो सकता है, विना घाव के भी शूर वीर हो

१—इस दोहे का सारांश यही है–कि बुद्धिमान् पुरुष को सब कार्य विचार कर धीरे धीरे ही करने चाहियें–क्योंकि धनसंग्रह तथा धर्मोपार्जन आदि कार्य एकदम नहीं हो सकते हैं ॥

२—देखिये अञ्जन नेत्र में ज़रा सा डाला जाता है लेकिन प्रतिदिन उस का थोडा २ खर्च होने से पहाड़ों के पहाड नेत्रों में समा जाते हैं–इसी प्रकार दीमक (जन्तुविशेष) थोडा २ वल्मीक का संग्रह करता है तो भी जमा होते २ वह बहुत बडा वल्मीक बन जाता है—इसी बात को सोचकर मनुष्य को प्रतिदिन यथाशक्ति दान, अध्ययन और शुभ कार्य करना चाहिये–क्योंकि उक्त प्रकार से थोडा २ करने पर भी कालान्तर में उन का बहुत बडा फल दीख पड़ेगा ॥

सकता है तथा मद्य पीनेवाली स्त्री भी सती हो सकती है, इस श्रद्धा को दूर ही त्याग देना चाहिये ॥ १२१ ॥

नेत्र कुटिल जो नारि है, कष्ट कलह से प्यार ॥
वचन भड़कि उत्तर करै, जरा वहै निरधार ॥ १२२ ॥

खराब नेत्रवाली, पापिनी, कलह करने वाली और क्रोध में भर कर पीछा जवाब देने वाली जो स्त्री है-उसी को जरा अर्थात् बुढापा समझना चाहिये किन्तु बुढ़ापे की अवस्था को बुढ़ापा नहीं समझना चाहिये ॥ १२२ ॥

जो नारी शुचि चतुर अरु, स्वामी के अनुसार ॥
नित्य मधुर बोलै सरस, लक्ष्मी सोइ निहार ॥ १२३ ॥

जो स्त्री पवित्र, चतुर, पति की आज्ञा में चलने वाली और नित्य रसीले मीठे वचन बोलने वाली है, वही लक्ष्मी है दूसरी कोई लक्ष्मी नहीं है ॥ १२३ ॥

घर कारज चित दै करै, पति समुझै जो प्रान ॥
सो नारी जग धन्य है, सुनियो परम सुजान ॥ १२४ ॥

हे परम चतुर पुरुषो ! सुनो, जो स्त्री घर का काम चित्त लगाकर करे और पति को प्राणों के समान प्रिय समझे-वही स्त्री जगत् में धन्य है ॥ १२४ ॥

भले वंश की धनवती, चतुर पुरुष की नार ॥
इतने हुँ पर व्यभिचारिणी, जीवन वृथा विचार ॥ १२५ ॥

भले वंश की, धनवती और चतुर पुरुष की स्त्री होकर भी जो स्त्री पर पुरुष से स्नेह करती है-उस का जीवन संसार में वृथा ही है ॥ १२५ ॥

लिखी पढ़ी अरु धर्मवित, पतिसेवा में लीन ॥
अल्प सँतोषिनि यश सहित, नारिहिँ लक्ष्मी चीन ॥ १२६ ॥

विद्या पढी हुई, धर्म के तत्व को समझने वाली, पति की सेवा में तत्पर रहने वाली, जैसा अन्न वस्त्र मिल जाय उसी में सन्तोष रखने वाली तथा ससार में जिस का यश प्रसिद्ध हो, उसी स्त्री को लक्ष्मी जानना चाहिये, दूसरी को नहीं ॥ १२६ ॥

१—अर्थात् ज्ञान आदि के विना केवल क्रियाकष्ट कर के साधु नहीं हो सकता है, जिस के लडाई में कभी घाव आदि नहीं हुआ वह शूर नहीं हो सकता है (अर्थात् जो लड़ाई में कभी नहीं गया), मद्य पीने वाली स्त्री सती नहीं हो सकती है—क्योंकि जो सती स्त्री होगी वह दोषों के मूलकारण मद्य को पियेगी ही क्यों ? इसलिये केवल क्रियाकष्ट करने वाले को साधु, घावरहित पुरुष को शूर वीर तथा मद्य पीने वाली स्त्री को सती समझना केवल भ्रम मात्र है ॥ २—तात्पर्य यह है कि ऐसी कलहकारिणी स्त्री के द्वारा शोक और चिन्ता पुरुष को उत्पन्न हो जाती है और वह (शोक व चिन्ता) बुढ़ापे के समान शरीर का शोषण कर देती है ॥ ३—क्योंकि सब उत्तम सामग्री से युक्त होकर भी जो मूर्खता से अपने चित्त को चलायमान करे उस का जीवन वृथा ही है ॥

निरजर द्विज अरु सतपुरुष, खुशी होत सतभाव ॥
अपर खान अरु पान से, पण्डित वाक्य प्रभाव ॥ १२७ ॥

देवता, ब्राह्मण और सत्पुरुष, ये तो भावभक्ति से प्रसन्न होते हैं, दूसरे मनुष्य खान पान से प्रसन्न होते हैं और पण्डित पुरुष वाणी के प्रभाव से प्रसन्न होते हैं ॥ १२७ ॥

अग्नि तृप्ति नहिँ काष्ठ से, उदधि नदी के वारि ॥
काल तृप्ति नहिँ जीव से, नर से तृप्ति न नारि ॥ १२८ ॥

अग्नि काष्ठ से तृप्त नही होती, नदियों के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, काल जीवों के खाने से तृप्त नहीं होता, इसी प्रकार से स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ॥ १२८ ॥

गज को टूट्यो युद्ध में, शोभ लहत जिमि दन्त ॥
पण्डित दारिद दूर करि, त्यों सज्जन धनवन्त ॥ १२९ ॥

जैसे बड़े युद्ध में टूटा हुआ हाथियों का दांत अच्छा लगता है—उसी प्रकार यदि कोई सत्पुरुष किसी पण्डित (विद्वान् पुरुष) की दरिद्रता खोने में अपना धन खर्च करे तो संसार में उस की शोभा होती है ॥ १२९ ॥

सुत विन घर सूनो कह्यो, विना बन्धुजन देश ॥
मूरख को हिरदो समझ, निरधन जगत अशेष ॥ १३० ॥

लड़के के विना घर सूना है, बन्धु जनों के विना देश सूना है, मूर्ख का हृदय सूना है और दरिद्र (निर्धन) पुरुष के लिये सब जगत् ही सूना है ॥ १३० ॥

नारिकेल आकार नर, दीसैं विरले मांय ॥
बदरीफल आकार बहु, ऊपर मीठे होंय ॥ १३१ ॥

नारियेल के समान आकार वाले सत्पुरुष संसार में थोड़े ही दीखते हैं परन्तु बेर के समान आकार वाले बहुत से पुरुष देखे जाते हैं जो केवल ऊपर ही मीठे होते है ॥ १३१ ॥

जिन के सुत पण्डित नहीं, नहीं भक्त निकलङ्क ॥
अन्धकार कुल जानिये, जिमि निशि विना मयङ्क ॥ १३२ ॥

जिस का पुत्र न तो पण्डित है, न भक्ति करने वाला है और न निष्कलंक (कलंक-

---

१—केवल वे स्त्रियां समझनी चाहियें जो कि चित्त को स्थिर न रखकर कुमार्ग में प्रवृत्त हो गईं हैं क्योंकि इसी आर्यदेश में अनेक वीरांगना परम सती, साध्वी तथा पतिप्राणा हो चुकी हैं ॥

२—नारियल के समान आकार वाले अर्थात् ऊपर से तो रूक्ष परन्तु भीतर से उपकारक, जैसे कि नारियल ऊपर से खराब होता है परन्तु अन्दर से उत्तम गिरी देता है ॥

३—बेर के समान आकार वाले अर्थात् ऊपर से स्निग्ध (चिकने चुपड़े) परन्तु भीतर से कुछ नहीं, जैसे कि बेर ऊपर से चिकना होता है परन्तु अन्दर केवल नीरस गुठली निकलती है ॥

रहित) ही है, उस के कुल में अंधेरा ही जानना चाहिये, जैसे चन्द्रमा के विना रात्रि में अंधेरा रहता है ॥ १३२ ॥

निशि दीपक शशि जानिये, रवि दिन दीपक जान ॥
तीन भुवन दीपक धरम, कुल दीपक सुत मान ॥ १३३ ॥

रात्रि का दीपक चन्द्रमा है, दिन का दीपक सूर्य है, तीनों लोकों का दीपक धर्म है और कुल का दीपक सपूत लड़का है ॥ १३३ ॥

तृष्णा खानि अपार है, अर्णव जिमि गम्भीर ॥
सहस यतन हूँ नहिँ भरै, सिन्धु यथा बहुनीर ॥ १३४ ॥

यह आशा (तृष्णा) की खान अपार है तथा समुद्र के समान अति गम्भीर है, यह (तृष्णा की खान) सहस्रों यत्नों से भी पूरी नहीं होती है, जैसे—समुद्र बहुत जल से भी पूर्ण नहीं होता है ॥ १३४ ॥

जिहि जीवन जीवैं इते, मित्ररु बान्धव लोय ॥
ताको जीवन सफल जग, उदर भरै नहिँ कोय ॥ १३५ ॥

जिस के जीवन से मित्र और बांधव आदि जीते है—संसार में उसी पुरुष का जीना सफल है और यों तो अपने ही पेट को कौन नहीं भरता हे ॥ १३५ ॥

भोजन वहि मुनि शेष जो, पाप हीन बुध जान ॥
पीछेउ हितकर मित्र सो, धर्म दम्भ विन मान ॥ १३६ ॥

मुनि (साधु) को देकर जो शेष वचे वही भोजन है (और तो शरीर को भाड़ा देना मात्र है), जो पापकर्म नहीं करता है वही पण्डित है, जो पीछे भी भलाई करने वाला है वही मित्र है और कपट के विना जो किया जावे वही धर्म है ॥ १३६ ॥

अवसर रिपु से सन्धि हो, अवसर मित्र विरोध ॥
कालछेप पण्डित करै, कारज कारण सोध ॥ १३७ ॥

समय पाकर शत्रु से भी मित्रता हो जाती है और समय पाकर मित्र से भी शत्रुता (विरोध) हो जाती है, इस लिये पण्डित (बुद्धिमान्) पुरुष कारण के विना कार्य का न होना विचार अपना कालक्षेप (निर्वाह) करता है ॥ १३७ ॥

१—क्योंकि मूर्ख और भक्तिरहित पुत्र से कुल को कोई भी लाभ नहीं पहुंच सकता है ॥

२—क्योंकि ज्यों २ धनादि मिलता जाता है त्यों २ तृष्णा और भी बढती जाती है ॥

३—कार्य कारण के विषय में यह समझना चाहिये कि—पांच पदार्थ ही जगत् के कर्त्ता हैं, उन्हीं को ईश्वरवत् मानकर बुद्धिमान् पुरुष अपना निर्वाह करता है—वे पांच पदार्थ ये हैं—काल अर्थात् समय, वस्तुओं का स्वभाव, होनहार (नियति), जीवों का पूर्वकृत कर्म और जीवों का उद्यम, अब देखिये कि उत्पत्ति और विनाश, संसार की स्थिति और गमन आदि सब व्यवहार इन्हीं पांचों कारणों से होता है, सृष्टि अनादि है, किन्तु जो लोग कर्मरहित, निरञ्जन, निराकार और ज्ञानानन्द पूर्ण ब्रह्म को संसार का कर्त्ता

तीसरा प्रकरण—चेलो[1] गुरु प्रश्नोत्तर ॥

[2]गोहूं सूखा खेत में, घोड़ा [3]हींसकैराय ॥
पलंग [4]थकी [5]धरै [6]पोढियां, [7]कहु चेला किण दाय ॥ १ ॥
गुरुजी [8]पायो नहीं ॥

[9]पवन [10]पचारै [11]पत्तली, [12]कामणि मुख [13]कमलाय ॥
[14]मांडी चौपड़ मेलग्यो*, कहु चेला किण दाय ॥ २ ॥
गुरुजी [15]सारी नहीं ॥

[16]रजनी [17]अन्धारो भयो, मिली रात [18]बीहाय ॥
[19]बांयो खेत न [20]नीपंजो, कहु चेला किण दाय ॥ ३ ॥
गुरुजी [21]ऊगो नहीं ॥

बेटा [22]कुम्बांरा फिरै, [23]कन्त जु [24]लूखो खाय ॥
[25]दीवै [26]उत्तर [27]आंपियो, कहु चेला किण दाय ॥ ४ ॥
गुरुजी [28]सम्पत नहीं ॥

[29]रूप्यो [30]सूं लाई दियो, [31]बलद [32]पुराणी खाय ॥
[33]करहो सहे जु [34]कांबड़ी, कहु चेला किण दाय ॥ ५ ॥
गुरुजी [35]चालै नहीं ॥

[36]हाली [37]खड़े [38]इकांतरै, [39]पंग [40]अलवांणे जाय ॥
[41]डूंबज [42]गावै [43]एकलो, कहु चेला किण दाय ॥ ६ ॥
गुरुजी [44]जोड़ी नहीं ॥

१–इस चेला गुरु प्रश्नोत्तर के अन्त में दिये हुए नोट को देखिये ॥ २–गेहू ॥ ३–हिनहिनाता है ॥ ४–होते हुए भी ॥ ५–पृथिवी ॥ ६–शयन किया ॥ ७–बतलाओ चेले क्या कारण है (इस चौथे पाद का सर्वत्र यही अर्थ समझना चाहिये) ॥ ८–सींचा हुआ, पानी पिलाया हुआ, खाट का पागा (इसी प्रकार से तीन प्रश्नों के उत्तर सबधी पद के सर्वत्र ३ अर्थ किये जायगे, वे सर्वत्र क्रम से जान लेना चाहिये, क्योंकि मारवाडी भाषा में वह एक पद तीनो अर्थों का वाचक है) ॥ ९–हवा ॥ १०–उडाती है ॥ ११–पतंग ॥ १२–स्त्री ॥ १३–मुर्झा रहा है ॥ १४–शुरू की हुई ॥ *–रखगया १५–खैंची, अच्छी स्त्री, सारी ॥ १६–रात्रि ॥ १७–अंधेरा ॥ १८–डरावनी ॥ १९–बोया हुआ ॥ २०–पैदा हुआ ॥ २१–चन्द्रोदय, सूर्योदय, और उगा हुआ ॥ २२–कुँवारा ॥ २३–स्वामी ॥ २४–रूखा ॥ २५–दीपक ॥ २६–जवाब ॥ २७–दिया ॥ २८–दौलत, एकता और तेल ॥ २९–रुपया ॥ ३०–क्यो ॥ ३१–बैल ॥ ३२–लकडी खाता है ॥ ३३–ऊट ॥ ३४–लकडी ॥ ३५–चलता है (सब मे समान ही जानना चाहिये) ॥ ३६–किसान ॥ ३७–हल चलाता है ॥ ३८–एक दिन छोड कर ॥ ३९–पैर ॥ ४०–उघाड़े ॥ ४१–डोम ही ॥ ४२–गाता है ॥ ४३–अकेला ॥ ४४–दूसरा बैल, जूते और सहायक ॥

घोड़ा घोड़ी ना छिवै[1], चोर ठयेली[2] जाय ॥
कामण[3] कन्त जु परिहरै[4], कहु चेला किण दाय ॥ ७ ॥
गुरुजी जागै[5] नहीं ॥

घोड़ै मारग छांड़ियो[6], हिरण फड़ांके[7] जाय ॥
माली तो बिलखो[8] फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ८ ॥
गुरुजी वाग[9] नहीं ॥

पड़ी कवाण[10] न पाकलै[11], कामेणि[12] ही छिटकाय[13] ॥
कवि[14] बूझंतां[15] खीजियो[16], कहु चेला किण दाय ॥ ९ ॥
गुरुजी गुण[17] नहीं ॥

अरट[18] न वाजै पाटड़ी[19], वालद प्यासो हि जाय ॥
धवल[20] न खंचै[21] गाडलो[22], कहु चेला किण दाय ॥ १० ॥
गुरुजी वुहवो[23] नहीं ॥

नारी[24] पुरुष न आदरै, तसकर[25] बांध्यो जाय ॥
तेजी[26] ताजणणो[27] खमैं[28], कहु चेला किण दाय ॥ ११ ॥
गुरुजी तेज[29] नहीं ॥

भोजन स्वाद[30] न ऊपजो[31], संगो[32] रिसायां[33] जाय ॥
कन्ते[34] कामण[35] परिहरी[36], कहु चेला किण दाय ॥ १२ ॥
गुरुजी रस[37] नहीं ॥

वैद[38] मान[39] पायो नहीं, सींगण[40] नांहि[41] सुलजाय[42] ॥
कन्ते कामण परिहरी, कहु चेला किण दाय ॥ १३ ॥
गुरुजी गुण[43] नहीं ॥

१–छूता है ॥ २–घीसता हुआ ॥ ३–स्त्री ॥ ४–छोडती है ॥ ५–कामोद्दीपन, जागता हुआ और कामोद्दीपन ॥ ६–छोड दिया ॥ ७–फलाग मारकर ॥ ८–व्याकुल ॥ ९–लगाम, वाग (सिंघ) और वाग अर्थात् वगीचा ॥ १०–कमान ॥ ११–चढती है ॥ १२–स्त्री ॥ १३–दूर करती है ॥ १४–शायर ॥ १५–पूछने पर ॥ १६–रुष्ट हुआ ॥ १७–डोरी और 'गुण' (गुण पिछले दो मे जानना) ॥ १८–अरहट यंत्र ॥ १९–पटड़ी ॥ २०–वैल ॥ २१–खींचता है ॥ २२–गाडी ॥ २३–चला (तीनो मे समान) ॥ २४–स्त्री ॥ २५–चोर ॥ २६–घोडा ॥ २७–चावुक ॥ २८–सहता है ॥ २९–तेज (तीनो में समान ही जानो) ॥ ३०–जायका ॥ ३१–पैदा हुआ ॥ ३२–सवधी ॥ ३३–गुस्से मे होकर ॥ ३४–स्वामी ॥ ३५–स्त्री ॥ ३६–छोड़ दी ॥ ३७–नमक, प्रीति और रति का सुख ॥ ३८–हकीम ॥ ३९–इज्जत ॥ ४०–तिल ॥ ४१–नहीं ॥ ४२–सुलता है ॥ ४३–पहिले और तीसरे मे गुण दूसरें में घुन (जन्तु) ॥

हीरो[1] झांखो[2] पड़ गयो, बाग गयो बीलाय[3] ॥
दरपण[4] में दीसै[5] नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १४ ॥
गुरुजी पाँणी[6] नहीं ॥

छींपा[7] घर सोभा[8] नहीं, कामण[9] पीहर[10] जाय ॥
छयल[11] पोंघ[12] नहिं मोलवै[13], कहु चेला किण दाय ॥ १५ ॥
गुरुजी रंग[14] नहीं ॥

गहूं[15] सूखै हल हू थकै, बाटै[16] रथ नहिं जाय ॥
चालन्तो[17] ढीलो[18] चलै, कहु चेला किण दाय ॥ १६ ॥
गुरुजी जूतो[19] नहीं ॥

चौपड़[20] रमै[21] न चौहटै[22], तीतर जाळां[23] जाय ॥
राज द्वार आदर नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १७ ॥
गुरुजी पासो[24] नहीं ॥

धान[25] पड्यो[26] आटो नहीं, धोरै[27] नीरै[28] न जाय ॥
कातणै[29] जोगी[30] भूखां मरै, कहु चेला किण दाय ॥ १८ ॥
गुरुजी फेरी[31] नहीं ॥

भांभी[32] सांल[33] न बांजवै[34], नांणो[35] लै फिरि जाय ॥
पांगा[36] ढीला सांल में[37], कहु चेला किण दाय ॥ १९ ॥
गुरुजी वणियो[38] नहीं ॥

वैणे[39] बुलन्तां[40] लड़थड़ै[41], नायण[42] गीत न गाँय[43] ॥
भोजन धारै[44] जु जीमणो, कहु चेला किण दाय ॥ २० ॥
गुरुजी दाँत[45] नहीं ॥

१–हीरा ॥ २–मैला ॥ ३–बिगड़ गया ॥ ४–शीशा ॥ ५–दीखता ॥ ६–सान, जल और आब ॥ ७–वस्त्र छापनेवाला ॥ ८–रौनक ॥ ९–स्त्री ॥ १०–मायका ॥ ११–शौकीन ॥ १२–पगडी ॥ १३–मोल लेता है ॥ १४–रगनेका रग, प्रीति और रग ॥ १५–गेहू ॥ १६–मार्ग में ॥ १७–चलता हुआ ॥ १८–सुस्त ॥ १९–जुता हुआ खेत, जोता हुआ बैल और जूता ॥ २०–एक खेल ॥ २१–खेलता है ॥ २२–बाजार में ॥ २३–जालवृक्ष ॥ २४–खेलने का पासा, जाल और मुलाकात ॥ २५–अनाज ॥ २६–पडा हुआ ॥ २७–रेत का टीला ॥ २८–पानी ॥ २९–नामविशेष ॥ ३०–योगी ॥ ३१–चक्की, नाली और फिरकर मांगना ॥ ३२–ढेढ ॥ ३३–ताणा ॥ ३४–तानता है ॥ ३५–द्रव्य ॥ ३६–पावा ॥ ३७–छेद मे ॥ ३८–बना हुआ, बनियां और बना हुआ ॥ ३९–वचन ॥ ४०–बोलता हुआ ॥ ४१–गिडगिडाता है ॥ ४२–नाई की स्त्री ॥ ४३–गाती है ॥ ४४–कठिन ॥ ४५–दाँत (तीनों में समान जानो) ॥

खेत णठो[1] किण[2] कारणें[3], चोपद[4] घर घर जाय ॥
गुल[5] मुंहगो[6] किणविध[7] हुवो[8], कहु चेला किण दाय ॥ २१ ॥
गुरुजी वाड़[9] नहीं ॥

अमल[10] अटकाँ गल[11] गयो, दाढ़ी[12] बंधती[13] जाय ॥
चांभी[14] अनन[15] न वाचियो[16], कहु चेला किण दाय ॥ २२ ॥
गुरुजी नांई[17] नहीं ॥

पन्थ[18] बटाऊ[19] ना बहै[20], सयण[21] पुहुँचो जायें[22] ॥
ईसं[23] गोरज्यां[24] हालणों[25], कहु चेला किण दाय ॥ २३ ॥
गुरुजी बोलवो[26] नहीं ॥

वनराजा[27] रो[28] नाम सुण[29], पटो[30] छोड़ घर जाय ॥
लिखतां[31] लेखण[32] क्यों तजी[33], कहु चेला किण दाय ॥ २४ ॥
गुरुजी सेही[34] नहीं ॥

मोती मोटो[35] मोल[36] कम, सरवर[37] पीड़[38] न थाय[39] ॥
रावत[40] भागो राड़[41] में, कहु चेला किण दाय ॥ २५ ॥
गुरुजी पांणी[42] नहीं ॥

पान सड़ै घोड़ो अड़ै[43], विद्या वीसर[44] जाय ॥
रोटो[45] जलै अंगार[46] में, कहु चेला किण दाय ॥ २६ ॥
गुरुजी फेर्‌यो[47] नहीं ॥

दूध उफाण्यो[48] ऊफण्यो[49], बंछै[50] चूंगी[51] गाय ॥
मिनकी[52] माखण[53] ले गई, कहु चेला किण दाय ॥ २७ ॥
गुरुजी देख्यो[54] नहीं ॥

१–नष्ट हुआ ॥ २–किस ॥ ३–कारण से ॥ ४–चतुष्पद ॥ ५–गुड ॥ ६–तेज, मँहगा ॥ ७–किस तरह से ॥ ८–हुआ ॥ ९–वाड, वाड और आमद ॥ १०–अफीम ॥ ११–गला ॥ १२–डाढी ॥ १३–बढती जाती है ॥ १४–हल की लीक ॥ १५–अन्न ॥ १६–बचा हुआ ॥ १७–पहिले दो में नाई, तीसरे में हलकी भूंगली ॥ १८–रास्ता ॥ १९–यात्री ॥ २०–चलता है ॥ २१–सम्बन्धी ॥ २२–लौट गया ॥ २३–महादेव ॥ २४–पार्वती ॥ २५–चलना ॥ २६–बोलनेवाला, सत्कार और बुलावा ॥ २७–सिंह ॥ २८–का ॥ २९– सुनाई देता है ॥ ३०–जागीर ॥ ३१–लिखते हुए ॥ ३२–कलम ॥ ३३–छोड दी ॥ ३४–सेही (जंतुविशेष); मोहर और स्याही ॥ ३५–बड़ा ॥ ३६–कीमत ॥ ३७–तालाव ॥ ३८–मीड ॥ ३९–होती है ॥ ४०–नामविशेष ॥ ४१–लड़ाई ॥ ४२–आव, जल और तेज ॥ ४३–अडता है ॥ ४४–भूल ॥ ४५–रोटी ॥ ४६–अग्नि ॥ ४७–फेरना यानी सभालना (तीनों में समान) ॥ ४८–उफान ॥ ४९–आया ॥ ५०–बछड़ा ॥ ५१–पी ली ॥ ५२–बिल्ली ॥ ५३–मक्खन ॥ ५४–देखा नहीं (तीनों में समान) ॥

धुंई[1] धुंवो[2] ना सञ्चरै[3], मेहिले[4] पवन[5] न जाय ॥
झीवर[6] विलखो[7] क्यूँ फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ २८ ॥
गुरुजी जाली[8] नहीं ॥

घड़ो झरन्तो[9] ना रहै, पीढ़े[10] रोवै बाल[11] ॥
सासु बैठि बहु[12] पारुसै[13], कहु चेला किण दाय ॥ २९ ॥
गुरुजी सांरो[14] नहीं ॥

कपड़ो पोत[15] न पकड़ै[16], मूंज[17] मेल नहिं खाय ॥
चोधरि रूठ्यो[18] क्यूं फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ३० ॥
गुरुजी कूट्यो[19] नहीं ॥

सूंको[20] पीपल खरहरो[21], कलियां हुईं विनासे[22] ॥
हौको[23] मूंधो[24] क्यूं पड्यो, कहु चेला किण दाय ॥ ३१ ॥
गुरुजी पान[25] नहीं ॥

बाड़ज[26] डोलै[27] बहु[28] बुलै[29], लाव[30] सरै कै[31] जाय ॥
आग भभूका[32] क्यूं करै, कहु चेला किण दाय ॥ ३२ ॥
गुरुजी दाबी[33] नहीं ॥

गाड़ी पड़ी उजाड़[34] में, पणगट[35] ठाली[36] जाय ॥
कांटो लागो पांव में, कहु चेला किण दाय ॥ ३३ ॥
गुरुजी जोड़ी[37] नहीं ॥

घोड़ो तिणो[38] न चाखवै[39], चाकर[40] रूठो[41] जाय ॥
पिलंग[42] थकी[43] धर[44] पोढ़जे[45], कहु चेला किण दाय ॥ ३४ ॥
गुरुजी पायो[46] नहीं ॥

१–आग जलाने का गड्ढा ॥ २–धुआ ॥ ३–निकलता ॥ ४–महल ॥ ५–हवा ॥ ६–मछली पकड़नेवाला ॥ ७–व्याकुल ॥ ८–जलाई हुई, खिड़की (जाली) और जाल ॥ ९ झरता हुआ ॥ १०–छोटी माची ॥ ११–बालक ॥ १२–वहू ॥ १३–परोसती है ॥ १४–पक्का, नीरोग और अधिकार ॥ १५–गाढापन ॥ १६–पकड़ता है ॥ १७–एक घास ॥ १८–रूठा हुआ ॥ १९–कूटा हुआ (दो में) और मारा हुआ ॥ २०–सूखा हुआ ॥ २१–खड़खड़ाता है ॥ २२–नष्ट, नाश ॥ २३–हुक्का ॥ २४–उलटा ॥ २५–पत्ते (दो में) और तमाखू ॥ २६–बाड़ ॥ २७–हिलती है ॥ २८–बहुत ॥ २९–बोलती है ॥ ३०–रस्सा ॥ ३१–बहुत तेजी के साथ ॥ ३२–भभकना ॥ ३३–दबाई हुई (तीनों में समान जानना चाहिये) ॥ ३४–जंगल ॥ ३५–पनिहारी ॥ ३६–खाली ॥ ३७–जोड़ी का बैल (दो में) और जूते ॥ ३८–घास ॥ ३९–खाता है ॥ ४०–नौकर ॥ ४१–क्रुद्ध ॥ ४२–पलग ॥ ४३–होने पर भी ॥ ४४–जमीन ॥ ४५–सोता है ॥ ४६–पिलाया हुआ, पाया हुआ और चार पाई का पाया ॥

वडलो[1] रूंख[2] वधे[3] नहीं, दुनिया मालवें[4] जाय ॥
लिखिया[5] खत कूंड़ा[6] पड़े, कहु चेला किण दाय ॥ ३५ ॥
गुरुजी साख[7] नहीं ॥

गाड़ी पड़ी[8] गवाड़[9] में, कुए खड़ी पणिहार[10] ॥
गोरी[11] ऊभी[12] गोखड़े[13], कहु चेला किण दाय ॥ ३६ ॥
गुरुजी जोड़ी[14] नहीं ॥

कोस पिछोकेंड़[15] क्यूं पड्यो, सोच बटाऊ[16] खाय ॥
अणचीलोयो[17] क्यूं पड्यो, कहु चेला किण दाय ॥ ३७ ॥
गुरुजी फाट[18] गयो ॥

गाड़ी लीकें[19] न दीसंवै[20], घाणी[21] तेल न थाय[22] ॥
कांटो लागो पांव में, कहु चेला किण दाय ॥ ३८ ॥
गुरुजी जोड़ी[23] नहीं ॥

गुंटमण[24] गुटमण फिरतो दीठो[25], कोइ जोगी होयेंगो[26] ॥
नाँ[27] गुरु जी सूत लपेट्यो[28], कोइ ताणो[29] तणतो[30] होयगो ॥
ना गुरु जी मुख लोहा जड़ियो[31], कोइ सोनूं[32] तायो[33] होयगो ॥
ना गुरु जी पकड़ पछाड्यो[34], वेलो[35] वधग्यो[36] ऐ गाहे[37] रो ॥
अरथ[38] कहो तो तुम गुरु हम चेलो ॥ ३९ ॥
लट्टू ॥

इति चेलौं[39] गुरु प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥

यह द्वितीय अध्याय का चेलागुरु प्रश्नोत्तरनामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१–वट (वड) ॥ २–वृक्ष ॥ ३–वढता है ॥ ४–मालवा देश ॥ ५–लिखा हुआ ॥ ६–झूंठा ॥ ७–शाखा, सुभिक्ष और गवाही ॥ ८–पडी हुई ॥ ९–मुहल्ला ॥ १०–पानी भरनेवाली ॥ ११–स्त्री ॥ १२–खडी हुई है ॥ १३–झरोखे मे ॥ १४–जोडी का वैल (दो मे) और किवाड़ों की जोड़ी ॥ १५–पीछे का स्थान ॥ १६–यात्री, मुसाफिर ॥ १७–विना मथा हुआ ॥ १८–फटा हुआ चर्मवस्त्र, फॅटा हुआ मार्ग और फटा हुआ दूध ॥ १९–लकीर, पंक्ति ॥ २०–दीखती है ॥ २१–तेली की घाणी ॥ २२–होता है ॥ २३–जोती हुई, (दो में) और जूतों की जोड़ी ॥ २४–भनभनाता हुआ ॥ २५–देखा ॥ २६–होगा ॥ २७–नहीं ॥ २८–लपेटा हुआ ॥ २९–बुनना ॥ ३०–बुनता हुआ ॥ ३१–जडा हुआ ॥ ३२–सोना ॥ ३३–तपाया ॥ ३४–गिरा दिया ॥ ३५–जल्दी ॥ ३६–वढ गया ॥ ३७–गाथा, छन्द ॥ ३८–मतलव ॥ ३९–इन दोहों का मारवाड देश मे अधिक प्रचार देखा जाता है और वहुत से भोले लोगों का ऐसा ख्याल है कि किसी गुरु तथा चेले के आपस में यह प्रश्नोत्तर हुआ है और इस में चेला गुरु से जीत गया है, परन्तु यह वात सत्य नहीं है— किन्तु यथार्थ वात यह है कि— ये चेलागुरुप्रश्नोत्तररूप दोहे–किसी मारवाडी

इति श्री जैन श्वेताम्बर–धर्मोपदेशक–यतिप्राणाचार्य विवेकलब्धिशिष्य शील-सौभाग्यनिर्मितः, जैनसम्प्रदायशिक्षायाः ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥

कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार डिंगल कविता में बनाये हैं, यद्यपि इन दोहों की कविता ठीक नहीं है–तथापि इन में यह चातुर्य है कि तीन प्रश्नों का उत्तर एक ही वाक्य में दिया है और इन का प्रचार मरुस्थल में अधिक है अर्थात् किसी पुरुष को एक दोहा याद है, किसी को पांच दोहे याद हैं, किन्तु ये दोहे इकट्ठे कहीं नहीं मिलते थे, इसलिये अनेक सज्जनों के अनुरोध से इन दोहों का अन्वेषण कर उल्लेख किया है अर्थात् बीकानेर के जैनहितवल्लभ ज्ञानभंडार में ये २९ दोहे प्राप्त हुए थे सो यहा ये लिखे गये हैं— तथा यथाशक्य इन का संशोधन भी कर दिया है और अर्थज्ञान के लिये अंक देकर शब्दों का भावार्थ भी लिख दिया है ॥

तृतीय अध्याय ॥

19521

मङ्गलाचरण ॥

देवि शारदहिँ ध्यायि के, सद् गृहस्थ को काम ॥
बरणत हौं मैं जो जगत, सब जीवन को धाम ॥ १ ॥

प्रथम प्रकरण—स्त्री पुरुष का धर्म ॥

स्त्री का अपने पति के साथ कर्तव्य ॥

इस संसार में स्त्री और पुरुष इन दोनों से गृहस्थाश्रम बनता और चलता है किन्तु विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि— इन दोनों की स्थिति, शरीर की रचना, स्वाभाविक मन का बल, शक्ति और नीति आदि एक दूसरे से भिन्न २ है, इस का कारण केवल स्वभाव ही है, परन्तु हां यह अवश्य मानना पड़ेगा कि— पुरुष की बुद्धि उक्त बातों में स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ है— इस लिये उस (पुरुष) ही पर गृहसम्बंधी महत्त्व तथा स्त्री के भरण, पोषण और रक्षण आदि का सब भार निर्भर है और इसी लिये भरण पोषण करने के कारण उसे भर्त्ता, पालन करने के कारण पति, कामना पूरी करने के कारण कान्त, प्रीति दर्शाने के कारण प्रिय, शरीर का प्रभु होने के कारण स्वामी, प्राणों का आधार होने के कारण प्राणनाथ और ऐश्वर्य का देनेवाला होने से ईश कहते हैं, उक्त गुणों से युक्त जो ईश अर्थात् पति है और जो कि संसार में अन्न, वस्त्र और आभूषण आदि पदार्थों से स्त्री का रक्षण करता है— ऐसे परम मान्य भर्ता के साथ उस से उऋण होने के लिये जो स्त्री का कर्त्तव्य है— उसे संक्षेप से यहां दिखलाते हैं, देखो ! स्त्री को माता पिता ने देव, अग्नि और सहस्रों मनुष्यों के समक्ष जिस पुरुष को अर्पण किया है— इस लिये स्त्री को चाहिये कि उस पुरुष को अपना प्रिय पति जानकर सदैव उस की सेवा करे— यही स्त्री का परम धर्म और कर्त्तव्य है, पति पर निर्मल प्रीति रखना, उस की इच्छा को पूर्ण करना और सदैव उस की आज्ञा का पालन करना, इसी को सेवा कहते हैं, इस प्रकार जो स्त्री अपनी सब इन्द्रियों को वश में रख कर तन मन और कर्म से अपने पति की सेवा के सिवाय दूसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती है— वही पतिव्रता,

---

१—मङ्गलाचरण का अर्थ— मैं (ग्रन्थकर्ता) श्री शारदा (सरस्वती) देवी का ध्यान करके अब श्रेष्ठ गृहस्थ के कार्य का वर्णन करता हूं जो कि सद्गृहस्थ सब के जीवन का स्थान (आधार) है ॥

तथा श्रेष्ठ उपदेश देकर उन को सन्मार्ग में लाने का यत्न करती है, किसी को दुःख प्राप्त हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करती है, अपने कुटुम्ब अथवा दूसरों के साथ विरोध डाल कर क्लेश नहीं करती है, हर्ष शोक और सुख दुःख में समान रहती है, पति की आज्ञा लेकर सौभाग्यवर्धक व्रत नियम आदि धर्मकार्य करती है, अपने धर्म पर स्नेह रखती है, जेठ को श्वशुर के समान, जिठानी को माता के समान, देवर को पुत्र के समान, देवरानी को पुत्री के समान तथा इन के पुत्रों और पुत्रियों को अपनी सन्तान के समान समझती है, सच्छास्त्रों को सदा पढ़ती और सुनती है, किसी की निंदा नहीं करती है, नीच और कलंकित स्त्रियों की संगति कभी नहीं करती है किन्तु उन के पास खड़ी रहना व बैठना भी नहीं चाहती है, किन्तु केवल कुलीन और सुपात्र स्त्रियों की संगति करती है, सब दुर्गुणों से आप दूर रह कर तथा सद्गुणों को धारण कर दूसरी स्त्रियों को अपने समान बनाने की चेष्टा करती है, किसी से कटु वचन कभी नहीं कहती है, व्यर्थ बकवाद न करके आवश्यकता के अनुसार अल्पभाषण करती है (थोड़ा बोलती है), पति का स्वयं अपमान नहीं करती तथा दूसरों के किये हुए भी उस के अपमान का सहन नहीं कर सकती है, वैद्य वृद्ध और सद्गुरु आदि के साथ भी आवश्यकता के अनुसार मर्यादा से बोलती है, पीहर में अधिक समय तक नहीं रहती है, इस संसार में यह मनुष्य-जन्म सार्थक किस प्रकार हो सकता है इस बात का अहर्निश (दिन रात) विचार करती है, और विचार के द्वारा निश्चित किये हुए ही सत्य मार्ग पर चल कर सब वर्ताव करती है, विघ्नों को और अनेक संकटों को सह कर भी अपनी नेक टेक को नहीं छोड़ती है, इत्यादि शुभ लक्षण सती अर्थात् पतिव्रता स्त्री में होते है।

देखो! उक्त लक्षणों को धारण करनेवाली ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, राजेमती, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती, शीलवती, दमयन्ती, पुष्पचूला और पद्मावती आदि अनेक सती स्त्रियां प्राचीन काल में हो चुकी है, जिन्हों ने अपने सत्य व्रत को अखंडित रखने के लिये अनेक प्रकार की आपत्तियों का भी सामना कर उसे नहीं छोड़ा अर्थात् सब कष्टों का सहन करके भी अपने सत्यव्रत को अखंडित ही रक्खा, इसी लिये वे सती इस महत् पूज्य पद को प्राप्त हुई, क्योंकि सती इस दो अक्षरों की पूज्य पदवी को प्राप्त कर लेना कुछ सहज बात नहीं है किन्तु यह तो तलवार की धार पर चलने के समान अति कठिन काम है, परन्तु हां जिस के पूर्वकृत पुण्यों का सञ्चय होता है उस को तो यह पद और उस से उत्पन्न होनेवाला सुख स्वाभाविक रीति से ही सहज में ही प्राप्त हो जाते है।

इस अर्वाचीन काल में तो बहुत से भोले लोगों को यह भी ज्ञात (मालूम) नहीं है कि सती किस को कहते हैं और वह किस प्रकार से पहिचानी जाती है, इसी का फल यह

हो रहा है कि–उत्तम और अधम स्त्री का विवेक न करके साधारण एक वा दो गुणों को धारण करनेवाली स्त्री को भी सती कहने लगते हैं, यह अत्यन्त निकृष्ट (खराब) प्रणाली है, वे इस बात को नहीं समझते हैं कि इस पद को प्राप्त करने में सब गुणों का धारण करना रूप कितना परिश्रम उठाना पड़ता है और कितनी बड़ी २ तकलीफें सहनी पड़ती हैं, अनेक प्रकार के दुःख सहने पड़ते हैं तब यह पद प्राप्त होकर जीवन की सफलता प्राप्त होती है और जीवन का सफल करना ही परम धर्म है, इसी तत्त्व को विचार कर प्राचीन काल की स्त्रियां तन मन और कर्म से उस में तत्पर रहती थीं किन्तु आज कल की स्त्रियों के समान केवल इन्द्रियों के तृप्त करने में ही वे अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोती थीं।

देखो ! जन्म मरण के बंधन से छूट जाना यही पुरुष तथा स्त्री का मुख्य कर्तव्य है, उस (कर्तव्य) को पूर्ण न करके इन्द्रियों के सुख में ही अपने जन्म को गँवा देना, यह बड़े अफ़सोस की बात है, इस लिये हे प्यारी बहनो ! तुम अपने स्त्रीधर्म को समझो, समझ कर उस का पालन करो और सतीत्व प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक (सफल) करो, यही तुम्हारा कर्तव्य तथा परम धर्म है और इसी से तुम्हें इस लोक तथा पर लोक का सुख प्राप्त होगा ॥

पतिव्रता का प्रताप ॥

पतिव्रता स्त्री अमुक देश, अमुक ज्ञाति अथवा अमुक कुटुम्ब में ही होती है, यह कोई नियम नही है, किन्तु यह (पतिव्रता स्त्री) तो प्रत्येक देश, प्रत्येक ज्ञाति और प्रत्येक कुटुम्ब में भी उत्पन्न हो सकती है, पतिव्रता स्त्रियों के उत्पन्न होने से वह देश, वह ज्ञाति और वह कुटुम्ब (चाहें वह छोटा तथा कैसी ही दुर्दशा में भी क्यों न हो तथापि) वन्द्य होकर उत्तमता को प्राप्त होता है, क्योंकि यह सृष्टि का नियम है कि पतिव्रता स्त्रियों से देश ज्ञाति और कुल शोभा को प्राप्त होकर इस संसार में सब सद्गुणों का आधाररूप हो जाता है, पतिव्रता स्त्री से घर का सब व्यवहार प्रदीप्त होता है, उस की सन्तान धार्मिक, नीतिमान्, शुद्ध अन्तःकरण वाली, शौर्ययुक्त, पराक्रमी, धीर, वीर, तेजस्वी, विद्वान् तथा सद्गुणों से युक्त होती है, क्योंकि सद्गुणों से युक्त माता के उन सद्गुणों की छाप बालकों के कोमल अन्तःकरण में ऐसी दृढ़ हो जाती है कि वह जीवनपर्यन्त भी कभी नहीं जाती है, परिश्रम से थका हुआ पुरुष अपनी पतिव्रता स्त्री के सुन्दर स्वभाव से ही आनन्द पाकर विश्रान्ति पाता है, यदि पुत्र और द्रव्य आदि अनेक प्रकार की समृद्धि भी हो परन्तु घर में सद्गुणों से युक्त और सुन्दर स्वभाववाली पतिव्रता स्त्री न हो तो वह सब समृद्धि व्यर्थरूप है, क्योंकि ऐसी दशा में पुरुष को संसार का सुख पूर्ण रीति से कदापि नही प्राप्त हो सकता है–किन्तु उस पुरुष को अपना धन्य भाग्य समझना चाहिये जिस को सुन्दर गुणों से युक्त सुशीला स्त्री प्राप्त होती है।

स्त्री का पातिव्रत धर्म ही परम दैवत, रूप, तेज और अलौकिक शक्ति होती है, इसी अलौकिक शक्ति से उस को अखण्ड और अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है तथा इसी शक्ति के प्रभावसे सती स्त्री के सामने कुदृष्टि करने वाले पुरुष का सर्व नाश होजाता है।

इस सतीत्व धर्म से केवल सती स्त्री की ही महिमा होती हो यह बात नहीं है किन्तु सती स्त्रीके माता पिता भी पवित्र गिने जाकर धन्यवाद और महिमा के योग्य होते है, न केवल इतना ही किन्तु सती स्त्री दोनों कुलों को तार देती है, जैसे तारागणों में चन्द्रमा शोभा देता है इसी प्रकार से सब स्त्रियों में सती स्त्री शोभा देती है, सती स्त्री ही पति के कठोर हृदय को भी कोमल कर देती है तथा उस के तीक्ष्ण क्रोध और शोक को शान्त कर देती है।

पतिव्रता की प्रेम सहित रीति, मधुरता, नम्रता, स्नेह और उस के धैर्य के वचनामृत रोग समय में ओषधिका काम निकालते है, पतिव्रता स्त्री अपनी अच्छी समझ, तत्परता, दयालुता, उद्योग और सावधानता से आते हुए विघ्नोंको रोक कर अपना कार्य सिद्ध करलेती है, पतिव्रता स्त्री ही पति और कुटुम्बकी शोभा में विशेषता करती है, पतिव्रता स्त्री के द्वारा ही उत्तम शिक्षा पाकर बालक इस संसार में मानवरत्न हो जाते हैं, इसी लिये ऐसी साध्वी स्त्रियों को रत्नगर्भा कहते हैं, वास्तव में ऐसी रत्नगर्भा स्त्रियां ही देश के उदय होने में साधनरूप है, देखो। ऐसी माताओं से ही सर्वज्ञ महावीर, गौतम आदि ग्यारह गणधर, भद्रबाहु, जम्बू, हेमचन्द्र, जिन दत्त सूरि, युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव, रामचन्द्र, कृष्ण, श्रेणिक, अभयकुमार, भोज, विक्रम और शालिवाहन आदि महापुरुष तथा सीता, द्रौपदी और राजेमती आदि जगत्प्रसिद्ध साध्वी स्त्रियां उत्पन्न हुई हैं, अहो पतिव्रता साध्वी स्त्रियों का प्रताप ही अलौकिक है, साध्वी स्त्रियों के प्रताप से क्या नहीं हो सकता है अर्थात् सब कुछ हो सकता है, जिन के सतीत्वं के प्रताप के आगे देवता भी उनके आधीन हो जाते है तो मनुष्यकी क्या गिनती है।

प्राचीन समय में इस देश में बल बुद्धि और मति आदि अनेक बातों में आर्य महिलाओं ने अनेक समयों में पुरुषों के साथ समानता कर दिखाई है, जिस के अनेक उदाहरण इतिहासों में दर्ज है और उन को इस समय में बहुत से लोग जानते हैं, परन्तु हतभाग्य है इस आर्यावर्त्त देश की आर्य तरुणियों का जो कि इस समय सतीत्व का वह अपूर्व माहात्म्य और गौरव कम होगया है, इसका कारण केवल यही है कि–वैसी सती साध्वी स्त्रियां अब नहीं देखी जाती हैं और यह केवल इसी लिये ऐसा है कि–वर्तमान में स्त्रियों को उत्तम शिक्षा, सत्संगति, सदुपदेश, धर्म और नीतिआदि सद् गुणों की शिक्षा नहीं दी जाती है, उनको सच्छास्त्रों का ज्ञान नहीं मिलता है, उन को श्रेष्ठ साध्वी स्त्रियोंकी संगति

प्राप्त नहीं होती है, स्त्रीधर्म और नीति का उपदेश नहीं मिलता है तथा उन के कोमल हृदय में सती चरित्रों के महत्त्व की मोहर नहीं लगाई जाती है, जब ऐसा अन्धेर चल रहा है तो भला साध्वी स्त्रियों के होने की आशा ही कैसे की जा सकती है तथा स्त्रियां अपने धर्म को समझ कर यथार्थ मार्ग पर कैसे चल सकती हैं ! इस लिये हे गृहस्थो ! यदि तुम अपनी पुत्रियों को श्रेष्ठ और साध्वी बनाने की इच्छा रखते हो तो बाल्यावस्था से ही प्राचीन पद्धति के अनुसार सत्य शिक्षा, सुसंगति, सदुपदेश और सतीचरित्रादि के महत्त्व से उनके अन्तःकरण को रंगित करो (रँग दो), पीछे देखो उस का क्या प्रभाव होता है, जब इस प्रकार से सद्व्यवहार किया जायगा तो शीघ्र ही तुम्हारी पुत्रियों के हृदयों में असती स्त्रियों के कुत्सित आचरण पर ग्लानि उत्पन्न हो जायगी और वे इस प्रकार से दुराचारों से दूर भागेंगी जैसे मयूर (मोर) को देखकर सर्प (सांप) दूर भाग जाता है और इस प्रकार का भाव उन के हृदय में उत्पन्न होते ही वे बालायें पवित्र पातिव्रत धर्म का पालन करना सीखकर आपत्तियों का उल्लंघन कर अपने सत्य व्रत में अचल रहेंगी, तब ही वे लोभ लालच में न फँस कर उस को तृण समान तुच्छ जान कर अपने हृदयसे दूर कर उसकी तरफ दृष्टि भी न डालेंगी, इस लिये अपनी प्यारी पुत्रियों बहिनों और धर्मपत्नियों को पूर्वोक्त रीति से सुशिक्षित करो, जिस से वे भविष्यत् में सद् वर्त्ताव कर पतिव्रतारूप उत्कृष्ट पद को प्राप्त कर अपने धर्म को यथार्थ रीतिसे पालने में तत्पर होवें कि जिस से इस पवित्र देशकी निवासिनी आर्य महिलाओं का सदा विजय हो कर इस देश का सर्वदा कल्याण हो ॥

॥ पति के परदेश होनेपर पतिव्रता के नियम ॥

जो स्त्री पतिपर पूर्ण प्रेम रखनेवाली तथा पतिव्रता है उस के लिये यद्यपि पति के परदेशमें जाने से वियोगजन्य दुःख असह्य है परन्तु कारण वश इस संसार में मनुष्यों को परदेश में जाना ही पड़ता है, इसलिये उस दशा में समझदार स्त्रियों को उचित है कि–जब अपना पति किसी कारण से पर देश जावे तब यदि उसकी आज्ञा हो तो साथ जावे और उस की इच्छा के अनुसार विदेश में भी गृह के समान अहर्निश वर्त्ताव करे, परन्तु यदि साथ जाने के लिये पति की आज्ञा न हो अथवा अन्य किसी कारण से उस के साथ जानेका अवसर न मिले तो अपने पति को किसी प्रकार जाने से नहीं रोकना चाहिये तथा जिस समय पति जाने को उद्यत (तैयार) हो उस समय अशुभ सूचक वचन भी नहीं बोलने चाहियें और न रुदन करना चाहिये. किन्तु उस की आज्ञा के अनुसार अपनी सासु श्वशुर आदि गुरु जनों के आधीन रह कर उन्हीं के पास रहना चाहिये, सासु ननँद आदि प्रिया सगी स्त्री के पास सोना चाहिये, जब तक पति वापिस न आवे तब तक

अपने व्रत और नियमों को पालते रहना चाहिये तथा पति के शुभ का चिन्तवन करना चाहिये, पति की उपस्थिति में उस की प्रसन्नता के लिये जैसे पूर्व वस्त्र और अलंकार आदि का उपभोग करती थी उस प्रकार पति की अनुपस्थिति में उनका उपभोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उत्तम वस्त्र और अलंकार आदि तो केवल पति के चित्त को रंजन करने के लिये ही पहिने जाते हैं जब पति तो पर देश में है तो फिर किस का रञ्जन करने के लिये वस्त्र और अलंकार आदि का शृंगार करे ! अर्थात् उस दशा में शृंगार आदि नहीं करना चाहिये, क्योंकि पति के पर देश में होने पर भी शृंगार आदि करना साध्वी स्त्रियों का धर्म नहीं है, इस शिक्षा का हेतु यह है कि—यह स्वाभाविक नियम है कि सांसारिक उपभोगों से इन्द्रियां तथा मन की वृत्ति चलायमान होती है इस लिये इन्द्रियों को तथा मन की वृत्ति को वश में रखने के लिये उक्त नियमों का पालन अति लाभ दायक है, इसलिये पति के परदेश में होने पर सांसारिक वैभव (ऐश्वर्य) के पदार्थों से विरक्त रहना चाहिये, सादी पोशाक पहरना और सौभाग्यदर्शक चिह्न अर्थात् हाथ में कंकण और कपालमें कुंकुम का टीका आदि ही रखना चाहिये ।

पति को चाहिये कि—पर देश जाते समय अपनी स्त्री के भरण पोषण आदि सब बातों का ठीक प्रबंध करके जावे, परन्तु यदि किसी कारण से पति सब बातों का प्रबंध न कर गया होतो स्त्री को उचित है कि—पति के वापिस आने तक कोई निर्दोष (दोष-रहित) जीविका करके अपना निर्वाह करे, जिनपदार्थों को पति ने घर में रखने और संभालनेको सौंपा हो उन को सम्भालकर रक्खे, आमदनी से अधिक खर्च न करे, लोगों की देखा देखी ऋण कर के कोई भी कार्य न करे, सासु श्वशुर तथा सगे स्नेही आदि के साथ का व्यवहार तथा सब संसार का कार्य उसी प्रकार करती रहे जैसा कि—पतिकी विद्यमानता में करती थी, पति की आयु की रक्षाके लिये कोई भी निन्दित कार्य न करे, स्नान करे वह भी शरीर में तेल लगा कर अथवा और कोई सुगन्धित पदार्थ लगा के न करे किन्तु केवल जल से ही करे, चन्दन और पुष्प आदि धारण न करे, नाटक, खेल और स्वांग आदि में न जावे और न स्वयं करे, ऊंचे स्वर से हास्य न करे, अन्य स्त्री अथवा पुरुष की चेष्टा को न देखे, जिस से इन्द्रियों में अथवा मनमें विकार उत्पन्न हो ऐसा भाषण न करे और न ऐसे भाषण का श्रवण करे, इधर उधर व्यर्थ में न भटके, सासु और ननँद आदि प्रिय जनों के साथ के विना पराये घर न जावे, केवल एक वस्त्र (धोती अर्थात् साड़ी) पहिन के न फिरे, अन्य पुरुष के साथ अपने शरीर का संघट्ट हो जावे ऐसा वर्त्ताव न करे, लज्जा को न छोड़े, मेला आदि में (जहां बहुत से मनुष्य इकट्ठे हो वहां) न जावे, देवदर्शन के बहाने इधर उधर भ्रमण न करे किन्तु घर में बैठके परमेश्वर का स्मरण और भक्ति करने में प्रीतिरक्खे, अपने शील तथा सद्व्यवहार को

विचार कर परमार्थ का कार्य सदा करती रहे, पतिके कुशल समाचार मंगाती रहे, इत्यादि सब व्यवहार पतिके परदेश में जाने पर साध्वी स्त्रियों को वर्तना चाहिये, यही पतिव्रता स्त्रियों का धर्म है और इसी प्रकार से वर्त्ताव करने वाली स्त्री पति, सासु और श्वशुर आदि सब को प्रिय लगती है तथा लोक में भी उस की कीर्ति होती है ।

वर्तमान समय में बहुत सी स्त्रियां यह नहीं जानती है कि—पति के विदेश में जाने पर उन को किस प्रकार से वर्त्तना चाहिये और इस के न जाननेसे वे अपने सत्य व्रत को भंग करने वाले स्वतन्त्रता के व्यवहार को करने लगती है, यह बड़े ही अफ़सोस की बात है, क्योंकि केवल शरीर के अल्प सुख के लिये अपना अकल्याण करना, कुदरती नियम को तोड़ कर पतिकी अप्रिय बनकर अपराधका भार अपने शिरपर रखना तथा लोगोंमें निंदापात्र बनना बहुत ही खराब है, देखो । मोती का पानी और मनुष्य का पानी नष्ट हो जाने पर फिर पीछे नहीं आसकता है, इस लिये समझदार स्त्रियों को उचित है कि—अपने जीवन के सुखके मुख्य पाये रूप प्रेम को पति के संयोग और वियोगमें भी एक सरीखा और अखण्ड रक्खे, पतिके विदेश से वापिस आने तक पतिव्रता के नियमों का पालन कर सदाचरण में वर्त्ताव करे, क्योंकि—इस प्रकार चलनेसे ही पतिपत्नी में अखण्ड प्रेम रह सकता है और अखंड प्रेम का रहना ही उन के लिये सर्वथा और सर्वदा सुखदायक है ॥

यह तृतीय अध्याय का—स्त्री पुरुषधर्म नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दूसरा-प्रकरण—रजोदर्शन ॥

अर्थात् स्त्रीका ऋतुमती होना ॥

रजो दर्शन—स्त्री का कन्या भाव से निकल कर स्त्री—अवस्था (तरुणावस्था) में आने का चिह्न है, यह रजोदर्शन स्त्री के गर्भाशयसे प्रतिमास नियमित समय पर होता है और यह एक प्रकार का रक्तस्राव है, इसीलिये इसको रक्तस्राव, ऋतुस्राव, अधोवेशन, मासिकधर्म, पुष्पभाव और ऋतुसमय आदि भी कहते हैं ॥

रजोदर्शनसे होनेवाला शरीर में फेरफार ॥

ऋतुस्राव होने के समय स्त्री का शरीर गोल और भरा हुआ मालूम होता है, शरीर के भिन्न २ भागों में चरबी की वृद्धि हो जाती है, उस के मनकी शक्ति बढती है, शरीर के भाग स्थूल हो जाते हैं, स्तन मोटे तथा पुष्ट हो जाते है, कमर स्थूल हो जाती है, मुख और चेहरा जासूस रंगका दिखलाई देने लगता है, आंखें विशेष चपल हो जाती हैं, व्यव-

हार आदि में लज्जा (शर्म) हो जाती है, सन्तति (पुत्र पुत्री) के उत्पन्न करने की योग्यता जान पड़ती है और स्वाभाविक नियम के अनुसार जिस काम के करने के लिये वह मानी गई है उस कार्यका उसको ज्ञान होगया है. यह बात उस के चेहरे से मालूम होती है, इत्यादि फेरफार ऋतुस्राव के समय स्त्री के शरीरमें होता है ॥

रजोदर्शन होनेका समय ॥

रजोदर्शन के शीघ्र अथवा विलम्ब से आने का मुख्य आधार हवा और संगति है, देखो । इंग्लेंड, जर्मनी, फ्रांस, रशिया, यूरुप और एशिया खण्ड के शीत देशोंकी बालाओंके यह ऋतु धर्म प्रायः १९ वें अथवा २० वें वर्षमें होता है. क्योंकि वहां की ठंढी हवा उन की मनोवृत्ति और वैषयिक विकार की वृत्तिको उसी ढंग पर रक्खे हुए है, परन्तु अपने इस गर्म देशमें गर्म खासियत के कारण तथा दूसरे भी कई कारणों से प्रायः १२ वा १४ वर्ष की ही अवस्था में देखा जाता है और ४५ वा ५० वर्ष की अवस्था में इस का होना बन्द हो जाता है, यद्यपि यह दूसरी बात है कि– किन्हीं स्त्रियों को एक वा दो वर्ष आगे पीछे भी आवे तथा एक वा दो वर्ष आगे पीछे वह बन्द होवे परन्तु इस का साधारण नियमित समय वही है जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं. इसके आगे पीछे होने के कुछ साधारण हेतु भी देखे वा अनुमान किये जा सकते हैं. जैसे देखो ! परिश्रम करने वाली और उद्योगिनी स्त्रियों की अपेक्षा आलस्य में पड़ी रहने वाली, नाटक आदि तथा नवीन २ रसीली कथाओं की वांचने वाली, प्रेम की बातें करने वाली, इश्कवान् स्त्रियों का संग करने वाली; विलम्ब से तथा विना नियम के असमय पर सोने का अभ्यास रखने वाली और मसालेदार तथा उत्तम सरस खुराक खानेवाली आदि कई एक स्त्रियों का गर्भाशय शीघ्र ही सतेज होकर उन के रजोदर्शन शीघ्र आया करता है, इसके विरुद्ध ग्रामीण, मेहनत मजूरी करने वाली और सादा (साधारण) खुराक खाने वाली आदि साधारण वर्ग की स्त्रियों को पूर्व कही हुई स्त्रियोंकी अपेक्षा ऋतु विलम्बसे आता है यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस कदर ऋतु धर्म विलम्बसे होगा उसी कदर स्त्रियों के शरीर का बन्धेज विशेष दृढ रहेगा और उसको बुढ़ापा भी विलम्बसे आवेगा केवल यही कारण है कि ग्रामों की स्त्रियां शहरों की स्त्रियों की अपेक्षा विशेष मजबूत और क़दावर (ऊंचे कद की) होती हैं ॥

रक्तस्राव का साधारण समय ॥

स्त्रियों के यह रक्तस्राव साधारण रीतिसे प्रतिमास ३० वें दिन अथवा किन्हीं के २८ वें दिन भी होता है, परन्तु किन्हीं स्त्रियों के नियमित रीतिसे तीन अष्टाह (अठवाडे)

अर्थात् २४ दिनमें भी होता है, यह रजो दर्शन प्रारम्भ दिवस से लेकर ३ से ५ दिवस तक देखा जाता है परन्तु कई समयों में कई स्त्रियों के एक वा दो दिवस न्यूनाधिक भी देखा जाता है ॥

नियमित रजोदर्शन ॥

स्त्रियों के जब प्रथम रजोदर्शनका प्रारंभ होता है तब वह नियमित नहीं होता है अर्थात् कभी २ कई महीने चढ़ जाते हैं अर्थात् पीछे आता है, इस प्रकार कुछ कालतक अनियमित ही रहता है. पीछे नियमित हो जाता है, जिन स्त्रियों के अनियमित समय पर रजोदर्शन आता है उन स्त्रियों के गर्भ रहने का सम्भव नहीं होता है, केवल यही कारण है कि— वंध्या स्त्रियों के यह रजोदर्शन प्रायः अनियमित समय पर होता है, जिन के अनियमित समय पर रजोदर्शन होता है. उन स्त्रियों को उचित है कि— अनियमित समय पर रजोदर्शन होने के कारणोंसे[1] अपने को पृथक् रक्खें (बचाये रहें) क्योंकि गर्भाधान के लिये रजो दर्शनका नियमित समय पर होना ही आवश्यक है, जिन स्त्रियों के नियमित समय पर बरावर रजोदर्शन होता है तथा नियमित रीति पर उसके चिह्न दीख पड़ते है. एवं उसकी अन्दर की स्थिति उसका दिखाव और बन्द होना आदि भी नियमित हुआ करते हैं. उन्हीं के गर्भस्थिति का संभव होता है, नवल (नवीन) वधू के रजोदर्शन के प्राप्त होने के पीछे तीन या चार वर्ष के अन्दर गर्भ रहता है और किन्हीं स्त्रियों के कुछ विलम्ब से भी रहा करता है ॥

रजोदर्शन आने के पहिले होनेवाले चिन्ह ॥

जब स्त्री के रजोदर्शन आनेवाला होता है तब पहिले से कमर में पीड़ा होती है, पेंडू भारी रहता है, किसी २ समय पेंडू फटने सा लगता है, शरीर में कोई भीतरी पीड़ा हो ऐसा मालूम होता है, शरीर वेचैन रहता है, सुस्ती मालूम होती है, अल्प परिश्रम से ही थकावट आ जाती है, काम काज में मन नहीं लगता है, पड़ी रहने को मन चाहता है, शरीर भारी सा रहता है दस्त की कब्जी रहती है, किसी २ के वमन और माथे में दर्द भी हो जाता है तथा जब रजोदर्शन का समय अति समीप आ जाता है तब मन वहुत तीव्र हो जाता है, इन चिह्नों में से किसी को कोई चिह्न मालूम होता है तथा किसी को कोई चिह्न मालूम होता है. परन्तु ये सब चिह्न रजोदर्शन होने के पीछे किन्हीं के धीमे पड़ जाते है तथा किन्हीं के विलकुल मिट जाते है, कभी २ यह भी देखा जाता है कि— कई कारणोंसे किन्हीं स्त्रियों को रजोदर्शन होने के पीछे एक वा दो दिनतक नियमके विरुद्ध दिन में कई वार शौच जाना पड़ता है ॥

१–अनियमित समय पर रजोदर्शन आने के कारण आगे लिखेंगे ॥

योग्य अवस्था होने पर भी रजोदर्शन न आने से हानि ॥

स्त्री के जिस अवस्था में रजोदर्शन होना चाहिये उस अवस्थामें प्रतिमास रजोदर्शन होने के पहिले जो चिह्न होते हैं वे सब चिह्न तो किन्हीं २ स्त्रियों को मालूम पड़ते हैं परन्तु वे सब चिह्न दो या तीन दिन में अपने आप ही शान्त हो जाते हैं– इसी प्रकार से वे सब चिह्न प्रतिमास मालूम होकर शान्त हो जाया करते हैं. परन्तु रजोदर्शन नहीं होता है इस प्रकार से कुछ समय बीतने पर इस की हानियां झलक ने लगती हैं अर्थात् थोड़े समय के बाद माथे में दर्द होने लगता है, कोठे में बिगाड़ मालूम पड़ता है, दस्त बराबर नहीं आता है और धीरे २ शरीरमें अन्य विकार भी होने लगते हैं, अन्त में इस का परिणाम यह होता है कि हिष्टीरिया (उन्माद) और क्षय आदि भयंकर रोग शरीर में अपना घर बना लेते है ॥

रजोदर्शन न आने के कारण ॥

बहुत सुख में जीवन का काटना, तमाम दिन बैठे रहना, उत्तम सरस स्वादिष्ठ तथा अधिक भोजन का करना, खुली हवा में चलने फिरने का अभ्यास न रखना, बहुत नींद लेना, मन में भय और चिन्ता का रखना, क्रोध करना, तेज हवा में तथा भीगे हुए स्थान में रहना, शरदी का लग जाना और किसी कारण से निर्बलता का उत्पन्न होना आदि कई कारणों से यह रोग उत्पन्न हो जाता है, इस लिये इस रोगवाली स्त्री को चाहिये कि किसी बुद्धिमान् और चतुर वैद्य अथवा डाक्टर की सम्मति से इस भयंकर रोग को शीघ्रही दूर करे ॥

रजोदर्शन के बन्द करने से हानि ॥

बहुत सी स्त्रियां विवाह आदि उत्सवों में शामिल होने की इच्छा से अथवा अन्य किन्हीं कारणों से कुछ ओषधि खाकर अथवा ओषधि लगा कर ऋतुस्राव को बन्द कर देती हैं अथवा ऐसी दवा खा लेती है कि जिस से ऋतु धर्म बिलकुल ही बंद हो जाता है, इस प्रकार रजोदर्शन के बन्द कर देने से गर्भस्थान में अथवा दूसरे गुप्त भागोंमें शोथ (सूजन) हो जाता है, अथवा अन्य कोई दुःखदायक रोग उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार कुदरतके नियम को तोड़ने से इस का दण्ड जीवनपर्यन्त भोगना पड़ता है, इस लिये रजोदर्शन को बन्द करने की कोई ओषधि आदि भूल कर के भी कभी नही करनी चाहिये, यह तो अपना समय पूर्ण होने पर कुदरती नियम से आप ही बन्द हो यही उत्तम है, क्योंकि–इसको रोक देने से यह भीतर ही रह कर शरीर में अनेक प्रकार की खराबियां पैदा कर बहुत हानि पहुँचाता है ॥

रजोदर्शन के समय स्त्री का कर्तव्य ॥

स्त्री को जब ऋतु धर्म प्राप्त हो तब उसे अपनी इस प्रकार से सम्भाल करनी चाहिये कि–जिस प्रकार से ज़ख्मी अथवा दर्दवाले की संभाल की जाती है।

रजस्वला स्त्री को खुराक बहुत ही सादी और हलकी खानी चाहिये क्योंकि खुराक की फेरफार का प्रभाव ऋतु धर्म पर बहुत ही हुआ करता है, शीतल भोजन और वायु का सेवन रजस्वला स्त्री को नहीं करना चाहिये क्योंकि शीतल भोजन और वायु के सेवन से उदर की वृद्धि और अजीर्ण रोग हो जाता है जो कि सब रोगों का मूल है, एवं गर्म और मसालेदार खुराक भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि इस से शरीर में दाह उत्पन्न हो जाता है, बहुत सी अज्ञान स्त्रियां ऋतु धर्म के समय अपनी अज्ञानता से उद्धत (उन्मत्त) होकर छाछ, दही, नीबू, इमली और कोकम आदि खट्टी वस्तुओं को तथा खांड़ आदि हानिकारक वस्तुओं को खा लेती हैं कि जिस से रजोदर्शन बन्द होकर उन को ज्वर चढ़ जाता है, मस्तक और पीठ के सब हाड़ों में दर्द होने लगता है तथा किसी २ समय पेट में ऐंठन (खैंचतान) आदि होने लगती है, खांसी हो जाती है, इस प्रकार ऋतु धर्म के समय नियम पूर्वक न चलनेसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये ऋतु-धर्म के समय खूब सँभल कर आहार विहार आदि का सेवन करना चाहिये, यदि कभी भूल चूक से ऐसा (मिथ्या आहार विहार) हो भी जावे तो शीघ्रही उसका उपाय करना चाहिये और आगामी को उस का पूरा ख़याल रखना चाहिये।

रजोदर्शन के समय स्त्रियों को केवल रोटी, दाल, भात, पूड़ी, शाक और दूध आदि सादी और हलकी खुराक खानी चाहिये जिस से अजीर्ण उत्पन्न हो ऐसी और इतनी (मात्रा से अधिक) खुराक़ नहीं खानी चाहिये, अशक्ति (कमज़ोरी) न मालूम पड़े इस लिये कुछ पुष्ट खुराक़ भी खानी चाहिये, यथाशक्य गर्म कपड़ा पहरना चाहिये परन्तु तंग पोशाक नहीं पहरनी चाहिये, शीत काल में अत्यन्त शीत पड़ने के समय कपड़े धोने के आलस्य से अथवा उनके बिगड़ जाने के भय से काफ़ी कपड़े न रखने से बहुत खराबी होती है, कभी २ ऐसा भी होता है कि–स्त्री ऋतुधर्म के समय बिलकुल खुले और दुर्गन्धवाले स्थान में बैठी रहती है इससे भी बहुत हानि होती है, एवं ऋतु धर्म के समय छत पर बैठने, शरीर पर ठंढी पवन लगने, नंगे पैद ठंढी ज़मीन पर चलने, भीगी हुई ज़मीन पर बैठने और भीगा कपड़ा पहरने आदि कई कारणों से भी शरीर में सर्दी लगकर ऋतु धर्म अटक (रुक) जाता है और उसके अटक जाने से गर्भाशय में शोथ (सूजन) हो जानेका सम्भव होता है, क्योंकि सर्दी लगने से ऋतु धर्म का रक्त (खून) गर्भ में जमकर शोथ को उत्पन्न कर देता है तथा पेंडू में दर्द को भी उत्पन्न कर देता

है, इस प्रकार गर्भाशय के बिगड़ जानेसे गर्भस्थिति (गर्भ रहने) में बड़ी अड़चल (दिक़त) आ जाती है, इसलिये स्त्री को चाहिये कि–उक्त समय में इन हानिकारक वर्तावों से बिलकुल अलग रहे।

इसी प्रकार बहुत देर तक खड़े रहने से, बहुत भय चिन्ता और क्रोध करने से तथा अति तीक्ष्ण (बहुत तेज़) जुलाब लेने से भी ऋतुधर्म में बाधा पड़ती है, इसलिये स्त्री को चाहिये कि–जहां ठंढी पवन का झकोरा (झपाटा) लगता हो वहां अथवा बारी (खिड़की या झरोखा) के पास न बैठे और न वहां शयन करे, इसी प्रकार भीगी हुई ज़मीन में भी सोना और बैठना नहीं चाहिये।

इस के सिवाय–स्नान, शौच, गाना, रोना, हंसना, तेलका मर्दन, दिन में निद्रा, जुवा, आंख में किसी अंजन आदि का लगाना, लेपकरना, गाड़ी आदि वाहन (सवारी) पर बैठना, बहुत बोलना तथा बहुत सुनना, पति संग करना, देव का पूजन तथा दर्शन, ज़मीन खोदना (करोदना), बहिन आदि किसी रजस्वला स्त्री का स्पर्श, दांत घिसना, पृथिवी पर लकीरें करना, पृथिवी पर सोना, लोहे तथा तांबे के पात्र से पानी पीना, ग्राम के बाहर जाना, चन्दन लगाना, पुष्पों की माला पहरना, ताम्बूल (पान, बीड़ा) खाना, पाटे (चौकी) पर बैठना, दर्पण (कांच, शीसा) देखना, इन सब बातों का भी स्त्री ऋतुधर्म के समय त्याग करे तथा प्रसूता स्त्री का स्पर्श, विटला हुआ, ढेढ (चांडाल), मुर्गा, कुत्ता, सुअर, कौआ और मुर्दा आदि का स्पर्श भी नहीं करना चाहिये, इस प्रकार से वर्त्ताव न करने से बहुत हानि होती है, इसलिये समझदार स्त्री को चाहिये कि ऋतु धर्म के समय ऊपर लिखी हुई बातों का अवश्य स्मरण रक्खे और उन्ही के अनुसार वर्त्ताव करे ॥

रजोदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से हानि ॥

रजोदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से गर्भाशय में दर्द तथा विकार उत्पन्न हो जाता है जिस से गर्भ रहने का सम्भव नही रहता है, कदाचित् गर्भ रहभी जाता है तो प्रसूत समय में (बच्चा उत्पन्न होने के समय) अति भय रहता है, इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि–बहुत सी स्त्रियां पीले शरीर वाली तथा मुर्दार सी दीख-पड़ती हैं, उस का मुख्य कारण ऋतुधर्म में दोष होना ही है, ऐसी स्त्रियां यदि कुछ भी परिश्रम का काम करती हैं तथा सीढ़ी पर चढ़ती है तो शीघ्रही हांफने लगती है तथा कभी २ उनकी आंखों के आगे अँधेरा छा जाता है–इसका हेतु यही है कि–ऋतुधर्मके समय उचित वर्त्ताव न करने से उन के आन्तरिक निर्बलता उत्पन्न हो जाती है, इस लिये ऋतुधर्मके समय बहुत ही सँभलकर वर्ताव करना चाहिये।

ऋतुधर्म के समय बहुत से समझदार हिन्दू, पारसी, मुसलमान तथा अंग्रेज आदि वर्गोंमें स्त्रियों को अलग रखने की रीति जो प्रचलित है—वह बहुतही उत्तम है क्योंकि उक्त दशा में स्त्रियों को अलग न रखने से गृहसम्बंधी कामकाज में सम्बंध होने से बहुत खराबी होती है, वर्तमानमें उक्त व्यवहारके ठीक रीति से न होने का कारण केवल मनुष्य जाति की लुब्धता तथा मनकी निर्बलता ही है, किन्तु उचित तो यही है कि—रजखला स्त्रियोंको अतिस्वच्छ, प्रकाशयुक्त, सूखे तथा निर्मल स्थान में गृह से पृथक् रखने का प्रबंध करना चाहिये किन्तु दुर्गन्धयुक्त तथा प्रकाशरहित स्थान में नहीं रखना चाहिये।

ऋतुधर्म के समय स्त्रियों को चाहिये कि—मलीन कपड़े न पहरें, हाथ पैर सूखे और गर्म रक्खें, हवा में तथा भीगी हुई ज़मीन पर न चलें, खुराक अच्छी और ताजी खावें, मन को निर्मल रक्खें, ऋतुधर्म के तीन दिनों में पुरुष का मुख भी न देखें, स्नान करने की बहुत ही आवश्यकता पड़े तो स्नान करें परन्तु जलमें बैठकर स्नान न करें किन्तु एक जुदे पात्रमें गर्म जल भर के स्नान करें और ठंढी पवन न लगने पावे इसलिये शीघ्र ही कोई स्वच्छ वस्त्र अथवा ऊनी वस्त्र पहरलें परन्तु विशेष आवश्यकता के विना स्नान न करें॥

रजोदर्शन के समय योग्य सम्भाल न रखने से बालक पर पड़ने वाला असर ॥

रजखला स्त्री के दिन में सोने से उस के जो गर्भ रह कर बालक उत्पन्न होता है वह अति निद्रालु (अत्यन्त सोनेवाला) होता है, नेत्रों में अञ्जन (काजल, सुर्मा) के आंजने (लगाने) से अन्धा, रोने से नेत्र विकारवाला और दुःखी स्वभाव का, तेलमर्दन करने से कोढ़ी, हँसने से काले ओठ दाँत जीभ और तालुवाला, बहुत बोलनेसे प्रलापी (बकवाद करनेवाला) बहुत सुनने से बहिरा, ज़मीन कुचरने (करोदने) से आलसी, पवन के अति सेवन से गैला (पागल), बहुत मेहनत करनेसे न्यूनांग (किसी अंग से रहित), नख काटने से खराब नखवाला, पात्रों (तांबे आदिके वर्त्तनों) के द्वारा जल पीने से उन्मत्त और छोटे पात्र से जल पीनेसे ठिंगना होता है, इसलिये स्त्री को उचित है कि— ऋतुधर्म के समय उक्त दोषों से बचे कि जिस से उन दोषों का बुरा प्रभाव उस के सन्तान पर न पड़े।

इसके सिवाय रजखला स्त्री को यह भी उचित है कि—मिट्टी काष्ठ तथा पत्थर आदि के पात्र में भोजन करे, अपने ऋतुधर्म के रक्त (रुधिर) को देवस्थान गौओंके बाड़े और जलाशयमें न डाले, ऋतुधर्म के समय में तीन दिन के पहिरे हुए जो वस्त्र हों उन को चौथे दिन धो डाले तथा सूर्य उदय होने के दो या तीन घण्टे पीछे गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से स्नान करे तथा स्नान करने के पश्चात् सब से प्रथम अपने पति का मुख देखे,

जो स्त्री ऊपर लिखे हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करेगी वह सदा नीरोग और सौभाग्यवती रहेगी तथा उस का सन्तान भी सुशील, रूपवान्, बुद्धिमान् तथा सर्व शुभ लक्षणों से युक्त उत्पन्न होगा ॥

यह तृतीय अध्यायका—रजोदर्शन नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण—गर्भाधान ।

गर्भाधान का समय ॥

गर्भाधान उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा गर्भाशयमें वीर्य स्थापित किया जाता है, इस का समय शास्त्रकारोंने यह बतलाया है कि—१६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वर्षका पुरुष इस (गर्भाधान) की क्रिया को करे अर्थात् उक्त अवस्थाको प्राप्त हो कर पुरुष और स्त्री सन्तान को उत्पन्न करें, यदि इस से प्रथम इस कार्य को किया जायगा तो गर्भ गिर जायगा अथवा (गर्भ न गिरा तो) सन्तति उत्पन्न होते ही मर जायगी अथवा (यदि सन्तति उत्पन्न होते ही न भी मरी तो) दुर्बलेन्द्रिय होगी इसलिये अल्पावस्था में गर्भाधान कभी न करना चाहिये ।

प्यारे सज्जनो देखो ! स्त्री की योनि सन्तान के उत्पन्न करने का क्षेत्र (खेत) है इस लिये जिस प्रकार किसान अन्न आदि के उत्पन्न करने में विचार रखता है उसी भांति वरन उस से भी अधिक सन्तानोत्पत्ति में विचार करना मनुष्य को अति आवश्यक है जिससे किसी प्रकार की हानि न हो ।

गर्भाधान के विषय में शास्त्रकारों की यह सम्मति है कि—जब तक स्त्री १६ बार रजो धर्म से शुद्ध न हो जावे तब तक उसमें बीज बोने (वीर्यस्थापन करने) अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि—आज कल इस विचार को लोगों ने बिलकुल ही त्याग दिया है और इस के त्यागने ही के कारण वर्तमानमें यह दशा हो रही है कि—मनुष्यगण न्यूनबल, निर्बुद्धि, अल्पायु,

---

१–क्योंकि उत्पन्न करने की शक्ति स्त्री पुरुष में उक्तअवस्थानमें ही प्रकट होती है. तथा स्त्रीमें ४५ अथवा ५० वा ५५ वर्षतक वह शक्ति स्थित रहती है, परन्तु पुरुष में ७५ वर्षतक उक्त शक्ति प्रायः रहती है, यद्यपि यूरोप आदि देशोंमें सौ २ वर्ष की अवस्था वालेभी पुरुष के बच्चेका उत्पन्न होना अखबारों मे पढते हैं तथापि इस देशके लिये तो शास्त्रकारोंका ऊपर कहा हुआ ही कथन है, ८ वर्षसे लेकर १४ वर्षकी अवस्थातक उत्पन्नकरने की शक्ति की उत्पत्ति का प्रारंभ होता है १५ से २१ वर्ष तककी वह अवस्था है कि जिसमें अण्डकोश में वीर्य बनने लगता है तथा पुरुषचिह्नको प्रयोग में लाने की इच्छा उत्पन्न होती है, २१ से ३० वर्षतक पूर्णता की अवस्था है, इसविषय का विशेष वर्णन सुश्रुतआदि ग्रन्थों में देखलेना चाहिये ॥

रोगी तथा नाटे (छोटे कद के) होने लगे हैं, इस लिये जब स्त्री १६ वार रजो धर्म से निवृत्त हो कर शुद्ध हो जावे तब उस के साथ प्रसंग करना चाहिये तथा उस (स्त्री प्रसंग) की भी अवधि स्त्री के मासिक धर्म (जो कि स्वाभाविक रीति के अनुसार प्रतिमास होता है) के दिन से लेकर १६ दिन तक है, इन ऊपर कही हुई १६ रात्रियों में से भी प्रथम चार रात्रियों में स्त्री प्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि–इन चार रात्रियों में स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकारयुक्त तथा मलीन रुधिर निकलता है, इस लिये जो कोई इन रात्रियों में स्त्री प्रसंग करता है उस की बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु आदि हीन होजाते हैं तथा उस को अनेक प्रकार के रोग भी आ घेरते हैं, इस के सिवाय उक्त चार रात्रियों में स्त्री प्रसंग का निषेध इस लिये भी किया गया है कि–उक्त रात्रियों में स्त्री प्रसंग करने से पुरुष का अमूल्य वीर्य व्यर्थ जाता है अर्थात् उक्त रात्रियों में गर्भाधान नहीं हो सकता है क्योंकि–यह नियम की बात है कि जैसे बहते हुए जल में कोई वस्तु नहीं ठहर सकती है इसी प्रकार बहते हुए रक्त में वीर्यकी स्थिति होना भी असम्भव[1] है, अतः रजस्वला स्त्री के साथ कदापि प्रसंग नहीं करना चाहिये, रजस्वला स्त्री के साथ प्रसंग करना तो दूर रहा किन्तु रजस्वला स्त्री को देखना भी नहीं चाहिये और न स्त्री को अपने पति का दर्शन करना चाहिये किन्तु स्त्री को तो यह उचित है कि उक्त समय में गृहसम्बंधी भी कोई कार्य न करे, केवल एकान्त में बैठी रहे, शरीरका शृंगार आदि न करे किन्तु जब रज निकलना बंद हो जावे तब स्नान करे इसी को ऋतु स्नान कहते है।

यह भी स्मरण रहना चाहिये कि–ऋतुस्नानके पीछे स्त्री जिस पुरुष का दर्शन करेगी उसी पुरुष के समान पुत्र की आकृति होगी, इस लिये स्त्री को योग्य है कि–ऋतुस्नान के अनन्तर अपने पति पुत्र अथवा उत्तम आकृतिवाले अन्य किसी सम्बंधी पुरुष को देखे, यदि किसी कारण से इन का देखना संभव न हो तो अपनी ही आकृति (सूरत) को (यदि उत्तम हो तो) दर्पण में देख ले, अथवा किसी उत्तम आकृतिमान् तथा गुणवान् पुरुष की तस्वीर को मंगा कर देख ले तथा उन की सूरत का चित्त में ध्यान भी करती रहे क्योंकि जिस का चित्त में वारंवार ध्यान रहेगा उसी का बहुत प्रभाव सन्तान पर होगा इस लिये पुरुष का दर्शन कर उसका ध्यान भी करती रहे कि जिस से उत्तम मनोहर पुत्र और पुत्री उत्पन्न हों।

१–देखो लिखा है कि–प्रवहत्सलिले क्षिप्त द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा वहति रक्ते तु क्षिप्त वीर्यमधो व्रजेत् ॥ १ ॥ अर्थात् जैसे बहते हुए जल में डाली हुई वस्तु नीचे चली जाती है, उसी प्रकार बहते हुए रुधिर में डाला हुआ वीर्य नीचे चला जाता है अर्थात् गर्भस्थिति नहीं होती है ॥

जिस प्रकार से स्त्री प्रसंग में पहिली चार रात्रियों का त्याग है उसी प्रकार ग्यारहवीं तेरहवीं रात्रि तथा अष्टमी पूर्णमासी और अमावास्या का भी निषेध किया गया है, इन से शेष रात्रियों में स्त्री प्रसंग की आज्ञा है तथा उन शेष रात्रियों में भी यह शास्त्रीय (शास्त्रका) सिद्धान्त है कि–समरात्रियों में अर्थात् ६, ८, १०, १२, १४ और १६ में स्त्रीप्रसंगद्वारा गर्भ रहने से पुत्र तथा विषम रात्रियों में अर्थात् ७, ९, ११, १३ और १५ में गर्भ रहने से पुत्री उत्पन्न होती है क्योंकि–सम रात्रियों में पुरुष के वीर्य की तथा विषम रात्रियों में स्त्री के रज की अधिकता होती है, मुख्य तात्पर्य यह है कि मनुष्य का वीर्य अधिक होने से लड़का कम होने से लड़की और दोनों का वीर्य और रज बराबर होने से नपुंसक होता है तथा दोनों का वीर्य और रज कम होने से गर्भ ही नहीं रहता है।

पुत्र और पुत्री की इच्छावाला पुरुष ऊपर कही हुई रात्रियों में नियमानुसार केवल एकवार स्त्रीप्रसंग करे परन्तु दिन में इस क्रिया को कदापि न करे क्योंकि दिन में प्रकाश तेज और गर्मी अधिक होती है तथा मैथुन करते समय और भी गर्मी शरीर से निकलती है इस लिये इस दो प्रकार की उष्णता से शरीर को बहुत हानि पहुंचती है और कभी २ यहां तक हानि की सम्भावना हो जाती है कि–अति उष्णता के कारण प्राणों का निकलना भी सम्भव हो जाता है, इस लिये–रात्रिमें ही स्त्रीप्रसंग करना चाहिये किन्तु रात्रि में भी दीपक तथा लेम्प आदि जलाकर तथा उन को निकट रख कर स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये–क्योंकि–इस से भी पूर्वोक्त हानि की ही सम्भावना रहती है।

रात्रि में दश वा ग्यारह बजे पर स्त्रीप्रसंग करना उचित है क्योंकि–इस क्रिया का ठीक समय यही है, जब वीर्य पात का समय निकट आवे उस समय दोनों (स्त्रीपुरुष) सम हो जावें अर्थात् ठीक नाक के सामने नाक, मुंहके सामने मुंह, इसी प्रकार शरीर के सब अंग समान रहें।

स्त्रीप्रसंग के समय स्त्री तथा पुरुष के चित्त में किसी बात की चिन्ता नहीं रहनी चाहिये तथा इस क्रिया के पीछे शीघ्र नही उठना चाहिये किन्तु थोड़ी देरतक लेटे रहना चाहिये और इस कार्य के थोड़े समय के पीछे गर्मकर शीतल किये हुए गायके दूधमें मिश्री डालकर दोनों को पीना चाहिये क्योंकि दूधके पीने से थकावट जाती रहती है और जितना रज तथा वीर्य निकलता है उतना ही और बन जाता है तथा ऐसा करनेसे किसी प्रकार का शारीरिक विकार भी नहीं होने पाता है।

१–इस सर्व विषय का यदि विशेष वर्णन देखना हो तो भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थों को देखो॥

इस कार्य के कर्त्ता यदि प्रातःकाल शरीर पर उबटन लगा कर स्नान करें तथा खीर, मिश्री, सहित, दूध और भांत खावें तो अति लाभदायक होता है।

इस प्रकार से सर्वदा ऋतु के समय नियमित रात्रियों में विधिवत् स्त्रीप्रसंग करना चाहिये किन्तु निषिद्ध रात्रियों में तथा ऋतुधर्म से लेकर सोलह रात्रियों के पश्चात् की रात्रियों स्त्रीप्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि धर्मग्रन्थों में लिखा है कि जो मनुष्य अपनी स्त्री से ऋतु के समय में नियमानुसार प्रसंग करता है वह गृहस्थ हो कर भी ब्रह्मचारी के समान है।

गर्भिणी स्त्री के वर्तावका वर्णन ॥

स्त्री के जिस दिन गर्भ रहता है उस दिन शरीर में निम्नलिखित चिन्ह प्रतीत होते हैं:—

जैसे बहुत श्रम करने से शरीर में थकावट आ जाती है उसी प्रकार की थकावट मालूम होने लगती है, शरीर में ग्लानि होती है, तृषा अधिक लगती है, पैरों की पींडियों में दर्द होता है, प्रसवस्थान फड़कता है, रोमांच होता है (रोंगटे खड़े होते हैं), सुगन्धित वस्तु में भी दुर्गन्धि मालूम होती है और नेत्रोंके पलक चिमटने लगते है।

गर्भाधान के एक मास के अनुमान समय होने पर शरीर में कई एक फेर फार होते हैं—स्त्री का रजोदर्शन बंद हो जाता है, परन्तु नवीन गर्भवती (गर्भ धारण की हुई) स्त्री को इस एक ही चिन्ह के द्वारा गर्भ रहने का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये किन्तु जिस स्त्री के एक वा दो वार सन्तति हो चुकी हो वह स्त्री नियमित समय पर होने वाले रजोदर्शन के न होने पर गर्भस्थिति का निश्चय कर सकती है।

१—स्मरण रखना चाहिये कि—सन्तान का उत्तम और वलिष्ठ होना पति पत्नी के भोजन पर ही निर्भर है इस लिये स्त्री पुरुषको चाहिये कि अपने आत्मा तथा शरीर की पुष्टि के लिये वल और बुद्धिके बढानेवाले उत्तम औषध और नियमानुसार उत्तम २ भोजनों का सेवन करें, भोजन आदि के विषय में इसी ग्रन्थ के चौथे अध्याय में वर्णन किया गया है वहा देखें ॥

२—सर्व शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि—स्त्री गर्भसमय में अपना जैसा आचरण रखती है—उन्हीं लक्षणों से युक्त सन्तान भी उस के उत्पन्न होता है—इसलिये यहा पर संक्षेप से गर्भिणी स्त्री के वर्ताव का कुछ वर्णन किया जाता है—आशा है कि—स्त्रीगण इस से यथोचित लाभ प्राप्त कर सकेंगी ॥

३—जैसा कि लिखा है कि—स्तनयोर्मुखकार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा ॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः सम्मील्यन्ते विशेषतः ॥ १ ॥ छर्दयेत् पथ्य भुक्त्वापि गन्धादुद्विजते शुभात् ॥ प्रसेकः सदन चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ २ ॥ अर्थात् दोनों स्तनोंका अग्रभाग काला हो जाता है, रोमाञ्च होता है, आखों के पलक अत्यन्त चिमटने लगते हैं ॥ १ ॥ पथ्य भोजन करने पर भी छर्दि (वमन) हो जाता है शुभ गन्ध से भी भय लगता है मुख से पानी गिरता है तथा अगो में थकावट मालूम होती है ॥ २ ॥ ये लक्षण जो लिखे हैं ये गर्भरहने के पश्चात् के हैं किन्तु गर्भरहने के तत्काल तो वही चिन्ह होते हैं जो कि ऊपर लिखे हैं ॥

एक मास के पीछे गर्भिणी स्त्री के जी मचलाना और वमन (उलटियां) प्रातःकाल में होने लगते हैं, यद्यपि रजोदर्शन के बंद होने की खबर तो एक मास में पड़ती है, परन्तु जी मचलाना और वमन तो बहुतसी स्त्रियों के एक मास से भी पहिले होने लगते हैं तथा बहुत सी स्त्रियों के मास वा डेढ मास के पीछे होते हैं और ये (मोल और वमन) एक वा दो मासतक जारी रह कर आप ही बंद हो जाते हैं परन्तु कभी २ किसी २ स्त्री के पांच सात मासतक भी बने रहते हैं तथा पीछे शान्त हो जाते हैं।

गर्भिणी स्त्री को जो वमन होता है वह दूसरे वमन के समान कष्ट नहीं देता है इस लिये उस की निवृत्ति के लिये कुछ ओषधि लेने की आवश्यकता नहीं है, हां यदि उस वमन से किसी स्त्री को कुछ विशेष कष्ट मालूम हो तो उसका कोई साधारण उपाय कर लेना चाहिये।

जिस गर्भिणी स्त्री को ये मोल (जीम चलाना) और वमन होते हैं उसको प्रसूत के समय में कम संकट होता है, इस के अतिरिक्त गर्भिणी स्त्री के मुख में थूक का आना गर्भस्थिति से थोड़े समय में ही होने लगता है तथा थोड़े समयतक रह कर आप ही बन्द हो जाता है, धीरे २ स्तनों के मुख के आस पास का सब भाग पहिले फीका और पीछे श्याम हो जाता है, स्तनों पर पसीना आता है, प्रथम स्तन दाबने से कुछ पानी के समान पदार्थ निकलता है परन्तु थोड़े दिन के बाद दूध निकलने लगता है।

गर्भिणी स्त्री का दोहद ॥

तीसरे अथवा चौथे मास[1] में गर्भिणी स्त्री के दोहद उत्पन्न होता है अर्थात् भिन्न २ विषयों की तरफ उस की अभिलाषा होती है, इस का कारण यह है कि, दिमाग (मगज़) और गर्भाशय के ज्ञानतन्तुओं का अति निकट सम्बन्ध है इस लिये गर्भाशय का प्रभाव दिमाग पर होता है, उसी प्रभाव के द्वारा गर्भिणी स्त्री की भिन्न २ वस्तुओं पर रुचि चलती है, कभी २ तो ऐसा भी देखा गया है कि उस का मन किसी अपूर्व ही वस्तु के खाने को चलता है कि जिस के लिये पहिले कभी इच्छा भी नहीं हुई थी, कभी २ ऐसा भी होता है कि-जिस वस्तु में कुछ भी सुगन्धि न हो उस में भी उस को सुगन्धि मालूम होती है अर्थात् बेर, इमली, राख, धूल, कंकड, कोयला और मिट्टी आदि में भी कभी २ उसको सुगन्धि मालूम होती है तथा इन के खाने के लिये उस का मन ललचाया करता है, किसी २ स्त्री का मन अच्छे २ वस्त्रों के पहरने के लिये चलता है, किसी २ का मन अच्छी २ बातों के करने तथा सुनने के लिये चलता है तथा किसी २ का मन उत्तम २ पदार्थों के देखने के लिये चला करता है॥

१-परन्तु इस का नियम नहीं है कि तीसरे अथवा चौथे मास में ही दोहद उत्पन्न हो, क्योंकि-कई स्त्रियों के उक्त समय से एक आध मास पहिले वा पीछे भी दोहद का उत्पन्न होना देखा जाता है॥

पेट में बालक का फिरना ॥

पेट में बालक का फिरना चौथे वा पांचवें महीने में होता है, किन्तु इस से पूर्व नहीं होता है क्योंकि गर्भस्थ सन्तान के बड़े होने से उस की गति (इधर उधर हिलना आदि चेष्टा) मालूम होती है किन्तु जहांतक गर्भस्थ सन्तान छोटा रहता है वहांतक गति नहीं मालूम होती है ।

यद्यपि ऊपर कहे हुए सब चिन्ह तो स्त्री से पूंछने से तथा जांच करने से मालूम हो सकते हैं परन्तु गर्भ स्थिति के कारण पेट का बढना तो प्रत्यक्ष ही मालूम हो जाता है, किन्तु प्रथम दो वा तीन महीनेतक तो पेट का बढना भी स्पष्ट रीति से मालूम नहीं होता है परन्तु तीन महीने के पीछे तो पेट का बढना साफ तौर से मालूम होने लगता है अर्थात् ज्यों २ गर्भस्थ बालक बड़ा होता जाता है त्यों २ पेट भी बढता जाता है, परन्तु यह भी स्मरण रहना चाहिये कि केवल पेट के बढ़ने से ही गर्भस्थिति का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये किन्तु इस के साथ में ऊपर कहे हुए चिन्ह भी देखने चाहियें क्योंकि उदर की वृद्धि तो तापतिल्ली और जलोदर आदि कई एक रोगों से भी हो जाती है ॥

गर्भिणी स्त्री के दिन पूरे होने के समय में होनेवाले चिन्ह ॥

इस समय में बहुमूत्रता होती है अर्थात् वारंवार पेशाब करने के लिये जाना पड़ता है परन्तु उस में दर्द नहीं होता है, किसी २ स्त्री के गर्भ स्थिति की प्रारंभिक दशा में भी बहुमूत्रता हो जाती है परन्तु इस दशा में उस के कुछ पीड़ा हुआ करती है, वारंवार पेशाब लगने का कारण यह है कि—गर्भाशय और मूत्राशय ये दोनों बहुत समीप हैं इसलिये गर्भाशय के बढने से मूत्राशय पर दबाव पड़ता है उस दबाव के पड़ने से वारंवार पेशाब लगता है, परन्तु यह (वारंवार पेशाब का लगाना) भी कुछ समय के पश्चात् आप ही बन्द हो जाता है, इस के सिवाय गर्भिणी स्त्री का चेहरा प्रफुल्लित होता है परन्तु बहुत सी स्त्रियां प्रायः दुर्बल भी हो जाया करती हैं, इत्यादि ॥

प्रत्येक मास में गर्भस्थिति की दशा तथा उसकी संभाल ॥

स्थानांग सूत्रके पांचवें स्थान में कामसेवन का पांच प्रकार से होना कहा है. जिस का संक्षेप से वर्णन यह है:—

१–पुरुष वा स्त्री अपने मन में काम भोग की इच्छा करे, इस का नाम मनःपरिचारण है ॥

२–जिन शब्दों से कामविकार जागृत हो ऐसे शब्दों के द्वारा परस्पर वार्तालाप (सम्भाषण) करना, इस का नाम शब्दपरिचारण है ॥

३–परस्पर में राग जागृत हो ऐसी दृष्टि से एक दूसरे को देखना, इस का नाम रूपपरिचारण है ॥

४–आलिङ्गन आदि के द्वारा केवल स्पर्श मात्रसे काम सेवन करना, इस का नाम स्पर्शपरिचारण है ॥

५–एक शय्या (चार पाई वा विस्तर) में सम्पूर्ण अङ्गों से अङ्गों को मिला कर काम भोग करना, इस का नाम कायपरिचारणा है ॥

इन पांचों काम सेवन की विधियों मेंसे पांचवी विधि के अनुसार जब काम सेवन किया जाता है तब स्त्री के गर्भ की स्थिति होती है, गर्भ की स्थिति का स्थान एक कमलाकार नाड़ी विशेष है अर्थात् स्त्री की नाभि के नीचे दो नाड़ी एक दूसरी से सम्बद्ध हो कर कमल पुष्पके समान बनी हुई अधोमुख कमलाकार है, इसी में गर्भ की स्थिति होती है, इस नाड़ी के नीचे आमकी मांजर (मञ्जरी) के समान एक मांस का मांजर है तथा उस मांजर के नीचे योनि है, प्रतिमास जो स्त्री को ऋतुधर्म होता है वह इसी मांजर से लोहू गिर कर योनि के मार्ग से बाहर आता है ।

पहिले कह चुके हैं कि—ऋतुस्नान के पीछे चौथे दिन से लेकर बारह दिन तक गर्भ स्थिति का काल है, इस विषय में यह भी जान लेना आवश्यक है कि—कायपरिचारणा (कामसेवन की पांचवीं विधि) के द्वारा काम भोग करने के पीछे स्खलित हुए वीर्य और शोणित में कच्ची चौवीस घड़ी (९ घंटे तथा ३६ मिनट) तक गर्भस्थिति की शक्ति रहती है, इस के पीछे वह शक्ति नहीं रहती है किन्तु फिर तो वह शक्ति तब ही उत्पन्न होगी कि जब पुनः दूसरी वार सम्भोग किया जायगा !

सम्भोग करने के पीछे गर्भ में लड़के वा लड़की (जो उत्पन्न होने को हो) का जीव शीघ्र ही आ जाता है, परन्तु इस विषय में जो लोग ऐसा मानते हैं कि गर्भस्थिति के एक महीने वा दो महीने के पीछे जीव आता है वह उन का भ्रममात्र है किन्तु जीव तो चौवीस घड़ी के भीतर १ ही आ जाता है तथा जीव गर्भमें आते ही पिता के वीर्य और माता के रुधिर का आहार लेकर अपने सूक्ष्म शरीर को (जिसे पूर्व भव से साथ लाया है तथा जिस के साथ में अनेक प्रकार की कर्म प्रकृति भी हैं) गर्भाशय में डाल कर उसी के द्वारा स्थूल शरीर की रचना का प्रारंभ करता है, क्योंकि जब जीव एक गति को छोड़कर दूसरी गति में आता है तब तैजस तथा कार्मणरूप सूक्ष्म शरीर उस के साथही में रहता है तथा पुण्य और पाप आदि कर्म भी उसी सूक्ष्म शरीर के साथ में लगे रहते हैं,

१–जैसा कि वैद्यक आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि–शुक्रार्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते ॥ जीवस्तदैव विशति शुक्रशुक्रार्तवान्तरम् ॥ १ ॥ सूर्यांशोः सूर्यमणित उभयस्माद्युतायथा ॥ वह्निस्संजायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् ॥ २ ॥ अर्थात् जब वीर्य और आर्तव का संयोग होता है–उसी समय जीव उन के साथ उस में प्रवेश करता है ॥ १ ॥ जैसे-सूर्य की किरण और सूर्यमणि के संयोग से अग्नि प्रकट होती है उसी प्रकार से शुक्र शोणित के सम्बन्ध से जीव शीघ्रही उदर में प्रकट हो जाता है ॥ २ ॥

बस इसी प्रकार जबतक वह जीव संसार में भ्रमण करता है तबतक उस के उक्त सूक्ष्म शरीर का अभाव नहीं होता है किन्तु जब वह मुक्त होकर शरीर रहित होता है तथा उस को जन्ममरण और शरीर आदि नहीं करने पड़ते है तथा जिस के राग द्वेष और मोह आदि उपाधियां कम होती जाती हैं उस के पूर्व सञ्चित कर्म शीघ्रही छूट जाते है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि–संसारके सब पदार्थों का और आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होनेसेही राग द्वेष और मोह आदि उपाधियां कम होती हैं तथा यदि किसी वस्तुमें ममता न रख कर सद्भाव से तप किया जावे तो भी सब प्रकार के कर्मों की उपाधियां छूट जाती हैं तथा जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, जबतक यह जीव कर्मकी उपाधियों से लिप्त है तबतक संसारी अर्थात् दुनियां दार हैं किन्तु कर्मकी उपाधियों से रहित होने पर तो वह जीव मुक्त कहलाता है, यह जीव शरीर के संयोग और वियोग की अपेक्षा अनित्य है तथा आत्मधर्म की अपेक्षा नित्य है, जैसे दीपकका प्रकाश छोटे मकान में संकोच के साथ तथा बड़े मकान में विस्तार के साथ फैलता है उसी प्रकारसे यह आत्मा पूर्वकृत कर्मों के अनुसार छोटे बड़े शरीर में प्रकाशमान होता है, जब यह एक जन्म के आयुःकर्म की पूर्णता होनेपर दूसरे जन्म के आयुका उपार्जन कर पूर्व शरीर को छोड़ता है तब लोग कहते हैं कि-अमुक पुरुष मर गया, परन्तु जीव तो वास्तव में मरता नहीं है अर्थात् उस का नाश नहीं होता है हां उस के साथ में जो स्थूल शरीर का संयोग है उस का नाश अवश्य होता है ॥

१–गर्भ स्थिति के पीछे सात दिन में वह वीर्य और शोणित गर्भाशय में कुछ गाढा हो जाता है तथा सात दिन के पीछे वह पहिले की अपेक्षा अधिकतर कठिन और पिण्डाकार होकर आमकी गुठली के समान हो जाता है और इसके पीछे वह पिण्ड कठिन मांसग्रन्थि बनकर महीने भर में वजन (तौल) में सोलह तोले हो जाता है, इस लिये प्रथम महीने में स्त्रीको मधुर शीत वीर्य और नरम आहार का विशेष उपयोग करना चाहिये कि जिससे गर्भ की वृद्धि में कुछ विकार न हो।

२–दूसरे महीने में पूर्व महीने की अपेक्षा भी कुछ अधिक कठिन हो जाता है, इस लिये इस महीने में भी गर्भ की वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट न हो इस लिये ऊपर कहे हुए ही आहार का सेवन करना चाहिये।

३–तीसरे महीने में अन्य लोगोंको भी वह पिण्ड बड़ा हो जाने से गर्भाकृतिरूप मालूम

१–जैसा कि भगवद्गीता में भी लिखा है कि–नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावकः ॥ न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥ १-॥ अर्थात् इस जीवात्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकता है, न जल भिगो सकता है और न वायु इस का शोषण कर सकता है–तात्पर्य यह है कि–जीवात्मा नित्य और अविनाशी है ॥

पड़ने लगता है, इस मासमें ऊपर कहे हुए आहार के सिवाय दूधके साथ साठी चांवल खाना चाहिये ।

४–चौथे महीने में गर्भिणी का शरीर भारी पड़ जाता है, गर्भ स्थिर हो जाता है तथा उस के सब अंग क्रम २ से बढने लगते हैं, जब गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है तब गर्भिणी स्त्री के ये चिह्न होते हैं—अरुचि, शरीर का भारीपन, अन्न की इच्छा का न होना, कभी अच्छे वा बुरे पदार्थों की इच्छा का होना, स्तनों में दूध की उत्पत्ति, नेत्रों का शिथिल होना, ओठ और स्तनों के मुख का काला होना, पैरों में शोथ, मुख में पानी का आना आदि, तथा प्रायः इसी महीने में गर्भवती के पूर्व कहा हुआ दोहद उत्पन्न होने लगता है अर्थात् उस के कई प्रकार के इरादे पैदा होते हैं, मन को अच्छे लगनेवाले पदार्थों की इच्छा होती है, इस लिये उस समय में उस के अभीष्ट पदार्थ पूरे तौर से उसे देने चाहियें, क्योंकि ऐसा करने से बालक वीर्यवान् और बड़ी आयुवाला होता है, इस दोहद के विषय में यह स्वाभाविक नियम है कि-यदि पुण्यात्मा जीव गर्भ में आया हो तो गर्भिणी के अच्छे इरादे पैदा होते हैं तथा यदि पापी जीव गर्भ में आया हो तो उस के बुरे इरादे होते हैं, तात्पर्य यह है कि-गर्भिणी को जिन पदार्थों की इच्छा हो उन्हीं पदार्थों के गुणों से युक्त बालक होता है, यदि गर्भिणी की इच्छा के अनुसार उस को मन चाहे पदार्थ न दिये जावें तो बालक अनेक त्रुटियों से युक्त होता है, खराब और भयंकर वस्तु के देखने से बालक भी खराब लक्षणों से युक्त होता है, इस लिये यथा शक्य ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि गर्भिणी स्त्री के देखने में अच्छी २ वस्तुयें ही आवें तथा अच्छी २ वस्तुओं पर ही उस की इच्छा चले क्योंकि विकारवाले पदार्थ गर्भ को बहुत बाधा पहुंचाते है, इस लिये उन का त्याग करना चाहिये ।

५–पांचवें महीने में हाथ पांव और मुख आदि पांचों इन्द्रियां तैयार हो जाती हैं, मांस और रुधिर की भी विशेषता होती है, इस लिये गर्भवती का शरीर उस दशा में बहुत दुर्बल हो जाता है, अतः उस समय में स्त्री को घी और दूध के साथ अन्न देते रहना चाहिये ।

६–छठे महीने में पित्त और रक्त (लोहू) बनने का आरम्भ होता है तथा बालक के शरीर में बल और वर्ण का सञ्चार होता है, इस लिये गर्भवती के शरीर का बल और वर्ण कम हो जाता है, अतः उस समय में भी उस को घी और दूध का आहार ऊपर लिखे अनुसार देते रहना चाहिये ।

७–सातवें महीने में छोटी बड़ी नसें तथा साढे तीन कोटि (करोड़) रोम भी बनते हैं और बालक के सब अंग अच्छे प्रकार से मालूम पड़ने लगते हैं तथा उस का

शरीर पुष्ट हो जाता है परन्तु ऐसा होने से गर्भिणी दुर्बल होती जाती है, इस लिये इस समय में भी गर्भिणी को ऊपर लिखे अनुसार ही आहार देते रहना चाहिये।

८–आठवें महीने में बालक का सम्पूर्ण शरीर तैयार हो जाता है, ओज धातु स्थिर होता है, माता जो कुछ खाती पीती है उस आहार का रस गर्भ के साथ सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ी के द्वारा पहुंच कर गर्भ को ताक़त मिलती रहती है, अंधेरी कोठरी में पड़े हुए मनुष्य के समान प्रायः उस को तकलीफ ही उठानी पड़ती है, इस महीने में गर्भ के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उक्त नाड़ी के द्वारा माता तो गर्भ का और गर्भ माता का ओज वारंवार ग्रहण करता है अर्थात् परस्पर में ओज का सञ्चार होता है इसलिये गर्भिणी किसी समय तो हर्षयुक्त तथा किसी समय खेदयुक्त रहा करती है तथा ओज की स्थिरता न रहने के कारण इस मास में गर्भ स्त्री को बहुत ही पीड़ायुक्त करता है, इस लिये इस समय में गर्भवती को भात के साथ में घी तथा दूध मिला कर खाना चाहिये, किन्तु इस में (खुराक़ में) कमी चूकना नहीं चाहिये।

९ वा १०–नवें तथा दशवें महीने में गर्भाशय में स्थित बालक उदर (पेट) में ही ओज के सहित स्थिर होकर ठहरता है, इस लिये पुष्टि के लिये घी और दूध आदि उत्तम पदार्थ इन मासों में भी अवश्य खाने चाहियें, क्योंकि इस प्रकार के पौष्टिक आहारसे गर्भ की उत्तम रीति से वृद्धि होती है, इस प्रकार से वृद्धि पाकर तथा सब अंगोंसे युक्त होकर गर्भस्थ सन्तान पूर्व कृत कर्मानुकूल उदर में रहकर गर्भसे बाहर आता है अर्थात् उत्पन्न होता है ॥

गर्भ समय में त्याग करने योग्य विपरीत पदार्थ ॥

जो पदार्थ त्याग करने के योग्य तथा विपरीत है उनका सेवन करने से गर्भ उदर में ही नष्ट हो जाता है अथवा बहुत दिनों में उत्पन्न होता है, ऐसा होने से कभी २ गर्भिणी स्त्री के जीव की भी हानि हो जाती है, इसलिये गर्भिणी को हानि करनेवाले पदार्थ नहीं खाने चाहियें किन्तु जिन पदार्थों का ऊपर वर्णन कर चुके है उन्हीं पदार्थों को खाना चाहिये तथा गर्भवती स्त्री के विषय में जो बातें पहिले लिख चुके है उन का उस

१–क्योंकि गर्भिणी के ही रस आदि धातुओं से गर्भस्थ बालक पुष्टि को पाता है ॥

२–यह वही नाड़ी है जो कि माता की नाभि के नीचे बालककी नाडी से लगी रहती है, जिस को नाल भी कहते हैं तथा जो बालक के पैदा होने के पीछे उस की नाभि पर लगी रहती है ॥

३–इसी लिये आठवें महीने में उत्पन्न हुआ बालक प्रायः नहीं जीता है, क्योंकि ओज धातु के विना जीवन कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि जीवन का आधार ओज ही है–इस विषय का विशेष वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में देखो ॥

४–अर्थात् पूर्व किये हुए कर्मों का फल जबतक उदर में भोग्य है तबतक उस फल को उदर में भोग कर पीछे बाहर आता है (उदर में रहना भी तो कर्म के फलों का ही भोग है) ॥

को पूरा ध्यान रखना चाहियें, क्यों कि उन का पूरा २ ध्यान न रखने से न केवल गर्भ को किन्तु गर्भिणी को भी बहुत हानि पहुँचती है, यद्यपि संक्षेप से इस विषय में कुछ ऊपर लिखा जा चुका है तथापि ऊपर लिखी बातों के सिवाय गर्भवती को और भी बहुत सी आवश्यक बातों की सम्भाल पहिले ही से (गर्भ की प्रारंभिक दशा से ही) रखनी चाहिये, इस लिये यहां पर गर्भवती के लिये कुछ आवश्यक बातों की शिक्षा लिखते हैं:—

गर्भवती स्त्री के लिये आवश्यक शिक्षायें ॥

दर्द पैदा करने वाले कारण विना गर्भ दशा में जितना असर करते हैं उस की अपेक्षा गर्भ रहने के पीछे वे कारण गर्भवती स्त्री पर दश गुणा असर करते है, न केवल इतना ही किन्तु वे कारण गर्भवती स्त्री पर शीघ्र भी असर करते है, इस लिये गर्भवती स्त्री को अपनी तनदुरुस्ती कायम रखने में विशेष ध्यान रखना चाहिये, गर्भिणी को सुन्दर स्वच्छ हवा की बहुत ही आवश्यकता है इस लिये जिस प्रकार स्वच्छ हवा मिल सके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, अति संकीर्ण स्थान में न रह कर उस को स्वच्छ हवादार स्थान में रहना चाहिये, नित्य खुली हवा में थोड़ा २ फिरने का अभ्यास रखना चाहिये क्यों कि ऐसा करने से अंगों में भारीपन नहीं आता है किन्तु शरीर हलका रहता है और प्रसव समय में बालक भी सुख से पैदा हो जाता है, उस को घर में थोड़ा २ काम काज भी करना चाहिये किन्तु दिन भर आलस्य में ही नहीं विताना चाहिये क्योंकि आलस्य में पड़े रहने से प्रसव समय में बहुत वेदना होती है, परन्तु शक्ति से अधिक परिश्रम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि इस से भी हानि होती है, बहुत देर तक शरीर को बांका (टेढ़ा वा तिरछा) कर हो सकने वाले काम को नहीं करना चाहिये, शरीर को बांका कर भारी वस्तु नहीं उठानी चाहिये, जिस से पेट पर दबाव पड़े ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, बोझ को नही उठाना चाहिये, घर में पड़े रहने से, कुछ कसरत (परिश्रम) न करने से और स्वच्छ हवा का सेवन न करने से गर्भवती स्त्री के अनेक प्रकार का दर्द हो जाने का सम्भव होता है तथा कभी २ इन कारणों से रोगी तथा मरा हुआ भी बालक उत्पन्न होता है, इस लिये इन बातों से गर्भवती को बचना चाहिये तथा उस को खाने पीने की बहुत सम्भाल रखनी चाहिये, भारी और अजीर्ण करने वाली खुराक कभी नहीं खानी चाहिये, बहुत पेट भर कर मिष्टान्न (मिठाई) नहीं खाना चाहिये, बहुत से भोले लोग यह समझते है कि गर्भवती स्त्री के आहार का रस सन्तति को पुष्ट करता है इस लिये गर्भवती स्त्री को अपनी मात्रा से अधिक आहार करना चाहिये, सो यह उन लोगों का विचार अत्यन्त अमयुक्त है, क्योंकि सन्तान की भी पुष्टि नियमित आहार के ही रस से हो सकती है किन्तु मात्रा से अधिक आहार से

नहीं हो सकती है, हां यह वेशक ठीक है कि आहार में कुछ घृत तथा दुग्ध आदि का उपयोग अवश्य करना चाहिये कि जिस से गर्भ और गर्भिणी के दुर्बलता न होने पावे, परन्तु मात्रा से अधिक आहार तो भूल कर भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि मात्रा से अधिक किया हुआ आहार न केवल गर्भिणी को ही हानि पहुंचाता है किन्तु गर्भस्थ सन्तान को भी अनेक प्रकार की हानियां पहुंचाता है, इस के सिवाय अधिक आहार से गर्भस्थिति की प्रारम्भिक अवस्था में ही कभी २ स्त्री को ज्वर आने लगता है तथा वमन भी होने लगते हैं, यदि गर्भवती स्त्री गर्भावस्था में शरीर की अच्छी तरह से सम्भाल रक्खे तो उस को प्रसव समय में अधिक वेदना नहीं होती है, भारी पदार्थों का भोजन करने से अजीर्ण हो कर दस्त होने लगते हैं जिस से गर्भ को हानि पहुंचने की सम्भावना होती है, केवल इतना ही नहीं किन्तु असमय में प्रसूत होने का भी भय रहता है, गर्भवती को ठंढी खुराक भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि ठंढी खुराक से पेट में वायु उत्पन्न हो कर पीड़ा उठती है, तेलवाला तथा लाल मिर्चों से वघारा (छौंका) हुआ शाक भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि इस से खांसी हो जाती है और खांसी हो जाने से बहुत हानि पहुंचती है, अगर्भवती (विना गर्भवाली) स्त्री की अपेक्षा गर्भवती स्त्री को बीमार होने में देरी नहीं लगती है इस लिये जितने आहारका पाचन ठीक रीति से हो सके उतना ही आहार करना चाहिये, यद्यपि गर्भवती स्त्री को पौष्टिक (पुष्टि करनेवाली) खुराक की बहुत आवश्यकता है इस लिये उस को पौष्टिक खुराक लेनी चाहिये, परन्तु जिस से पेट अधिक तन जावे और वह ठीक रीति से न पच सके इतनी अधिक खुराक नहीं लेनी चाहिये, गर्भवती स्त्री के उपवास करने से स्त्री और बालक दोनों को हानि पहुंचती है अर्थात् गर्भ को पोषण न मिलने से उसका फिरना बंद हो जाता है तथा वह सुस्त पड़ जाता है तथा गर्भवती स्त्री जब आवश्यकता के अनुसार आहार किये हुए रहती है उस समय गर्भ जितना फिरता है उतना उपवास के दिन नहीं फिरता है क्यों कि वह पोषण के लिये बल मारता है (जोर लगाता है) तथा थोड़ी देरतक बल मारकर स्थिर हो जाता है, इस लिये गर्भवती स्त्री को उपवास नहीं करना चाहिये, खुराकमें अनियमित-पन भी नहीं करना चाहिये, दोहद होने पर भी मन को कावू में रखना चाहिये जो पदार्थ हानिकारक न हो वही खाना चाहिये किन्तु जो अपने मनमें आवे वही खा लेने से हानि होती है, गर्भिणी को सदा हलकी खुराक लेनी चाहिये किन्तु जिस स्त्री का शरीर जोरावर और पुष्कल (पूरा, काफी) रुधिर से युक्त हो उस को तो यथासंभव कांजी, दूध, घी और वनस्पति आदि के हलके आहार पर ही रहना चाहिये, गर्म खुराक, खट्टा पदार्थ, कच्चा मेवा, अति खारा, अति तीखा, रूखा, ठंढा, अति कड़ुआ, विगड़ा हुआ अर्थात् अधकच्चा अथवा जला हुआ, दुर्गन्धयुक्त, वातल (वादी करनेवाला) पदार्थ,

फफूंदीवाला, सड़ा हुआ, सुपारी, मिट्टी, धूल, राख और कोयला आदि पदार्थ बहुत विकार करते हैं इस लिये यदि इन के खाने को मन चले तथापि मन को समझा कर (रोक कर) इन को नहीं खाना चाहिये, गर्भवती को तीक्ष्ण (तेज) जुलाब भी नहीं लेना चाहिये, यदि कभी कुछ दर्द हो जावे तो किसी अज्ञ (अजान, मूर्ख) वैद्य की दवा नहीं लेनी चाहिये किन्तु किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर दर्द मिटने का उपाय करना चाहिये किन्तु दर्द को बढने नहीं देना चाहिये ।

गर्भवती को चाहिये कि–सर्दी और गीलेपन से शरीर को बचावे, जागरण न करे, जल्दी सोवे और सूर्योदयसे पहिले उठे, मनको दुःखित करनेवाले चिन्ता और उदासी आदि कारणों को दूर रक्खे, भयंकर स्वांग तथा चित्र आदि न देखे, अन्य गर्भिणी स्त्री के प्रसवसमय में उस के पास न जावे, अपनी प्रकृति को शान्त रक्खे, जो बातें नापसन्द हों उन को न करे, अच्छी २ बातों से मन को खुश रक्खे, धर्म और नीति की बातें सुन के मन को दृढ करे, यदि मन में साहस और उत्साह न हो तो उसमें साहस और उत्साह लावे (उत्पन्न करे), जिन बातों के सुनने से कलह अथवा भय उत्पन्न हो ऐसी बातें न सुने, नियमानुसार रहे, अलंकार का धारण करे, सावधानता से पति के प्रिय कार्यों में प्रेम रक्खे, अपने धर्म में प्रीति रक्खे, पवित्रता से रहे, मधुरता के साथ धीमे स्वर से बोले, परमेश्वर की भक्ति में चित्त रक्खे, मनोवृत्ति को धर्म तथा नीतिकी ओर लाने के लिये अच्छे २ पुस्तक बांचे, पुष्पों की माला पहरे, सुगन्धित तथा चन्दन आदि पदार्थोंका लेप करे, स्वच्छ घर में रहे, परोपकार और दान करे, सब जीवों पर दया रक्खे, सासु श्वशुर तथा गुरुजन आदि की मर्यादा को स्थिर रक्खे तथा उन की सेवा करे, कपाल (मस्तक) में कुंकुम (रोरी या सेंदुर) का टीका (बिन्दु) तथा आंखों में काजल आदि सौभाग्यदर्शक चिह्नों को धारण करे, कोमल और स्वच्छ वस्त्रसे आच्छादित बिस्तरपर सोवे तथा बैठे, अच्छी तथा गुणवाली वस्तुओं पर अपना भाव रक्खे, धार्मिक, नीतिमान्; पराक्रमी और बलिष्ठ आदि उत्तम गुणवान् स्त्री पुरुषों के चरित्र का मनन करे तथा ऐसा ही उत्तम गुणों से सम्पन्न और रूपवान् मेरे भी सन्तान हो ऐसी मन में भावना रक्खे, उत्तम चरित्रों से प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के, मनोहर पशु और पक्षियों के तथा उत्तम २ वृक्षों के सुन्दर और सुशोभित चित्रों आदि से अपने सोने तथा बैठने के कमरे को मन की प्रसन्नता के लिये सुशोभित रक्खे, सुन्दर और मनोरञ्जन (मन को खुश करनेवाले) गीत गाकर और सुन कर मन को सदा आनन्द में रक्खे, जिस से अनायास (अचानक) ही मन में उद्वेग अथवा अधिक हर्ष और शोक उत्पन्न हो जावे ऐसा कोई पदार्थ न देखे, न ऐसी बात सुने और न ऐसे किसी कार्य को करे, किसी बात पर पश्चात्ताप (पछतावा) न करे तथा पश्चात्ताप को पैदा करने वाले आचरण (वर्त्ताव, व्यवहार) को यथाशक्य

(जहांतक होसके) न करे, मलीन न रहे, विवाद (झगड़े) का त्याग करे, दुर्गन्धि से दूर रहे, लूले, लंगड़े, काने; कुबड़े; बहिरे और गूंगे आदि न्यूनांग का तथा रोगी आदि का स्पर्श न करे और उन को अच्छी तरह से चित लगाकर देखे, घर में निर्द्वन्द्व (कलह आदि से रहित वा एकान्त) स्थान में रहे, विशेष द्वंद्ववाले स्थान में न रहे, श्मशान का आश्रय; क्रोध; ऊंचा चढ़ना; गाड़ी घोड़ा आदि वाहन (सवारी) पर बैठना; ऊंचे स्वर से बोलना; वेगसे चलना; दौड़ना; कूदना; दिन में सोना; मैथुन; जल में डुबकी मारना (गोता लगाना); शून्य घर में तथा वृक्ष के नीचे बैठना; क्लेश करना; अंग मरोड़ना; लोहू निकालना; नख से पृथिवी को करोदना अथवा लकीरें करना; अमंगल और अपशब्द (बुरे वचन) बोलना; बहुत हँसना; खुले केश रहना; वैर, विरोध, द्वेष, छल, कपट, चोरी, जुआ, मिथ्यावाद, हिंसा और वैमनस्य, इन सब बातों का त्याग करे—क्योंकि—ये सब बातें गर्भिणी स्त्रीको और गर्भ को हानि पहुंचाती है ।

स्मरण रहना चाहिये कि अच्छे या बुरे सन्तान का होना केवल गर्भिणी स्त्री के व्यवहार पर ही निर्भर है इस लिये गर्भवती स्त्री को निरन्तर नियमानुसार ही वर्ताव करना चाहिये जो कि उस के लिये तथा उस के सन्तान के लिये श्रेयस्कर (कल्याणकारी) है ॥

यह तृतीय अध्यायका—गर्भाधान नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—बालरक्षण ॥

इस में कोई सन्देह नहीं है कि—सन्तान का उत्पन्न होना पूर्वकृत परम पुण्यका ही प्रताप है, जब पति और पत्नी अत्यन्त प्रीति के वशीभूत होते हैं तब उन के अन्तःकरण के तत्व की एक आनन्दमयी गांठ बँधती है, बस वही सन्तान है, वास्तव में सन्तान माता पिता के आनन्द और सुख का सागर है, उस में भी माता के प्रेम का तो एक दृढ़ बन्धन है. सन्तान ही सन्तोष और शान्ति का देनेवाला है, उसी के होने से गृह

१—क्योंकि बहुत से चेपी रोग होते हैं (जिनका वर्णन आगे करेंगे) अतः गर्भवती को किसी रोगी का भी स्पर्श नहीं करना चाहिये तथा रोगी और काने लूले आदि न्यूनाग को ध्यान पूर्वक देखना भी नहीं चाहिये क्यों कि इस का प्रभाव बालक पर बुरा पड़ता है ॥

२—मैथुन करने से गर्भस्थ बालक के निकल पड़ने का सम्भव होता है—इस के सिवाय मैथुन गर्भाधान के लिये किया जाता है जब कि गर्भ स्थित ही है तब मैथुन करने की क्या आवश्यकता है ॥

३—इन में से बहुत सी बातों की हानि तो पूर्व कह चुके है, शेष बातों के करने से उत्पन्न होनेवाली हानियों को बुद्धिमान् स्वय विचार लें अथवा ग्रन्थान्तरों में देख लें ॥

४—इसी लिये कहा गया है कि—"आत्मा वै जायते पुत्रः" इत्यादि ॥

संसार आनन्दमय लगता है, घर और कुटुम्ब शोभा को प्राप्त होता है, उसी से माता पिता के मुखपर सुख और आनन्द की आभा (रोशनी) झलकती है उसी की कोमल प्रभा से स्त्री पुरुष का जोड़ा रमणीक लगता है, तात्पर्य यह है कि-आरोग्यावस्था में तथा हर्ष के समय में बालक को दो घड़ी खिलाने तथा उस के साथ चित्त विनोद के आनन्द के समान इस संसार में दूसरा आनन्द नही है, परन्तु स्मरण रहना चाहिये कि-आरोग्य, सुशील, सुघड़ और उत्तम सन्तान का होना केवल माता पिता के आरोग्य और सदाचरण पर ही निर्भर है अर्थात् यदि माता पिता अच्छे; सुशील; सुघड़ और नीरोग होंगे तो उन के सन्तान भी प्रायः वैसे[3] ही होंगे, किन्तु यदि माता पिता अच्छे, सुशील, सुघड़ और नीरोग नहीं होंगे तो उन के सन्तान भी उक्त गुणों से युक्त नहीं होंगे।

यह भी बात स्मरण रखने के योग्य है कि—बालक के जीवन तथा उस की अरोगता के स्थिर होने का मूल (जड़) केवल बाल्यावस्था है अर्थात् यदि सन्तान की बाल्यावस्था नियमानुसार व्यतीत होगी तो वह सदा नीरोग रहेगा तथा उस का जीवन भी सुख से कटेगा, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि—सन्तान की बाल्यावस्था का मुख्य मूल और आधार केवल माता ही है, क्योंकि जो माता अपने बालक को अच्छी तरह संभाल के सन्मार्ग पर चलाती है उस का बालक नीरोग और सुखी रहता है तथा जो माता अपने सन्तान की बाल्यावस्था पर ठीक ध्यान न देकर उस की संभाल नहीं करती है और न उस को सन्मार्ग पर चलाती है उस का सन्तान सदा रोगी रहता है और उसको सुख की प्राप्ति नहीं होती है, सत्य तो यह है कि—बालक के जीवन और मरण का सब आधार तथा उस को अच्छे मार्ग पर चला कर बड़ा करना आदि सब कुछ माता पर ही निर्भर है, इसलिये माता को चाहिये कि—बालक को शारीरिक मानसिक और नीति के नियमों के अनुसार चला कर बड़ा करे अर्थात् उसका पालन करे।

परन्तु अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि—इस समय इस आर्यावर्त्त देश में उक्त नियमोंको भी मातायें बिलकुल नहीं जानती हैं और उक्त नियमों के न जानने से वे

१—क्योंकि नीतिशास्त्रों में लिखा है कि—"अपुत्रस्य गृह शून्यम्" अर्थात् पुत्ररहित पुरुष का घर शून्य है॥

२—माता पिता और पुत्र का सम्बन्ध वास्तव में सरस बीज और वृक्ष के समान है, जैसे जो घुन आदि जन्तुओं से न खाया हुआ तथा सरस बीज होता है तो उससे सुन्दर; सरस और फूला फला हुआ वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, इसी प्रकार से रोग आदि दूषणों से रहित तथा सदाचार आदि गुणों से युक्त माता पिता भी सुन्दर, बलिष्ठ; नीरोग और सदाचारवाले सन्तान को उत्पन्न कर सकते हैं॥

३—क्योंकि लिखा है कि—आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभि समन्वितौ ॥ स्त्रीपुसौ समुपेयाता तयो॰ पुत्रोऽपि तादृशः ॥ १ ॥ अर्थात् जिस प्रकार के आहार आचार और चेष्टाओं से युक्त माता पिता परस्पर सङ्गम करते हैं उन का पुत्र भी वैसा ही होता है ॥ १ ॥

४—इसी लिये पिता की अपेक्षा माता का दर्जा बड़ा माना गया है॥

नियम विरुद्ध मनमानी रीति पर चला कर बालक का पालन पोषण करती हैं, इसी का फल वर्त्तमान में यह देखा जाता है कि–सहस्रों बालक असमय में ही मृत्युके आधीन हो जाते हैं और जो बेचारे अपने पुण्य के योग से मृत्युके ग्रास से बचभी जाते हैं तो उन के शरीर के सब बन्धन निर्बल रहते हैं, उन की आकृति फीकी सुस्त और निस्तेज रहती है, उन में शारीरिक मानसिक और आत्मिक बल बिलकुल नहीं होता है।

देखो! यह स्वाभाविक (कुदरती) नियम है कि–संसार में अपना और दूसरों का जीवन सफल करने के लिये अच्छे प्राणी की आवश्यकता होती है, इसलिये यदि सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति करना हो तो सन्तान को अच्छा प्राणी बनाना चाहिये, परन्तु बड़े ही अफ़सोस की बात है कि–इस विषय में वर्त्तमान में अत्यन्त ही असावधानता (लापरवाही) देखी जाती है।

हम देखते हैं कि–घोड़ा और बैल आदि पशुओं के सन्तान को बलिष्ठ; चालाक; तेज़ और अच्छे लक्षणों से युक्त बनाने के लिये तो अनेक उपाय तन मन धन से किये जाते हैं; परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि इस संसार में जो मनुष्य जाति मुख्यतया सुख और सन्तोष की देनेवाली है तथा जिसके सुधरने से सम्पूर्ण देश के कल्याण की सम्भावना और आशा है उस के सुधार पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है।

पाठकगण इस विषय को अच्छे प्रकार से जान सकते हैं और इतिहासोंके द्वारा जानते भी होंगे कि–जिन देशों और जिन जातियों में सन्तान की बाल्यावस्था पर ठीक ध्यान दिया जाता है तथा नियमानुसार उसका पालन पोषण कर उसको सन्मार्ग पर चलाया जाता है उन देशों और उन जातियों में प्रायः सन्तान अधम दशा में न रह कर उच्च दशाको प्राप्त हो जाता है अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक आदि बलों से परिपूर्ण होता है, उदाहरण के लिये इंगलैंड आदि देशों को और अंग्रेज तथा पारसी आदि जातियों में देख सकते है कि उन की सन्तति प्रायः दुर्व्यसनों से रहित तथा सुशिक्षित होती है और बल बुद्धि आदि सब गुणों से युक्त होती है, क्योंकि–इन लोगों में प्रायः बहुत ही कम मूर्ख निर्गुणी और शारीरिक आदि बलों से हीन देखे जाते है, इसका कारण केवल यही है कि–उन की बाल्यावस्था पर पूरा ध्यान दिया जाता है अर्थात् नियमानुसार बाल्यावस्था में सन्तति का पालन पोषण होता है और उस को श्रेष्ठ शिक्षा आदि दी जाती है।

यद्यपि पूर्व समय में इस आर्यावर्त्त देशमें भी माता पिता का ध्यान सन्तान को बलिष्ठ और सुयोग्य बनाने का पूरे तौर से था इसलिये यहां की आर्यसन्तति सब देशों की अपेक्षा सब बलों और सब गुणों में उन्नत थी और इसी लिये पूर्वसमयमें इस पवित्र भूमि में अनेक भारतरत्न हो चुके हैं, जिन के नाम और गुणों का स्मरण कर ही हम सब अपने

को कृतार्थ मान रहे हैं तथा उन्हीं के गोत्र में उत्पन्न होने का हम सब अभिमान कर रहे हैं, परन्तु जबसे इस पवित्र आर्यभूमि में अविद्याने अपना घर बनाया तथा माता पिता का ध्यान अपनी सन्तति के पालन पोषण के नियमों से हीन हुआ अर्थात् माता पिता सन्तति के पालन पोषण आदि के नियमों से अनभिज्ञ हुए तब ही से आर्य जाति अत्यन्त अधोगति को पहुंचगई तथा इस पवित्र देश की वह दशा हो गई और हो रही है कि-जिसका वर्णन करने में अश्रुधारा बहने लगती है और लेखनी आगे बढना नहीं चाहती है, यद्यपि अब कुछ लोगों का ध्यान इस ओर हुआ है और होता जाता है-जिससे इस देश में भी कहीं २ कुछ सुधार हुआ है और होता जाता है, इस से कुछ सन्तोष होता है क्योंकि-इस आर्यावर्त्तान्तर्गत कई देशों और नगरों में इस का कुछ आन्दोलन हुआ है तथा सुधार के लिये भी यथाशक्य प्रयत्न किया जा रहा है, परन्तु हम को इस बात का बड़ा भारी शोक है कि-इस मारवाड़ देश में हमारे भाइयों का ध्यान अपनी सन्तति के सुधारका अभीतक तनिक भी नही उत्पन्न हुआ है और मारवाड़ी भाई अभीतक गहरीं नींद में पड़े सो रहे है, यद्यपि यह हम मुक्तकण्ठसे कह सकते है कि पूर्व समय में अन्य

१-हमने अपने परम पूज्य स्वर्गवासी गुरु जी महाराज श्री विशनचन्दजी मुनि के श्रीमुख से कई बार इस बात को सुना था कि-पूर्व समय में मारवाड देश मे भी लोगों का ध्यान सन्तान के सुधार की ओर पूरा था, गुरुजी महाराज कहा करते थे कि 'हम ने देखा है कि-मारवाड के अन्दर कुछ वर्ष पहिले धनाढ्य पुरुषों मे सन्तानों के पालन और उनकी शिक्षा का क्रम इस समय की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा था अर्थात् उन के यहा सन्तानो के अंगरक्षक प्रायः कुलीन और वृद्ध राजपुत्र रहते थे तथा सुशील गृहस्थों की स्त्रिया उन के घर के काम काज के लीये नौकर रहती थीं, उन धनाढ्य पुरुषो की स्त्रियां नित्य धर्मोपदेश सुना करती थीं, उन के यहां जब सन्तति होती थी तब उस का पालन अच्छे प्रकार से नियमानुसार स्त्रियां करती थीं तथा उन बालको को उक्त कुलीन राजपुत्र ही खिलाते थे, क्योकि 'विनयो राजपुत्रेभ्यः', यह नीति का वाक्य है-अर्थात् राजपुत्रो से विनय का ग्रहण करना चाहिये, इस कथन के अनुकूल व्यवहार करने से ही उन की कुलीनता सिद्ध होती है अर्थात् बालकों को विनय और नमस्कारादि वे राजपुत्र ही सिखलाया करते थे; तथा जब बालक पांच वर्षका होता था तब उस को यति वा अन्य किसी पण्डित के पास विद्याभ्यास करने के लिये भेजना शुरू करते थे, क्योंकि यति वा पण्डितो ने बालको को पढाने की तथा सदाचार सिखलाने की रीति सक्षेप से अच्छी नियमित कर (बांध) रक्खी थी अर्थात् पहाड़ों से लेकर सब हिसाब किताब सामायिक प्रतिक्रमण आदि धर्मकृत्य और व्याकरण विषयक प्रथमसन्धि (जो कि इसी ग्रन्थ में हमने शुद्ध लिखी है) और चाणक्य नीति आदि आवश्यक ग्रन्थ वे बालको को अर्थ सहित अच्छे प्रकार से सिखला दिया करते थे, तथा उक्त ग्रन्थों का ठीक बोध हो जाने से वे गृहस्थों के सन्तान हिसाब में; धर्मकृत्य में और नीति ज्ञान आदि विषयों में पक्के हो जाते थे, यह तो सर्वसाधारण के लिये उन विद्वानों ने क्रम बांध रक्खाथा किन्तु जिस बालक की बुद्धि को वे (विद्वान्) अच्छी देखते थे तथा बालक के माता पिता की इच्छा विशेष पढाने के लिये होती थी तो वे (विद्वान्) उस बालक को तो सर्व विषयो में पूरी शिक्षा देकर पूर्ण विद्वान् कर देते थे, इत्यादि, पाठक गण ! विचार की जिये कि-इस मारवाड देश में पूर्व काल मे साधारण शिक्षा का कैसा अच्छा क्रम बँधा हुआ था, और केवल यही कारण है कि उक्त शिक्षाक्रम के प्रभाव से पूर्वकाल में इस मारवाड़ देश मे भी अच्छे २ नामी और धर्मात्मा

पुरुष हो गये हैं, जिन में से कुछ सज्जनों के नाम यहां पर लिखे विना लेखनी आगे नहीं बढ़ती है-इस लिये कुछ नामों का निदर्शन करना ही पड़ता है, देखिये-पूर्वकाल में लखनऊनिवासी लाला गिरधारीलालजी, तथा मकसूदाबादनिवासी ईश्वरदासजी और राय बहादुर मेघराजजी कोठारी बड़े नामी पुरुष हुए हैं और इन तीनों महोदयों का तो अभी थोड़े दिन पहले स्वर्गवास हुआ है, इन सज्जनों में एक बड़ी भारी विशेषता यह थी कि इन को जैन सिद्धान्त गुरुगम शैली से पूर्णतया अभ्यस्त था जो कि इस समय जैन गृहस्थों में तो क्या किन्तु उपदेशकों मे भी दो ही चार में देखा जाता है, इसी प्रकार मारवाड़ देशस्थ देशनोक के निवासी-सेठ श्री मगन मलजी श्रावक भी परमकीर्तिमान् तथा धर्मात्मा हो गये हैं। किन्तु यह तो हम बड़े हर्ष के साथ लिख सकते हैं कि-हमारे जैन मतानुयायी अनेक स्थानों के रहनेवाले अनेक सुजन तो उत्तम शिक्षाको प्राप्तकर सदाचार मे स्थित रहकर अपने नाम और कीर्ति को अचल कर गये हैं जैसे कि-रायपुर में गम्भीर मल जी डागा, नागपुर में हीरालाल जी जौंहरी, राजनांद ग्राम में आसकरणजी राज्यदीवान आदि अनेक श्रावक कुछ दिन पहिले विद्यमान थे तथा कुछ सुजन अब भी अनेक स्थानों में विद्यमान हैं परन्तु ग्रंथ के बढ़ जाने के भय से उन महोदयों के नाम अधिक नहीं लिख सकते हैं, इन महोदयों ने जो कुछ नाम; कीर्ति और यश पाया वह सब इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही प्रताप समझना चाहिये, देखिये वर्तमान में जैनसंघ के अन्दर-जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के जन्मदाता श्रीयुत गुलावचन्दजी ढड्ढा एम. ए. आदि तथा अन्य मत मे भी इस समय पारसी दादाभाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, बाबु सुरेंद्रनाथ, गोखले और मदनमोहन जी मालवी आदि कई सुजन कैसे २ विद्वान् परोपकारी और देशहितैषी पुरुष हैं-जिन को तमाम आर्यावर्त्तनिवासी जन भी मिल कर यदि करोड़ों धन्यवाद दें तो भी थोड़ा है, ये सब महोदय ऐसे परम सुयोग्य कैसे हो गये, इस प्रश्न का उत्तर केवल यही है कि-इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही वह प्रताप है कि-जिस से ये सुयोग्य और परम कीर्तिमान् हो गये हैं, इन महोदयों ने कई वार अपने भाषणों में भी उक्त विषय का कथन किया है कि-सन्तान की बाल्यावस्था पर माता पिता को पूरा २ ध्यान देना चाहिये अर्थात् नियमानुसार बालक का पालन पोषण करना चाहिये तथा उस को उत्तम शिक्षा देनी चाहिये इत्यादि, जो लोग अखबारों को पढते हैं उन को यह बात अच्छे प्रकार से विदित है, परन्तु बड़े शोक का विषय तो यह है कि बहुत से लोग ऐसे शिक्षाहीन और प्रमादयुक्त हैं कि-वे अखबारो को भी नहीं पढते हैं जब यह दशा है तो भला उन को सत्पुरुषो के भाषणों का विषय कैसे ज्ञात होसकता है? वास्तव मे ऐसे लोगों को मनुष्य नहीं किन्तु पशुवत् समझना चाहिये कि जो ऐसे २ देशहितैषी महोदयों के सदाचार और योग्यता को तो क्या किन्तु उन के नाम से भी अनभिज्ञ हैं! कहिये इस से बढकर और अन्धेर क्या हो गा ? इस समय जब हम दृष्टि उठा कर अन्य देशों की तरफ देखते हैं तो ज्ञात होता है कि-अन्य देशों में कुछ न कुछ बालकों की रक्षा और शिक्षा के लिये आन्दोलन हो कर यथाशक्ति उपाय किया जारहा है परन्तु मारवाड़ देश में तो इस का नाम तक नहीं सुनाई देता है, ऊपर जो प्रणाली (पूर्वकाल की मारवाड़ देश की) लिख चुके हैं कि-पूर्व काल मे इस प्रकार से बालकों की रक्षा और शिक्षा की जाती थी-वह अब मारवाड़ देश में बिलकुल ही बदल गई, बालकों की रक्षा और शिक्षा तो दूर रही, मारवाड़ देश में तो यह दशा हो रही है कि-जब बालक चार पांच वर्ष का होता है, तब माता अति लाड और प्रेम से अपने पुत्र से कहती है कि, "अरे बनिया! थारे बींदणी गोरी लावां के काली" (अरे बनिये! तेरे वास्ते गोरी दुलहिन लावें या काली लावें) इत्यादि, इसी प्रकार से बाप आदि बड़े लोगों को गाली देना मारना और बाल नोचना आदि अनेक कुत्सित शिक्षा ये बालकों को दी जाती हैं तथा कुछ बड़े होने पर कुसंग दोष के कारण उन्हे ऐसी पुस्तकों के पढ़ने का अवसर दिया जाता है कि, जिन

देशों के समान इस देश में भी अपनी सन्तति की ओर पूरा २ ध्यान दिया जाता था, इसी लिये यहां भी पूर्वसमय में बहुत से नामी पुरुष हो गये हैं, परन्तु वर्त्तमान में तो इस देश की दशा उक्त विषय में अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि—अन्य देशों में तो कुछ न कुछ

के पढने से उन की मनोवृत्ति अत्यन्त चञ्चल; रसिक और विषयविकारों से युक्त हो जाती है, फिर देखिये! कि, द्रव्य पात्रों के घरो में नौकर चाकर आदि प्रायः शुद्र जाति के तथा कुव्यसनी (बुरी आदतवाले) रहा करते हैं—वे लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये वालको को उसी रास्ते पर डालते हैं कि, जिस से उनकी स्वार्थसिद्धि होती है, वालकों को विनय आदि की शिक्षा तो दूर रही किन्तु इस के वदले वे लोग भी मामा चाचा और हरेक पुरुष को गाली देना सिखलाते हैं और उन वालकों के माता पिता ऐसे भोले होते हैं कि, वे इन्हीं वातों से वडे प्रसन्न होते हैं और उन्हें प्रसन्न होना ही चाहिये, जव कि वे स्वय शिक्षा और सदाचार से हीन हैं, इस प्रकार से कुसंगति के कारण वे वालक विलकुल विगड जाते हैं उन (वालको) को विद्वान्; सदाचारी; धर्मात्मा और सुयोग्य पुरुषों के पास वैठना भी नहीं सुहाना है, किन्तु उन्हें तो नाचरंग, उत्तम शरीर शृगार; वेश्या आदि का नृत्य, उस की तीखी चितवन; भांग आदि नशोका पीना; नाटक व स्वाग आदि का देखना; उपहास; ठट्ठा और गाली आदि कुत्सित शब्दों का मुख से निकालना और सुनना आदि ही अच्छा लगता है, दुष्ट नौकरो के सहवास से उन वालकों में ऐसी २ वुरी आदतें पड जाती है कि—जिन के लिखने मे लेखनी को भी लज्जा आती है, यह तो विनय और सदाचार की दशा है. अव उन की शिक्षा के प्रवध को सुनिये—इन का पढना केवल सौ पहाडे और हिसाव किताव मात्र है, सो भी अन्य लोग पढाते है, माता पिता वह भी नहीं पढा सकते है, अव पढानेवालो की दशा सुनिये कि—पढानेवाले भी उक्त हिसाव किताव और पहाडों के सिवाय कुछ भी नहीं जानते है, उन को यह भी नहीं मालुम है कि—व्याकरण, नीति और धर्मशास्त्र आदि किस चिडिया का नाम है, अव जो व्याकरणाचार्य कहलाते हैं जरा उन की भी दशा सुन लीजिये—उन्हों ने तो व्याकरण की जो रेड मारी है—उसके विषय मे तो लिखते हुए लज्जा आती है—प्रथम तो वे पाणिनीय आदि व्याकरणों का नाम तक नहीं जानते हैं, केवल 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः,' की प्रथम सन्धिमात्र पढते है, परन्तु वह भी महाशुद्ध जानते और सिखाते है (वे जो प्रथम सन्धिको अशुद्ध जानते और सिखाते हैं वह इसी ग्रन्थके प्रथमाध्याय मे लिखी गई है वहा देखकर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष समझ सकते हैं कि—प्रथम सन्धि को उन्हों ने कैसा विगाड रक्खा है) उन पढानेवालों ने अपने स्वार्थ के लिये (कि हमारी पोल न खुल जावे) भोले प्राणियो को इस प्रकार वहका (भरमा) दिया है कि वालकों को चाणक्य नीति आदि ग्रन्थ नहीं पढाने चाहियें क्योंकि—इनके पढते से वालक पागल हो जाता है, वस यही वात सव के दिलों में घुस गई, कहिये पाठकगण! जहां विद्या के पढने से वालकों का पागल हो जाना समझते हैं उस देश के लिये हम क्या कहें? किसी कविने सत्य कहा है कि—"अविद्या सर्व प्रकार की घट घट माहिं अडी। को काको समुझावही कूपहिं भाग पडी" ॥ १ ॥ अर्थात् सव प्रकार की अविद्या जव प्रत्येक पुरुष के दिल मे घुस रही है तो कौन किस को समझा सकता है क्योंकि घट २ में अविद्या का घुस जाना तो कुए में पडी हुई भाग के समान है, (जिसे पीकर मानो सव ही वावले वन रहे हैं), अन्त मे अव हमें यही कहना है कि—यदि मारवाडी भाई ऐसे प्रकाश के समय मे भी शीघ्र नहीं जागेंगे तो कालान्तर मे इस का परिणाम वहुत ही भयानक हो गा, इस लिये मारवाडी भाइयो को अव भी सोते नहीं रहना चाहिये किन्तु शीघ्र ही उठ कर अपने को और अपने हृदय के टुकडे प्यारे वालकों को सॅभालना चाहिये—क्योकि यही उन के लिये श्रेयस्कर है ॥

सुधार के उपाय सोचे और किये भी जा रहे हैं, परन्तु मारवाड़ तो इस समय में ऐसा हो रहा है कि मानों नशा पीकर गाफिल होकर घोर निद्रा के वशीभूत हो रहा हो, इस लिये वर्त्तमान में तो इस मारवाड़ देशकी सन्तति का सुधार होना अति कठिन प्रतीत होता है, भविष्यत् के लिये तो सर्वज्ञ जान सकता है कि क्या होगा, अस्तु।

प्रिय पाठकगण ! वर्तमान में स्त्रियों में शिक्षा न होने से अत्यन्त हानि हो रही है अर्थात् गृहस्थसुख का नाश हो रहा है विद्या और धर्म आदि सद्गुणों का प्रचार रुक जाने से देशकी दशा बिगड़ रही है तथा नियमानुसार बालकों का पालन पोषण और शिक्षा न होने से भविष्यत् में और भी बिगाड़ तथा हानि की पूरी सम्भावना हो रही है, इस लिये आप लोगों का यह परम कर्तव्य है कि इस भयंकर हानि से बचने का पूरा प्रयत्न करें, जो अबतक हानि हो चुकी है उस के लिये तो कुछ भी प्रयत्न नहीं हो सकता है—इस लिये उस के लिये तो शोक करना भी व्यर्थ है, हां भविष्यत् में जो हानि की संभावना है उस हानि के लिये हम सब को प्रयत्न करना अति आवश्यक है और उस के लिये यदि आप सब चाहें तो प्रयत्न भी हो सकता है और वह प्रयत्न केवल यही है कि—हम सब अपनी स्त्रियों बहिनों और पुत्रियो को वह शिक्षा देवें कि जिस से वे सन्तान रक्षाके नियमों को ठीक रीति से समझ जावें, क्योंकि जब स्त्रियों को सन्तानरक्षा के नियमों का ज्ञान ठीक रीति से हो जावेगा और वे बालकों की उन्ही नियमों के अनुसार रक्षा और शिक्षा करेंगी तब अवश्य बालक नीरोग; सुखी; चतुर; बलिष्ठ; कदावर (बड़े कद के;) तेजस्वी; पराक्रमी; शूर वीर और दीर्घायु होंगे और ऐसे सन्तानों के होने से शीघ्रही कुटुम्ब; कुल; ग्राम और देशका उद्धार होकर कल्याण हो सकेगा इसमें कुछ भी सन्देह नही है।

सन्तानरक्षा के नियम यद्यपि अनेक वैद्यक आदि ग्रन्थों में बतलाये गये हैं—जिन्हें बहुत से सज्जन जानते भी होंगे तथापि प्रसंगवश हम यहां पर सन्तानरक्षा के कुछ सामान्य नियमों का वर्णन करना आवश्यक समझते है—उनमें से गर्भदशासम्बन्धी कुछ नियमों का तो संक्षेप से वर्णन पूर्व कर चुके है-अब सन्तान के उत्पत्ति समय से लेकर कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन स्त्रियों के ज्ञान के लिये किया जाता है:—

१—नाल—गर्भस्थान में बालक का पोषण नाल से ही होता है, जब बालक उत्पन्न होता है तब उस नालका एक सिरा (छोर वा किनारा) भीतर ओरतक लगा हुआ होता है इस लिये नाल को नाभिसे ढाई वा तीन इञ्च के अनन्तर (फासले) पर चारों तरफ से मुलायम कपड़े या रुई से लपेट कर एक मज़बूत डोरीसे कसकर बांध लेना चाहिये फिर ओर तरफ का नाल का सिरा काट देना चाहिये, अब जो ढाई वा तीन इञ्चका

नालका टुकड़ा शेष रहा उस को पेट पर रखकर उस पर मुलायम कपड़े की एक पट्टी बांध लेना चाहिये-क्योंकि मुलायम कपड़े की पट्टी बांधं लेने से नाल की ठीक रक्षा (हिफ़ाज़त) रहती है और वह पट्टी पेटपर रहती है इस लिये पेट में वायु भी नहीं बढ़ने पाता है तथा पेट को उस पट्टी से सहारा भी मिलता है, नाल के चारों तरफ कपड़ा लपेट कर जो डोरी बांधी जाती है उस का प्रयोजन यह है कि-बालक के शरीर में जो रुधिर घूमता है वह नालके द्वारा बाहर नहीं निकलने पाता है, क्योंकि डोरी बांधदेनेसे उस का बाहर निकलने से अवरोध (रुकावट) हो जाता है-क्योंकि रुधिर जो है वही बालक का प्राणरूप है, यदि वह (रुधिर) बाहर निकल जावे तो बालक शीघ्र ही मर जावे, यदि कभी धोखे से नाल ढीला बंधा रह जावे और रुधिर कुछ बाहर निकलता हुआ मालूम होवे तो शीघ्र ही युक्ति से मुलायम हाथ से उस डोरी को कसकर बांध देना चाहिये, यदि नाल पर चोट लगने से कदाचित् रुधिर निकलता होवे तो उस के ऊपर कत्थे का बारीक चूर्ण अथवा चने का आटा बुरका देना चाहिये अथवा रुधिर निकलने के स्थान पर मकड़ी का जाला दाब देने से भी रुधिर का निकलना बंद हो जाता है।

बहुत से लोग नाल को बांध कर उस की डोरी को बालक के गले में रक्खा करते हैं परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है- क्योंकि-ऐसा करने से कभी २ उस में बालक का हाथ इधर उधर होने में फँस जाता है तो उस को बहुत ही पीड़ा हो जाती है, उस का हाथ पक जाता है वा गिर पड़ता है और उस से कभी २ बालक मर भी जाता है, इस लिये गले में डोरी नहीं रखनी चाहिये किन्तु पेट पर नाल को पट्टी से ही बांधना उत्तम होता है।

नाल अपने आप ही पांच सात दिन में अथवा पांच सात दिन के बाद दो तीन दिन में ही गिर पड़ता है इसलिये उस को खींच कर नहीं निकालना चाहिये, जबतक वह नाल अपने आप ही न गिर पड़े तबतक उस को वैसा ही रहने देना चाहिये, यदि नाल कदाचित् पक जावे तो उस पर कलई (सफेदा) लगा देना चाहिये, यदि नालपर शोथ (सूजन) होवे तो अफीम को तेल में घिसकर उसपर लगा देना चाहिये तथा उसपर अफीम के डोड़े का सेक भी करना चाहिये ॥

२-**स्नान**-ऊपर कही हुई रीति के अनुसार नाल का छेदन करने के पश्चात् यदि ठंढ हो तो बालक को फलालेन बनात अथवा कम्बल आदि गर्म कपड़ेपर सुलाना चाहिये और यदि ठंढ न हो तो चारपाई पर कोई हलका मुलायम वस्त्र बिछाकर उसपर बालक को सुलाना चाहिये, इस कार्य के करने के पीछे प्रथम बालक की माता की उचित

हिफ़ाज़त करनी चाहिये, इस के पीछे बालक के शरीरपर यदि श्वेत चरबी के समान चिकना पदार्थ लगा हुआ होवे अथवा अन्य कुछ लगा हुआ होवे तो उस को साफ करने के लिये प्रथम बालक के शरीरपर तेल मसलना चाहिये तत्पश्चात् साबुन लगाकर गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से मुलायम हाथ से बालक को स्नान कराके साफ करना चाहिये, परन्तु स्नान कराते समय इस बात का पूरा खयाल रखना चाहिये कि उस की आंख में तेल साबुन वा पानी न चला जावे, प्रसूति के समय में पास रहने वाली कोई चतुर स्त्री बालक को स्नान करावे और इस के पीछे प्रतिदिन बालक की माता उस को स्नान करावे ।

स्नान कराने के लिये *प्रातःकालका समय उत्तम है*– इस लिये *यथाशक्य प्रातःकाल* में ही स्नान करना चाहिये, स्नान कराने से पहिले बालक के थोड़ासा तेल लगाना चाहिये, पीछे मस्तकपर थोड़ासा पानी डाल कर मस्तक को भिगोकर उस को धोना चाहिये तत्पश्चात् शरीरपर साबुन लगा कर कमरतक पानी में उस को खड़ा करना वा बिठलाना चाहिये अथवा लोटे से पानी डालकर मुलायम हाथ से उस के तमाम शरीर को धीरे २ मसलकर धोना चाहिये, स्नान के लिये पानी उतना ही गर्म लेना चाहिये कि जितनी बालक के शरीर में गर्मी हो ताकि वह उस का सहन कर सके, स्नान के लिये पानी को अधिक गर्म नही करना चाहिये और न अधिक गर्म कर के उस में ठंढा पानी मिलाना चाहिये किन्तु जितने गर्म पानी की आवश्यकता हो उतना ही गर्म कर के पहिले से ही रख लेना चाहिये और इसी प्रकार से स्नान कराने के लिये सदा करना चाहिये, स्नान कराने में इन बातों का भी खयाल रहना चाहिये कि– शरीर की सन्धिओं आदि में कहीं भी मैल न रहने पावे ।

माथे पर पानी की धारा डालने से मस्तक ठंढा रहता है तथा बुद्धि की वृद्धि होकर प्रकृति अच्छी रहती है, प्रायः मस्तक पर गर्म पानी नहीं डालना चाहिये क्योंकि मस्तक पर गर्म पानी डालने से नेत्रों को हानि पहुँचती है, इस लिये मस्तक पर तो ठंढा पानी ही डालना उत्तम है, हां यदि ठंढा पानी न सुहावे तो थोड़ा गर्म पानी डालना चाहिये, छोटे बालक को स्नान कराने में पांच मिनट का और बड़े बालक को स्नान कराने में दश १मिनट का समय लगाना चाहिये, स्नान कराने के पीछे बालक का शरीर बहुत समय तक ?गा हुआ नहीं रखना चाहिये किन्तु स्नान कराने के बाद शीघ्र ही मुलायम हाथ से ?ी स्वच्छ वस्त्र से शरीर को शुष्क (सूखा) कर देना चाहिये, शुष्क करते समय से ? की त्वचा (चमड़ी) न घिस (रगड) जावे इस का ख्याल रखना चाहिये, शुष्क फिर ? पीछे भी शरीर को खुला (उघाड़ा) नहीं रखना चाहिये किन्तु शीघ्र ही बालक

को कोई स्वच्छ वस्त्र पहना देना चाहिये क्योंकि शरीर को खुला रखने से तथा वस्त्र पहनाने में देर करने से कभी २ सर्दी लग कर खांसी आदि व्याधिके हो जाने का सम्भव होता है, बालक का शरीर नाजुक और कोमल होता है इस लिये दूसरे मास में पानी में दो मुट्ठी नमक डाल कर उस को स्नान कराना चाहिये ऐसा करने से बालक का बल बढेगा, बालक को पवन वाले स्थान में स्नान नहीं कराना चाहिये किन्तु घर में जहां पवन न हो वहां स्नान कराना चाहिये. पुत्र[1] के मस्तक के बाल प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के बाल सात आठ दिन में एक बार धोना चाहिये, बालक को स्नान कराते समय उलटा सुलटा नहीं रखना चाहिये, जब बालक की अवस्था तीन चार वर्ष की हो जावे तब तो ठंढे पानी से ही स्नान कराना लाभदायक है, जाड़े में, शरीर में व्याधि होने पर तथा ठंढा पानी अनुकूल न आने पर तो कुछ गर्म पानी से ही स्नान कराना ठीक है, यद्यपि शरीर गर्म पानी से अधिक स्वच्छ हो जाता है परन्तु गर्म पानी से स्नान कराने से शरीर में स्फुरणा और गर्मी शीघ्र नहीं आती है तथा गर्म पानी से शरीर भी ढीला हो जाता है, किन्तु ठंढे पानी से तो स्नान कराने से शरीर में शीघ्र ही स्फुरणा और गर्मी आ जाती है; शक्ति बढती है और शरीर दृढ़ (मजबूत) भी होता है, बालक को बालपन में स्नान कराने का अभ्यास रखने से बड़े होने पर भी उस की वही आदत पड़ जाती है और उस से शरीरस्थ अनेक प्रकार के रोग निवृत्त हो जाते हैं तथा शरीर अरोग होकर मज़बूत हो जाता है ॥

२–**वस्त्र**–बालक को तीनों ऋतुओं के अनुसार यथोचित वस्त्र पहनाना चाहिये, शीत और वर्षा ऋतु में फलालेन और ऊन आदि के कपड़ों का पहनाना लाभ कारक है तथा गर्मी में सूतके कपड़े पहनाने चाहियें, यदि बालक को ऋतुके अनुसार कपड़े न पहनाये जावें तो उस की तन दुरुस्ती बिगड़ जाती है, बालकको तंग कपड़े पहनाने से शरीर में रुधिर की गति रुक जाती है और रुधिर की गति रुकने से शरीर में रोग होजाता है तथा तंग कपड़े पहनाने से शरीर के अवयवों का बढ़नाभी रुक जाता है इसलिये बालक को ढीले कपड़े पहनाने चाहियें, कपड़े पहनाने में इस बातकाभी खयाल रखना चाहिये कि बालकके सब अंग ढके रहें और किसी अङ्ग में सर्दी वा गर्मी का प्रवेश न हो सके, यदि कपड़े अच्छे और पूरे (काफी) न हों अथवा फटे

१–पुत्र के मस्तक के बाल प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के बाल सात आठ दिन में धोने का तात्पर्य है कि–बाल्यावस्था से जैसी बालक की आदत डाली जाती है वही बडे होते पर भी रहती है, अतः यदि पुत्री के बाल प्रतिदिन धोये जावे तो बडे होने पर भी उस की वही आदत रहे सो यह (प्रतिदिन बालो का धोना) स्त्रियों की निभ नहीं सकती है क्योंकि धोने के पश्चात् बालों का गूथना आदि भी अनेक झगड़े स्त्रियों को करने पडते हैं और प्रतिदिन यह काम करें तो आधा दिन इसी मे बीत जाय–किन्तु पुत्र का तो बड़े होनेपर भी यह कार्य प्रतिदिन निभ सकता है ॥

हुए हों तो कुछ वस्त्रों को जोड़ कर ही तथा धोकर और स्वच्छ करके पहनाने चाहियें परन्तु मलीन वस्त्र कभी नहीं पहनाने चाहियें क्योंकि वालक के शरीर तथा उस के कपड़े की स्वच्छताद्वारा प्रत्येक पुरुष अनुमान कर सकेगा कि इस (वालक) की माता चतुर और सुघड़ है–किन्तु इस से विपरीत होने से तो सव ही यह अनुमान करेंगे कि–वालककी माता फूहड़ होगी, अन्य देशोंकी स्त्रियों की अपेक्षा दक्षिण की स्त्रियां सुघड़ और चतुर होती हैं और यह वात उन के वालकोंकी स्वच्छता के द्वारा ही जानी तथा देखी जा सकती है।

वालक को प्रायः वाहर हवा में भी घुमाने के लिये ले जाना चाहिये परन्तु उस समय फलालेन आदि के गर्म कपड़े पहनाये रखने चाहियें क्योंकि फलालेन आदि का वस्त्र पहनाये रखने से वाहर की ठंढी हवा लगने से सर्दी नहीं व्यापती है तथा उस समय में उक्त वस्त्र पहनाये रखने से भीतरी गर्मी वाहर नहीं निकलने पाती है और न वाहर की सर्दी भीतर जा सकती है, वालक को सर्दी के दिनों में कानटोपी और पैरों में मोजे पहनाये रखने चाहियें, यदि मोजे न हों तो पैरों पर कपड़ा ही लपेट देना चाहिये, कानटोपी भी यदि ऊनकी हो तो वहुत ही लाभदायक होती है, मल मूत्र और लार से भीगे हुए कपड़े को शीघ्रही वदल कर दूसरा स्वच्छ वस्त्र पहना देना चाहिये क्योंकि, ऐसा न करने से सर्दी होकर कफ होजाता है, शीत तथा वर्षा ऋतु में हवा में वाहर घुमाने के लिये ले जावें तो आंख और मुंहके सिवाय सव शरीर को शाल या किसी गर्म कपड़े से ढक कर ले जाना चाहिये, लार गिरती हो तो उस जगह पर रूमाल वा कोई कपड़ा रखना चाहिये, वालक के पैर; सीना (छाती) और पेट को सदा गर्म रखना चाहिये किन्तु इन अंगोंको ठंढे नहीं होने देना चाहिये, वस ऊपर लिखी रीति के अनुसार वालक को खूव हिफाजत के साथ कपड़े पहनाने चाहियें क्योंकि ऐसा न करने से वहुत हानि होती है, वालक को इतने अधिक वस्त्र भी नहीं पहनाने चाहियें कि जिन से वह पसीना युक्त होकर घवड़ा जावे, इसी प्रकार गर्मी में भी वहुत कपड़े नहीं पहनाने चाहियें कि जिस से वारंवार पसीना निकलता रहे क्योंकि वहुत पसीना निकलने से शरीर वलहीन हो जाता है, इस लिये गर्मी में वारीक वस्त्र पहनाने चाहिये, वालक की त्वचा वहुत ही नाजुक और मुलायम होती है इस लिये उस को कपड़ेभी वहुत मुलायम और ढीले पहनाने चाहियें, हरे रंग में सोमल का विष होता है इस लिये हरे वस्त्र नहीं पहनानें चाहियें क्योंकि वालक उस को मुंह में डाल ले तो हानि हो जाती है, इसी प्रकार वह रंग त्वचासे लगने से भी हानि पहुँचती है, यथाशक्य (जहां तक हो सके) भभका और टाप टीप पर मोहित न हो कर वालक को सुखकारी कपड़े पहनाने चाहियें, वालकों को शीत ऋतु में खुला (उघाड़ा) नहीं रखना चाहिये और न वारीक वस्त्र पहना कर अथवा आधे खुले शरीर से खुले

मैदान में बाहर जाने देना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से शीत लग जाने से बालक कद में छोटे और जुस्सा रहित हो जाते हैं इसी प्रकार गर्मी में खुले शरीर से मैदान में घूमने से काले हो जाते है, उन को लू लग जाती है और बीमार हो जाते है, एवं वर्षा ऋतु में भी खुले फिरने से श्याम हो जाते हैं और सर्दी आदि भी लग जाती है तथा ऐसे वर्ताव से अनेक प्रकार के रोगों का उन्हें शरण लेना पड़ता है, शीत गर्मी और वर्षा ऋतु में बालकों को खुले (उघाड़े) घूमने देने से शरीर से मजबूत होने की आशा नष्ट हो जाती है क्योंकि ऐसा होने से उनके अवयवों में अनेक प्रकारकी त्रुटि हो जाती है और वे प्रायः रोगी हो जाते है, बालकों के शरीर पर सूर्य का कुछ तेज पड़ता रहे ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, घर में उन को प्रायः गोद ही में नहीं रखना चाहिये, शरीर में उष्णता रखने के लिये पूरे कपड़ों का पहनाना मानो उतनी खुराक उन के पेट में डालना है, शरीर पर पूरे कपड़े पहनाने से उष्णता कम जाती है और उष्णता के कायम रहने से अरोगता रहती है, बालकों को ऋतुके अनुकूल वस्त्र पहनाने में जो मा बाप द्रव्य का लोभ करते है तथा बालकों को उघाड़े फिरने देते है यह उनकी बड़ी भूल है क्योंकि ऐसा होने से शरीर की गर्मी कम हो जाती है तथा गर्मी कम हो जाने से उस (गर्मी) को पूर्ण करने के लिये अधिक खुराक खानी पड़ती है जब ऐसा करना पड़ा तो समझ लीजिये कि जितना कपड़े का खर्च बचा उतना ही खुराक का खर्च बढ गया फिर लोभकरने से क्या लाभ हुआ ? किन्तु ऐसे विपरीत लोभसे तो केवल शरीर को हानि ही पहुँचती है–इस-लिये बालक को ऋतु के अनुकूल वस्त्र पहनाना ही लाभदायक है ॥

४–**दूधपिलाना**—बालक के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही उस को दूध नहीं पिलाना चाहिये अर्थात् बालक को माता का दूध तीन दिन[१] तक नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि

१–परन्तु इस विषय में किन्हीं लोगोंका यह मत है कि–बालक के उत्पन्न होने के पीछे जब माता की थकावट दूर होजावे तब तीन या चार घण्टे के बाद से बालकको माता का ही दूध पिलाना चाहिये, वे यह भी कहते है कि–"कोई लोग बालक को एक दो दिन तक माताका दूध नहीं पिलाते हैं, किन्तु उस को गलथुली चटाते हैं सो यह रीति ठीक नहीं है–क्योंकि बालक के लिये तो माता का दूध पिलाना ही उत्तम है, बालक के उत्पन्न होने पर उस को तीन या चार घण्टे के बाद माता का दूध पिलाने से बहुत ही लाभ होताहै क्योंकि–माता के दूध का प्रथम भाग रेचक होता है इस लिये उस के पीने से गर्भस्थान में रहने के कारण बालक के पेट की हड्डियों में लगा हुआ काला मल दूर होजाता है और माता को पीछे से आने वाले वेग के कम होजाने से रक्त प्रवाह के होने का सम्भव कम रहता है, यदि बालक को एक दो दिन तक माताका दूध न पिलाया जावे तो फिर वह (बालक) माता का दूध पीने नहीं लगता है और ऐसा होने से स्तन दूधसे भर जाने के कारण पक जाते है, इसलिये प्रथम से ही बालक को माता का ही दूध पिलाना चाहिये, बालक को प्रथम से ही माता का दूध पिलाने से यह भी लाभ होता है कि यदि माता के स्तनों में दूध न भी हो तो भी आने लगता है" इत्यादि, परन्तु तमाम ग्रन्थों और अनेक विद्वज्जनों की सम्मति इस कथन से विपरीत है अर्थात् उनकी सम्मति वही है जो कि हमने ऊपर लिखा है, अर्थात् जन्म के पीछे तीन या चार दिन के बादसे बालक को माता का दूध पिलाना चाहिये ॥

प्रसूतिके पश्चात् तीन दिन तक माता के दूध में कई प्रकार के उष्णता आदि के विकार रहते हैं. किन्तु तीन दिन के पश्चात् भी दूध की परीक्षा कर के पिलाना चाहिये, माता के दूध की परीक्षा यह है कि–यदि दूध पानी में डालने से मिल जावे, फेन न दीखे, तन्तु सरीखे न पड़ जावें, ऊपर तर न लगे, फटे नहीं, शीतल; निर्मल; स्वच्छ और शंख के समान सफेद होवे, उस दूध को स्वच्छ समझना चाहिये, इस प्रकार से तीन दिन के पीछे दूधकी परीक्षा करके बालक को माता का दूध पिलाना चाहिये, यदि कदाचित् माता के स्तनों में दूध न आवे तो गाय का दूध और दूध से आधा कुछ गर्म सा पानी (जैसा मा का दूध गर्म होता है वैसा ही गर्म पानी लेना चाहिये) और कुछ मीठा हो जावे इतनी शक्कर, इन तीनों को मिला कर बालक को पिलाना चाहिये परन्तु इन तीनों वस्तुओं के मिलाने में ऐसा करना चाहिये कि–पहिले शक्कर और पानी मिलाना चाहिये तथा पीछे उस में दूध मिलाना चाहिये, यह मिश्रण माता के दूध के समान ही गुण करता है, यह (मिश्रण) बालक को दो दो घण्टे के पीछे थोड़ा २ पिलाना चाहिये-परन्तु जब माता के स्तनों से दूध आने लगे तब इस (मिश्रण) का पिलाना बन्द कर माता का ही दूध पिलाना चाहिये तथा दोनों स्तनों से क्रमानुसार दूध पिलाना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से दूध से भर जाने के कारण स्तन फूल कर सूज जाता है ॥

५–**दूध पिलाने का समय**—बालक को वार वार दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु नियम के अनुसार पिलाना चाहिये क्योंकि नियम के विरुद्ध पिलाने से पहिले पिये हुए दूध का ठीक रीति से परिपाक न होने पर फिर पिलाने के द्वारा बालक को अजीर्ण हो जाता है और ऐसा होनेसे बालक रोगाधीन हो जाता है, इसी प्रकार एक वार में मात्रा से अधिक पिला देनेसे वह पिया हुआ दूध कुदरती नियम के अनुसार पेट में ठहरता नहीं है किन्तु वमन के द्वारा निकल जाता है, यदि कदाचित् वमन के द्वारा न भी निकले तो बालक के पेट को भारी कर तान देता है, पेट में पीड़ा को उत्पन्न कर देता है और जब बालक उक्त पीड़ा के होने से रोता है तब मूर्खा स्त्रियां उस के रोने के कारण का विचार न कर फिर शीघ्र ही स्तन को बालक के मुँह में दे देती है तथा बालक नहीं पीता है तो भी बलात्कार से उसे पिलाती हैं, इस प्रकार वार वार पिलाने से बालक को तो हानि पहुँचती ही है किन्तु माताको भी बहुत हानि पहुँचती है अर्थात् वार वार पिलाने से माता के स्तन से दूध नहीं उतरता है (आता है) इस से बालक रोता है तथा उस के अधिक रोनेसे माता बहुत घबड़ाती है और ऐसा होने से दोनों (माता और बालक) निर्बल हो जाते है, बालक के मुँह में स्तन देकर उस को नींद नहीं लेने देना चाहिये और न माता को नींद लेना चाहिये क्योंकि उस से स्तन में तथा बालक के मुंह में छाले पड़ जाते है।

बालक को पहिले महीने में डेढ २ घण्टे, दूसरे महीने में दो २ घण्टे, तीसरे महीने में ढाई २ घण्टे और चौथे महीने में तीन २ घण्टे के पीछे दूध पिलाना चाहिये, इसी प्रकार से प्रत्येक महीने में आधे २ घण्टे का अन्तर बढ़ाने जाना चाहिये किन्तु जब बालक सात आठ महीने का हो जावे तब तीन चार घण्टे के पीछे दूध पिलाने का समय नियत कर लेना चाहिये।

बहुत सी स्त्रियां बारह वा चौदह महीने तक बालक को दूध पिलाती रहती हैं परन्तु ऐसा करना बालक को बहुत हानि पहुँचाता है क्योंकि जब बालक जन्मता है तब से लेकर सात आठ महीने तक स्त्री को ऋतुधर्म नहीं होता है इस लिये तब तक का ही दूध बहुत पुष्टिकारक होता है किन्तु जब स्त्री के ऋतुधर्म होने लगता है तब उस के दूध में विकार उत्पन्न हो जाता है इस लिये स्त्रियों को केवल आठ नौ महीने तक ही बालकों को दूध पिलाना चाहिये किन्तु आठ नौ महीने के पीछे दूध का पिलाना धीरे २ कम करके उसके साथ में अन्य खुराक देते रहना चाहिये, दूध पिलाने के बाद स्तन को पोंछ कर स्वच्छ कर लेने का नियम रखना चाहिये कि जिस से चांदे (छाले) न पड़ जावें ॥

६–**दूध पिलाने के समय हिफाज़त**—बालक को दूध पिलाने के समय माता प्रथम अपने मन में धीरज; उत्साह; शान्ति और आनन्द रख के बालक को देखे,[1] फिर उस को हँसा कर खिलावे और अपने स्तन में से थोड़ा सा दूध निकाल देवे,[2] तत्पश्चात् बालक के मस्तक पर हाथ रखके उस को दूध पिलावे, बालक को दूध पिलानेकी यही उत्तम रीति है, किन्तु बालक को मार कर, पटक कर, क्रोध में होकर, डरा कर अथवा तर्जना (डांट) देकर दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि जिस समय मन में शोक, भय, क्रोध और निराशा आदि दोष होते हैं उस समय माता का दूध बिगड़ा हुआ होता है और वह दूध जब बालक के पीने में आता है तो वह दूध बालक को विष के समान हानि पहुँचाता है–इस लिये जब कभी उक्त बातों का प्रसंग होवे उस समय बालक को दूध कभी नही पिलाना चाहिये किन्तु जब ऊपर लिखे अनुसार मन अत्यन्त आनन्दित हो उस समय पिलाना चाहिये, इसी तरह माता को अपनी रोगावस्थामें भी बालक को अपना दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि वह दूध भी बालक को हानि पहुँचाता है ॥

७–**पूरा दूध न होने पर कर्तव्य उपाय**—जहां तक हो सके वहां तक तो बालक को माता के दूध से ही रखना उत्तम है क्योंकि माता का स्नेह बालक पर अपूर्व होता

१–क्योंकि माता की उत्साह शान्ति, और आनन्द से भरी हुई दृष्टिको देखकर बालक भी हर्षित होगा ॥

२–क्योंकि दूध के अग्रभाग मे दूध का विकार जमा रहता है इसलिये पिलाने से प्रथम स्तनमेंसे कुछ दूध निकालकर तब बालक को पिलाना चाहिये ॥

है इस लिये माता की स्थिति में धात्री (धाय) के द्वारा बालक का पोषण कराना ठीक नहीं है, हां यदि माता का शरीर दुर्बल हो अथवा दूध न आता हो अथवा पूरा (काफी) दूध न आता हो तो बेशक अन्य कुछ उपाय न होने से बालकको सात आठ महीने तक तो धाय के पास ही रख कर उसी के दूध से बालक का पालन पोषण करना चाहिये क्योंकि सात आठ महीने तक तो दूध के सिवाय बालक की और कोई खुराक हो ही नहीं सकती है ॥

८–**धात्री के लक्षण**—जहां तक हो सके धात्री अपने ग्रामकी और अपनी जाति की ही रखना चाहिये तथा उस में ये लक्षण देखने चाहियें कि–वह अपने ही बालक के समान जीवित और नीरोग बालक वाली, मध्यम कद की, शान्त, सुशील, दृढ शरीर वाली, रोगरहित, सदाचारयुक्त तथा सद्गुणोंवाली होवे, यदि कदाचित् ऐसी धात्री न मिल सके तो सदा एक ही तनदुरुस्त गाय का ताजा दूध लेकर तथा दूध से आधा कुछ गर्म पानी और शक्कर को पूर्व कही हुई रीति के अनुसार मिलाकर बालक को पिलाना चाहिये तथा इस को भी दूध पिलाने के समयके अनुकूल ही नियमानुसार पिलाना चाहिये, दूध पिलाने में इस बात का भी खयाल रखना चाहिये कि बालक को तांबे और पीतल आदि धातु के वर्तन में दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु मिट्टी अथवा काच के वर्तन में लेकर पिलाना चाहिये, किन्तु बालक के पीने के दूध को तो पहिले से ही उक्त वर्तन में ही रखना चाहिये, दूधको बहुत गर्म करके नहीं पिलाना चाहिये, बहुत सी स्त्रियां गाय भैंस वा बकरी का दूध औट कर तथा उस में शक्कर इलायची और जायफल आदि डाल कर पिलाया करती हैं–परन्तु ऐसा दूध छोटे बालक को भारी होने के कारण पचता नहीं है. इस लिये ऐसा दूध नहीं पिलाना चाहिये, वास्तव में तो बालक के लिये माता के दूध के समान और कोई खुराक नहीं है. इस लिये जब कोई उपाय न चले तब ही धाय रखनी चाहिये अथवा ऊपर लिखे अनुसार मिश्रण दूध का सहारा रखना चाहिये ॥

९–**खुराक**—बालक को ताजी; हलकी; कुछ गर्म; रुचिके अनुकूल तथा पौष्टिक खुराक देनी चाहिये तथा खुराक के साथ में हमेशा गाय का ताजा और स्वच्छ दूध भी देते रहना चाहिये, यदि अनाज की खुराक दी जावे तो उस में जरासा नमक डाल कर देनी चाहिये क्योंकि–ऐसा करने से खुराक स्वादिष्ठ हो जाती है और हज़म भी जल्दी हो जाती है तथा इस से पेट में कीड़े भी कम पड़ते है, यदि बालक की रुचि हो तो दूध में थोड़ी सी मिठास आजावे इतनी शक्कर वा बतासे डाल देना चाहिये परन्तु दूध को बहुत मीठा कर नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि–बहुत मीठा कर पिलाने से वह पाचन शक्ति को मन्द करता है ।

जब बालक एक वर्ष का हो जावे और दाँत निकल आवें तब उसे क्रम २ से चांवल; दाल; खिचड़ी; स्वच्छ दही और मलाई आदि देना चाहिये परन्तु अन्न के साथ गाय का दूध देने में कमी नहीं चूकना चाहिये क्योंकि दूध में पोषण के सब आवश्यक पदार्थ स्थित हैं. इस लिये दूध के देने से बालक तनदुरुस्त और दृढ बन्धनोंवाला होता है, यदि दूध के देने से शौच ठीक न आवे तो उसमें थोड़ा सा पानी मिला कर देना चाहिये इस से शौच ठीक होता रहेगा।

ज्यों २ बालक की अवस्था बढती जावे त्यों २ दूध की खुराक भी बढाते जाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से बालक का तेज; बन्धान और बल बढ़ता रहता है, जब बालक करीब दो वर्ष का हो जावे तब दूध में पानी का मिलाना बन्द कर देना चाहिये, बालक को जो दूध दिया जावे वह ताजा और स्वच्छ देख के लेना चाहिये, दूध में पानी वा अन्य कुछ पदार्थ मिला हुआ नहीं होना चाहिये इस का पूरा खयाल रखना चाहिये क्योंकि खराब दूध बहुत हानि करता है, ज्यों २ बालक बड़ा होता जावे त्यों २ वह शाक तरकारी आदि ताजे पदार्थोंको खावे इसका प्रयत्न करना चाहिये, धीरे २ शाक आदि पदार्थों में नमक और मसाला डालकर बालक को खिलाने चाहियें, कभी २ रुचि के अनुकूल कुछ मेवा भी देनी चाहिये, बालक को कच्चे फल, कोयले और मिट्टी आदि हानिकारक पदार्थ नहीं खाने देना चाहिये, बालक को दिन भर में तीन वार खुराक देनी चाहिये परन्तु उसमें भी यह नियम रखना चाहिये कि प्रातःकाल में दूध और रोटी देना चाहिये, इस के बाद दूसरी वार चार घंटे के पीछे और तीसरी वार शामको आठ बजे के अन्दर २ कोई हलकी खुराक देनी चाहिये किन्तु इन तीन समयों के सिवाय यदि बालक बीच २ में खाना चाहे तो उस को नहीं खाने देना चाहिये, एक वार की खाई हुई खुराक जब पच जावे और मेदेको कुछ विश्रान्ति (आराम) मिल जावे तब दूसरी वार खुराक देनी चाहिये, भूख से अधिक खूब ढूँट कर भी नहीं खाने देना चाहिये क्योंकि जो बालक भूख से अधिक खूब ढूँट कर तथा वार वार खाता है तो वह खुराक ठीक रीति से हजम नहीं होती है और बालक रोगी हो जाता है, उसके हाथ पैर रस्सीके समान पतले और पेट मटकी के समान बड़ा हो जाता है, बालक को कभी २ अनार, द्राक्षा (दाख), सेब, बादाम, पिस्ते और केले आदि फलभी देते रहना चाहिये, उसको पानी स्वच्छ पीने को देना चाहिये, पीने के लिये प्रायः कुओं का पानी बहुत उत्तम होता है इसलिये वही पिलाना चाहिये, जिस पानी पर रजःकण (धूलके कण) तैरते हों अथवा जो अन्य बुरे पदार्थों से मिला हुआ हो वह पानी बालक को कभी नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि इस प्रकार का पानी बड़ी अवस्था वालों की अपेक्षा बालक को अधिक हानि पहुँचाता है, स्वच्छ जल हो तो भी उसे दो तीन वार छान कर पीने के लिये देना चाहिये, शीत

ऋतु में शरीर में गर्मी उत्पन्न करनेवाले पौष्टिक पदार्थ खाने को देना चाहिये क्योंकि उस समय शरीर में गर्मी पैदा करने की बहुत आवश्यकता है, उक्त ऋतु में यदि शरीर में गर्मी कम होवे तो तनदुरुस्ती विगड़ जाती है इसलिये उक्त ऋतु में शरीर में उष्णता कायम रहने के लिये उपाय करना चाहिये, बालक की भूख को कभी मारना नहीं चाहिये क्योंकि भूख का समय बिता देने से मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं, इसलिये यही उचित है कि नियम के अनुसार नियत किये हुए समय पर जितनी और जो हजम हो सके उतनी और वही खूब परिपक्व (पकी हुई) खुराक खाने को देना चाहिये ।

इस जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये शरीर को जिन २ तत्वों की आवश्यकता है वे सब तत्त्व एक ही प्रकार की खुराक में से नहीं मिल सकते हैं. इसलिये सर्वदा एक ही प्रकार की खुराक न देकर भिन्न २ प्रकार की खुराक देते रहना चाहिये, एक ही प्रकार की खुराक देने से शरीर को आवश्यक तत्त्वभी नहीं मिलते है तथा पाचनशक्ति में भी खराबी पड़ जाती है, जिस खुराक पर बालक की रुचि न हो उसके खाने के लिये आग्रह नहीं करना चाहिये, बालक को खुराक देनेमें आधा घंटा लगाना चाहिये अर्थात् धीरे २ चबा २ के उसे खिलाना चाहिये और धीरे २ चाब २ के खाने की उस की आदत भी डालना चाहिये किन्तु शीघ्रता से उसे नहीं खिलाना चाहिये और न खाने देना चाहिये, गर्मी वा धूप आदि में से आने के बाद अथवा थकने के बाद कुछ विश्राम ले लेवे तब उसे खाने को देना चाहिये, खाते समय उसे न तो हँसने और न बातें करने देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कभी २ ग्रास गले में अटक कर बहुत हानि पहुँचाता है, सो उठने के पीछे तीन घण्टे के बाद और ऊँघने के पीछे एक घण्टे के बाद खुराक देनी चाहिये, इसी प्रकार खानेके पीछे यदि आवश्यकता होतो एक घण्टे के पश्चात् सोने देना चाहिये, ठंढी बिगड़ी हुई और दुर्गन्धयुक्त खुराक नहीं खाने देनी चाहिये, बहुत खाना अथवा कमखाना, ये दोनों ही नुक्सान करते हैं इस लिये इन से बालक को बचाना चाहिये, भूख लगे बिना आग्रह करके बालक को नहीं खिलाना चाहिये, बालक से कम वा अधिक खाने के लिये नहीं कहना चाहिये किन्तु उस को अपनी रुचि के अनुसार खाने देना चाहिये, खुराक के विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो खुराक जिस कदर पुष्टिकारक हो वह उसी कदर तौलमें कम खाने को देना चाहिये तथा जिस कदर खुराक कम पुष्टि कारक हो उसी कदर वह तौल में अधिक खाने को देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि जहांतक हो सके बालकों को खुराक तौल में कम किन्तु पुष्टिकारक देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से बालक का बल घटता है तथा शरीर भी नहीं बढ़ता है, यह संक्षेप से खुराक के विषय में

१–क्योंकि पुष्टिकारक खुराक तौलमें अधिक देने से अजीर्ण होकर विकार उत्पन्न होता है और अपुष्टि कारक अथवा कम पुष्टिकारक खुराक तौलमें कम देने से बालक को दुर्बलता सताने लगती है ॥

लिखा गया है, बाकी इस विषय को देश और काल के अनुसार चतुर माताओं को विचार लेना चाहिये ॥

१०-**हवा**—जिस उपाय से बालक को खुली और स्वच्छ हवा मिलसके वही उपाय करना चाहिये, स्वच्छ हवा के मिलने के लिये हमेशा सुबह और शाम को समुद्र के तट पर मैदान में, पहाड़ी पर अथवा बाग में बालक को हवा खिलाने के लिये ले जाना चाहिये, क्योंकि स्वच्छ हवा के मिलने से बालक के शरीर में चेतनता आती है, रुधिर सुधरता है। और शरीर नीरोग रहता है, प्रत्येक प्राणी को श्वास लेने में आक्सिजन वायु की अधिक आवश्यकता होती है इस लिये जिसकमरे में ताजी और स्वच्छ हवा आती हो उस प्रकार के ही खिड़की और किवाड़वाले कमरे में बालक को रखना चाहिये, किन्तु उस को अँधेरे स्थान में, चूल्हे की गर्मी से युक्त स्थानमें, नाली वा मोहरी की दुर्गन्धि से युक्त स्थान में, संकीर्ण, अँधेरी और दुर्गन्धवाली कोठरी में, बहुत से मनुष्यों के श्वास लेने से जहां कार्बोलिक हवा निकलती हो उस स्थान में और जहां अखण्ड दीपक रहता हो उस स्थान में कभी नहीं रखना चाहिये, क्योंकि–जहां गर्मी दुर्गन्धि और पतली हवा होती है वहां आक्सिजन हवा बहुत थोड़ी होती है इसलिये ऐसी जगह पर रखने से बालक की तनदुरुस्ती बिगड़ जाती है, अतः इन सब बातों का खयाल कर स्वच्छ और सुखदायक पवन से युक्त स्थान में बालक को रखने का प्रबन्ध करना ही सर्वदा लाभदायक है ॥

११-**निद्रा**—बालक को बड़े आदमी की अपेक्षा अधिक निद्रा लेने की आवश्यकता है क्योंकि–निद्रा लेने से बालक का शरीर पुष्ट और तनदुरुस्त होता है, बालक को कुछ समय तक माता के पसवाड़े में भी सोनेकी आवश्यकता है क्योंकि–उस को दूसरे के शरीर की गर्मी की भी आवश्यकता है, इस लिये माता को चाहिये कि–कुछ समय तक बालक को अपने पसवाड़े में भी सुलाया करे, परन्तु पसवाड़े में सुलाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि–पसवाड़ा फेरते समय बालक कुचल न जावे अर्थात् वह रोकर पसवाड़े के नीचे न दब जावे, इस लिये माता को चाहिये कि–उस समयमें अपने और बालक के बीच में किसी कपड़े की तह बना कर रखले, सोते हुए बालक को कभी दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि–सोते हुए बालक को दूध पिलाने से कभी २ माता ऊंघ जाती है और बालक उलटा गिरके गुंगला के मर जाता है बालक को सोने का ऐसा अभ्यास कराना चाहिये कि–वह रात को आठ नौ बजे सो जावे और प्रातःकाल पांच बजे उठ बैठे, दिन में दो पहर के समय एक दो घण्टे और रात को अधिक से अधिक आठ घण्टे

१–आक्सिजन अर्थात् प्राणप्रद वायु ॥ २–कार्बोलिक हवा अर्थात् प्राणनाशक वायु ॥

तक बालक को नींद लेने देना चाहिये, तथा जागने के पीछे उसे बिस्तर पर पड़ा नहीं रहने देना चाहिये क्योंकि—ऐसा करने से बालक सुस्त हो जाता है, इस लिये जागने के पीछे शीघ्रही उठने की आदत डालनी चाहिये, नींद में सोते हुए बालक को जगाना नहीं चाहिये क्योंकि—नींद में सोते हुए बालक को जगाने से बहुत हानि होती है, बालक को स्वच्छ हवा और प्रकाशवाले कमरे में सुलाना चाहिये किन्तु खिड़की और किवाड़ बन्द किये हुए कमरे में नहीं सुलाना चाहिये, तथा दुर्गन्धवाले और छोटे कमरे में भी नहीं सुलाना चाहिये, बालकको निद्रा के समय में कुछ तकलीफ होवे ऐसा कुछ भी वर्ताव नहीं होना चाहिये किन्तु निद्रा के समयमें उस का मन अत्यन्त शान्त रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये, बालक को खुराक की अपेक्षासे भी निद्रा की अधिक आवश्यकता है क्योंकि कम निद्रा से बालक दुर्बल हो जाता है, बालक को गोद में सुलाने की आदत नहीं डालनी चाहिये तथा झूले वा पालने में भी बलात्कार झुला कर पीट कर डरा कर अथवा व्याकुल कर नहीं सुलाना चाहिये और न बाल-गुटिका वा अफीम आदि हानिकारक तथा विषैली वस्तु खिलाकर सुलाना चाहिये क्योंकि उस के खिलाने से बालक का शरीर बिगड़कर निर्बल हो जाता है, उस के शरीर का बन्धान दृढ़ नहीं होता है, किन्तु जब उस को प्रकृति के नियमके अनुसार स्वाभाविक नींद आने लगे तबही सुलाना चाहिये, रात्रि को खुराक देने के पश्चात् दो घण्टे के बाद हँसाने खिलाने दौड़ाने और कुदाने आदि के द्वारा कुछ शारीरिक व्यायाम (कसरत) कराके तथा मधुर गीतों के गाने आदि के द्वारा उस के मन का रञ्जन करके सुलाना चाहिये कि जिस से सुखपूर्वक उसे गहरी नींद आजावे, इसी प्रकार से बालक को पालने में भी हर्षित कर लिटा कर मधुर गीत गाकर धीरे २ झुला कर सुलानेसे उस को उत्तम नींद आती है तथा काफी नींद के आजाने से उसका शरीर हलका (फुर्तीला) और अच्छा हो जाता है, यदि किसी कारण से बालक को नींद न आती हो तो समझ लेना चाहिये कि इस के पेट में या तो कीड़े हो गये हैं या कोई दूसरा दर्द उत्पन्न हुआ है, इस की जांच कर के जो मालूम हो उस का उचित उपाय करना चाहिये, किन्तु जहां तक हो सके नींद के लिये औषध नहीं खिलाना चाहिये, सोते समय क्रमानुसार पसवाड़ा बदलने की बालक की आदत डालना चाहिये[1], उस के सोने का बिछौना न तो अत्यन्त मुलायम और न अत्यन्त सख्त होना चाहिये किन्तु साधारण होना चाहिये, झूले में सुलाने की अपेक्षा पालने में सुलाना उत्तम है क्योंकि झुले में सुलाने से बालक के कुबड़े हो जाने का सम्भव है और कुबड़ा हो जाने से वह ठीक रीति से चल नहीं सकता है किन्तु पालने में सुलाने से ऐसा नही होता

१—क्योंकि एक ही पसवाड़े से पडे रहने से आहार का परिपाक ठीक नहीं होता है ॥

है, बालक की नींद में भंग न हो जावे इस लिये झूले या पालने के आंकड़े (कड़े) नहीं बोलने देना चाहिये, बालक के सोते समय जोर से झोंका नहीं देना चाहिये, सोने के झूले वा बिछौने के पास यदि शीत भी हो तो भी आग की सिगड़ी वा दीपक समीप में नहीं रखना चाहिये, जब बालक सो कर उठ बैठे तब शीघ्रही बिछौने को लपेट कर नहीं रख देना चाहिये किन्तु जब उस में कुछ हवा लग जावे तथा उस के भीतर की गन्दगी (दुर्गन्धि) उड़ जावे तब उस को उठा कर रखना चाहिये, सोते समय बालक को चांचड़, खटमल और जुएँ आदि न काटें, इस का प्रबंध रखना चाहिये, उस के सोने का बिछौना धोया हुआ तथा साफ़ रखना चाहिये किन्तु उस को मलीन नही होने देना चाहिये, यदि बिछौना वा झोला मलमूत्र से भीगा होवे तो शीघ्र उस को बदल कर उस के स्थान में दूसरे किसी स्वच्छ वस्त्र को बिछा कर उस पर बालक को सुलाना चाहिये कि जिस से उसे सर्दी न लग जावे ॥

१२—**कसरत**—बालक को खुली हवा में कुछ शारीरिक कसरत मिल सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि शारीरिक कसरत से उस के शरीर का भीतरी रुधिर नियमानुसार सब नसों में घूम जाता है, खाये हुए अन्न का रस होकर तमाम शरीर को पोषण (पुष्टि) मिलता है, पाचनशक्ति बढ़ती है, वायु का सञ्चलन होने से लोहू भीतरी मलीन पदार्थों को पसीने के द्वारा बाहर निकाल देता है जिस से शरीरका बन्धान दृढ और नीरोग होता है, नींद अच्छी आती है तथा हिम्मत, चेतनता, चञ्चलता और शूरवीरता बढ़ती है, क्योंकि बालक की स्वाभाविक चंचलता ही इस बात को बतलाती है कि—बालक की अरोगता रहने और बड़ा होने के लिये प्रकृति से ही उस को शारीरिक कसरत की आवश्यकता है, उत्पन्न होने के पीछे जब बालक कुछ मासों का हो जावे तब उस को सुबह शाम कपड़े पहना के अच्छी हवा में ले जाना चाहिये, कभी २ जमीन पर रजाई बिछा के उसे सुलाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह इधर उधर पछाड़ें मारेगा और उस को शारीरिक कसरत प्राप्त होगी, इसी प्रकार कभी २ हँसाना, खिलाना, कुदाना और कोई वस्तु फेंक कर उसे मंगवाना आदि व्यवहार भी बालक के साथ करना चाहिये, क्योंकि इस व्यवहार में अति हँस कर वह हाथ पैर पछाड़ने, दौड़ने और इधर उधर फिरने के लिये चेष्टा करेगा और उस से उसे सहजमें ही शारीरिक कसरत मिल सकेगी।

जब बालक कुछ चलना फिरना सीख जावे तब उसे घर में तथा घर के बाहर समीप में ही खेलने देना चाहिये किन्तु उसे घर में न बिठला रखना चाहिये, परन्तु जिस खेल से शरीर के किसी भाग को हानि पहुँचे तथा जिस खेलसे नीति में बिगाड़ हो ऐसा खेल

नहीं खेलने देना चाहिये इसी प्रकार दुष्ट लड़कों की संगति में भी बालक न खेलने पावे इस की पूरी खबरदारी रखनी चाहिये, ज्यों २ बालक उम्रमें बड़ा होता जावे त्यों २ उस को नित्य सुवह और शाम को खुली हवामें नियमपूर्वक गेंद फेंकना, दौड़ना, चकरी, तीर फेंकना, खोदना, जोतना और काटना आदि मनपसन्द खेल खेलने देना चाहिये परन्तु जिस और जितने खेल से वह अत्यन्त थक जावे तथा शरीर भारी पड़ जावे वह और उतना खेल नहीं खेलने देना चाहिये, जब कभी कोलेरा (हैजा) और ज्वर आदि रोग चल रहा हो तो उस समय में कसरत नहीं कराना चाहिये, कसरत करने के पीछे जब उस की थकावट कम हो जावे तब उसे खाने और पीने देना चाहिये, इस नियम के अनुसार पुत्र और पुत्री से कसरत कराते रहें ॥

१३–दाँतोंकी रक्षा—जब बालक सात आठ महीने का होता है तब उस के दाँत निकलना प्रारम्भ होता है, कभी २ ऐसा भी होता है कि दाँत दो तीन मास विलम्ब से भी निकलते है परन्तु ऐसी दशा में बालक को ज्वर, वमन, खांसी, चूंक झाड़ा और आंचकी आदि होने लगते है, जब बालकके दाँत निकलने लगते हैं उस समय उस का स्वभाव चिड़चिड़ा (चिढ़नेवाला) हो जाता है, उस को कहीं भी अच्छा नहीं लगता है, दाँतों की जड़ों में खाज (खुजली) चलती है, वार वार दूध पीने की इच्छा होती है, अंगुली वा अंगूठे को मुख में डालता है क्योंकि उस से दाँतों की जड़ों के घिसने से अच्छा लगता है, इस समय पर बालक अन्य किसी वस्तु को मुख में न डालने पावे इस का ख्यांल रखना चाहिये, क्योंकि अन्य किसी वस्तु के मुख में डालने की अपेक्षा तो अंगूठे को ही मुख में डालना ठीक है, परन्तु उस को हमेशा मुख में अंगूठा डालने की आदत न पड़ जावे इस का खयाल रखना चाहिये।

यदि दांत निकलने के समय नित्य की अपेक्षा दो चार वार शौच अधिक लगे तो कोई चिन्ता की बात नहीं है परन्तु यदि दो चार वार से भी अधिक शौच लगने लगे तो उसका उचित उपाय करना चाहिये, यदि बालक को ज्वर वा वमन आदि हो जावे तो चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर उस का शीघ्रही उपाय करना चाहिये क्योंकि इस समय में उस की अच्छी तरह से हिफाजत करनी चाहिये, यदि पहना हुआ कपड़ा लार से भीग जावे तो शीघ्र उस कपड़े को उतार कर दूसरा स्वच्छ कपड़ा पहना देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी लगजाती है, जब बालक बड़ा हो जावे तब दाँतों को ब्रुश अथवा दाँतन के कूंचेसे घिसने की उस की आदत डालनी चाहिये, उसके दांतो में मैल नहीं रहने देना चाहिये किन्तु पानी के कुल्ले करा के उस के मुंह और दांतो को साफ कराते रहना चाहिये ॥

१–जैसे ढींगला ढींगली (गुडा और गुड़िया) का ब्याह करना तथा उस से बालक जन्माना इत्यादि ॥

१४–चरणरक्षा—(पैरों की हिफ़ाज़त) पैर ही तमाम शरीर की जड़ हैं इसलिये उन की रक्षा करना अति आवश्यक है, अतः ऐसा प्रबंध करते रहना चाहिये कि जिस से बालक के पैर गर्म रहें, जब पैर ठंढे पड़ जावें तो उन को गर्म पानी में रख के गर्म कर देना चाहिये तथा पैरों में मोज़े पहना देना चाहिये, सोते समय भी पैर गर्म ही रहें ऐसा उपाय करना चाहिये क्योंकि पैर ठंढे रहने से सर्दी लगकर व्याधि होने का सम्भव है, शीत ऋतु में पैरों में मोज़े तथा मुलायम देशी जूते पहनाना चाहिये क्योंकि पैरों में जूते पहनाये रखने से ठंढ गर्मी और कांटों से पैरों की रक्षा होती है परन्तु सँकड़े (कठिन) जूते नहीं पहनाना चाहिये क्योंकि सँकड़े जूते पहनाने से बालक के पैर का तलवा बढ़ता नहीं है, अंगुलियां सँकुच जाती है तथा पैर में छाले आदि पड़ जाते हैं, बालक को चलाने और खड़ा करने के लिये माता को त्वरा (शीघ्रता) नहीं करनी चाहिये किन्तु जब बालक अपने आप ही चलने और खड़ा होने की इच्छा और चेष्टा करे तब उस को सहारा देकर चलाना और खड़ा करना चाहिये क्योंकि बलात्कार चलाने और खड़ा करने से उस के कोमल पैरों में शक्ति न होने से वे (पैर) शरीर का बोझ नहीं उठा सकते है, इस से बालक गिर जाता है तथा गिर जाने से उस के पैर टेढ़े और मुड़े हुए हो जाते हैं, घुटने एक दूसरे से भिड़ जाते हैं और तलवे चपटे हो जाते हैं इत्यादि अनेक दूषण पैरों में हो जाते है, बालक को घर में खुले (नंगे) पैर चलने फिरने देना चाहिये क्योंकि नंगे पैर चलने फिरने देने से उस के पैरों के तलवे मज़बूत और सख्त हो जाते है तथा पैरों के पञ्जे भी चौड़े हो जाते हैं ॥

१५–मस्तक—बालक का मस्तक सदा ठंढा रखना चाहिये, यदि मस्तक गर्म होजावे तो ठंढा करने के लिये उस पर शीतल पानी की धारा डालनी चाहिये, पीछे उसे पोंछ कर और साफ कर किसी वासित तेल का उस पर मर्दन करना चाहिये, क्योंकि मस्तक को धोने के पीछे यदि उस पर किसी वासित तेल का मर्दन न किया जावे तो मस्तक में पीड़ा होने लगती है, बालक के मस्तक से बाल नही उतारना चाहिये और न बड़ी शिखा तथा चोटला रखना चाहिये किन्तु केवल बाल कटाते जाना चाहिये, हां बालिकाओं का तो जब वे चार पांच वर्ष की हो जावें तब चोटला रखना चाहिये, बालक को स्नान कराते समय प्रथम मस्तक भिगोना चाहिये पीछे सब शरीर पर पानी डाल कर स्नान कराना चाहिये, मस्तक पर ठंढे पानी की धारा डालने से

१–न केवल बालकका ही मस्तक ठंढा रखना चाहिये किन्तु सब लोगो को अपना मस्तक सदा ठंढा रखना चाहिये क्योंकि मस्तक वा मगज़ को तरावटकी आवश्यकता रहती है ॥

मगज़ तर रहता है, मस्तक पर गर्म किया हुआ पानी नहीं डालना चाहिये, बालों को सदा मैल काटने वाली चीजों से धोना चाहिये, पुत्र के बाल प्रतिदिन और पुत्री के बाल सात आठ दिन में एक वार धोकर साफ करना चाहिये, यदि मस्तक में जुयें और लीखें हो जावें तो उन को निकाल के वासित तेल में थोड़ा सा कपूर मिला कर मस्तक पर मालिश करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से जुयें कम पड़ती हैं तथा कपूर न मिला कर केवल वासित तेल का मर्दन करने से मगज़ तर रहता है, मस्तक पर नारियल के तेल का मर्दन करना भी अच्छा होता है क्योंकि–उस के लगाने से बाल साफ होकर बढ़ते और काले रहते हैं, वालों के ओइँछने में इस बात का खयाल रखना चाहिये कि–ओइँछते समय उस के बाल न तो खिँचे और न टूटें, क्योंकि बालों के खिँचने और टूटने से मगज़ में व्याधि हो जाती है तथा बाल भी गिर जाते हैं, इस लिये बारीक दाँत वाली कंघी से धीरे २ बालों को ओइँछना चाहिये, मस्तक में तेल सिर्फ इतना डालना चाहिये कि बालक के कपड़े न विगड़ने पावें, बालक के मस्तक पर मनमाना साबुन तथा अर्क खींचा हुआ तेल नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि–ऐसा करने से बाल सफेद हो जाते हैं तथा मगज़ में व्याधि भी हो जाती है ॥

१६–**लग्न वा विवाह**—बालकपन में लग्न अर्थात् विवाह कर देने से बालक शीघ्रही स्त्री के सम्बन्ध होने की चिन्ता से यथोचित विद्याभ्यास नहीं कर सकता हैं, इस से बड़े होने पर संसारयात्रा के निर्वाह में मुसीवत पड़कर उस को संसार में अपना जीवन दुःख के साथ बिताना पड़ता है, केवल यही नहीं किन्तु कच्ची अवस्था में अपक्व (न पका हुआ अर्थात् कच्चा) वीर्य निकलजाने से शरीर का बन्धान टूट जाता है, शरीर दुर्बल, पतला, पीला, अशक्त और रोगी हो जाता है, आयु का क्षय होजाता है तथा उसकी जो प्रजा (सन्तति) होती है वह भी वैसी ही होती है, वह किसी कार्य को भी हिम्मत के साथ नहीं कर सकता है, इत्यादि अनेक हानियां बालविवाह से होती हैं, इसलिये पुत्र की अवस्था बीस वर्ष की होने के पीछे और पुत्री की अवस्था तेरह वा चौदह वर्ष की होने के पीछे विवाह करना ठीक है, क्योंकि जीवन में वीर्य का संरक्षण सब से श्रेष्ठ कार्य और परम फलदायक है, जिस के शरीर में वीर्य का विशेष संरक्षण होता है वह दृढ़, स्थूल, पुष्ट, शूर वीर, पराक्रमी और नीरोग होता है तथा उस की प्रजा (सन्तति) भी सब प्रकार से उत्कृष्ट होती है, इस लिये पुत्र और पुत्री का उक्त अवस्था में ही विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥

१–मस्तक पर गर्म पानी के डालने से जो हानि है वह नम्बर दो (स्नान विषय) में पूर्व लिख आये हैं॥

२–उस के अर्थात् बालक के ॥

१७-**कर्णरक्षा**—(कान की हिफाजत), बालक के कान ठंढे नहीं होने देना चाहिये, यदि ठंढे होजावें तो कानटोपी पहना देना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी लग कर कान पक जाते हैं और उन में पीड़ा होने लगती है, यदि कभी कान में दर्द होने लगे तो तेल को गर्म कर के कान के भीतर उस तेल की बूंदें डालनी चाहियें, यदि कान बहता हो तो समुद्रफेन को तेल में उवाल कर उस की बूँदें कान में डालनी चाहियें, कान में छिद्र (छेद) कराने की रीति नुकसान करती है, क्योंकि कान में छिद्र करके अलंकार (आभूषण, जेवर) पहनने से अनेक प्रकार के नुकसान[1] हो जाते हैं, इस लिये यह रीति ठीक नहीं है, कान को सलाई आदि से भी करोदना नही चाहिये किन्तु उस (कान) के मैल को अपने आप ही गिरने देना चाहिये क्योंकि कान के करोदने से वह कभी २ पक जाता है और उस में पीड़ा होने लगती है ॥

१८-**शीतला रोग से संरक्षा**—शीतला निकलने से कभी २ बालक अन्धे, लूले, काने और बहिरे हो जाते हैं तथा उन के तमाम शरीर पर दाग पड़ जाते हैं तथा दागों के पड़ने से चेहरा भी बिगड़ जाता है, इत्यादि अनेक खरावियां उत्पन्न हो जाती हैं, केवल इतना ही नहीं किन्तु कभी २ इस से बालक का मरण भी हो जाता है, सत्य तो यह है कि बालक के लिये इस के समान और कोई बड़ा भय नही है, यह रोग चेपी[2] भी है इसलिये जिस समय यह रोग प्रचलित हो उस समय बालक को रोगवाली जगह पर नहीं ले जाना चाहिये, यदि बालक के टीका न लगवाया हो तो इस समय शीघ्र ही लगवा देना चाहिये, क्योंकि टीका लगवा देने से ऊपर कहीं हुई खराबियों के उत्पन्न होने का भय नहीं रहता है, यदि बालक के दो बार टीका लगवा दिया जावे तो शीतला निकलती भी नहीं है और यदि कदाचित् निकलती भी है तो उस की प्रबलता (जोर) बिलकुल घट जाती है, इस लिये प्रथम छोटी अवस्था[3] में एक वार टीका लगवा देना चाहिये पीछे सात वा आठ वर्ष की अवस्था में एक वार फिर दुवारा लगवा देना चाहिये, किन्तु प्रथम छोटी अवस्था में एक वार टीका लगवा देने के बाद यदि सात सात वर्ष के पीछे दो तीन वार फिर लगवा दिया जावे तो और भी अधिक लाभ होता है।

१-पाठकों ने देखा वा सुना होगा कि अनेक दुष्ट गहने के लोभ से छोटे बच्चों को बहका कर ले जाते हैं तथा उन का जेवर हरण कर बच्चो को मार तक डालते हैं ॥

२-चेपी अर्थात् वायु के द्वारा उड़कर लगनेवाला ॥

३-छोटी अवस्था मे जितनी जल्द हो सके टीका लगवा देना चाहिये-अर्थात् जिस बालक को कोई रोग न हो तथा हृष्ट पुष्ट हो तो जन्म के १५ दिन के पीछे और तीन महीने के भीतर टीका लगवा देना उचित है, परन्तु दुर्बल और रोगी बालक के जब तक दाँत न निकल आवें तब तक टीका नहीं लगवाना चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-टीका लगवाने का सब से अच्छा समय जाड़े की ऋतु है ॥

टीका लगवाने के समय इस बात का पूरा ख़याल रखना चाहिये कि–टीका लगाने के लिये जिस बालक का चेप लिया आवे वह बालक गुमड़े तथा ज्वर आदि रोगवाला नहीं होना चाहिये, किन्तु वह बालक नीरोग और दृढ़ बन्धान युक्त होना चाहिये, क्योंकि नीरोग बालक का चेप लेने से उस बालक को फायदा पहुँचता है और रोगी बालक का चेपलेने से बालक को शीघ्रही उसी प्रकार का रोग होजाता है।

जब बालक का शरीर बिलकुल तनदुरुस्त हो तब उस के टीका लगवाना चाहिये, टीका लगवाने के बाद नौ दस दिन में दाने भरजाते हैं और सूजन आ जाती है और पीड़ा भी होने लगती है, उस के बाद एक दो दिन में आराम होना शुरू हो जाता है, इससमयमें उस के आराम होने के लिये बालक को औषध देने का कुछ काम नहीं है; हां यदि टीका लगाने का स्थान खिँचता हो और खिँचने से अधिक दुःख मालूम होता हो तो उस पर केवल घी लगा देना चाहिये, क्योंकि घी के लगाने से चेप निकल कर गिर जाते हैं, दाने फूटने के बाद बारीक राख से उसे पोंछना भी ठीक है, परन्तु दानों को नोच कर नहीं उखाड़ना चाहिये क्योंकि नोच कर उखाड़ देने से लाभ नहीं होता है और फिर पक जाने का भी भय रहता है, यदि बालक दानों को नोचने लगे तो उस के हाथ पर कपड़ा लपेट देना चाहिये अर्थात् उस चेप (पपड़ी) को नोच कर नहीं उखाड़ना चाहिये किन्तु उसे अपने आप ही गिरने देना चाहिये ॥

१९–**बालँगुटिका**—बालक को बालँगुटिका देनी की रीति बहुत हानिकारक है, चाहें प्रत्यक्ष में इस से कुछ लाभ भी मालूम पड़े परन्तु परिणाम में तो हानि ही पहुँचती है, यह हमेशा देने से तो एक प्रकार से खुराक के समान हो जाती है तथा व्यसनी के व्यसन के समान यह भी एक प्रकार से व्यसनवत् ही हो जाती है, क्योंकि जब तक उस का नशा रहता है तब तक तो बालक को निद्रा आती है और वह ठीक रहता है परन्तु नशा उतरने के बाद फिर ज्यों का त्यों रहता है, नशा करने से स्वाभाविक नींद के समान अच्छी नींद भी नहीं आती है, इस के सिवाय इस बात की ठीक जांच करली गई है कि–बालगुटिका में नाना प्रकार की वस्तुयें पड़ती हैं किन्तु उन में भी अफीम तो मुख्य होती है, उस गुटिका को पानी वा माता के दूधमें मिला के बलात्कार बालक के हाथ पैर पकड़ के उसे पिला देते हैं, यद्यपि उस गुटिका

१–क्योंकि राख से पोंछने से दाने जल्दी खुश्क हो जाते हैं ॥

२–कपड़ा बांध देने से बालक दानों को नोच नहीं सकेगा ॥

३–यह बालगुटिका बच्चोंको खिलाने के लिये एक प्रकार की गोली है जिस में अफीम आदि कई प्रकार के हानिकारक पदार्थ डालकर वह बनाई जाती है–मूर्ख स्त्रियां बालकों को सुलाने के लिये इस गोली को बालकों को खिला देती हैं कि बालक सो जाय और वे सुख से अपना सब कार्य करती रहें ॥

के पीने के समय बालक अत्यन्त रोता है तथापि उस के रोने पर निर्दय माता को कुछ भी दया नहीं आती है, इस गुटिका के देनेकी रीति प्रायः एक दूसरी को देख कर स्त्रियों में चल जाती है, यह गुटिका भी एक प्रकार के व्यसन के समान बालक को दुर्बल, निर्बल और पीला कर देती है तथा इस से बालक के हाथ पैर रस्सीके समान पतले और पेट मटकी के समान बड़ा हो जाता है तथा इस गुटिका को देकर बालक को बलात्कार सुलाना तो न सुलाने के ही समान है, इसलिये माता का यह कार्य तो बालक के साथ शत्रुता रखने के तुल्य होता है, बालक को सुलाने का सच्चा उपाय तो यही है कि–सोने से प्रथम बालक से पूरी शारीरिक कसरत कराना चाहिये, ऐसा करने से बालक को स्वयमेव उत्तम निद्रा आ जावेगी, इसलिये निद्रा के लिये बालगुटिका के देने की रीति को बिलकुल ही बन्द कर देना चाहिये ॥

२०–**आँख**—जब बालक सो कर उठे तब कुछ देर के पीछे उस की आंखों को ठंढे जल से धो देना चाहिये, आंखों के मैल आदि को खूब धोकर आंखों को साफ कर देना चाहिये, ठंढे पानी से हमेशा धोने से आंखों का तेज बढता है, ठंढक रहती है तथा आंख की गर्मी कम हो जाती है, इत्यादि बहुत से लाभ आंखों को ठंढे पानी से धोने से होते हैं, परन्तु आंखों को धोये विना वैसी ही रहने देने से नुकसान होता है, आंखों में हमेशा काजल अथवा ज्योति को बढ़ाने वाला अन्य कोई अञ्जन आंजते (लगाते) रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से आंखें दुखनी नहीं आती हैं और तेज भी बढ़ता है। आंखें दुखनी आना एक प्रकार का चेपी रोग है, इस लिये यदि किसी की आंखें

१–क्योंकि स्त्रियों में मूर्खता तो होती ही है एक दूसरी को देख कर व्यवहार करने लगती हैं ॥

२–क्योंकि इस में अफीम आदि कई विषैले पदार्थ डाले जाते हैं ॥

३–क्योंकि नशे के जोर से जो निद्रा आती है वह स्वाभाविक निद्रा का फल नहीं देसकती है ॥

४–क्योंकि शारीरिक थकावट के बाद निद्रा खूब आया करती है ॥

५–सोकर उठने के बाद शीघ्र ही आंखों को धो देने से सर्दी गर्मी होकर आखें दुखनी आजाती हैं ॥

६–चेपी रोग उसे कहते हैं जोकि रोगी के स्पर्श करनेवाले तथा रोगी के पास मे रहनेवाले पुरुष के भी वायु के द्वारा उड़ कर लगजाता है, यह (चेपी) रोग बड़ा भयकर होता है, इस लिये माता पिता को चाहिये कि–चेपी रोग से अपनी तथा अपने बालकों की सदा रक्षा करते रहें, यह भी जान लेना चाहिये कि–केवल आंखों का दुखनी आना ही चेपी रोग नहीं है किन्तु चेपीरोग बहुत से हैं, जैसे ओरी (शीतला का भेद), अछबड़ा (आकड़ा काकड़ा), शीतला (चेचक), गालपचोरिया (गालमें होने वाला रोगविशेष), खुलखुलिया, गलसुआ (गले में होने वाला एक रोग,) दाद, आखो का दुखना, टाइफस ज्वर (ज्वर विशेष), कोलेरा (विषूचिका वा हैजा), मोतीझरा, पानी झरा (ये दोनों राजपूताने में प्रायः होते हैं) इत्यादि, इन रोगों में से जब कोई रोग कहीं प्रचलित हो तो वहां बालक को लेकर नहीं रहना चाहिये किन्तु जब वह रोग मिट जावे तब वहां बालक को ले जाना चाहिये तथा यदि कोई पुरुष इन रोगो में से किसी रोग से ग्रस्त हो तो उसके बिलकुल आराम हो जाने के पीछे बालक को उस के पास जाने देना चाहिये, तात्पर्य यही है कि–चेपी रोगों से अपनी और अपने बालकों की बडी सावधानी के साथ रक्षा करनी चाहिये ॥

दुखती हों तो उस के पास बालक को नहीं जाने देना चाहिये, यदि बालक की आंख दुखनी आवे तो उस का शीघ्र ही यथायोग्य उपाय करना चाहिये, क्योंकि उस में प्रमाद (गफलत) करने से आंख को बहुत हानि पहुँचती है ।

इस प्रकार से ये कुछ संक्षिप्त नियम बालरक्षा के विषय में दिखलाये गये हैं कि इन नियमों को जान कर स्त्रियां अपने बालकों की नियमानुसार रक्षा करें, क्योंकि जबतक उक्त नियमों के अनुसार बालकों की रक्षा नहीं की जायगी तबतक वे नीरोग, बलिष्ठ, दृढ़ बन्धान वाले, पराक्रमी और शूर वीर कदापि नहीं हो सकेंगे और वे उक्त गुणों से युक्त न होने से न तो अपना कल्याण कर सकेंगे और न दूसरोंका कुछ उपकार कर सकेंगे, इस लिये माता पिता का सब से मुख्य यही कर्तव्य है कि—वे अपने बालकों की रक्षा सदा नियम पूर्वक ही करें, क्योकि ऐसा करने से ही उन बालकों का, बालकों के माता पिताओं का, कुटुम्ब का और तमाम संसार का भी उपकार और कल्याण हो सकता है ॥

यह तृतीय अध्याय का बालरक्षण नामक—चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैनश्वेताम्बर—धर्मोपदेशक—यति प्राणाचार्य—विवेकलब्धि शिष्यशील-सौभाग्य निर्मितः, जैनसम्प्रदाय शिक्षायाः

तृतीयोऽध्यायः ॥

१—बालरक्षा के विस्तृत नियम वैद्यक आदि ग्रन्थों में देखने चाहियें ॥

२—'स्वयमसिद्धः कथं परार्थान् साधयितु शक्नोति, । अर्थात् जो स्वयं (खुद) असिद्ध (सर्व साधनों से रहित अथवा असमर्थ) है. वह दूसरों के अर्थों को कैसे सिद्ध कर सकता है ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

दोहा—श्री गुरु [1]चरण सरोज रज, निज मन [2]मुकुर सुधारि ॥
[3]वपु रक्षणके नियम अब, कहत सुनो चितधारि॥ १ ॥

प्रथम प्रकरण—वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता ॥

शरीर की रचना और उस की क्रिया को ठीक २ नियम में रखने के लिये शरीर संरक्षण के नियमों और उपयोग में आने वाले पदार्थों के गुण और अवगुण को जान लेना अति आवश्यक है, इसीलिये वैद्यक विद्या में इस विभाग को प्रथम श्रेणीमें गिना गया है, क्योंकि–शरीर संरक्षण के नियमों के न जानने से तथा पदार्थों के गुण और अवगुण को विना जाने उन को उपयोग में लाने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होजाती है, इस के सिवाय उक्त विषय का जानना इसलिये भी आवश्यक है कि–अपने २ कारण से उत्पन्न हुए रोगों की दशा में उन की निवृत्ति के लिये यह अद्भुत साधन रूप है, क्योंकि–रोगदशा में पदार्थों का यथायोग्य उपयोग करना ओषधि के समान वरन उस से भी अधिक लाभकारक होता है, इस लिये प्रतिदिन व्यवहार में आनेवाले वायु, जल और भोजन आदि पदार्थों के गुण और अवगुणों का तथा व्यायाम और निद्रा आदि शरीर संरक्षण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रत्येक मनुष्यको अवश्य ही उद्यम करना चाहिये ।

शरीरसंरक्षण के नियम–बहुधा दो भागोंमें विभक्त (बँटे हुए) हैं अर्थात् रोग को न आने देना तथा आये हुए रोग को हटा देना, इस प्रत्येक भागमें स्याद्वादमत के अनुसार उद्यम और कर्मगति का भी सञ्चार रहा हुआ है, जैसे देखो–सर्वदा नीरोगता ही रहे, रोग न आने पावे, इस विषय के साधन को जान कर उस की प्राप्तिके लिये उद्यम करना तथा उस को प्राप्त कर उसी के अनुसार वर्ताव करना, इस में उद्यम की प्रबलता है, इस प्रकार का वर्त्ताव करते हुए भी यदि रोग उपस्थित हो जावे तो उस में कर्म गतिकी प्रबलता समझनी चाहिये, इसी प्रकार से कारणवश रोग की उत्पत्ति होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये अनेक उपायों का करना उद्यमरूप है परन्तु उन उपायोंका सफल होना वा न होना कर्मगति पर निर्भर है ।

१–चरण कमलोंकी धूलि ॥ २–दर्पण ॥ ३–शरीर– ॥

इस विषय में यद्यपि अन्य आचार्यों में से बहुतों का मत यह है कि–उद्यम की अपेक्षा कर्मगति अर्थात् दैव प्रधान है–परन्तु इस के विरुद्ध चिकित्साशास्त्र और उस (चिकित्साशास्त्र) के निर्माता आचार्यों की तो यही सम्मति है कि-मनुष्यका उद्यम ही प्रधान है, यदि उद्यम को प्रधान न मानकर कर्मगति को प्रधान माना जावे तो चिकित्साशास्त्र अनावश्यक हो जायगा, अतएव शरीर संरक्षण विषयमें चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार उद्यम को प्रधान मान कर शरीर संरक्षण के नियमों पर ध्यान देना मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य और प्रधान पुरुषार्थ है, अब समझने की केवल यह बात है कि-यह उद्यम भी पूर्व लिखे अनुसार दो ही भागों में विभक्त है–अर्थात् रोग को समीप में आने न देना और आये हुए को हटा देना, इन दोनोंमें से पूर्व भाग का वर्णन इस अध्याय में कुछ विस्तारपूर्वक तथा उत्तर भाग का वर्णन संक्षेप से किया जायगा ॥

स्वास्थ्य वा आरोग्यता[1] ॥

यद्यपि शरीर का नीरोग होना वा रहना पूर्व कृत कर्मों पर भी निर्भर है–अर्थात् जिस ने पूर्व जन्म में जीवदया का परिपालन किया है तथा भूखे प्यासे और दीन हीन प्राणीका जिसने सब प्रकार से पोषण किया है–वह प्राणी नीरोग शरीर वाला, दीर्घायु तथा उद्यम बल और बुद्धि आदि सर्व साधनोंसे युक्त होता है–तथापि चिकित्सा शास्त्र की सम्मति के अनुसार मनुष्य को केवल कर्मगति पर ही नहीं रहना चाहिये–किन्तु पूर्ण उद्योग कर शरीर की नीरोगता प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि–जो पूर्ण उद्योग कर नीरोगता को प्राप्त नहीं करता है संसार में उसका जीवन व्यर्थ ही है, देखो। जगत्में जो सात सुख माने गये हैं[2] उन में से मुख्य और सब से पहिला सुख नीरोगता ही है, क्योंकि यही (नीरोगता का सुख) अन्य शेष ६ सुखों का मूल कारण है, न केवल इतना ही किन्तु आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भी मूल कारण है, जैसा कि–शास्त्रकारोंने कहा भी है कि—"**धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्**" इसी प्रकार लोकोक्ति भी है कि "**काया राखे धर्म**" अर्थात् धर्म तब ही रह सकता वा किया जा सकता है जब कि शरीर नीरोग हो, क्योंकि–शरीर की आरोग्यता के विना मनुष्य को सांसारिक सुखों के स्वप्न में भी दर्शन नही होते है, फिर भला उस को पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त हो

१–"आरोग्यता" यह शब्द यद्यपि संस्कृत भाषा के नियम से अशुद्ध है अर्थात् 'अरोगता, वा 'आरोग्य, शब्द ठीक है, परन्तु वर्त्तमान में इस 'आरोग्यता, शब्द का अधिक प्रचार हो रहा है, इसी लिये हमने भी इसी का प्रयोग किया है ॥

२–पहिलो सुक्ख निरोगी काया। दूजो सुख घर मे हो माया ॥ तीजो सुख सुथान वासा। चौथो सुख राजमें पासा ॥ पॉचवों सुख कुलवन्ती नारी । छट्ठो सुख सुत आज्ञाकारी ॥ सातमो सुख धर्म मे मती। शास्त्र सुकृत गुरु पण्डित यती ॥ १ ॥

सकता है। देखो! आरोग्यता ही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती तथा मस्तक बलयुक्त बना रहता है कि–जिस से वह शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कार्यों को अच्छे प्रकार से कर सुखों को भोग अपने आत्मा का कल्याण कर सकता है, इस लिये ऐसे उत्तम पदार्थ को खो देना मानो मनुष्य जीवन के उद्देश्य का ही सत्यानाश करना है, क्योंकि–आरोग्यता से रहित पुरुष कदापि अपने जीवन की सफलता को प्राप्त नही कर सकता है, जीवन की सफलता का प्राप्त करना तो दूर रहा किन्तु जब आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है तो मनुष्य को अपने जीवन के दिन काटना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है, सत्य तो यह है कि-एक मनुष्य सर्व गुणों से युक्त तथा अनुकूल पुत्र, कलत्र और समृद्धि आदि से युक्त होने पर भी स्वास्थ्यरहित होनेसे जैसा दुःखित होता है दूसरा मनुष्य उक्त सर्व साधनों से रहित होने पर भी नीरोगता युक्त होने पर वैसा दुःखित नहीं होता है, यद्यपि यह बात सत्य है कि-आरोग्यता की कदर नीरोग मनुष्य नहीं कर सकता है किन्तु आरोग्यता की कदर को तो ठीक रीति से रोगी ही जानसकता है, परन्तु तथापि नीरोग मनुष्य को भी अपने कुटुम्ब में माता, पिता, भाई, बेटा, बेटी तथा बहिन आदिके बीमार पड़नेपर नीरोगता का सुख और अनारोग्यता का दुःख विदित हो सकता है, देखो। कुटुम्ब में किसी के बीमार पड़ने पर नीरोग मनुष्य के भी हृदय में कैसी घोर चिन्ता उत्पन्न होती है, उसको इधर उधर वैद्य वा डाक्टरों के पास जाना पड़ता है, जीविका में हर्ज पड़ता है तथा दवा दारू में उपार्जित धन का नाश होता है, यदि विद्याहीन यमदूत के सदृश मूर्ख वैद्य मिल जावे तो कुटुम्बी के नाश के द्वारा तद्वियोग जन्य (उसके वियोग से उत्पन्न) असह्य दुःखभी आकर उपस्थित होता है, फिर देखिये। यदि घर के काम काज की सँभालने वाली माता अथवा स्त्री आदि बीमार पड़ जावे तो बाल बच्चों की सँभाल और रसोई आदि कामों में जो २ हानियां पहुँचती हैं वे किसी गृहस्थ से छिपी नहीं है, फिर देखो! यदि दैवयोग से घर का कमाने वाला ही बीमार हो जावे तो कहिये उस घर की क्या दशा होती है, एवं यदि प्रतिदिन कमा कर घर का खर्च चलाने वाला पुरुष बीमार पड़ जावे तो उस घर की क्या दशा होती है, इसपर भी यदि दुर्दैव वश उस पुरुष को ऋण भी उधार न मिल सके तो कहिये बीमारी के समय उस घर की विपत्ति का क्या ठिकाना है, इस लिये प्रिय मित्रो! अनुभवी जनों का यह कथन बिलकुल ही सत्य है कि—"राज महल के अन्दर रहने वाला राजा भी यदि रोगी हो तो उसको दुःखी और झोपडी में रहनेवाला एक गरीब किसान भी यदि नीरोग हो तो उसको सुखी समझना चाहिये" तात्पर्य यही है कि-आरोग्यता सब सुखों का और अनारोग्यता सब दुःखों का परम आश्रय है, सत्य तो यह है कि-रोगावस्था में मनुष्य को जितनी तकलीफ उठानी पड़तीहै उसे उस का हृदय ही जानता है, इस पर भी इस रोगावस्था में एक अतिदारुण

विपत्ति का और भी सामना करना पड़ताहै–जिस का वर्णन करने में हृदय अत्यंत कम्पायमान होता है तथा वह विपत्ति इस जमाने में और भी बढ़ रही है, वह यह है कि–इस वर्तमान समय में बहुत से अपठित मूर्ख वैद्य भी चिकित्सा का कार्य कर अपनी आजीविका चला रहे हैं अर्थात् वैद्यक विद्या भी एक दूकानदारी का रुजगार बन गई है, अब कहिये जब रोग के निवर्तक वैद्यों की यह दशा है तो रोगी को विश्राम कैसे प्राप्त होसकता है ! शास्त्रों में लिखा है कि-वैद्य को परम दयालु तथा दीनोपकारक होना चाहिये, परन्तु वर्तमान में देखिये कि-क्या वैद्य, क्या डाक्टर प्रायः दीन, हीन, महा दुःखी और परम गरीबों से भी रुपये के विना बात नही करते हैं अर्थात् जो हाथ से हाथ मिलाताहै उसी की दाद फर्याद सुनते और उसी से बात करते है, वैद्य वा डाक्टरों का तो दीनों के साथ यह वर्त्ताव होताहै, अब तनिक द्रव्य पात्रों की तरफ दृष्टि डालिये कि-वे इस विषय में दीनों के हित के लिये क्या कर रहे हैं, द्रव्य पात्र लोग तो अपनी २ धुन में मस्त है, काफी द्रव्य होने के कारण उन लोगों को तो वीमारी के समय में वैद्य वा डाक्टरों की उपलब्धि सहज में हो सकने के कारण विशेष दुःख नहीं होता है, अपने को दुःख न होने के कारण प्रमाद में पड़े हुए उन लोगों की दृष्टि भला गरीबों की तरफ कैसे जा सकती है ? वे कब अपने द्रव्य का व्यय करके यह प्रबंध कर सकते हैं कि-दीन जनों के लिये उत्तमोत्तम औषधालय आदि बनवा कर उन का उद्धार करें, यद्यपि गरीब जनों के इस महा दुःख को विचार कर ही श्रीमती न्यायपरायणा गवर्नमेंट ने सर्वत्र औषधालय (शिफाखाने) बनवाये हैं, परन्तु तथापि उन में गरीबों की यथोचित खबर नही ली जाती है, इसलिये डाक्टर महोदयों का यह परम धर्म है कि–वे अपने हृदय में दया रख कर गरीबों का इलाज द्रव्यपात्रों के समान ही करें, एवं हवा पानी और वनस्पति, ये तीनों कुदरती दवायें पृथ्वी पर स्वभाव से ही उपस्थित है तथा परम कृपालु परमेश्वर श्री ऋषभदेवने इन के शुभ योग और अशुभ योग के ज्ञान का भी अपने श्रीमुख से आत्रेय पुत्र आदि प्रजा को उपदेश देकर आरोग्यता सिखलाई है, इस विषय को विचार कर उक्त तीनों वस्तुओं का सुखदायी योग जानना और दूसरों को बतलाना वैद्यों का परम धर्म है, क्योंकि ऐसा करने में कुछ भी खर्च नहीं लगता हैं, किन्तु जिस दवा के बनाने में खर्च भी लगता हो वह भी अपनी शक्ति के अनुसार बनाकर दीनोंको विना मूल्य देना चाहिये तथा जो स्वयं बाजार से औषधि को मोल लाकर बना सकते हैं उनको नुसखा लिखकर देना चाहिये परन्तु नुसखा लिखने में गलती नहीं करनी चाहिये, इसीप्रकार द्रव्यपात्रों को भी चाहिये कि-योग्य और विद्वान् वैद्यों को द्रव्य की सहायता देकर उन से गरीबों को ओषधि दिलावें–देखो ! श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट ने भी केवल दो ही दानों को पसन्द किया है, जिन को हम सब लोग नेत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष ही देख रहे है अर्थात् पहिला दान विद्या दान है जो कि–पाठ-

शालाओं के द्वारा हो रहा हैं तथा दूसरा ओषधिदान हैं जो कि-अस्पताल और शिफाखानोंके द्वारा किया जा रहा हैं ।

पहिले कह चुके हैं कि-शरीर संरक्षण के नियम वहुधा दो भागोंमें विभक्त है अर्थात् रोग को अपने समीप में न आने देना तथा आये हुए रोगको हटा देना, इन दोनो में से वर्त्तमान समय में यदि चारों तरफ दृष्टि फैला कर देखा जावे तो लोगों का विशेष समुदाय ऐसा देखा जाता है कि-जिस का ध्यान पिछले भागमें ही हैं, किन्तु पूर्व भाग की तरफ विलकुल ध्यान नहीं है अर्थात् रोग के आने के पीछे उस की निवृत्ति के लिये इधर उधर दौड़धूप करना आदि उपाय करते है, परन्तु किस प्रकार का वर्ताव करने से रोग समीप में नहीं आ सकता है अर्थात् आरोग्यता वनी रह सकती है, इस वात को जनसमूह नहीं सोचताहै और इस तरफ यदि लोगों की दृष्टि है भी तो वहुत ही थोड़े लोगों की है और वे प्रायः आरोग्यता वनी रहने के नियमों को भी नहीं समझते है, वस यही अज्ञानता अनेक व्याधिजन्य दुःखों की जड़है, इसी अज्ञानता के कारण मनुष्य प्रायः अपने और दूसरे सवों के शरीर की खरावी किया करते हैं, ऐसे मनुष्यों को पशुओं से भी गया वीता समझना चाहिये, इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह सव से प्रथम कर्तव्य है कि–वह अपनी आरोग्यता के समस्त साधनों (जितने कि मनुष्य के आधीन हैं) के पालन का यत्न अवश्य करे अर्थात् आनेवाले रोग के मार्ग को प्रथम से ही वन्द कर दे, देखो ! यह निश्चय की हुई वात है कि–आरोग्यता के नियमों का जानने वाला मनुष्य

१–आरोग्यता के सव नियम मनुष्य के आधीन नहीं है, क्योंकि–वहुत से नियम तो दैवाधीन अर्थात्-कर्मस्वभाव वश हैं, वहुत से राज्याधीन है, वहुत से लोकसमुदायाधीन है और वहुत से नियम प्रत्येक मनुष्य के आधीन हैं, जैसे–देखो । एकदम ऋतुओं के परिवर्तन का होना, हैजा, मरी, विस्फोटक, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अति शीत और अति उष्णता का होना आदि दैवाधीन (समुदायी कर्म के आधीन) कार्यो मे मनुष्यका कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है, नगर की यथायोग्य स्वच्छता आदि के न होने से दुर्गन्धि आदि के द्वारा रोगोत्पत्ति का होना आदि कई एक कार्य राज्याधीन हैं, लोकप्रथा के अनुसार वालविवाह (कम अवस्था मे विवाह) और जीमणवार आदि कुचालों से रोगोत्पत्ति होना आदि कार्य जाति वा समाज के आधीन हैं, क्योंकि इन कार्यों में भी एक मनुष्य का कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है और प्रत्येक मनुष्य खान पान आदि की अज्ञानता से स्वय अपने शरीर में रोग उत्पन्न कर लेवे अथवा योग्य वर्ताव कर रोगोंसे वचा रहे यह वात प्रत्येक मनुष्यके आधीन है, हा यह वात अवश्य है कि–यदि प्रत्येक मनुष्य को आरोग्यता के नियमों का यथोचित ज्ञान हो तव तो सामाजिक तथाजातीय सुधार भी हो सकता है तथा सामाजिक सुधार होने से नगर की स्वच्छता होना आदि कार्यों मे भी सुधार हो सकता है, इस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य के आधीन जो कार्य नहीं हैं अर्थात् राज्याधीन वा जात्याधीन हैं उनकाभी अधिकांशमें सुधार हो सकता है, हां केवल दैवाधीन अशमें मनुष्य कुछ भी उपाय नहीं कर सकता है, क्योंकि–निकाचित कर्म वन्धन अति प्रवल है, इस का उदाहरण प्रत्यक्ष ही देख लो कि–प्लेग राक्षसी कितना कष्ट पहुँचा रही है और उसकी निवृत्ति के लिये किये हुए सव प्रयत्न व्यर्थ जा रहे है ॥

आरोग्यता के नियमों के अनुसार वर्ताव कर न केवल स्वयं उसका फल पाता है किन्तु अपने कुटुम्ब और समझदार पड़ोसियों को भी आरोग्यता रूप फल दे सकता है।

शरीर संरक्षण का ज्ञान और उसके नियमों का पालन करना आदि बातों की शिक्षा किसी बड़े स्कूल वा कॉलेज में ही प्राप्त हो सकती है यह बात नहीं है, किन्तु मनुष्यके लिये घर और कुटुम्ब भी सामान्य ज्ञान की शिक्षा और आनुभविकी (अनुभव से उत्पन्न होने वाली) विद्या सिखलाने के लिये एक पाठशाला ही है, क्योंकि-अन्य पाठशाला और कॉलेजों में आवश्यक शिक्षा के प्राप्त करने के पश्चात् भी घर की पाठ शाला का आवश्यक अभ्यास करना, समुचित नियमों का सीखना और उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करना आदि आवश्यक होता है, कुटुम्ब के माता पिता आदि वृद्ध जन घर की पाठशाला के अध्यापक (मास्टर) हैं, क्योंकि-कुलपरम्परा से आया हुआ दया धर्म से युक्त खान पान और विचार पूर्वक बांधा हुआ सदाचार आदि कई आवश्यक बातें मनुष्यों को उक्त अध्यापकों से ही प्राप्त होती हैं अर्थात् माता पिता आदि वृद्ध जन जैसा वर्ताव करते हैं उनके बालकभी प्रायः वैसा ही वर्त्ताव सीखते और उसी के अनुसार वर्ताव करते है, हां इस में भी प्रायः ऐसा होता है कि-माता पिता के सदाचार आदि उत्तम गुणोंको पुण्यवान् सुपुत्र ही सीखता है, क्योंकि-सात व्यसनों में से कई व्यसन और दुराचार आदि अव-गुणोंको तो दूसरों की देखा देखी विना कहे ही बहुतसे बुद्धिहीन सीख लेतेहैं, इस का कारण केवल यही है कि-मिथ्या मोहनी कर्म के संग इस जीवात्मा का अनादि कालका परिचय है और उसी के कारण भविष्यत् में भी (आगामी को भी) उस को अनेक कष्ट और आपत्तियां भोगनी हैं और फिर भी दुर्गति में तथा संसार में उस को भ्रमण करना है, इस लिये वह कर्मोंकी आनुपूर्वी उस प्राणी को उस प्रकार की बुद्धि के द्वारा उसी तरफ को खींचती है, इसी लिये माता पिता और गुरु आदि की उत्तम सदाचार की शिक्षा को वह सिखलाने पर भी नहीं सीखता है किन्तु बुरे आचरण में शीघ्र ही चित्त लगाता है।

यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार कर्मवश ऐसा होताहै तथापि माता पिताकी चतुराई और उन के सदाचार का कुछ न कुछ प्रभाव तो सन्तान पर पड़ता ही है, हां यह अवश्य होता है कि-उस प्रभाव में कर्माधीन तारतम्य (न्यूनाधिकता) रहताहै, इस के विरुद्ध जिस घर में माता पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध जन स्नान और दन्त धावन नहीं करते, कपड़े मैले पहनते, पानी विना छाने पीते और नशा पीते हैं, इत्यादि अनेक कुत्सित

१-क्योंकि-मूर्ख पडोसी तो गगाजल में रहने वाली मछलीके समान समीपवर्ती योग्य पुरुष के गुण को ही नहीं समझ सकता है ॥

२-सात व्यसनोंका वर्णन आगे किया जायगा ॥

रीतियों में प्रवृत्त रहते हैं तो उन के बालक भी वैसा ही व्यवहार सीख लेते और वैसा ही वर्त्ताव करने लगते है, हां यह दूसरी बात है कि—माता पिता आदि का ऐसा अनुपयुक्त व्यवहार होने पर भी कोई २ पुण्यवान् सन्तान सब कुटुम्ब वालों से छूँट कर सत्सङ्गति के द्वारा उत्तम क्रिया और सब उपयोगी नियमों को सीख लेते है और सद्व्यवहार में ही प्रवृत्त रहते हैं तथा द्रव्यवान् विनयवान् और दानी निकल आते हैं, यह केवल स्याद्वाद है, किन्तु लोकव्यवहार के अनुसार तो मनुष्य को सर्वदा श्रेष्ठ कार्य और सद्गुणों के लिये उद्यम करना और उन को सीख कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करना ही परम उचित है।

बहुत से लोग ऐसे भी देखे जाते है कि—वे पथ्यापथ्य को न जानने के कारण बीमार हो जाते है, क्योंकि—यह तो निश्चय ही है कि—जान बूझ कर बीमार शायद कोई ही होता है किन्तु अज्ञान से ही लोग रोगी बनते है, इस में कारण यही है कि-ज्ञान से चलने में जीव बलवान् है और अज्ञान से चलने में कर्म बलवान् है, इस लिये मनुष्यों को ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है, देखो। सदाचरणरूप सुखदायी योग को पथ्य और असदाचरणरूप दुःखदायी योग को कुपथ्य कहते है, इन दोनों योगों को अच्छे प्रकार से समझ लेना यह तो ज्ञान है और उसी के अनुकूल चलना यह क्रिया है, बस इन्हीं दोनों के योग से अर्थात् ज्ञान और क्रिया के योग से मोक्ष (दुःखकी निवृत्ति) होता है, यह विषय संसारपक्ष और मुक्तिपक्ष दोनों में समान ही समझना चाहिये, देखो। जिस पुरुष ने अपने आत्मा का भला चाहा है उस ने मानो सब जगत् का भला चाहा, इसी प्रकार जिस ने अपने शरीर के संरक्षण का नियम पाला मानो उस ने दूसरे को भी उसी नियम का पालन कराया, क्योंकि पहिले लिख चुके है कि—माता पिता आदि वृद्धजनों के मार्ग पर ही उन की सन्तति प्रायः चलती है, इस लिये प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि—अपनी और अपनी सन्तति की शरीरसंरक्षा के नियमों को वैद्यक शास्त्र आदि के द्वारा भली भाँति जान कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव कर आरोग्य लाभके द्वारा मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों फलों को प्राप्त करे॥

यह चतुर्थ अध्याय का-वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ॥

द्वितीय प्रकरण—वायुवर्णन॥

इस संसार में हवा, पानी और खुराक, येही तीन पदार्थ जीवन के मुख्य आधार रूप है, परन्तु इन में से भी पिछले २ की अपेक्षा पूर्व २ को बलवान् समझना चाहिये, क्योंकि देखो। खुराक के खाये विना मनुष्य कई दिन तक जीवित रह सकता है, एवं पानी के पिये विना भी कई घण्टे तक जीवित रह सकता है, परन्तु हवा के विना थोड़ी देर तक

भी जीवित रहना अति कठिन है, अति कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है, इस से सिद्ध है कि–उक्त तीनों पदार्थों में से हवा सब से अधिक उपयोगी पदार्थ है, उस से दूसरे दर्जे पर पानी है और तीसरे दर्जे पर खुराक है, परन्तु इस विषय में यह भी स्मरण रहना चाहिये कि–इन तीनों में से यदि एक पदार्थ उपस्थित न हो तो शेष दो पदार्थों में से कोई भी उस पदार्थ का काम नहीं दे सकता है अर्थात् केवल हवा से वा केवल पानी से अथवा केवल खुराक से अथवा इन तीनों में से किन्हीं भी दो पदार्थों से जीवन कायम नहीं रह सकता है, तात्पर्य यह है कि–इन तीनों संयुक्तों से ही जीवन स्थिर रह सकता है तथा यह भी स्मरण रहना चाहिये कि–समय आने पर मृत्यु के साधन भी इन्हीं तीनों से प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि देखो ! जो पदार्थ अपने स्वाभाविक रूप में रह कर शरीर के लिये उपयोगी (लाभदायक) होता है वही पदार्थ विकृत होने पर अथवा आवश्यकता के परिमाण से न्यूनाधिक होने पर अथवा प्रकृति के अनुकूल न होने पर शरीर के लिये अनुपयोगी और हानिकारक हो जाता है, इत्यादि अनेक बातों का ज्ञान शरीर संरक्षण में ही अन्तर्गत है, इस लिये अब क्रम से इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

उक्त तीनों पदार्थों में से सब से प्रथम तथा परम आवश्यक पदार्थ हवा है, यह पहिले ही लिख चुके हैं, अब इस के विषय में आवश्यक बातों का वर्णन करते हैं:—

जगत् में सब जीव आस पास की हवा लेते हैं, वह (हवा) जब बाहर निकलकर पुनः प्रवेश नहीं करती है–बस उसी को मृत्यु, मौत, देहान्त, प्राणान्त, अन्तकाल और अन्त क्रिया आदि अनेक नामों से पुकारते है ।

पहिले लिख चुके हैं कि–जीवन के आधार रूप तीनों पदार्थों में से जीवन के रक्षण का मुख्य आधार हवा है, वह हवा यद्यपि अपनी दृष्टि से नहीं दीख पड़ती है तथा जब वह स्थिर हो जाती है तो उस का मुख्य गुण स्पर्श भी नहीं मालूम होता है परन्तु जब वह वेग से चलती है और वृक्षकम्पन आदि जो २ कार्य करती है वह सब कार्य नेत्रों के द्वारा भी स्पष्ट देखा जाता है–किन्तु उस का ज्ञान मुख्यतया स्पर्श के द्वारा ही होता है ।

देखो ! यह समस्त जगत् पवन महासागर से आच्छादित (ढँका हुआ) है और उस पवन महासागर को डाक्टर तथा अर्वाचीन विद्वान् कम से कम सौ मील गम्भीर (गहिरा) मानते हैं, परन्तु प्राचीन आचार्य तो उस को चौदह राजलोक के आस पास घनोदधि, घनवात और तनुवात रूपमें मानते हैं अर्थात् उन का सिद्धान्त यह है कि–हवा और पानी के ही आधार पर ये चौदह राजलोक स्थित हैं और इस सिद्धान्त का यह स्पष्ट अनुभव भी होता है कि–ज्यों २ ऊपर को चढते जावें त्यों २ हवा अधिक सूक्ष्म मालूम देती है, इस के सिवाय पदार्थविज्ञान के द्वारा यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि–हवा के स्थूल थर में आदमी टिक सकता है परन्तु सूक्ष्म (पतले) थर में नहीं टिक सकता है,

इसी लिये बहुत ऊपर को चढ़ने में श्वास आने लगता है, नाक तथा मुख से रुधिर निकलना शुरू हो जाता है और मरण भी हो जाता है, यद्यपि पक्षी पतली हवा में उड़ते है परन्तु वे भी अधिक ऊँचाई पर नहीं जा सकते हैं, फ्रेंचदेश के गेल्युसाक और वीयोट नामक प्रसिद्ध विद्वान् सन् १८०४ ईस्वी में करीब चार मील ऊँचे चढ़े थे, उस स्थान में इतना शीत था कि–शीसी के भीतर की स्याही उसी में ठँस कर जम गई तथा वहां की हवा भी इतनी पतली थी कि–उन्हों ने वहां पर एक पक्षी को उड़ाया तो वह उड़ नहीं सका, किन्तु पत्थर की तरह नीचे गिर पड़ा, इसी प्रकार काफी हवा न होने के कारण मनुष्यों को भी पतली हवावाले ऊँचे प्रदेश में रहने से श्वास चलने लगता है और शरीर की नसें फूल कर फटने लगती है तथा नाक और मुँह से रक्त बहने लगता है, हिमालय और आल्प्स पर्वतों पर चढनेवाले लोगों को यह अनुभव प्रायः हो चुका है और होता जाता है ॥

स्वच्छ हवा के तत्व ॥

सामान्य लोग मन में कदाचित् यह समझते होंगे कि-हवा एक ही पदार्थ की बनी हुई है परन्तु विद्वानों ने इस बात का अच्छे प्रकार से निश्चय कर लिया है कि-हवा में मुख्य चार पदार्थ हैं और वे बहुत ही चतुराई और आश्चर्य के साथ एकत्रित होकर मिले हुए है, वे चारों पदार्थ ये है—प्राणवायु (ऑक्सिजन), शुद्धवायु (नाइट्रोजन), मिश्रित वायु (कारबोनिक एसिड ग्यास) और पानी के सूक्ष्म परमाणु, देखो ! अपने आस पास में तीन प्रकार के पदार्थ सर्वदा स्थित होते है–अर्थात् कई तो पत्थर और काष्ठ के समान कठिन है, कई पानी और दूधके समान पतले अर्थात् प्रवाही है, बाकी कई एक हवा के समान ही वायुरूप में दीखते है जो कि (वायु) जल के सूक्ष्म परमाणुओं से बना हुआ है, हवा में मिश्रित जो एक प्राणवायु (ऑक्सिजन) है वही मुख्यतया प्राणों का आधार रूप है, यदि यह प्राणवायु हवा में मिश्रित न होता तो दीपक भी कदापि जलता हुआ नहीं रह सकता, फिर यदि सब हवा प्राणवायु रूप ही होती तो भी जगत् में जीव किसी प्रकार से भी न तो जीते रह सकते और न चल फिर ही सकते किन्तु शीघ्र ही मर जाते, क्योंकि-जीवों को जितनी कठिन हवा की आवश्यकता है उस से अधिक वह हवा कठिन हो जाती, इसी लिये प्राणवायु के साथ दूसरी हवा कुदरती मिली हुई है और वह हवा प्राण की आधारभूत नही है तथा उस हवामें जलता हुआ दीपक रखने से बुझ जाता है, इस लिये मिश्रित वायु ही से सब कार्य चलता है अर्थात् श्वास लेने में

१–यह चावलों के कोयलों के साथ प्राणवायु के मिलने से बनता है ॥

२–इस को भिन्न करने से इस का माप भी हो सकता है ॥

तथा दीपक आदि के जलाने के समय अपने २ परिमाण के अनुकूल ये दोनों हवायें मिली हुई काम देती हैं, जैसे मनुष्य के हाथ में एक अंगूठा और चार अंगुलियां है इसी प्रकार से यह समझना चाहिये कि-हवा में एक भाग प्राण वायु का है और चार भाग शुद्ध वायु (नाइट्रोजन) है तथा हवा इन दोनों से मिली हुई है, हवा के दूसरे दो भाग भी इन्हीं में मिले हुए है और वे दोनों भाग यद्यपि बहुत ही थोड़े है तथापि दोनों अत्यन्त उपयोगी हैं, कोयला क्या चीज है यह तो सब ही जानते है कि-जंगल जल कर पृथ्वी में प्रविष्ट (धँस) हो जाता है बस उसी के काले पत्थर के समान पृथ्वी में से जो पदार्थ निकलते हैं उन्हीं को कोयला कहते हैं और वे रेल के एञ्जिन आदि कलों में जलाये जाते है, चांवलों में से भी एक प्रकार के कोयले हो सकते है और ये (चांवलोंके कोयले) कार्बन कहलाते हैं, प्राणवायु और कोयलों के मिलने से एक प्रकार की हवा बनती है-उस को अंग्रेजी में कार्बोनिक एसिड ग्यॅस कहते हैं, यही हवा में तीसरी वस्तु है तथा यह बहुत भारी (वज़नदार) होती है और यह कभी २ गहरे तथा खाली कुए के तले इकट्ठी होकर रहा करती है, खत्ते में और बहुत दिनों के बन्द मकान में भी रहा करती है, इस हवा में जलती हुई बत्ती रखने से बुझजाती है तथा जो मनुष्य उस हवामें श्वास लेता है वह एकदम मर जाता है, परन्तु यह हवा भी वनस्पतिका पोषण करती है अर्थात् इस हवा के विना वनस्पति न तो उग सकती है और न कायम रह सकती है, दिन को उस का भाग वृक्ष की जड़ और वनस्पति चूस लेती है, यह भी जान लेना आवश्यक है कि-इस हवा के ढाई हजार भागों में केवल एक भाग इस जहरीली हवा का रहता है, इसी लिये (इतना थोड़ा सा भाग होने हीसे) वह हवा प्राणी को कुछ बाधा नहीं पहुँचा सकती है, परन्तु हवा में पूर्व कहे हुए परिमाण की अपेक्षा यदि उस (जह-रीली) हवा का थोड़ा सा भी भाग अधिक होजावे तो मनुष्य बीमार हो जाते है।

पहिले कह चुके हैं कि—हवा में चौथा भाग पानी के परमाणुओं का है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि-यदि थाली में थोड़ा सा पानी रख दिया जावे तो वह धीरे २ उड़ जाता है, इस विषयमें अर्वाचीन विद्वानों तथा डाक्टरों का यह कथन है कि-सूर्य की गर्मी सदा पानी को परमाणुरूपसे खींचा करती है, परन्तु सर्वज्ञ के कहे हुए सूत्रों में यह लिखा है कि-जल वायुके योगसे सूक्ष्म होकर परमाणुरूप से आकाश में मिल जाता है तथा वह पीछे सदैव ओस हो हो कर झरता है, यद्यपि ओस आठों ही पहर झरा करती है परन्तु दो घड़ी पिछला दिन बाकी रहने से लेकर दो घड़ी दिन चढनेतक अधिक मालूम देती

१—बहुत दिनों के बंद मकान मे घुसने से बहुत से मनुष्य आदि प्राणी मर चुके हैं, इस का कारण केवल जहरीली हवा ही है, परन्तु बहुत से भोले लोग पदार्थ विद्या के न जानने से बंद मकान में भूत प्रेत आदि का निवास तथा उसी के द्वारा बाधा पहुँचना मान लेते हैं, यह केवल उनकी अज्ञानता है ॥

है, क्योंकि दो घड़ी दिन चढ़ने के बाद वह सूर्य की किरणों की उष्मा के द्वारा सूख जाती है, वे ही कण सूक्ष्म परमाणुओंके स्थूल पुद्गल बँधकर अर्थात् बादल बन कर अथवा धुँअर होकर बरसते हैं, यदि हवा में पानी के परमाणु न होते तो सूर्य के तापकी गर्मी से प्राणियों के शरीर और वृक्ष बनस्पति आदि सब पदार्थ जल जाते और मनुष्य मर जाते, केवल यही कारण है कि–जहां जलकी नदी दरियाव और बनस्पति बहुत हैं वहां वृष्टि भी प्रायः अधिक होती है तथा रेतीके देश में कम होती है।

यद्यपि यह दूसरी बात है कि–प्राणियों के पुण्य वा पाप की न्यूनाधिकता से कर्म आदि पांच समवायों के संयोगसे कभी २ रेतीली ज़मीन में भी बहुत वृष्टि होती है और जल तथा वृक्ष वनस्पति आदि से परिपूर्ण स्थान में कम होती वा नहीं भी होती है, परन्तु यह केवल स्याद्वाद मात्र है, किन्तु इस का नियम तो वही है जैसा कि–ऊपर लिख चुके है, यद्यपि हवा का वर्णन बहुत कुछ विस्तृत है–परन्तु ग्रन्थविस्तार भयसे उस सब का लिखना अनावश्यक समझते है, इस के विषय में केवल इतना जान लेना चाहिये कि–योग्य परिमाण में ये चारों ही पदार्थ हवामें मिले हों तो उस हवा को स्वच्छ समझना चाहिये और उसी स्वच्छ हवासे आरोग्यता रह सकती है ॥

हवाको विगाड़नेवाले कारण ॥

स्वच्छ हवा किस रीति से विगड़ जाती है–इस बात का जानना बहुत ही आवश्यक है, यह सब ही जानते हैं कि-प्राणों की स्थिति के लिये हवा की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि-प्राणों की स्थिति के लिये केवल हवा की ही आवश्यकता नहीं है किन्तु स्वच्छ हवाकी आवश्यकता है, क्योंकि–बिगड़ी हुई हवा विष से भी अधिक हानिकारक होती है, देखो! संसार में जितने विष हैं उन सब से भी अधिक हानिकारक विगड़ी हुई हवा है, क्योंकि इस (विगड़ी हुई) हवा से सहस्रों लक्षों मनुष्य एकदम मर जाते है, देखो! कुछ वर्ष हुए तब कलकत्ते के कारागृह की एक छोटी कोठरी में एक रात के लिये १४६ आदमियों कों बंद किया गया था उस कोठरी में सिर्फ दो छोटी २ खिड़की थी, जब सवेरा हुआ और कोठरी का दर्वाज़ा खोला गया तो सिर्फ २३ मनुष्य[1] जीते निकले, बाकी के सब मरे हुए थे, उन को किसने मारा? केवल खराब हवाने ही उन को मारा, क्योंकि हवा के कम आवागमन वाली वह छोटी सी कोठरी थी, उस में बहुत से मनुष्यों को भरदिया गया था, इस लिये उन के श्वास लेने के द्वारा उस कोठरी की

१–इस पर यदि कोई मनुष्य यह शंका करे कि–सिर्फ २३ मनुष्य भी क्यों जीते निकले, तो इस का उत्तर यह है कि–१४६ आदमियों के होने से श्वास लेनेके द्वारा उस कोठरीकी हवा बिगड़ गई थी, जब उन में से १२३ मर गये, सिर्फ २३ आदमी बाकी रह गये, तब-२३ के वास्ते वह स्थान श्वास लेने के लिये काफी रह गया, इसलिये वे २३ आदमी बच गये ॥

हवा के बिगड़ जाने से उन का प्राणान्त होगया, इसी प्रकार से अस्वच्छ हवा के द्वारा अनेक स्थानों में अनेक दुर्घटनायें हो चुकी है, इस के अतिरिक्त हवा के. विकृत होने से अर्थात् स्वच्छ और ताजी हवा के न मिलने से बहुत से मनुष्य यावज्जीवन निर्बल और बीमार रहते हैं, इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि–हवा के बिगाड़नेवाले कारणों को जान कर उन से बचाव रख कर सदा स्वच्छ हवा का ही सेवन करे जिस से आरोग्यता में अन्तर न पड़ने पावे. हवा को बिगाड़ने वाले मुख्य कारण ये हैं:—

१–श्वास के मार्ग से निकलने वाली अशुद्ध हवा स्वच्छ हवा को विगाड़ती है, देखो! हम सब लोग सदा श्वास लेते हैं अर्थात् नासिका के द्वारा स्वच्छ वायु को खींच कर भीतर ले जाते और भीतर की विकृत वायु को बाहर निकालते है, उसी निकली हुई विकृत वायु के संयोग से बाहर की स्वच्छ हवा बिगड़ जाती है और वही बिगड़ी हुई हवा जब श्वास के द्वारा भीतर जाती है तब हानिकारक होती है अर्थात् आरोग्यता को नष्ट करती है, यद्यपि मनुष्य अपनी आरोग्यता को स्थिर रखने के लिये प्रतिदिन शरीर की सफाई आदि करते है–अर्थात् रोज़ नहाते है और मुख तथा हाथ पैर आदि अंगों को खूब मल मल कर धोते हैं, परन्तु शरीर के भीतर की मलीनता का कुछ भी विचार नही करते हैं, यह अत्यन्त शोक का विषय है, देखो! श्वासोच्छ्वास के द्वारा जो हवा हम लोग अपने भीतर ले जाते है वह हवा शरीर के भीतरी भाग को साफ करके मलीनता को बाहर ले जाती है अर्थात् श्वास के मार्ग से बाहर निकली हुई हवा अपने साथ तीन वस्तुओं को बाहर ले जाती है, वे तीनों वस्तुयें ये है—१–कार्बोनिक एसिड ग्यॅस, २–हवामें मिला हुआ पानी और तीसरा दुर्गन्धयुक्त मैल, इन में से जो पहिली वस्तु (कार्बोनिक एसिड ग्यॅस) है वह स्वच्छ हवा में बहुत ही थोड़े परिमाण में होती है, परन्तु जिस हवा को हम अपने श्वास के मार्ग से मुँह में से बाहर निकालते है उस में वह ज़हरीली हवा सौगुणा विशेष परिमाण में होती है परन्तु वह सूक्ष्म होने से दीखती नहीं है, किन्तु जैसे–अग्नि में से धुँआ निकलता जाता है उसी प्रकार से हम सब भी उस को अपने में से बाहर निकालते जाते है तथा जैसे–एक सँकड़ी कोठरी में जलता हुआ चूल्हा रख दिया जावे तो वह कोठरी शीघ्र ही धुँए से व्याप्त हो जायगी और उस में स्वच्छ हवा का प्रवेश न हो सकेगा, इसी प्रकार यदि कोई किसी सँकड़ी कोठरी के भीतर सोवे तो उस के मुँह में से निकली हुई अस्वच्छ

१–इसी लिये योगविद्या के तथा स्वरोदय ज्ञान के वेत्ता पुरुष इसी श्वास के द्वारा कोई २ नेती, धोती और वस्ति आदि क्रियाओं को करते हैं, किन्तु जिन को पूरा ज्ञान नहीं हुआ है–वे कभी २ इस क्रिया से हानि भी उठाते हैं, परन्तु जिन को पूरा ज्ञान होगया है वे तो श्वासके द्वारा ही सब प्रकार के रोगों को भी मिटा देते हैं ॥

हवा के संयोग से उस के आसपास की सब हवा भी अस्वच्छ हो जायगी और उस कोठरी में यदि स्वच्छ और ताज़ी हवाके आने जाने का खुलासा मार्ग न होगा तो उस के मुँह में से-निकली हुई वही ज़हरीली हवा फिर भी उसी के श्वास के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट होगी और ऐसा होने से शीघ्रही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा, अथवा उसके शरीर को अन्य किसी प्रकार की बहुत बड़ी हानि पहुँचेगी, परन्तु यदि मकान बड़ा हो तथा उस में खिड़कियां और बड़ा द्वार आदि हवा के आने जाने का मार्ग ठीक हो तो उस में सोने से मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि उन खिड़कियों और बड़े दर्वाज़े आदि से अस्वच्छ हवा बाहर निकल जाती और स्वच्छ हवा भीतर आ जाती है, इसीलिये वास्तु शास्त्रज्ञ (गृह विद्या के जानने वाले) जन सोने के मकानों में हवा के ठीक रीति से आने जाने के लिये खिड़की आदि रखते हैं।

श्वास के मार्ग से बाहर निकलती हुई हवा का दूसरा पदार्थ आर्द्रता (गीलापन वा पानी) है, इस हवा में पानी का भाग है या नहीं, इस का निश्चय करने के लिये स्लेट आदि पर अथवा राजस चाकू पर यदि श्वास छोड़ा जावे तो वह (स्लेट आदि) आर्द्रता से युक्त हो जावेगी, इस से सिद्ध है कि–श्वास की हवा में पानी अवश्य है।

तीसरा पदार्थ उस हवा में दुर्गन्ध युक्त मैल है अर्थात्–श्वास का जो पानी स्वच्छ नहीं होता है वह वर्चनों के धोवन के समान मैला और गन्दा होताहै उसी में सड़े हुए कई पदार्थ मिले रहते हैं, यदि उस को शरीर पर रहने दिया जावे तो वह रोगको उत्पन्न करता है अर्थात् श्वास की हवा में स्थित वह मलीन पदार्थ हवा के समान ही खराबी करता है, देखो! जो कई एक पेशे वाले लोग हरदम वस्त्र से अपने मुखको बांधे रहते है, वह (मुख का बांधना) रसायनिक योग से बहुत हानि करता है अर्थात्-मुँह पर दाग हो जाते है, मुँहके बाल उड़ जाते है, श्वास व कास रोग हो जाता है, इत्यादि अनेक खराबियां हो जाती है, इस का कारण केवल यही है कि–मुँह के बँधे रहने से विषैली हवा अच्छे प्रकार से बाहर नहीं निकलने पाती है।

प्रायः देखा जाता है कि-दूसरे मनुष्य के मुँह से पिये हुए पानी के पीने में बहुत से मनुष्य गन्दगी और अपवित्रता समझते है और इसी से वे दूसरे के जूठे पानी को पिया भी नहीं करते है, सो यह वेशक बहुत अच्छी बात है, परन्तु वे लोग यह नहीं जानते हैं कि–दूसरे के पिये हुए जल के पीने में अपवित्रता क्यों रहती है और किस लिये उसे नहीं पीना चाहिये, इस में अपवित्रता केवल यही है कि–एक मनुष्य के पीते समय उस के श्वास की हवा में स्थित दुर्गन्ध युक्त मैल श्वास के मार्ग से निकल कर उस पानी में समा गया है, इसी प्रकार से सँकड़े कोठे आदि मकान में बहुत से मनुष्यों के इकट्ठे होने से एक दूसरे के फेफसे से निकली हुई अशुद्ध हवा और गन्दे पदार्थों को वारंवार सब मनुष्य

अपने मुँह में श्वास के मार्ग से लेते है कि–जिस से जूठे पानी की अपेक्षा भी इससे अधिक खराबी उत्पन्न हो जाती है, एवं गाय, बैल, बकरे और कुत्ते आदि जानवर भी अपने ही समान श्वास के संग ज़हरीली हवा को बाहर निकालते हैं और शुद्ध हवा को विगाड़ते हैं ॥

२–त्वचा में से छिद्रों के मार्ग से पसीने के रूप में भी परमाणु निंकलते हैं वे भी हवा को विगाड़ते हैं ॥

३–वस्तुओं के जलाने की क्रिया से भी हवा विगड़ती है, बहुत से लोग इस बात को सुन के आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि जहां जलता हुआ दीपक रक्खा जाता है अथवा जलाने की क्रिया होती है वहां की हवा तो उलटी शुद्ध हो जाती है वहां की हवा बिगड़ कैसे जाती है क्योंकि–प्राण वायु के विना तो अंगार सुलगेगा ही नहीं इत्यादि, परन्तु यह उन का भ्रम है–क्योंकि–देखो दीपक को यदि एक सँकड़े वासन में रक्खा जाता है तो वह दीपक शीघ्र ही बुझ जाता है, क्योंकि–उस बासन का सब प्राणवायु नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार सँकड़े घर में भी बहुत से दीपक जलाये जावें अथवा अधिक रोशनी की जावे तो वहां का प्राणवायु पूरा होकर कार्बोनिक एसिड ग्यस (ज़हरीली वायु) की विशेषता हो जाती है तथा उस घर में रहने वाले मनुष्यों की तबीयत को बिगाड़ती है, परन्तु ऐसी बातें कुछ कठिन होने के कारण सामान्य मनुष्योंकी समझ में नहीं आती है और समझ में न आने से वे सामान्य बुद्धि के पुरुष हवा के बिगड़ने के कारण को ठीक रीति से नहीं जाँच सकते हैं और संकीर्ण स्थान में सिगड़ी और कोयले आदि जला कर प्राणवायु को नष्ट कर अनेक रोगों में फँस कर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगा करते है ॥

सम्पूर्ण प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि–सड़ी हुई वस्तु से उड़ती हुई ज़हरीली तथा दुर्गन्ध युक्त हवा भी स्वच्छ हवा को बिगाड़कर बहुत खराबी करती है, देखो! जब वृक्ष अथवा कोई प्राणी नष्ट हो जाता है तब वह शीघ्र ही सड़ने लगता है तथा उस के सड़ने से बहुत ही हानिकारक हवा उड़ती है और उस के रजःकण पवन के द्वारा दूरतक फैल जाते है, इस पर यदि कोई यह कहे कि–सड़ी हुई वस्तु से निकल कर हवा के द्वारा कोसों तक फैलते हुए वे परमाणु दीखते क्यों नहीं हैं! तो इस का उत्तर यह है कि–यदि अपनी आँखें अपनी सूँघने की इन्द्रिय के समान ही तीक्ष्ण होतीं तो सड़ते हुए प्राणी में

१–प्रत्येक मनुष्य के शरीर में से २४ घण्टे में अनुमान से ३० औंस पसीने के परमाणु बाहर निकलते हैं ॥

२–इसी लिये जैन सूत्र कारों ने जिस घर में मुर्दा पडा हो उस के संलग्न में सौ हाथ तक सूतक माना है, परन्तु यदि बीच में रास्ता पडा हो तो सूतक नहीं मानाहै, क्योंकि–बीच में रास्ता होने से दुर्गन्ध के परमाणु हवा से उड़ कर कोसों दूर चले जाते हैं ॥

से उड़ कर ऊँचे चढ़ते हुए और हवामें फैलते हुए संख्यावन्ध नाना जन्तु अपने को अवश्य दीख पड़ते, परन्तु अपने नेत्र वैसे तीक्ष्ण नहीं है, इस लिये वे अपने को नहीं दीखते हैं, हां ऐसी हवा में होकर जाते समय अपनी नाक के पास जो वास आती हुई मालूम पड़ती है वह और कुछ नहीं है किन्तु सड़े हुए प्राणी आदि में से उड़ते हुए वे सूक्ष्म जन्तु अर्थात् छोटे २ जीव ही है, यह बात आधुनिक (वर्तमान) डाक्टर लोग कहते हैं तथा जैन पन्नवणा सूत्र में भी यही लिखा है कि–दश स्थान ऐसे है जिन से दुर्गन्ध युक्त हवा निकलती है, जैसे–मुर्दे, वीर्य, खून, पित्त, खँखार, थूक, मोहरी तथां मल मूत्र आदि स्थानों में सम्मूर्छिम अंगुल के असंख्यातवें भाग के समान छोटे २ जीव होते हैं, जिन को चर्म नेत्रवाले नहीं देख सकते है किन्तु सर्वज्ञ ने केवल ज्ञान के द्वारा जिन को देखा था, ऐसे असंख्य जीव अन्तर्मुहूर्त के पीछे उत्पन्न हो ते है, ये ही जन्तु श्वास के मार्ग से अपने शरीर में प्रवेश करते हैं, इसी प्रकार घर में शाक तरकारी का छिलका तथा कूड़ा कर्कट आदि आंगन में अथवा घर के पास फैंक २ कर जमा कर दिया जाता है तो वह भी हवा को विगाड़ता है, चमार, कसाई, रंगरेज़ तथा इसी प्रकार के दूसरे धन्धेवाले अन्य लोग भी अपने २ धन्धे से हवा को विगाड़ते हैं, ऐसे स्थानों में हो कर निकलते समय नाक और मुँह आदि को बन्द कर के निकलना चाहिये ॥

४–मुर्दों के दावने और जलाने से भी हवा विगड़ती है, इस लिये मुर्दों के दावने और जलाने का स्थान वस्ती से दूर रहना चाहिये, इस के सिवाय पृथ्वी स्वयं भी वाफ अथवा सूक्ष्म परमाणुओं को बाहर निकालती है तथा उसमें थोड़ी वहुत हवा भी प्रविष्ट होती है और यह हवा ऊपर की हवा के साथ मिल कर उसको विगाड़ देती है, जब पृथ्वी दरार वाली होती है तव उस में से सड़े हुए पदार्थों के परमाणु विशेष निकलकर अत्यन्त हानि पहुँचातेहैं।

सड़ता हुआ या भीगा हुआ भाजी पाला बहुधा ज्वर के उपद्रव का मुख्य कारण होता है ॥

५–घर की मलीनता से भी खराब हवा उत्पन्न होती है और मलीनता के स्थान कुँए के

१–इस बात को प्राचीन जनों ने तो शास्त्र सम्मत होने से माना ही है–किन्तु अर्वाचीन विद्वान् डाक्टरोंने भी इस को प्रत्यक्ष प्रमाण रूपमें स्वीकार किया है ॥

२–देखो! विपाक सूत्र में–गौतम गणधर ने मृगा लोढ़े की दुर्गन्धि के विषय में नाक और मुँह को मुखवस्त्रिका (जो हाथ में थी) से मृगारानी के कहने से ढँका था, यह लिखा है ॥

३–इस बात का हम ने मारवाड देश में प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि–जब वहुत वृष्टि होकर ककड़ी मतीरे और टींडसे आदि की वेले आदि सडती हैं तव जाट आदि ग्रामीणों को शीतज्वर हो जाता है तथा जब ये चीजें शहर में आकर पडी २ सड़ती हैं तव हवा में ज़हर फैल कर शहरवालो को शीतज्वर आदि रोग हवा के विगडने से हो जाते हैं ॥

पनघट, मोहरी, नाली, पनाले और पाखाना आदि है, इस लिये इन को नित्य साफ और सुथरे रखना चाहिये ॥

६–कोयले की खानें, लोह के कारखाने, रुई ऊन और रेशम बनने की मिलें तथा धातु और रंग बनाने के कारखाने आदि अनेक कार्यालयों में भी हवा विगड़ती है, यह तो प्रत्यक्ष ही देखा गया है कि–इस प्रकार के कारखानों में कोयलों, रुई और धातुओं के सूक्ष्म रजःकण उड़ २ कर काम करनेवालों के शरीर में जाकर बहुधा उन के श्वास की नली के, फेफड़े के और छाती के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥

७–चिलम, हुक्का और चुरटों के पीने से भी हवा विगड़ती है अर्थात्–यह जैसे पीनेवालों की छाती को हानि पहुँचाता है, उसी प्रकार से बाहर की हवा को भी विगाड़ता है, यद्यपि वर्त्तमान समय में इस का व्यसन इस आर्यावर्त्त देशमें प्रायः सर्वत्र फैल रहा है, किन्तु–दक्षिण, गुजरात और मारवाड़में तो यह अत्यन्त फैला हुआ है कि–जिस से वहां अनेक प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं ॥

इन कारणों के सिवाय हवा के विगड़ने के और भी बहुत से कारण हैं जिन को विस्तार के भय से नही लिख सकते, इन सब बातों को समझ कर इन से बचना मनुष्य को अत्यावश्यक है और इन से बचना मनुष्य के स्वाधीन भी है, क्योंकि–देखो। अपने २ कर्मोंकी विचित्रता से जो बुद्धि मनुष्यों ने पाई है उस का ठीक रीति से उपयोग न कर पशुओं के समान जन्म को विताना तथा दैव[1] का भरोसा रखना आदि अनेक बातें मनुष्यों को परिणाम में अत्यन्त हानि पहुँचाती है, इस लिये सुज्ञों (समझदारों) का यह धर्म है कि–हानिकारक बातों से पहिले ही से बच कर चलें और अपनी आरोग्यता को कायम रख कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करें, क्योंकि–हानिकारक बातों से बचकर जो मनुष्य नहीं चलते है उन को अपने किये हुए कुकर्मों का फल ऐसा मिलता है कि–उन को जन्मभर रोते ही बीतता है, इस प्रकार से अनेक कष्टरूप फल को भोगते २ वे अपने अमूल्य मनुष्यजन्म को कास श्वास और क्षय आदि रोगों में ही बिता कर आधी उम्र में ही इस संसार से चले जाकर अपनी स्त्री और बाल बच्चों आदि को अनाथ छोड़ जाते है, देखो। इस बात को अनेक अनुभवी वैद्यों और डाक्टरों ने सिद्ध कर दिया है कि–गांजा सुलफे के पीने वाले सैकड़ों हजारों आदमी आधी उम्र में ही मरते है[2]।

देखो! जिस पुरुष ने इस संसार में आकर विद्या नही पढी, धन नहीं कमाया, देश जाति और कुटुम्ब का सुधार नहीं किया और न परभव के साधन रूप ज्ञानसे युक्त व्रत

१ दैव का भरोसा रखने वाले जन यह नहीं विचारते हैं कि–हमारे कर्मोंने आगे को बिगाड होने के लिये ही हमारी समझमेंसे सदुद्यम की बुद्धि को हर लिया है ॥

२–दश बारह युवा पुरुषों को तो हम ने अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष ही महा दुर्दशा में मरते देखा है ॥

नियम आदि का पालन ही किया, उस मनुष्य ने जन्म लेकर पशुओं के समान ही पृथिवी को भार युक्त किया और अपनी माता के यौवनरूपी वन को काटने के लिये कुठार (कुल्हाड़ा) कहलाने के सिवाय और कुछ भी नहीं किया ॥

स्वभावजन्य अर्थात् कुदरती नियम से होने वाली हवा की शुद्धि ॥

प्रिय पाठक गण ! पांचों समवायों के योग से प्रथम तो विगड़ती हुई हवा को वन्द करने में (रोकने में) मनुष्यों का उद्यम है, उसी प्रकार से काल आदि चारों समवायों के मिलने से भी हवा को साफ करने का पूरा साधन उपस्थित है, यदि वह न होता तो सृष्टि में उत्पत्ति और स्थिति भी कदापि नही हो सकती ।

जिस प्रकार से ये साधन इन ही समवायों से विगड़ कर प्राणियों का प्रलय करते हैं– उसी प्रकार से ये ही पांचों समवाय परस्पर मिलने से विगड़ी हुई हवा को साफ भी करते है, किन्हीं लोगों ने इन्हीं समवायों के सम्बंध को ईश्वर मान लिया है, अस्तु, हवा में चलनस्वभाव रूप धर्म है उसी से वह विगड़ी हुई हवा को अपने झपटे से खींच कर ले जाती है अर्थात् उस के झपटे से दुष्ट परमाणु छिन्न भिन्न हो जाते हैं और ताज़ी हवा के न मिलने से जितनी हानि पहुँचने को थी उतनी हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि–ऊपर लिखी हुई वह हवा एक दूसरे के संग इस प्रकार से मिल जाती है जैसे थोड़ा सा दूध पानी में मिलानेसे विलकुल एकमेक (तत्स्वरूप) हो जाता है तथा जिस प्रकार से पवन का वेग होने पर चूल्हे का धुँआ छिन्न भिन्न होकर थोड़ी देर पीछे नहीं दीखता है उसी प्रकार श्वास आदि के लेने से विगड़ी हुई सव हवा भी उसी झपटे से छिन्न भिन्न होकर अधिक परिमाणवाली स्वच्छ हवा में मिलकर पतली हो जाती है इसी लिये वह कम हानि पहुँचाती है ।

हवा किसी समय अधिक और किसी समय कम चलती है, क्योंकि–हवा में वैक्रिय शरीर के रचने का स्वभाव है, जिस समय मन को प्रसन्न करने वाली ताज़ी हवा चलती

१–शास्त्रों में लिखा है कि "प्रसूतान्ते यौवन गतम्" अर्थात स्त्री के सन्तान होने के पीछे उसका यौवन चला जाता है ॥

२–इस का उदाहरण यह है कि–जैसे देखो । कृष्णमहाराज एक थे परन्तु सव रानियों के महलों मे नारदजीने उनको देखाथा, इस का कारण यही था कि–वे वैक्रिय शरीर की रचना कर लेते थे, यदि किसी को इस विषय मे शंका हो तो वैक्रिय रचना के इस दृष्टान्त से शका निवृत्त हो सकती है कि–जैसे पुरुषचिन्ह पड़ी दशा मे केवल दो अगुल का होता है परन्तु देखो । वही तेज़ी की दशा में कितना वढ़ जाता है, इसी प्रकार से वायु भी वैक्रिय शरीर की रचना करता है, अथवा दूसरा दृष्टान्त यह भी है कि–जैसे किरडा जानवर अनेक प्रकार के रग वदलता है उसी प्रकार की वैक्रिय शरीर की भी शक्ति जाननी चाहिये ॥

है तब उस के चलने से बिगड़ी हुई हवा भी छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाती है अर्थात् सब वायु स्वच्छ रहती है, उस समय प्राणी मात्र श्वास लेते हैं तो प्राणवायु को ही भीतर लेते है और कार्बोनिक एसिड ग्यॅस को बाहर निकालते हैं, परन्तु वृक्ष और वनस्पति आदि इस से विपरीत क्रिया करते है अर्थात् वृक्ष और वनस्पति आदि दिन को कार्बन को अपने भीतर चूस लेते है तथा प्राणवायु को बाहर निकालते है, इस से भी वायु के आवरण की हवा शुद्ध रहती है अर्थात् दिन को वृक्षों की हवा साफ होती है और रात को उक्त वनस्पति आदि प्राणवायु को अपने भीतर खींचते है और कार्बोनिक एसिड ग्यॅस को बाहर निकालते है, परन्तु इस में भी इतना फर्क है कि–रात को जितनी प्राणवायु को वनस्पति आदि अपने भीतर खीचते है उस की अपेक्षा दिन में प्राणवायु को अधिक निकालते है, इस लिये रात को वृक्षों के नीचे कदापि नहीं सोना चाहिये, क्योंकि रात को वृक्षों के नीचे सोने से आरोग्यता का नाश होताहै[1]।

इस प्रकार से ऊपर कही हुई हवा एक दूसरे के साथ मिलने से अर्थात् पवन और वृक्षों से संग होने से साफ होती है, इस के सिवाय बरसात भी हवा को साफ करने में सहायता देती है।

इस प्रकार से हवा की शुद्धि के सब कारणों को जानकर सर्वदा शुद्ध हवा का ही सेवन करना चाहिये, क्योंकि–शुद्ध हवा बहुत ही अमूल्य वस्तु है, इसी लिये सद् वैद्यों का यह कथन है कि–"सौ दवा और एक हवा[2]" इस लिये स्वच्छ हवा के मिलने का यत्न सदैव करना चाहिये।

वस्ती की हवा दबी हुई होती है, इस लिये–सदा थोड़े समय तक बाहर की खुली हुई स्वच्छ हवा को खाने के लिये जाना चाहिये, क्योंकि इस से शरीर को बहुत ही लाभ पहुँचता है तथा फिरने से शरीर के सब अवयवों को कसरत भी मिलती है, इसलिये ताजी हवा का खाना कसरत से भी अधिक फायदेमन्द है।

यद्यपि दिन में तो चलने फिरने आदि से मनुष्यों को ताजी हवा मिल सकती है परन्तु रात को घर में सोने के समय साफ हवा का मिलना इमारत बनाने वाले चतुर कारीगर और वास्तुशास्त्र को पढे हुए इञ्जीनियरों के हाथ में है, इसलिये अच्छे २ चतुर इञ्जीनियरों की सम्मति से सोने बैठने आदि के सब मकान हवादार बनवाने चाहियें, यदि

१–देखो। जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरिकृत विवेकविलासादि ग्रन्थों में रात को वृक्षों के नीचे सोने का अत्यन्त ही निषेध लिखा है तथा इस बात को हमारे देश के निवासी ग्रामीण पुरुष तक जानते है और कहते है कि–रात को वृक्ष के नीचे नहीं सोना चाहिये, परन्तु रात को वृक्षो के नीचे क्यों नहीं सोना चाहिये, इस का कारण क्या है, इस बात को विरले ही जानते हैं॥

२–अर्थात् शुद्ध हवा सौ दवाओ के तुल्य है॥

पूर्व समय के अनभिज्ञ कारीगरों के बनाये हुए मकान हों तो उन को सुधरा कर हवादार कर लेना चाहिये ।

यद्यपि उत्तम मकानों का बनवाना आदि कार्य द्रव्य पात्रों से निभ सकता है, क्योंकि उत्तम मकानों के बनवाने में काफी द्रव्य की आवश्यकता होती है तथापि अपनी हैसियत और योग्यता के अनुसार तो यथाशक्य इस के लिये मनुष्यमात्र को प्रयत्न करना ही चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—मलीन कचरे और सड़ती हुई चीजों से उड़ती हुई मलीन हवा से प्राणी एकदम नहीं मरता है परन्तु उसी दशा में यदि बहुत समय तक रहा जावे तो अवश्य मरण होगा ।

देखो । यह तो निश्चित ही बात है कि—बहुत से आदमी प्रायः रोग से ही मरते हैं, वह रोग क्यों होता है, इस बात का यदि पूरा २ निदान किया जावे तो अवश्य यही ज्ञात होगा कि—बहुत से रोगों का मुख्य कारण खराब हवा ही है, जिस प्रकार से अति कठिन विष पेट में जाता है तो प्राणी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है और अफीम आदि विष धीरे २ सेवन किये हुए भी कालान्तर में हानि पहुँचाते हैं, इसी प्रकार से सदा सेवन की हुई थोड़ी २ खराब हवा का भी विष शरीर में प्रविष्ट होकर बड़ी हानि का कारण बन जाता है ।

यह भी जान लेना चाहिये कि—बीमार आदमी के आस पास की हवा जल्दी बिगड़ती है, इस लिये बीमार आदमी के पास अच्छे प्रकार से साफ हवा आने देना चाहिये, जिस प्रकार से शरीर के बाहर ताज़ी हवा की आवश्यकता है उसी प्रकार शरीर के भीतर भी ताज़ी हवा लेने की सदा आवश्यकता रहती है, जैसे बादली का अथवा कपड़े का टुकड़ा मुलायम हाथ से पकड़ा हुआ हो तो वह बहुत पानी को चूसता है तथा दबा कर पकड़ा हुआ हो तो वह टुकड़ा कम पानी को चूसता है, बस यही हाल भीतरी फेफड़े का है अर्थात् यदि फेफड़ा थोड़ा दबा हुआ हो तो उस में अधिक हवा प्रवेश करती है और उस से खून अच्छी तरह से साफ होता है, इस लिये लिखने पढ़ने और बैठने आदि सब कामों के करते समय फेफड़ा बहुत दब जावे इस प्रकार से टेढ़ा बांका हो कर नहीं बैठना चाहिये, इस बात को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये, क्योंकि—फेफड़े पर दबाव पड़ने से उस के भीतर अधिक हवा नहीं जा सकती है और अधिक हवा के न जाने से अनेक बीमारियां हो जाती हैं ॥

१—देखो । जैनसूत्रो में यह कहा है कि—उपक्रम लग कर प्राणी की आयु टूटती है और उस (उपक्रम) के मुख्यतया सौ भेद हैं, किन्तु निश्चय मृत्यु एक ही है, उस उपक्रम के भी ऐसे २ कारण हैं कि जिन को अपने लोग प्रत्यक्ष नहीं देख सकते और न जान सकते हैं ॥

२—यह नहीं समझना चाहिये कि—अफीम आदि विष धीरे २ तथा थोडा २ सेवन करने से हानि नहीं करते है किन्तु वे भी समय पाकर कठिन विष के समान ही असर करते हैं ॥

प्रति मनुष्य हवा की आवश्यकता ॥

प्रत्येक मनुष्य २४ घण्टे में सामान्यतया ४०० घन फीट हवा श्वासोच्छ्वास में लेता है तथा शरीर के भीतर का हिसाब यह है कि–सात फीट लम्बी, सात फीट चौड़ी और सात फीट ऊंची एक कोठरी में जितनी हवा समा सके उतनी हवा एक आदमी हमेशा फेफड़े में लेता है, श्वासोच्छ्वास के द्वारा ग्रहण की जाती हुई हवा में कार्बोनिक एसिड ग्यॅस के (हानिकारक पदार्थ के) हज़ार भाग साफ हवा में चार से दश तक भाग रहते हैं, परन्तु जो हवा शरीर से बाहर निकलती है उस के हजार भागों में कार्बोनिक एसिड ग्यॅस के ४० भाग है अर्थात् ढाई हज़ार भागों में सौगुणा भाग है, इस से सिद्ध हुआ कि–अपने चारों तरफ की हवा अपने ही श्वास से विगड़ती है, अब देखो। एक तरफ तो जहरीली हवा को वनस्पति चूस लेती है और दूसरी तरफ वातावरण की ताज़ी हवा उस हवा को खींच कर ले जाती है, परन्तु मकान में हवा के आने जाने का यदि मार्ग न हो तो स्वभाव से ही अनुकूल भी समवाय प्रतिकूल (उलटे) हो जाते हैं, इस लिये प्रत्येक आदमी को ७ से १० फीट चौरस स्थान की अथवा खन की आवश्यकता है, यदि उतने ही स्थान में एक से अधिक आदमी बैठें या सोवें तो उस स्थान की हवा अवश्य विगड़ जावेगी।

अब यह भी जान लेना आवश्यक (ज़रूरी) है कि–हवा के गमनागमन पर स्थान के विस्तार का कितना आधार है, देखो। यदि हवा का अच्छे प्रकार से गमनागमन (आना जाना) हो तो संकीर्ण (सँकड़े) स्थान में भी अधिक मनुष्य भी सुख से रह सकते हैं, परन्तु यदि हवा के आने जाने का पूरा खुलासा मार्ग न हो तो बड़े मकान तथा खासे खण्ड में भी रहनेवाले मनुष्यों को आवश्यकता के अनुसार सुखकारक हवा नहीं मिल सकती है।

ताज़ी हवा के आवागमन का विशेष आधार घर की रचना और आस पास की हवाके ऊपर निर्भर है, घर में खिड़की और दर्वाजे आदि काफी तौर पर भी रक्खे हुए हों परन्तु यदि अपने घर के आस पास चारों तरफ दूसरे घर आगये हों तो घर में ताज़ी हवा और प्रकाश की रुकावट (अटकाव) होती है, इस लिये घर के आस पास से यदि हवा मिलने की पूरी अनुकूलता न हो तो घर के छप्परों में से ताज़ी हवा आ जा सके ऐसी युक्ति करनी चाहिये।

अपना मुख स्वच्छ होने पर भी दूसरों को उस (अपने मुख) से कुछ खराब बास निकलती हुई मालूम पड़ती है, वह श्वासोच्छ्वास के द्वारा भीतर से बाहर को आती हुई खराब हवा की बास होती है, इसी खराब हवा से घर की हवा विगड़ती है तथा बहुत से मनुष्यों के इकट्ठे होने से जो घबड़ाहट होती है वह भी इसी हवा के कारण से हुआ

करती है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि—उस जनसमूह के द्वारा विगड़ी हुई उस खराव हवा में से निकल कर जब बाहर खुली हवा में जाते है तब वह घबड़ाहट दूर हो कर मन प्रफुल्लित होता है, इस बात का अनुभव प्रत्येक मनुष्य ने किया होगा तथा कर भी सकता है।

घर की हवा शुद्ध है अथवा विगड़ी हुई है, इस का निश्चय करने के लिये सहज उपाय यही है कि—बाहर की शुद्ध खुली हुई हवा में से घर में जाने पर यदि कुछ मन को वह हवा अच्छी न लगे अर्थात् मन को अच्छी न लगने वाली कुछ दुर्गन्धिसी मालूम पड़े तो समझ लेना चाहिये कि—घर के भीतर की हवा चाहिये जैसी शुद्ध नही है; शुद्ध वातावरण की हवा के १००० भागों में $\frac{४}{१०}$ भाग कार्बोनिक एसिड ग्यॅस का है; यदि घर की हवा में यह परिमाण कुछ अधिक भी हो अर्थात् $\frac{६}{१०}$ तक हो तब तक आरोग्यता को हानि नहीं पहुँचती है परन्तु यदि इस परिमाण से एक अथवा इस से भी विशेष भाग बढ़ जावे तो उस हवावाले मकान में रहनेवाले मनुष्यों को हानि पहुँचती है, इस हानिकारक हवा का अनुमान बाहर से घर में आने पर मन को अच्छी न लगनेवाली दुर्गन्धि आदि के द्वारा ही हो सकता है॥

यह चतुर्थ अध्याय का वायुवर्णन नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त हुआ॥

तृतीय प्रकरण—जल वर्णन॥

पानी की आवश्यकता॥

जीवन को कायम रखने के लिये आवश्यक वस्तुओं में से दूसरी वस्तु पानी है, वह पानी जीवन के लिये अपने उसी प्रवाही रूप में आवश्यक है यह नहीं समझना चाहिये किन्तु—खाने पीने आदि के दूसरे पदार्थों में भी पानी के तत्व रहा करते है जो कि पानी की आवश्यकता को पूरा करते हैं, इस से यह बात और भी प्रमाणित होती है कि जीवन के लिये पानी बहुत ही आवश्यक वस्तु है, देखो। छोटे बालकों का केवल दूध से ही पोषण होता है वह केवल इसी लिये होता है कि—दूध में भी पानी का अधिक भाग है, केवल यही कारण है कि—दूधसे पोषण पानेवाले उन छोटे बालकों को पानी की आवश्यकता नहीं रहती है, इस के सिवाय अपने शरीर में स्थित रस रक्त और मांस आदि धातुओं में भी मुख्य भाग पानी का है, देखो। मनुष्य के शरीर का सरासरी वज़न यदि ७५ सेर गिना जावे तो उस में ५६ सेर के क़रीब पानी अर्थात् प्रवाही तत्त्व माना जायगा, इसी प्रकार जिस धान्य और वनस्पति से अपने शरीर का पोषण होता है वह भी

पानी से ही पका करती है, देखो ! मलीनता बहुत से रोगों का कारण है और उस मलीनता को दूर करने के लिये भी सर्वोत्तम साधन पानी है ।

पानी की अमूल्यता तथा उस की पूरी कदर तब ही मालूम होती है कि–जब आवश्यकता होने पर उस की प्राप्ति न होवे, देखो। जब मनुष्य को प्यास लगती है तथा थोड़ी देर तक पानी नहीं मिलता है तो पानी के विना उस के प्राण तड़फने लगते हैं और फिर भी कुछसमय तक यदि पानी न मिले तो प्राण चले जाते हैं, पानी के विना प्राण किस तरहसे चले जाते हैं ? इसके विषय में यह समझना चाहिये कि–शरीर के सब अवयवों का पोषण प्रवाही रस से ही होता है, जैसे–एक वृक्ष की जड़ में पानी डाला जाता है तो वह पानी रसरूप में होकर पहिले बड़ी २ डालियों में, बड़ी डालियों में से छोटी २ डालियों में और वहां से पत्तों के अन्दर पहुँच कर सब वृक्ष को हरा भरा और फूला फला रखता है, उसी प्रकार पिया हुआ पानी भी खुराक को रस के रूप में बना कर शरीर के सब भागों में पहुँचा कर उन का पोषण करता है, परन्तु जब प्यासे प्राणी को पानी कम मिलता है अथवा नहीं मिलता है तब शरीर का रस और लोहू गाढ़ा होने लगता है तथा गाढ़ा होते २ आखिर को इतना गाढ़ा हो जाता है कि–उस (रस और रक्त) की गति बन्द हो जाती है और उस से प्राणी की मृत्यु हो जाती है, क्योंकि लोहू के फिरने की बहुत सी नलियां वाल के समान पतली है, उन में काफी पानी के न पहुँचने से लोहू अपने स्वाभाविक गाढ़ेपन की अपेक्षा विशेष गाढ़ा हो जाता है और लोहू के गाढ़े होजाने से वह (लोहू) सूक्ष्म नलियों में गति नहीं कर सकता है ।

यद्यपि पानी बहुत ही आवश्यक पदार्थ है तथा काफी तौर से उस के मिलने की आवश्यकता है परन्तु इस के साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि–जिस कदर पानी की आवश्यकता है उसी कदर निर्मल पानी का मिलना आवश्यक है, क्योंकि–यदि काफी तौर से भी पानी मिल जावे परन्तु वह निर्मल न हो अर्थात् मलीन हो अथवा विगड़ा हुआ हो तो वही पानी प्राणरक्षा के बदले उलटा प्राणहर हो जाता है इस लिये पानी के विषय में बहुत सी आवश्यक बातें समझने की हैं–जिन के समझने की अत्यन्त ही आवश्यकता है कि–जिस से खराब पानी से बचाव हो कर निर्मल पानी की प्राप्ति के द्वारा आरोग्यता में अन्तर न आने पावे, क्योंकि खराब पानी से कितनी बड़ी खराबी होती है और अच्छे पानी से कितना बड़ा लाभ होता है–इस बात को बहुत से लोग अच्छे प्रकार से नहीं जानते हैं किन्तु सामान्यतया जानते हैं, क्योंकि–मुसाफरी में जब कोई बीमार पड़ जाता है तब उस के साथवाले शीघ्र ही यह कहने लगते हैं कि–पानी के बदलने से ऐसा हुआ है, परन्तु बहुत से लोग अपने घर में बैठे हुए भी खराब पानी से बीमार पड़ जाते है और इस बात को उन में से थोड़े ही समझते है कि-खराब पानी से यह बीमारी

हुई है, किन्तु विशेष जनसमूह इस बात को बिलकुल नहीं समझता है कि–खराब पानी से यह रोगोत्पत्ति हुई है, इसलिये वे उस रोग की निवृत्ति के लिये मूर्ख वैद्यों से उपाय कराते २ लाचार होकर बैठ रहते हैं, इसी लिये वे असली कारण को न विचार कर दूसरे उपाय करते २ थक कर जन्म भर तक अनेक दुःखों को भोगते है ॥

पानी के भेद ॥

पानी का खारा, मीठा, नमकीन, हलका, भारी, मैला, साफ, गन्धयुक्त और गन्धरहित होना आदि पृथिवी की तासीर पर निर्भर है तथा आसपास के पदार्थों पर भी इस का कुछ आधार है, इस से यह बात सिद्ध होती है कि–आकाश के बादलों में से जो पानी बरसता है वह सर्वोत्तम और पीने के लायक है किन्तु पृथिवी पर गिरने के पीछे उस में अनेक प्रकार के पदार्थों का मिश्रण (मिलाव) होनेसे वह विगड़जाता है, यद्यपि पृथिवीपर का और आकाश का पानी एक ही है तथापि उस में भिन्न २ पदार्थों के मिल जाने से उस के गुण में अन्तर पड़ जाता है, देखो ! प्रतिवर्ष वृष्टि का बहुतसा पानी पृथ्वीपर गिरता है तथा पृथिवी पर गिरा हुआ वह पानी बहुत सी नदियों के द्वारा समुद्रोंमें जाताहै और ऐसा होनेपर भी वे समुद्र न तो भरते है और न छलकते ही हैं, इस का कारण सिर्फ यही है कि–जैसे पृथिवीपर का पानी समुद्रों में जाता है उसी प्रकार समुद्रों का पानी भी सूक्ष्म परमाणु रूप अर्थात् भाफ रूप में हो कर फिर आकाश में जाता है और वही भाफ बदल बन कर पुनः जल वर्फ अथवा ओले और धुँअर के रूप में हो जाती है, तालाव कुओं और नदियों का पानी भी भाफ रूपमें होकर ऊँचा चढ़ता है किन्तु खास कर उष्ण ऋतु में पानी में से वह भाफ अधिक बन कर बहुत ही ऊँची चढ़ती है, इसलिये उक्त ऋतु में जलाशयों में पानी बहुत ही कम हो जाता है अथवा बिलकुल ही सूख जाता है।

जब वृष्टि होती है तब उस (वृष्टि) का बहुत सा पानी नदियों तथा तालावों में जाता है और बहुत सा पानी पृथिवी पर ही ठहर कर आस पास की पृथिवी को गीली कर देता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु उस पृथिवी के समीपमें स्थित कुएँ और झरने आदि भी उस पानी से पोषण पाते हैं।

जहां ठंढ अधिक पड़ती है वहां बर्सात का पहिला पानी वर्फ रूप में जम जाता है तथा

१–क्योंकि–उन मूर्ख वैद्यों को भी यह बात नहीं मालूम होती है कि—पानी की खराबी से यह रोगोत्पत्ति हुई है ॥

२–वृष्टि किस २ प्रकार से होती है इस का वर्णन श्रीभगवती सूत्रमें किया है, वहा यह भी निरूपण है कि–जल की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का जो प्रकार है वही प्रकार सब जड़ और चेतन पदार्थों का जान लेना चाहिये, क्योंकि द्रव्य नित्य है तथा गुण भी नित्य है परन्तु पर्याय अनित्य है ॥

गर्मी की ऋतु में वह बर्फ पिघल कर नदियों के प्रवाह में बहने लगती है, इसी लिये गङ्गा आदि नदियों में चौमासे में खूब पूर (बाढ़) आती है तथा उस समय में तालाव और कुँओं का भी पानी ऊँचा चढ़ता है तथा ग्रीष्म में कम हो जाता है, इस प्रकार से पानी के कई रूपान्तर होते है।

वरसात का पानी नदियों के मार्ग से समुद्र में जाता है और वहां से भाफ रूप में होकर ऊँचा चढता है तथा फिर वही पानी वरसात रूप में हो कर पृथिवी पर वरसता है, बस यही क्रम संसार में अनादि और अनन्त रूप से सदा होता रहता है।

पानी के यद्यपि सामान्यतया अनेक[1] भेद माने गये हैं तथापि मुख्य भेद तो दो ही हैं अर्थात् अन्तरिक्षजल और भूमिजल, इन दोनों भेदों का अब संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

अन्तरिक्षजल—अन्तरिक्षजल उस को कहते है कि—जो आकाश में स्थित वरसात का पानी अधर में ही छान कर लिया जावे ॥

भूमिजल—वही वरसात का पानी पृथिवी पर गिरने के पीछे नदी कुआ और तालाव में ठहरता है, उसे भूमिजल कहते हैं ॥

इन दोनों जलों में अन्तरिक्षजल उत्तम होता है, किन्तु अन्तरिक्षजल में भी जो जल आश्विन मास में वरसता है उस को विशेष उत्तम समझना चाहिये, यद्यपि आकाश में भी बहुत से मलीन पदार्थ वायु के द्वारा घूमा करते हैं तथा उन के संयोग से आकाश के पानी में भी कुछ न कुछ विकार हो जाता है तथापि पृथिवी पर पड़े हुए पानी की अपेक्षा तो आकाश का पानी कई दर्जे अच्छा ही होता है, तथा आश्विन (आसोज) मास में[2] बरसा हुआ अन्तरिक्षजल पहिली वरसात के द्वारा बरसे हुए अन्तरिक्षजल से विशेष उत्तम गिना जाता है, परन्तु इस विषय में भी यह जान लेना आवश्यक है कि—ऋतु के विना वरसा हुआ महावट आदि का पानी यद्यपि अन्तरिक्ष जल है तथापि वह अनेक विकारों से युक्त होने से काम का नहीं होता[3] है।

आकाश से जो ओले गिरते हैं उनका पानी अमृत के समान मीठा तथा बहुत ही

१—देखो। "जीवविचार प्रकरण" में हवा तथा पानी के अनेक भेद लिखे हैं ॥

२—इसी लिये उपासकदशा सूत्र मे यह लिखा है कि—आनन्द श्रावक नें आसोज का अन्तरिक्ष जल ही जन्मभर पीने के लिये रक्खा ॥

३—आश्लेषा नक्षत्र का जल बहुत हानिकारक होता है, देखो। नालक का वचन है कि "वैदों घर वधावणा आश्लेषा छुटॉ" इत्यादि, अर्थात् आश्लेषा नक्षत्र में बरसे हुए जल का पीना मानों वैद्य के घर की वृद्धि करना है (वैद्य को घर में बुलाना है) ॥

अच्छा होता है, इस के सिवाय यदि बरसात की धारा में गिरता हुआ पानी मोटे कपड़े की झोली बांधकर छान लिया जावे अथवा स्वच्छ की हुई पृथिवी पर गिर जाने के बाद उस को स्वच्छ वर्त्तन में भर लिया जावे तो वह भी अन्तरिक्षजल कहलाता है तथा वह भी उपयोग में लाने के योग्य होता है।

पहिले कह चुके है कि–बरसात होकर आकाश से पृथिवी पर गिरने के बाद पृथिवी सम्बन्धी पानी को भूमि जल कहते है, इस भूमि जलके दो भेद है–जाङ्गल और आनूप, इन दोनों का विवरण इस प्रकार है:—

जाङ्गल जल—जो देश थोड़े जलवाला, थोड़े वृक्षोंवाला तथा पीत्त और रक्त के विकार के उपद्रवों से युक्त हो, वह जांगल देश कहलाता है तथा उस देश की भूमि के सम्बन्ध में स्थित जल को जांगल जल कहते है ॥

आनूप जल—जो देश बहुत जलवाला, बहुत वृक्षोंवाला तथा वायु और कफ के उपद्रवों से युक्त है, वह अनूप देश कहलाता है तथा उस देश में स्थित जल को आनूप जल कहते हैं॥

इन दोनों प्रकार के जलों के गुण ये हैं कि–जांगल जल स्वाद में खारा अथवा मल-मला, पाचन में हलका, पथ्य तथा अनेक विकारों का नाशक है, आनूपजल–मीठा और भारी होता है, इस लिये वह शर्दी और कफ के विकारों को उत्पन्न करता है।

इन के सिवाय साधारण देश का भी जल होता है, साधारण देश उसे कहते हैं कि–जिस में सदा अधिक जल न पड़ा रहता हो और न अधिक वृक्षों का ही झुण्ड हो अर्थात् जल और वृक्ष साधारण (न अति न्यून और न अति अधिक) हों, इस प्रकार के देश में स्थित जल को साधारण देश जल कहते है, साधारण[2] देशजल के गुण और दोष नीचे लिखे अनुसार जानने चाहियें:–

नदीका जल—भूमि जल के भिन्न २ जलाशयों में वहता हुआ नदी का पानी विशेष अच्छा गिना जाता है, उस में भी बड़ी २ नदियों का पानी अत्यन्त ही उत्तम होत है, यह भी जान लेना चाहिये कि–पानी का स्वाद पृथिवी के तलभाग के अनुसार प्रायः हुआ करता है अर्थात् पृथिवी के तल भाग के गुण के अनुसार उस में स्थित पानी का स्वाद भी वदल जाता है अर्थात् यदि पृथिवी का तला खारी होता है तो चाहे बड़ी

१–परन्तु उस को बँधा हुआ (ओलेरूप में) खाना तथा बँधी हुई (जमी हुई) बर्फ को खाना जैन सूत्रों मे निषिद्ध (माना) लिखा है, अर्थात्-अभक्ष्य ठहराया है तथा जिन २ वस्तुओं को सूत्रकारोंने अभक्ष्य लिखा है वे सब रोगकारी हैं, इस में सन्देह नहीं है, हां बेशक इन का गला हुआ जल कई रोगों में हितकारी है ॥

२–हैदराबाद, नागपुर, अमरावती तथा खानदेश आदि साधारण देश हैं ॥

नदी भी हो तो भी उस का पानी खारी हो जाता है, वर्षा ऋतु में नदी के पानी में धूल कूड़ा तथा अन्य भी बहुत से मैले पदार्थ दूर से आकर इकट्ठे हो जाते हैं, इस लिये उस समय वह बरसात का पानी बिलकुल पीने के योग्य नहीं होता है, किन्तु जब वह पानी दो तीन दिन तक स्थिर रहता है और निर्मल हो जाता है तब वह पीने के योग्य होता है।

झाड़ी में बहने वाली नदियों तथा नालों का पानी यद्यपि देखने में बहुत ही निर्मल मालूम होता है तथा पीने में भी मीठा लगता है तथापि वृक्षों के मूल में होकर बहने के कारण उस पानी को बहुत खराब समझना चाहिये, क्योंकि–ऐसा पानी पीने से ज्वर की उत्पत्ति होती है, केवल यही नहीं किन्तु उस जल का स्पर्श कर चलने वाली हवा में रहने से भी हानि होती है, इसलिये ऐसे प्रदेश में जाकर रहने वाले लोगों को वहां के पानी को गर्म कर पीना चाहिये अर्थात् सेर भर का तीन पाव रहने पर (तीन उबाल देकर) ठंढा कर मोटे वस्त्र से छान कर पीना चाहिये।

बहुत सी नदियां छोटी २ होती हैं और उन का जल धीमे २ चलता है तथा उस पर मनुष्यों की और जानवरों की गन्दगी और मैल भी चला आता है, इस लिये ऐसी नदियों का जल पीने के लायक नहीं होता है, नल लगने से पहिले कलकत्ते की गंगा नदी का जल भी बहुत हानि करता था और इसका कारण वही था जो कि अभी ऊपर कह चुके हैं अर्थात् उस में स्नान मैल आदि की गन्दगी रहती थी तथा दूसरा कारण यह भी था कि–बंगाल देश में जल में दाग देने की (दाहक्रिया करने की) प्रथा के होने से मुर्दे को गंगा में डाल देते थे, इस से भी पानी बहुत विगड़ता था, परन्तु जब से उस में नल लगा है तब से उस जल का उक्त विकार कुछ कम प्रतीत होता है, परन्तु नल के पानी में प्रायः अजीर्णता का दोष देखने में आता है और वह उस में इसी लिये है कि–उस में मलीन पदार्थ और निकृष्ट हवा का संसर्ग रहता है।

बहुत से नगरों तथा ग्रामों में कुँए आदि जलाशय न होने के कारण पानी की तंगी होने से महा मलीन जलवाली नदियों के जल से निर्वाह करना पड़ता है, इस कारण वहां के निवासी तमाम बस्ती वाले लोगों की आरोग्यता में फर्क आ जाता है, अर्थात् देखो! पानी का प्रभाव इतना होता है कि–खुली हुई साफ हवा में रहकर महनत मजूरी कर

१–जैसे–शिखर गिरि "पार्श्वनाथहिल और गिरनार आदि पर्वतो के नदी नालों के जल को पीनेवाले लोग ज्वर और तापतिल्ली आदि रोगोंसे प्रायः दुःखी रहते हैं तथा यही हाल बंगाल के पास आसाम देश का है, वहा जानेवाले लोगों को भी एकवार तो पानी अवश्य ही अपना प्रभाव दिखाता है, यही हाल रायपुर आदि की झाडियों के जल का भी है॥

२–जैसे दक्षिण हैदराबाद की मूसा नदी इत्यादि॥

शरीर को अच्छे प्रकार से कसरत देने वाले इन ग्राम के निवासियों को भी ज्वर सताने लगता है, उन की बीमारी का मूल कारण केवल मलीन पानी ही समझना चाहिये ।

इस के सिवाय–जिस स्थान में केवल एक ही तालाव आदि जलाशय होता है तो सब लोग उसी में स्नान करते हैं, मैले कपड़े धोते है, गाय; ऊँट; घोड़े; बकरी और भेंड़ आदि पशु भी उसी में पानी पीते है, पेशाव करते हैं तथा जानवरों को भी उसी में स्नान कराते हैं और वही जल बस्ती वाले लोगों के पीने में आता है, इस से भी बहुत हानि होती है, इस लिये श्रीमती सर्कार, राजे महाराजे तथा सेठ साहूकारों को उचित है कि–जल की तंगी को मिटाने का तथा जल के सुधारने का पूरा प्रयत्न करें तथा सामान्य प्रजा के लोगों को भी मिलकर इस विषयमें ध्यान देना चाहिये ।

यदि ऊपर लिखे अनुसार किसी बस्ती में एक ही नदी वा जलाशय हो तो उस का ऐसा प्रवंध करना चाहिये कि–उस नदी के ऊपर की तरफ का जल पीने को लेना चाहिये तथा बस्ती के निकास की तरफ अर्थात् नीचे की तरफ स्नान करना, कपड़े धोना और जानवरों को पानी पिलाना आदि कार्य करने चाहियें, बहुत तड़के (गजरदम) प्रायः जल

१–परन्तु शतश. धन्यवाद है उन परोपकारी विमल मन्त्री वस्तुपाल तेजपाल आदि जैनश्रावकों को जिन्हों ने प्रजाके इस महत् कष्ट को दूर करने के लिये हजारों कुँए, बावडी, पुष्करिणी और तालाव बनवा दिये (यह विषय उन्हीं के इतिहास मे लिखा है), देखो । जैसलमेर के पास लोद्रवकुण्ड, रामदेहरे के पास उदयकुंड और अजमेर के पास पुष्करकुंड, ये तीनों अगाध जलवाले कुड सिंधु देश के निवासी राजा उदाई की फौज़ मे पानी की तगी होने से पद्मावती देवी ने (यह पद्मावती राजा उदाई की रानी थी, जब इस को वैराग्य उत्पन्न हुआ तब इस ने अपने पति से दीक्षा लेनेकी आज्ञा मागी, परन्तु राजा ने इस से यह कहा कि–दीक्षा लेने की आज्ञा मैं तुम को तब दूगा जब तुम इस बात को स्वीकार करो कि "तप के प्रभाव से मर कर जब तुम को देवलोक प्राप्त हो जावे तब किसी समय संकट पड़ने पर यदि मैं तुम को याद करू तब तुम मुझ को सहायता देओ" रानी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और समय आने पर अपने कहे हुए वचन का पालन किया) बनवाये, एव राजा अशोकचन्द्र आदिने भी अपने चम्पापुरी आदि जल की तगी के स्थानों मे वृक्ष, सडक और जल की नहरें बनवाना शुरु कियाथा, इसी प्रकार मुर्शिदावाद मे अभी जो गगा है उस को पद्मा नाम की बडी नदी से नाले के रूपमें निकलवा कर जागत् सेठ लाये थे, ये सब बातें इतिहासों से विदित हो सकती हैं ॥

२–हम ऐसे अवसर पर श्रीमान् राजराजेश्वर, नरेन्द्रशिरोमणि, महाराजाधिराज श्रीमान् श्री गङ्गासिंह जी बहादुर बीकानेर नरेश को अनेकानेक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि–जिन्हो ने इस समय प्रजा के हित और देश की आवादी के लिये अपने राज्य में नहर के लाने का पूरा प्रयत्नकर कार्यारम्भ किया है, उक्त नरेशमें बडा प्रशसनीय गुण यह है कि–आप एक मिनट भी अपना समय व्यर्थ मे न गमाकर सदैव प्रजा के हित के लिये सुविचारों को करके उन मे उद्यत रहा करते हैं, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि–कुछ वर्षों पहिले बीकानेर किस दशा में था और आज कल उक्त नरेश के सुप्रताप और श्रेष्ठ प्रवन्ध से किस उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा है, सिर्फ यही हेतु है कि–उक्त महाराज की निर्मल कीर्त्ति संसार भर मे फैल रही है, यह सब उनकी उत्तम शिक्षा और उद्यम का ही फल है, इसी प्रकार से प्रजा का हित करना सब नरेशो का परम कर्त्तव्य है ॥

साफ रहता है इसलिये उस समय पीने के लिये जल भर लेना चाहिये, लोगों के सुख के लिये सर्कार को यह भी उचित है कि-ऐसे जलस्थानों पर पहरा विठला देवे कि-जिस से पहरेवाला पुरुष जलाशय में नहाना, धोना, पशुओं को धोना और मरे आदमी की जलाई हुई राख आदि का डालना आदि बातों को न होनेदेवे ।

वहुत पानी वाली जो नदी होती है तथा जिस का पानी जोर से बहता है उस का तो मैल और कचरा तले बैठ जाता है अथवा किनारे पर आकर इकट्ठा हो जाता है परन्तु जो नदी छोटी अर्थात् कम जलवाली होती है तथा धीरे २ बहती है उस का सब मैल और कचरा आदि जल में ही मिला रहता है, एवं तालाव और कुँए आदि के पानी में भी प्रायः मैल और कचरा मिला ही रहता है, इस लिये छोटी नदी तालाव और कुँए आदि के पानी की अपेक्षा बहुत जलवाली और जोर से बहती हुई नदी का पानी अच्छा होता है, इस पानी के सुधरे रहने का उपाय जैनसूत्रों में यह लिखा है कि उस जल में घुस के स्नान करना, दाँतोन करना, वस्त्र धोना, मुर्दे की राख डालना तथा हाड़ (फूल) डालना आदि कार्य नहीं करने चाहियें, क्योंकि-उक्त कार्यों के करने से वहां का जल खराव होकर प्राणियों को रोगी कर देता है और यह बात (प्राणियों को रोगी करने के कार्यों का करना) धर्म के कायदे से अत्यन्त विरुद्ध है, अस्थि या मुर्दे की राख से हवा और जल खराव न होने पावे इस लिये उन (अस्थि और राख) को नीचे दवा कर ऊपर से स्तूप (थम्भ या छतरी) करा देनी चाहिये, यही जैनियों की परम्परा है, यह परम्परा वीकानेर नगर में प्रायः सब ही हिन्दुओं में भी देखी जाती है और विचार कर देखा जावे तो यह प्रथा बहुत ही उत्तम है, क्योंकि-वे अस्थि और राख आदि पदार्थ ऐसा करने से प्राणियों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं, ज्ञात होता है कि-जब से भरत चक्री ने कैलास पर्वत पर अपने सौ भाइयों की राख और हड्डियों पर स्तूप करवाये थे तब ही से यह उत्तम प्रथा चली है ॥

कुँएका पानी—पहिले कह चुके हैं कि-पानी का खारा और मीठा होना आदि पृथिवी की तासीर पर ही निर्भर है इसलिये पृथिवी की तासीर का निश्चय कर के उत्तम तासीर वाली पृथिवी पर स्थित जल को उपयोग में लाना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि-गहरे कुँए का पानी छीलर (कम गहरे) कुँए के जल की अपेक्षा अच्छा होता है[1]। जब कुँए के आस पास की पृथिवी पोली होती है और उस में कपड़े धोने से उन (कपड़ों) से छूटे हुए मैल का पानी स्नान का पानी और वरसात का गन्दा पानी कुँए में भरता है (प्रविष्ट होता है) तो उस कुँए का जल बिगड़ जाता है, परन्तु यदि कुँआ

१-जैसे वीकानेर में साठ पुरस के गहरे कुँए हैं, इसलिये उन का जल निहायत उमदा और साफ है ॥

गहरा होता है अर्थात् साठ पुरस का होता है तो उस कुँए के जल तक उस मैले पानी का पहुँचना सम्भव नहीं होता है।

इसी प्रकार से जिन कुँओं पर वृक्षों के झुण्ड लगे रहते हैं वा झूमा करते है तो उन (कुँओं) के जल में उन वृक्षों के पत्ते गिरते रहते है तथा वृक्षों की आड़ रहने से सूर्य की गर्मी भी जलतक नहीं पहुँच सकती है, ऐसे कुँओं का जल प्रायः विगड़ जाता है।

इस के सिवाय–जिन कुँओं में से हमेशा पानी नहीं निकाला जाता है उन का पानी भी बन्द (बँधा) रहने से खराब हो जाता हैं अर्थात् पीने के लायक नही रहता है, इस-लिये जो कुँआ मजबूत बँधा हुआ हो, नहाने धोने के पानी का निकास जिस से दूर जाता हो, जिस के आस पास वृक्ष या मैलापन न हो और जिस की गार (कीचड़) वार २ निकाली जाती हो उस कुँए का, आस पास की पृथिवी का मैला कचरा जिस के जल में न जाता हो उस का, बहुत गहरे कुँए का तथा खारी पनसे रहित पृथिवी के कुँए का पानी साफ और गुणकारी होता है॥

कुण्ड का पानी—कुण्ड का पानी वरसात के पानी के समान गुणवाला होता है, परन्तु जिस छत से नल के द्वारा आकाशी पानी उस कुण्ड में लाया जाता है उस छत पर धूल, कचरा, कुत्ते बिल्ली आदि जानवरों की वीट तथा पक्षियों की विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नही रहने चाहियें, क्योंकि–इन मलीन पदार्थों से मिश्रित होकर जो पानी कुण्ड में जायगा वह विकारयुक्त और खराब होगा, तथा उस का पीना अति हानिकारक होगा, इस लिये मैल और कचरे आदि से रहित स्वच्छता के साथ कुण्ड में पानी लाना चाहिये, क्योंकि–स्वच्छता के साथ कुण्ड में लाया हुआ पानी अन्तरिक्ष जल के समान बहुत गुणकारक होता है, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–यह जल भी सदा बन्द रहने से विगड़ जाता है, इस लिये हमेशा यह पीने के लायक नहीं रहता है।

कुण्ड का पानी स्वाद में मीठा और ठंढा होता है तथा पचने में भारी है।

पानी के गुणावगुण को न समझने वाले बहुत से लोग कई वर्षों तक कुण्ड को धोकर साफ नही करते है तथा उस के पानी को बड़ी तंगी के साथ खरचते है तथा पिछले चौमासे के बचे हुए जल में दूसरा नया वरसा हुआ पानी फिर उस में ले लेते है, वह पानी वड़ा भारी नुकसान पहुँचाता है इस लिये कुण्डके पानी के सेवन में ऊपर कही हुई बातों का अवश्य खयाल रखना चाहिये तथा एक वरसात के हो चुकने के बाद जब छत छप्पर और मोहरी आदि धुल कर साफ हो जावें तब दूसरी वरसात का पानी कुण्ड में लाना चाहिये तथा जल को छान कर उस के जीवों को कुँए के वाहर कुण्डी आदि में

प्रबल प्रवाह से फाड़ कर वहनेवाले नालो का, आषाढ़ में कुँए का श्रावण में अन्तरिक्ष का, भाद्रपद में कुँएका, आश्विन में पहाड़ के कुण्डों का और कार्तिक तथा मार्गशीर्ष (मिग्सिर) में सब जलाशयों का पानी पीने के योग्य होता है ॥

खराब पानी से होनेवाले उपद्रव ॥

खराब पानी से अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं. जिन का परिगणन करना कठिन ही नही किन्तु असंभव है, इस लिये उन में से कुछ मुख्य २ उपद्रवों का विवेचन करते है– इस बात को बहुत से लोग जानते हैं कि–कई एक रोग ऐसे है जो कि जन्तुओं से उत्पन्न होते है और जन्तुओं को उत्पन्न करनेवाला केवल खराब पानी ही है।

पृथिवी के योगसे पानी में खार मिलने से वह (पानी) मीठा और पाचनशक्तिका वर्धक (बढानेवाला) होता है, परन्तु यदि पानी में क्षार का परिमाण मात्रा से अधिक बढ़ जाता है तो वही पानी कई एक रोगों का उत्पादक हो जाता है, जब पानी में सड़ी हुई वनस्पति और मरे हुए जानवरों के दुर्गन्धवाले परमाणु मिल जाते है तो स्वच्छ जल भी बिगड़ कर अनेक खराबियों को करता है, उस बिगड़े हुए पानी से होनेवाले मुख्य २ ये उपद्रव हैं:—

१–ज्वर—ठंढ देकर आनेवाले ज्वर का, विषमज्वर का तथा मलेरिया नाम की हवा से उत्पन्न होनेवाले ज्वर का मुख्य कारण खराब पानी ही है, क्योंकि–देखो! विकृत पानी की आर्द्रता से पहिले हवा बिगड़ती है और हवा के बिगड़ने से मनुष्य की पाचनशक्ति मन्द पड़ कर ज्वर आने लगता है, ठंढ देकर आनेवाला ज्वर[1] प्रायः आश्विन तथा कार्तिक मास में हुआ करता है, उस का कारण ठीक तौर से मलेरिया हवा ही मानी गई है, क्योंकि–उस समय में खेतों के अन्दर काकड़ी और मतीरे आदि की वेलों के पत्ते अध जले हो जाते हैं और जब उन पर पानी गिरता है तब वे (पत्ते) सड़ने लगते हैं, उन के सड़ने से मलेरिया हवा उत्पन्न होकर उस देश में सर्वत्र ज्वर को फैला देती है, तथा यह ज्वर किसी २ को तो ऐसा दवाता है कि दो तीन महीनों तक पीछा नहीं छोड़ता है, परन्तु इस बात को पूरे तौर पर हमारे देश-वासी विरले ही जानते है ॥

२–दस्त वा मरोड़ा—इस बात का ठीक निश्चय हो चुका है कि–दस्तों तथा मरोड़े का रोग भी खरावपानी से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि–देखो। यह रोग चौमासे में विशेष होता है और चौमासे में नदी आदि के पानी में बरसात से वहकर आये हुए

१–यह मलेरिया से उत्पन्न होनेवाला ज्वर उक्त मासो मे मारवाड़ देशमें तो प्रायः अवश्य ही होता है ॥

मैले पानी का मेल होता है, इसलिये उस पानी के पीने से मरोड़ा और अतीसार का रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

३–**अजीर्ण**—भारी अन्न और खराब पानी से पाचनशक्ति मन्द पड़ कर अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है ॥

४–**कृमि वा जन्तु**—खराब अर्थात् बिगड़े हुए पानी से शरीर के भीतर अथवा शरीर के बाहर कृमि के उत्पन्न होने का उपद्रव हो जाता है, यह भी जान लेना चाहिये कि–स्वच्छ पानी कृमि से उत्पन्न होनेवाले त्वचा के दर्दों को मिटाता है और मैला पानी इसी कृमि को फिर उत्पन्न कर देता है ॥

५–**नहरू (वाला)**—नहरू का दर्द बड़ा भयंकर होता है, क्योंकि–इस के दर्द से बहुत से लोगों के प्राणों की भी हानि हो जाने का समाचार सुना गया है, यह रोग खासकर खराब पानी के स्पर्श से तथा विना छने हुए पानी के पीने से होता है ॥

६–**त्वचा (चमड़ी) के रोग**—दाद खाज और गुमड़े आदि रोग होने के कारणों मेंसे एक कारण खराब पानी भी है तथा इस में प्रमाण यही है कि–जन्तुनाशक औषधोंसे ये रोग मिट जाते है और जन्तुओं की उत्पत्ति विशेष कर खराब पानी ही से होती है ॥

७–**विषूचिका (हैज़ा)**—बहुत से आचार्य यह लिखते हैं कि–विषूचिका की उत्पत्ति अजीर्ण से होती है तथा कई आचार्यों का यह मत है कि–इस की उत्पत्ति पानी तथा हवा में रहनेवाले ज़हरीले जन्तुओं से होती है, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इन दोनों मतों में कुछ भी भेद नहीं है, क्योंकि–अजीर्ण से कृमि और कृमि से अजीर्ण का होना सिद्ध ही है ॥

८–**अश्मरी (पथरी)**—पथरी का रोग भी पानी के विकार से ही उत्पन्न होता है, लोग यह समझते है कि–भोजन में धूल अथवा कंकड़ों के आ जाने से पेट में जाकर पथरी बँध जाती है, परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि–पथरी का मुख्य हेतु खारवाला जल ही है अर्थात् खारवाले जल के पीनेसे पथरी हो जाती है ॥

१–इस बात का अनुभव तो बहुत से लोगों को प्रायः हुआ ही होगा ॥

२–जांगल देश का पानी लगने से जो रोग होता है उस को "पानीलगा" कहते हैं ॥

३–मारवाड़ देश के ग्रामों में यह रोग प्रायः देखा जाता है, जिस का कारण ऊपर लिखा हुआ ही है ॥

४–इस बात को गुजरात देशवाले बहुत से लोग समझते हैं ॥

५–असल में यह बात माधवाचार्य के भी देखने में नहीं आई, ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु प्राचीन जैन सोमाचार्य ने जो बात लिखी है उसी को आधुनिक डाक्टर लोग भी मानते है ॥

६–पानी के विकार से होनेवाले ये कुछ मुख्य २ रोग लिखे गये हैं तथा ये अनुभवसिद्ध हैं, यदि इन में किसी को शंका हो तो परीक्षा कर निश्चय कर सकता है ॥

पानी की परीक्षा तथा स्वच्छ करने की युक्ति ॥

अच्छा पानी रंग वास तथा स्वाद से रहित, निर्मल और पारदर्शक होता है, यदि पानी में सेवाल अथवा वनस्पति का मेल होता है तो पानी नीले रंग का होजाता है तथा यदि उस में प्राणियों के शरीर का कोई द्रव्य मिला होता है तो वह पीले रंग का हो जाता है।

यद्यपि पानी की परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है तथापि उस की परीक्षा का सामान्य और सुगम उपाय यह है कि—पानी को पारदर्शक साफ काच के प्याले में भर दिया जावे तथा उस प्याले को प्रकाश (उजाले) में रक्खा जावे तो पानी का असली रंग तथा मैलापन मालूम हो सकता है।

किसी २ पानी में वास होने पर भी अनेक वार पीने से अथवा सूंघने से वह एकदम नही मालूम होती है परन्तु ऐसे पानी को उबाल कर उस की वास लेने से (यदि उस में कुछ वास हो तो) शीघ्र ही मालूम हो जाती है।

यह जो पानी की परीक्षा ऊपर लिखी गई है वह जैन लोगों में प्रचलित प्राचीन परीक्षा है, परन्तु पानी की डाक्टरी (डाक्टरों के मत के अनुसार) परीक्षा इस प्रकार है कि—पानी को एक शीशी में भर कर उस को खूब हिलाना चाहिये, पीछे उस पानी को सूंघना चाहिये, इस के सिवाय दूसरी परीक्षा यह भी है कि—पानी में पोटास डालने से यदि वह वास देवे तो समझ लेना चाहिये कि—पानी अच्छा नहीं है।

यह भी जान लेना चाहिये कि—पानी में दो प्रकार के पदार्थों की मिलावट होती है—उन में से एक प्रकार के पदार्थ तो वे है जो कि पानी के साथ पिघल कर उस में मिले रहते है और दूसरे प्रकार के वे पदार्थ है जो कि—पानी से अलग होकर जानेवाले है परन्तु किसी कारण से उस में मिल जाते है।

काच के प्याले में पानी भर कर थोड़ी देर तक स्थिर रखने से यदि तलभाग में कुछ पदार्थ बैठ जावे तो समझ लेना चाहिये कि-इस में दूसरे प्रकार के पदार्थों की मिलावट है।

पानी में क्षार आदि पदार्थों का कितना परिमाण है इस बात को जाननेके लिये यह उपाय करना चाहिये कि—थोड़े से पानी को तौल कर एक पतीली में डालकर आग पर चढ़ा कर उस को जलाना चाहिये, पानी के जल जाने पर पतीली के पेंदे में जो क्षार आदि पदार्थ रह जावें उन को कांटे से तौल लेना चाहिये, वस ऐसा करने से मालूम हो जायगा कि इतने पानी में क्षार का भाग इतना है, यदि एक ग्यालन (One gallon) पानी में क्षार आदि पदार्थों का परिमाण ३० ग्रीन (30 Gram) तक हो तव तक तो वह पानी पीने के लायक गिना जाता है तथा ज्यों २ क्षार का परिमाण कम हो त्यों २

यद्यपि देश, काल, स्वभाव, श्रम, शरीर की रचना और अवस्था आदि के अनेक भेदों से खुराक के भी अनेक भेद हो सकते हैं तथापि इन सब का वर्णन करने में ग्रन्थविस्तार का भय विचार कर उनका वर्णन नहीं करते हैं किन्तु मुख्यतया यही समझना चाहिये कि खुराक का भेद केवल एक ही है अर्थात् जिस से भूख और प्यास की निवृत्ति हो उसे खुराक कहते हैं, उस खुराक की उत्पत्ति के मुख्य दो हेतु हैं–स्थावर और जङ्गम, स्थावरों में तमाम वनस्पति और जङ्गम में प्राणिजन्य दूध, दही, मक्खन और छाछ (मट्ठा) आदि खुराक जान लेनी चाहिये ।

जैनसूत्रों में उस आहार वा खुराक के चार भेद लिखे हैं–अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इनमें से खाने के पदार्थ अशन, पीने के पदार्थ पान, चाब कर खाने के पदार्थ खादिम और चाट कर खाने के पदार्थ स्वादिम कहलाते हैं ।

यद्यपि आहार के बहुत से प्रकार अर्थात् भेद हैं तथापि गुणों के अनुसार उक्त आहार के मुख्य आठ भेद हैं—भारी, चिकना, ठंढा, कोमल, हलका, रूक्ष (रूखा), गर्म और तीक्ष्ण (तेज़), इन में से पहिले चार गुणोंवाला आहार शीतवीर्य है और पिछले चार गुणोंवाला आहार उष्णवीर्य है ॥

आहार में स्थित जो रस है उसके छः भेद है–मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (खारा), कटु (तीखा), तिक्त (कडुआ) और कषाय (कषैला), इन छः रसों के प्रभावसे आहार के ३ भेद हैं—पथ्य, अपथ्य और पथ्यापथ्य, इन में से हितकारक आहार को पथ्य, अहितकारक (हानिकारक) को अपथ्य और हित तथा अहित (दोनों) के करने वाले आहार को पथ्यापथ्य कहते हैं, इन तीनों प्रकारों के आहार का वर्णन विस्तार पूर्वक आगे किया जावेगा[1] ।

इस प्रकार आहार के पदार्थों के अनेक सूक्ष्म भेद हैं परन्तु सर्व साधारण के लिये वे विशेष उपयोगी नहीं हैं, इस लिये सूक्ष्म भेदों का विवेचन कर उनका वर्णन करना अनावश्यक है, हां बेशक छः रस और पथ्यापथ्य पदार्थ सम्बंधी आवश्यक विषयका जान लेना सर्व साधारण के लिये हितकारक है, क्योंकि जिस खुराक को हम सब खाते पीते हैं उसके जुदे २ पदार्थों में जुदा २ रस होने से कौन २ सा रस क्या २ गुण रखता है, क्या २ क्रिया करता है और मात्रा से अधिक खाने से किस २ विकार को उत्पन्न करता है और हमारी खुराक के पदार्थों में कौन २ से पदार्थ पथ्य है तथा कौन २ से अपथ्य हैं, इन सब बातों का जानना सर्व साधारण को आवश्यक है, इसलिये इनके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है:—

१–देखो । पथ्यापथ्य वर्णननामक छठा प्रकरण ॥

छः रस ॥

पहिले कह चुके है कि—आहार में स्थित जो रस है उस के छः भेद है—अर्थात् मीठा, खट्टा, खारा, तीखा, कड़ुआ और कपैला, इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है कि—पृथ्वी तथा पानी के गुण की अधिकता से मीठा रस उत्पन्न होता है, पृथ्वी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खट्टा रस उत्पन्न होता है, पानी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खारा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा अग्नि के गुण की अधिकता से तीखा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा आकाश के गुण की अधिकता से कड़ुआ रस उत्पन्न होता है और पृथ्वी तथा वायु के गुण की अधिकता से कषैला रस उत्पन्न होता है ॥

छओं रसों के मिश्रित गुण ॥

मीठा खट्टा और खारा, ये तीनों रस वातनाशक है ॥
मीठा कड़ुआ और कपैला, ये तीनों रस पित्तनाशक हैं ॥
तीखा कड़ुआ और कपैला, ये तीनों रस कफनाशक है ॥
कषैला रस वायु के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
तीखा रस पित्त के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
मीठा रस कफ के समान गुण और लक्षणवाला है ॥

छओं रसों के पृथक् २ गुण ॥

मीठा रस—लोहू, मांस, मेद, अस्थि (हाड़) मज्जा, ओज, वीर्य तथा स्तनों के दूध को बढाताहै, आँख के लिये हितकारी है, बालों तथा वर्ण को स्वच्छ करता है, बलवर्धक है, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ता है, बालक वृद्ध तथा जखम से क्षीण हुओं के लिये हितकारी है, तृषा मूर्च्छा तथा दाह को शान्त करता है सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है और कृमि तथा कफ को बढाता है।

इस के अति सेवन से यह—खांसी, श्वास, आलस्य, वमन, मुखमाधुर्य (मुख-की मिठास), कण्ठविकार, कृमिरोग, कण्ठमाला, अर्बुद, श्लीपद, बस्तिरोग (मधुप्रमेह आदि मूत्र के रोग) तथा अभिष्यन्द आदि रोगों को उत्पन्न करता है ॥

खट्टा रस—आहार, वातादि दोष, शोथ तथा आम को पचाता है, वादी का नाश करता है, वायु मल तथा मूत्र को छुड़ाता है, पेटमें अग्निको करता है, लेप करने से ठंढक करता है तथा हृदयको हितकारी है।

१–दोहा–मधुर अम्ल अरु लवण पुनि, कटुक कपैला जोय ॥
और तिक्त जग कहत है, षट् रस जानो सोय ॥ १ ॥

इस के अति सेवन से यह–दन्तहर्ष (दाँतों का जकड़ जाना), नेत्रबन्ध (आँखोंका मिचना), रोमहर्ष (रोंगटों का खड़ा होना), कफ का नाश तथा शरीरशैथिल्य (शरीर का ढीला होना) को करता है, एवं कण्ठ छाती तथा हृदय में दाह को करता है ॥

खारा रस—मलशुद्धि को करता है, खराब व्रण (गुमड़े) को साफ करता है, खुराक को पचाता है, शरीर में शिथिलता करता है, गर्मी करता तथा अवयवों को कोमल (मुलायम) रखता है ।

इस के अति सेवन से यह खुजली, कोढ, शोथ तथा थेथरको करता है, चमड़ी के रंग को बिगाड़ता है, पुरुषार्थ का नाश करता है, आंख आदि इन्द्रियों के व्यवहार को मन्द करता है, मुखपाक (मुँह का पकजाना) को करता है, नेत्रव्यथा, रक्तपित्त, वातरक्त तथा खट्टी डकार आदि दुष्ट रोगों को उत्पन्न करता है ॥

तीखा रस—अग्नि दीपन, पाचन तथा मूत्र और मल का शोधक (शुद्ध करनेवाला) है, शरीर की स्थूलता (मोठापन),आलस्य, कफ, कृमि, विषजन्य (जहर से पैदा होनेवाले) रोग, कोढ तथा खुजली आदि रोगों को नष्ट करता है, सांधों को ढीला करता है, उत्साह को कम करता है तथा स्तन का दूध,वीर्य और मेद इन का नाशक है ।

इस के अति सेवन से यह–भ्रम, मद, कण्ठशोष (गले का सूखना), तालुशोष (तालु का सूखना), ओष्ठशोष (ओठों का सूखना), शरीर में गर्मी, बलक्षय, कम्प और पीड़ा आदि रोगों को उत्पन्न करता है तथा हाथ पैर और पीठ में वादी को करके शूल को उत्पन्न करता है ॥

कड़ुआ रस—खुजली, खाज, पित्त, तृषा, मूर्च्छा तथा ज्वर आदि रोगों को शान्त करता है, स्तन के दूधको ठीक रखता है तथा मल, मूत्र, मेद, चरबी और व्रणविकार (पीप) आदि को सुखाता है ।

इस के अति सेवन से यह–गर्दन की नसों का जकड़ना, नाड़ियों का खिँचना, शरीर में व्यथा का होना, श्रम का होना, शरीर का टूटना, कम्पन का होना तथा भूख में रुचि का कम होना आदि विकारों को करता है ॥

कषैला रस—दस्त को रोकता है, शरीर के गात्रों को दृढ करता है, व्रण तथा प्रमेह आदि का शोधन (शुद्धि) करता है, व्रण आदि में प्रवेश कर उस के दोष को निकालता है तथा क्लेद अर्थात् गाढ़े पदार्थ पके हुए पीपका शोषण करता है ।

इस के अति सेवन से यह–हृदय पीड़ा, मुखशोष (मुखका सूखना), आध्मान (अफरा), नसों का जकड़ना, शरीर स्फुरण (शरीर का फड़कना), कम्पन तथा शरीरका संकोच आदि विकारोंको करता है ॥

यद्यपि खाने के पदार्थों में प्रायः छओं रसोंका प्रतिदिन उपयोग होता है तथापि कडुआ और कषैला रस खानेके पदार्थों में स्पष्टतया (साफ तौर से) देखने में नहीं आता है, क्योंकि-ये दोनों रस बहुत से पदार्थों में अव्यक्त (छिपे हुए) रहते हैं, शेष चार रस (मीठा, खट्टा, खारा और तीखा) प्रतिदिन विशेष उपयोग में आते हैं ॥

यह चतुर्थ अध्यायका आहारवर्णन नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पाँचवां प्रकरण—वैद्यक भाग निघण्टु ॥

धान्यवर्ग ॥

चावल—मधुर, अग्निदीपक, बलवर्धक, कान्तिकर, धातुवर्धक, त्रिदोषहर और पेशाव लानेवाला है ॥

उपयोग—यद्यपि चावलों की बहुत सी जातियां है तथापि सामान्य रीति से कमोद के चावल स्वाद में उत्तम होते है और उस में भी दाऊदखानी चावल बहुत ही तारीफ के लायक हैं, गुण में सब चावलों में सोठी चावल उत्तम होते हैं, परन्तु वे बहुत लाल तथा मोटे होने से काम में बहुत नहीं लाये जाते है, प्रायः देखा गया है कि-शौकीन लोग खाने में भी गुणको न देख कर शौक को ही पसन्द करते हैं, बस चावलों के विषय में भी यही हाल है ।

चावलों में पौष्टिक और चरबीवाला अर्थात् चिकना तत्व बहुत ही कम है, इस लिये चावल पचने में बहुत ही हलका है, इसी लिये बालकों और रोगियों के लिये चावलों की खुराक विशेष अनुकूल होती है ।

साबूदाना यद्यपि चावलों की जाति में नहीं है परन्तु गुण में चावलों से भी हलका है, इसलिये छोटे बालकों और रोगियों को साबूदाने की ही खुराक प्रायः दी जाती है ।

यद्यपि डाक्टर लोग कई समयों में चावलों की खुराक का निषेध (मनाई) करते हैं परन्तु उसका कारण यही मालूम होता है कि-हमारे यहां के लोग चावलों को ठीक रीति से पकाना नही जानते है, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि बहुतसे लोग चावलों को अधिक आंच देकर जल्दी ही उतार लेते हैं, ऐसा करने से चावल ठीक तौर से नहीं पक

१-स्मरण रहना चाहिये कि-यद्यपि ये सब रस प्रतिदिन भोजन मे उपयोग मे आवे है परन्तु इनके अत्यन्त सेवन से तो हानि ही होती है, जिस को पाठक गण ऊपर के लेखसे जान सकते हैं, देखो ! इन सब रसों में मीठा रस यद्यपि विशेष उपयोगी है तथापि अत्यन्त सेवन से वह भी बहुत हानि करता है, इसलिये इन के अत्यन्त सेवन से सदैव बचना चाहिये ॥

२-इन को गुजरात में वरीना चोखा भी कहते हैं ॥

कषैला रस है उस कषैले रस का मित्र हरड़ है तथा दूध में खारा रस है उस खारे रस का मित्र सेंधानमक है, इन के सिवाय गेहूँ के पदार्थ अर्थात् पूरी और रोटी आदि, चावल, घी, मक्खन, दाख, शहद, मीठे आम के फल, पीपल, काली मिर्चे, तथा पाकों में जिन का उपयोग होता है वे पुष्टि और दीपन के सब पदार्थ भी दूध के मित्र वर्ग में हैं ॥

दूध के अमित्र (शत्रु)—सेंधे नमक को छोड़ कर बाकी के सब प्रकार के खार दूध के गुण को बिगाड़ डालते हैं, इसी प्रकार आँवले के सिवाय सब तरह की खटाई, गुड़, मूँग, मूली, शाक, मद्य, मछली, और मांस दूध के सङ्ग मिल कर शत्रु का काम करते है, देखो ! दूध के सङ्ग नमक वा खार, गुड़, मूंग, मौठ, मछली और मांस के खाने से कोढ आदि चर्मरोग हो जाते है, दूध के साथ शाक, मद्य और आसव के खाने से पित्त के रोग होकर मरण हो जाता है ॥

ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को दूध के साथ खाने पीने से जो अवगुण होता है यद्यपि उस की खबर खानेवाले को शीघ्र ही नहीं मालूम पड़ती है तथापि कालान्तर में तो वह अवगुण प्रबलरूप से प्रकट होता ही है, क्योंकि सर्वज्ञ परमात्मा ने भक्ष्याभक्ष्य निर्णय में जो कुछ कथन किया है तथा उन्हीं के कथन के अनुसार जैनाचार्य उमास्वाति वाचक आदि के बनाये हुए ग्रन्थों में तथा जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज के बनाये हुए 'विवेकविलास, चर्चरी, आदि ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि उक्त महात्माओं का कथन तीन काल में भी अबाधित तथा युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध है, इस लिये ऐसे महानुभाव और परम परोपकारी विद्वानों के वचनों पर सदा प्रतीति रख कर सर्व जीवहितकारक परम पुरुष की आज्ञा के अनुसार चलना ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी है, क्योंकि उन का सत्य वचन सदा पथ्य और सब के लिये हितकारी है।

देखो ! सैकड़ों मनुष्य ऊपर लिखे खान पान को ठीक तौर से न समझ कर जब अनेक रोगों के झपाटे में आ जाते है तब उन को आश्चर्य होता है कि अरे यह क्या हो गया ! हम ने तो कोई कुपथ्य नहीं किया था फिर यह रोग कैसे उत्पन्न हो गया ! इस प्रकार से आश्चर्य में पड़ कर वे रोग के कारण की खोज करते है तो भी उन को रोग का कारण नहीं मालूम पड़ता है, क्योंकि रोग के दूरवर्त्ती कारण का पता लगाना बहुत कठिन बात है, तात्पर्य यह है कि—बहुत दिनों पहिले जो इस प्रकार के विरुद्ध खान पान किये हुए होते है वे ही अनेक रोगों के दूरवर्त्ती कारण होते है अर्थात् उन का असर शरीर में विष के तुल्य होता है और उन का पता लगना भी कठिन होता है, इस लिये मनुष्यों को जन्मभर दुःख में ही निर्वाह करना पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि—संयोगविरुद्ध भोजनों को जान कर उन का विष के तुल्य त्याग कर देवें,

क्योंकि देखो ! सदा पथ्य और परिमित (परिमाण के अनुकूल) आहार करनेवालों को भी जो अकस्मात् रोग हो जाता है उस का कारण भी वही अज्ञानता के कारण पूर्व समय में किया हुआ संयोग विरुद्ध आहार ही होता है, क्योंकि वही (पूर्व समयमें किया हुआ संयोगविरुद्ध आहार ही) समय पाकर अपने समवायों के साथ मिलकर झट मनुष्यको रोगी कर देता है, संयोगविरुद्ध आहार के बहुत से भेद हैं—उन में से कुछ भेदों का वर्णन समयानुसार क्रम से आगे किया जायगा ॥

घृत वर्ग ॥

घी के सामान्य गुण—घी रसायन, मधुर, नेत्रों को हितकर, अग्निदीपक, शीतवीर्यवाला, बुद्धिवर्धक, जीवनदाता, शरीर को कोमल करनेवाला, बल कान्ति और वीर्य को बढानेवाला, मलनिःसारक (मल को निकालनेवाला), भोजन में मिठास देनेवाला, वायुवाले पदार्थों के साथ खाने से उन (पदार्थों) के वायु को मिटानेवाला, गुमड़ों को मिटानेवाला, ज़खमी को बल देनेवाला, कण्ठ तथा स्वर का शोधक (शुद्ध करनेवाला), मेद और कफ को बढानेवाला तथा अग्निदग्ध (आग से जले हुए) को लाभदायक है, वातरक्त, अजीर्ण, नसा, शूल, गोला, दाह, शोथ (सूजन), क्षय और कर्ण (कान) तथा मस्तक के रक्तविकार आदि रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु साम ज्वर (आम के सहित बुखार) में और सन्निपात के ज्वर में कुपथ्य (हानिकारक) है, सादे ज्वर में बारह दिन बीतने के बाद कुपथ्य नहीं है, बालक और वृद्ध के लिये प्रतिकूल है, बढा हुआ क्षय रोग, कफ का रोग, आमवात का रोग, ज्वर, हैज़ा, मलबन्ध, बहुत मदिरा के पीने से उत्पन्न हुआ मदात्यय रोग और मन्दाग्नि, इन रोगों में घृत हानि करता है, साधारण मनुष्यों के प्रतिदिन के भोजन में, थकावट में, क्षीणता में, पाण्डुरोग में और आंख के रोग में ताज़ा घी फायदेमन्द है, मूर्छा, कोढ़, विष, उन्माद, वादी तथा तिमिर रोग में एक वर्ष का पुराना घी फायदेमन्द है ।

श्वास रोग वाले को बकरी का पुराना घी अधिक फायदेमन्द है ।

गाय और भैंस आदि के दूध के गुणों में जो २ अन्तर कह चुके हैं वही अन्तर उन के घी में भी समझ लेना चाहिये ।

१–यह दूध का तथा संयोगविरुद्ध आहार का (प्रसंगवश) कुछ वर्णन किया है तथा कुछ वर्णन संयोगविरुद्ध आहार का (ऊपर लिखी प्रतिज्ञा के अनुसार) आगे किया जायगा, इन दोनों का शेष वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

२–घी को तपा कर तथा छान कर खाने के उपयोग में लाना चाहिये ॥

३–इस के सिवाय जिस २ पशुके दूधमें जो २ गुण कहे हैं वेही गुण उस पशु के घी में भी जानने चाहियें ॥

सब तरह के मल्हमों में पुराना घी गुण करता है किन्तु केवल पुराने घी में भी मल्हम के सब गुण है।

घी को शास्त्रकारों ने रत्न कहा है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रत्न से भी अधिक गुणकारी है परन्तु वर्त्तमान समय में शुद्ध और उत्तम घी भाग्यवानों के सिवाय साधारण पुरुषों को मिलना कठिन सा होगया है, इस का कारण केवल उपकारी गाय भैंस आदि पशुओं की न्यूनता ही है ॥

गाय का मक्खन—नवीन निकाला हुआ गाय का मक्खन हितकारी है, बलवर्धक है, रंग को सुधारता है, अग्नि का दीपन करता है तथा दस्त को रोकता है, वायु, पित्त, रक्तविकार, क्षय, हरस, अर्दित वायु तथा खांसी के रोग में फायदा करता है, प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से यह विशेष कर शिर और नेत्रों को लाभ देता है तथा बालकों के लिये तो यह अमृतरूप है ॥

भैंस का मक्खन—भैंस का मक्खन वायु तथा कफ को करता है, भारी है, दाह पित्त और श्रम को मिटाता है, मेद तथा वीर्य को बढ़ाता है ॥

वासा मक्खन खारा तीखा और खट्टा होजानेसे वमन, हरस, कोढ, कफ तथा मेद को उत्पन्न करता है ॥

दधिवर्ग ॥

दही के सामान्य गुण—दही-गर्म, अग्निदीपक, भारी, पचनेपर खट्टा तथा दस्त को रोकनेवाला है, पित्त, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करता है, पीनस, जुखाम, विषम ज्वर (ठंढ का तप), अतीसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता (दुर्बलता) को दूर करता है, इस को सदा युक्ति के साथ खाना चाहिये।

दही मुख्यतया पांच प्रकार का होता है—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल, इन के स्वरूप और गुणों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

मन्द—जो दही कुछ गाढा हो तथा मिश्रित (कुछ दूध की तरह तथा कुछ दही की तरह) स्वादवाला हो उस को मन्द दही कहते है, यह-मल मूत्र की प्रवृत्ति को, तीनों दोषों को और दाह को उत्पन्न करता है ॥

स्वादु—जो दही खूब जम गया हो, जिस का स्वाद अच्छी तरह मालूम होता हो, मीठे रसवाला हो तथा अव्यक्त अम्ल रसवाला (जिस का अम्ल रस प्रकट में न मालूम

१-शेष पशुओं के मक्खन के गुणो का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं किया ॥

२-यह घृत का संक्षेप से वर्णन किया गया है, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

३-वैसे देखा जावे तो मीठा और खट्टा, ये दो ही भेद प्रतीत होते है ॥

लोगों को सदा उसी मार्ग पर चलना उचित है जिसपर चलने से उनके धर्म, यश, सुख, आरोग्यता, पवित्रता और प्राचीन मर्यादा का नाश न हो, क्योंकि इन सब का संरक्षण कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करना ही वास्तवमें मनुष्यत्व है ॥

तैलवर्ग ॥

तैल यद्यपि कई प्रकार का होता है—परन्तु विशेषकर मारवाड़ में तिली का और बंगाल तथा गुजरात आदि में सरसों का तेल खाने आदि के काम में आता है, तेल खाने की अपेक्षा जलाने में तथा शरीर के मर्दन आदि में विशेष उपयोग में आता है, क्योंकि उत्तम खान पान के करने वाले लोग तेल को बिलकुल नही खाते है और वास्तव में घृत जैसे उत्तम पदार्थ को छोड़कर बुद्धि को कम करनेवाले तेल को खाना भी उचित नहीं है, हां यह दूसरी बात है कि तेल सस्ता है तथा मौठ गुवारफली और चना आदि वातल (वातकारक) पदार्थ मिर्चे मसाला डाल कर तेल में तैलने से सुस्वाद (लज़्ज़तदार) हो जाते हैं तथा वादी भी नही करते है, इतने अंश में यदि तैल खाया जावे तो यह भिन्न वस्त है परन्तु घृतादि के समान इस का उपयोग करना उचित नहीं है जैसा कि गुजरात नें लोग मिठाई तक तेल की बनी हुई खाते है और बंगालियों का तो तेल जीवन ही बन रहा है, हां अलबत्ता जोधपुर मेवाड़ नागौर और मेड़ता आदि कई एक राज्यस्थानों में लोग तेल को बहुत कम खाते हैं।

गृहस्थ के प्रतिदिन के आवश्यक पदार्थों में से तेल भी एक पदार्थ है तथा इस का उपयोग भी प्रायः प्रत्येक मनुष्य को करना पड़ता है इस लिये इस की जातियों तथा गुण दोषों का जान लेना प्रत्येक मनुष्य को अत्यावश्यक है अतः इस की जातियों तथा गुण दोषों का संक्षेप से वर्णन करते है:—

तिल का तैल—यह तैल शरीर को दृढ करनेवाला, बलवर्धक, त्वचा के वर्ण को अच्छा करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक, शरीर में शीघ्र ही प्रवेश करनेवाला और कृमि को दूर करनेवाला है, कान की, योनि की और शिर की शूल को मिटाता है, शरीर को हलका करता है, टूटे हुए, कुचले हुए, दबे हुए और कटे हुए हाड़ को तथा अग्नि से जले हुए को फायदेमन्द है।

तेल के मर्दन में जो २ गुण कल्पसूत्र में लिखे है वे किसी ओषधि के साथ पके हुए तेल के समझने चाहियें किन्तु खाली तेल में उतने गुण नहीं है।

१—जैसे कि मौठ के भुजिये (सेव) बीकानेर मे तेल मे तलकर बहुत ही अच्छे बनते हैं और वहां के लोग उन्हे बडी शौक से खाते हैं, चने और मौठ के सेव प्राय. सब ही देशो मे तेल मे ही बनते है और उन्हे गरीब अमीर प्रायः सब ही खाते हैं॥

जिन औषधों के साथ तेल पकाया जावे उन औषधों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिये कि-गर्मी अर्थात् पित्त की प्रकृतिवाले के लिये ठंढी और खून को साफ करनेवाली औषधों का तथा कफ और वायु की प्रकृतिवाले के लिये उष्ण और कफ को काटनेवाली औषधों का उपयोग करना चाहिये, नारायण, लक्ष्मीविलास, षड्बिन्दु, चन्दनादि, लाक्षादि, शतपक्व और सहस्रपक्व आदि अनेक प्रकार के तैल इसी तिल के तेल से बनाये जाते हैं जो प्रायः अनेक रोगों को नष्ट करते हैं, तथा बहुत ही गुणकारक होते हैं।

यह तैल पिचकारी लगाने के और पीने के काम में भी आता है तथा गरीब लोग इस को खाने तलने और बघारने आदि अनेक कार्यों में वर्त्तते हैं, यह कान तथा नाक में भी डाला जाता है।

परन्तु इस में ये अवगुण हैं कि-यह सन्धियों को ढीला कर धातुओं को नर्म कर डालता है, रक्तपित्त रोग को उत्पन्न करता है किन्तु शरीर में मर्दन करने से फायदा करता है, इस के सिवाय शरीर, बाल, चमड़ी तथा आंखों के लिये भी फायदेमन्द है, परन्तु तिली का या सरसों का खाली तेल खाने से इन चारों को (शरीर आदि को) हानि पहुँचाता है, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु की प्रकृति वाले को यह सदा पथ्य है॥

सरसों का तेल—दीपन तथा पाक में कटु है, इस का रस हलका है, लेखन, स्पर्श और वीर्य में उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त और रुधिर को दूषित करनेवाला, कफ, मेदा, वादी, बवासीर, शिरःपीड़ा, कान के रोग, खुजली, कोढ, कृमि, श्वेत कुष्ठ और दुष्ट कृमि को नष्ट करता है॥

राई का तेल—काली और लाल राई के तेल में भी सरसों के तेल के समान ही गुण हैं किन्तु इस में केवल इतनी विशेषता है कि-यह मूत्रकृच्छ्र को उत्पन्न करता है॥

तुवरी का तेल—तुवरी अर्थात् तोरई के बीजों का तेल-तीक्ष्ण, उष्ण, हलका, ग्राही, कफ और रुधिर का नाशक तथा अग्निकर्त्ता है, एवं विष, खुजली, कोढ, चकत्ते और कृमि को नष्ट करता है, मेददोष और व्रण की सूजन में भी फायदेमन्द है॥

अलसी का तेल—अग्निकर्त्ता, स्निग्ध, उष्ण, कफपित्तकारक, कटुपाकी, नेत्रों को अहित, बलकर्त्ता, वायुहर्त्ता, भारी, मलकारक, रस में स्वादिष्ठ, ग्राही, त्वचा के दोषों का नाशक तथा गाढा है, इसे वस्तिकर्म, तैलपान, मालिस, नस्य, कर्णपूरण और अनुपान विधि में वायु की शान्ति के लिये देना चाहिये॥

कुसुम्भ का तेल—कसूम के बीजों का तेल-खट्टा, उष्ण, भारी, दाहकारक, नेत्रों को अहित, बलकारी, रक्तपित्तकारक तथा कफकारी है॥

खसखस का तेल[1]—बलकर्त्ता, वृष्य, भारी, वातकफहरणकर्त्ता, शीतल तथा रस और पाक में स्वादिष्ठ है ॥

अण्डी का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, गिलगिला, भारी, वृष्य, त्वचा को सुधारने वाला, अवस्था का स्थापक, मेधाकारक, कान्तिप्रद, बलवर्द्धक, कषैले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा शुक्र का शोधक, आमगन्धवाला, रस और पाक में स्वादिष्ठ, कड़ुआ, चरपरा तथा दस्तावर है, विषमज्वर, हृदयरोग, गुल्म, पृष्ठशूल, गुह्यशूल, वादी, उदररोग, अफरा, अष्ठीला, कमर का रह जाना, वातरक्त, मलसंग्रह, बद, सूजन, और विद्रधि को दूर करता है, शरीर रूपी वन में विचरनेवाले आमवात रूपी गजेन्द्र के लिये तो यह तेल सिंहरूप ही है ॥

राल का तेल—विस्फोटक, घाव, कोढ, खुजली, कृमि और वातकफज रोगों को दूर करता है ॥

क्षार वर्ग ॥

खानों या ज़मीन में पैदा हुए खार को लोग सदा खाते हैं, दक्षिण प्रान्त देश तक के लोग जिस नमक को खाते हैं वह समुद्र के खारी जल से जमाया जाता है, राजपूताने की सांभर झील में भी लाखों मन नमक पैदा होता है, उस झील की यह तासीर है कि– जो वस्तु उस में पड़ जाती है वही नमक बन जाती है, उक्त झील में क्यारियां जमाई जाती है, पँचभदरे में भी नमक उत्पन्न होता है तथा वह दूसरे सब नमकों से श्रेष्ठ होता है, बीकानेर की रियासत लूंणकरणसर में भी नमक होता है, इस के अतिरिक्त अन्य भी कई स्थान मारवाड़ में है जिन में नमक की उत्पत्ति होती है परन्तु सिन्ध आदि देशों में ज़मीन में नमक की खानें है जिन में से खोद कर नमक को निकालते हैं वह सेंधा नमक कहलाता है, स्वाद और गुण में यह नमक प्रायः सब ही नमकों से उत्तम होता है इसीलिये वैद्य लोग बीमारों को इसी का सेवन कराते हैं तथा धातु आदि रसों के व्यवहार में भी प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है, इस के गुणों को समझनेवाले बुद्धिमान् लोग सदा खानपान के पदार्थों में इसी नमक को खाते हैं, इंग्लेंड से लीवर पुल सॉल्ट नामक जो नमक आता है उस को डाक्टर लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं, खुराक की चीजों में नमक बड़ा ही जरूरी पदार्थ है इस के डालने से भोजन का स्वाद तो बढ ही जाता है तथा भोजन पचभी जल्दी जाता है किन्तु इस के अतिरिक्त यह भी निश्चय हो चुका है कि नमक के विना खाये आदमी का जीवन बहुत समय तक नहीं रह

1–यह सक्षेप से कुछ तैलों के गुणों का वर्णन किया गया है, शेष तैलों के गुण उन की योनि के समान जानने चाहियें अर्थात् जो तेल जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है उस तैल मे उसी पदार्थ के समान गुण रहते हैं, इस का विस्तार से वर्णन दूसरे वैद्यकग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

शाकों में—चँदलिये के पत्ते, परवल, पालक, बथुआ, पोथी की भाजी, सूरणकन्द, मेथी के पत्ते, तोरई, भिण्डी और कद्दू आदि पथ्य है।

दूसरे आवश्यक पदार्थों में—गाय का दूध, गाय का घी, गाय की मीठी छाछ, मिश्री, अदरख, आँवले, सेंधानमक, मीठा अनार, मुनक्का, मीठी दाख और बादाम, ये भी सब पथ्य पदार्थ है।

दूसरी रीति से पदार्थों की उत्तमता इस प्रकार समझनी चाहिये कि—चावलों में लाल, साठी तथा कमोद पथ्य है, अनाजों में गेहूँ और जौ, दालों में मूंग और अरहर की दाल, मीठे में मिश्री, पत्तों के शाक में चँदलिया, फलों के शाक में परवल, कन्दशाक में सूरण, नमकों में सेंधा नमक, खटाई में आँवले, दूधों में गाय का दूध, पानी में बरसात का अधर लिया हुआ पानी, फलों में विलायती अनार तथा मीठी दाख, मसाले में अदरख, धनिया और जीरा पथ्य है, अर्थात् ये सब पदार्थ साधारण प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में और सब देशों में सदा पथ्य हैं किन्तु किसी २ ही रोग में इन में की कोई २ ही वस्तु कुपथ्य होती है, जैसे—नये ज्वर में बारह दिन तक घी, और इक्कीस दिन तक दूध कुपथ्य होता है इत्यादि, ये सब बातें पूर्वाचार्यों के बनाये हुए ग्रन्थों से विदित हो सकती है किन्तु जो लोग अज्ञानता के कारण उन (पूर्वाचार्यो) के कथन पर ध्यान न देकर निषिद्ध वस्तुओं का सेवन कर बैठते है उन को महाकष्ट होता है तथा प्राणान्त भी हो जाता है, देखो! केवल वातज्वर के पूर्वरूप में घृतपान करना लिखा है परन्तु पूर्णतया निदान कर सकने वाला वैद्य वर्त्तमान समय में पुण्यवानों को ही मिलता है, साधारण वैद्य रोग का ठीक निदान नहीं कर सकते है, प्रायः देखा गया है कि—वातज्वर का पूर्वरूप समझ कर नवीन ज्वर वालों को घृत पिलाया गया है और वे बेचारे इस व्यवहार से पानीझरा और मोतीझरा जैसे महाभयंकर रोगों में फँस चुके है, क्योंकि उक्त रोग ऐसे ही व्यवहार से होते है, इसलिये वैद्यों और प्रजा के सामान्य लोगों को चाहिये कि—कम से कम मुख्य २ रोगों में तो विहित और निषिद्ध पदार्थों का सदा ध्यान रक्खें।

साधारण लोगों के जानने के लिये उन में से कुछ मुख्य २ बातें यहां सूचित करते है:—

नये ज्वर में चिकने पदार्थ का खाना, आते हुए पसीने में और ज्वर में ठंढी तथा मलीन हवा का लेना, मैला पानी पीना तथा मलीन खुराक का खाना, मलज्वर के सिवाय नये ज्वर में बारह दिन से पहिले जुलाब सम्बन्धी हरड़ आदि दवा वा कुटकी चिरायता आदि कडुई कषैली दवा का देना निषिद्ध है, यदि उक्त समय में उक्त निषिद्ध

१-इस को पूर्व मे अलता कहते है, यह एक प्रकार का रग होता है ॥

पदार्थों का सेवन किया जावे तो सन्निपात तथा मरणतक हानि पहुँचती है, रोग समय में निषिद्ध पदार्थों का सेवन कर के भी बच जाना तो अग्नि विष और शस्त्र से बच जाने के तुल्य दैवाधीन ही समझना चाहिये ।

वैद्यक शास्त्र में निषेध होने पर भी नये ज्वर में जो पश्चिमीय विद्वान् (डाक्टर लोग) दूध पिलाते है इस बात का निश्चय अद्यावधि (आजतक) ठीक तौर से नहीं हुआ है, हमारी समझ में वह (दूध का पिलाना) औषध विशेष का (जिस का वे लोग प्रयोग करते है) अनुपान समझना चाहिये, परन्तु यह एक विचारणीय विषय है ।

इसी प्रकार से कफ के रोगी को तथा प्रसूता स्त्री को मिश्री आदि पदार्थ हानि पहुँचाते है ॥

पथ्यापथ्य पदार्थ ॥

बाजरी, उड़द, चँवला, कुलथी, गुड़, खांड़, मक्खन, दही, छाछ, भैंस का दूध, घी, आलू, तोरई, काँदा, करेला, कँकोड़ा, गुवार फली, दूधी, लवा, कोला, मेथी, मोगरी, मूला, गाजर, काचर, ककड़ी, गोभी, घिया, तोरई, केला, अनन्नास, आम, जामुन, करौंदे, अञ्जीर, नारंगी, नींबू, अमरूद, सकरकन्द, पीलू, गूँदा और तरबूज आदि बहुत से पदार्थों का लोग प्रायः उपयोग करते है परन्तु प्रकृति और ऋतु आदि का विचार कर इन का सेवन करना चाहिये, क्योंकि ये पदार्थ किसी प्रकृति वाले के लिये अनुकूल तथा किसी प्रकृतिवाले के लिये प्रतिकूल एवं किसी ऋतु में अनुकूल और किसी ऋतु में प्रतिकूल होते है, इसलिये प्रकृति आदि का विचार किये विना इन का उपयोग करने से हानि होती है, जैसे दही शरद् ऋतु में शत्रु का काम करता है, वर्षा और हेमन्त ऋतु में हितकर है, गर्मी में अर्थात् जेठ वैशाख के महीने में मिश्री के साथ खाने से ही फायदा करता है, एवं ज्वर वाले को कुपथ्य है और अतीसार वाले को पथ्य है, इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को तथा ऋतु के अनुसार पथ्यापथ्य को समझ कर और समझदार पूर्ण वैद्य की या इसी ग्रन्थ की सम्मति लेकर प्रत्येक वस्तु का सेवन करने से कभी हानि नहीं हो सकती है ।

पथ्यापथ्य के विषय में इस चौपाई को सदा ध्यान में रखना चाहिये—

चैते गुड़ वैशाखे तेल । जेठे पन्थ अषाढे बेल ॥
सावन दूध न भादौं मही । क्वार करेला न कातिक दही ॥
अगहन जीरो पूसे धना । माहे मिश्री फागुन चना ॥
जो यह बारह देय बचाय । ता घर वैद्य कब हुँ न जाय ॥ १ ॥

१–इस का अर्थ स्पष्ट ही है इस लिये नहीं लिखा है ॥

कुपथ्य पदार्थ ॥

दाह करनेवाले, जलानेवाले, गलानेवाले, सड़ाने के स्वभाववाले और ज़हर का गुण करनेवाले पदार्थ को कुपथ्य कहते है, यद्यपि इन पांचों प्रकार के पदार्थों में से कोई पदार्थ बुद्धिपूर्वक उपयोग में लाने से सम्भव है कि कुछ फायदा भी करे तथापि ये सब पदार्थ सामान्यतया शरीर को हानि पहुँचानेवाले ही है, क्योंकि ऐसी चीजें जब कभी किसी एक रोग को मिटाती भी है तो दूसरे रोग को पैदा कर देती हैं, जैसे देखो। खार अर्थात् नमक के अधिक खाने से वह पेट की वायु गोला और गांठ को गला देता है परन्तु शरीर के धातु को विगाड़ कर पौरुष में बाधा पहुँचाता है।

इन पाचों प्रकार के पदार्थों में से दाहकारक पदार्थ पित्त को बिगाड़ कर अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, इमली आदि अति खट्टे पदार्थ शरीर को गला कर सन्धियों को ढीला कर पौरुष को कम कर देते है।

इस प्रकार के पदार्थों से यद्यपि एक दम हानि नही देखी जाती है परन्तु बहुत दिनों-तक निरन्तर सेवन करने से ये पदार्थ प्रकृतिको इस प्रकार विकृत कर देते है कि यह शरीर अनेक रोगों का गृह बन जाता है इस लिये पहले पथ्य पदार्थों में जो २ पदार्थ लिख चुके है उन्हीं का सदा सेवन करना चाहिये तथा जो पदार्थ पथ्यापथ्य में लिखे है उन का ऋतु और प्रकृति के अनुसार कम वर्त्ताव रखना चाहिये और जो कुपथ्य पदार्थ कहे हैं उन का उपयोग तो बहुत ही आवश्यकता होने पर रोगविशेष में औषध के समान करना चाहिये अर्थात् प्रतिदिन की खुराक में उन (कुपथ्य) पदार्थों का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो पथ्यापथ्य पदार्थ हैं वे भी उन पुरुषों को कभी हानि नहीं पहुँचाते है जिन का प्रतिदिन का अभ्यास जन्म से ही उन पदार्थों के खाने का पड़ जाता है, जैसे—बाजरी, गुड़, उड़द, छाछ और दही आदि पदार्थ, क्यों—कि ये चीजें ऋतु और प्रकृति के अनुसार जैसे पथ्य है वैसे कुपथ्य भी है परन्तु मारवाड़ देश में इन चारों चीजों का उपयोग प्रायः वहां के लोग सदा करते है और उन को कुछ नुकसान नही होता है, इसी प्रकार पञ्जाबवाले उड़द का उपयोग सदा करते है परन्तु उन को कुछ नुकसान नहीं करता है, इस का कारण सिर्फ अभ्यास ही है, इसी प्रकार हानिकारक पदार्थ भी अल्प परिमाण में खाये जाने से कम हानि करते है तथा नहीं भी करते है, दूध यद्यपि पथ्य है तो भी किसी २ के अनुकूल नही आता है अर्थात् दस्त लग जाते है इस से यही सिद्ध होता है कि—खान पान के पदार्थ अपनी प्रकृति, शरीर का बन्धान, नित्य का अभ्यास, ऋतु और रोग की परीक्षा

जैसा इस ऋतु में हितकारी और परभव सुखकारी महोत्सव कहीं भी नहीं देखा, वहा के लोग फाल्गुन शुक्ल में प्राय. १५ दिन तक भगवान् का रथमहोत्सव प्रतिवर्ष किया करते हैं अर्थात् भगवान् के रथको निकाला करते है, रास्तेमें स्तवन गाते हुवे तथा केशर आदि उत्तम पदार्थों के जल से भरी हुई चांदी की पिचकारियां चलाते हुवे बगीचों में जाते है, वहापर स्नात्र पूजादि भक्ति करते है तथा प्रतिदिन शाम को सैर होती है इत्यादि, उक्त धर्मी पुरुषों का इस ऋतु में ऐसा महोत्सव करना अत्यन्त ही प्रशंसा के योग्य है, इस महोत्सव का उपदेश करनेवाले हमारे प्राचीन यति प्राणाचार्यही हुए है, उन्हीं का इस भव तथा परभव में हितकारी यह उपदेश आजतक चल रहा है, इस बात की बहुत ही हमें खुशी है तथा हम उन पुरुषों को अत्यन्त ही धन्यवाद देते हैं जो आजतक उक्त उपदेश को मान कर उसी के अनुसार वर्त्ताव कर अपने जन्म को सफल कर रहे हैं, क्योंकि इस काल के लोग परभव का खयाल बहुत कम करते हैं, प्राचीन समय मे जो आचार्य लोगों ने इस ऋतु में अनेक महोत्सव नियत किये थे उन का तात्पर्य केवल यही था कि मनुष्यों का परभव भी सुधरे तथा इस भव में भी ऋतु के अनुसार उत्सवादि मे परिश्रम करने से आरोग्यता आदि बातों की प्राप्ति हो, यद्यपि वे उत्सव रूपान्तर मे अब भी देखे जाते हैं परन्तु लोग उन के तत्त्व को बिलकुल नहीं सोचते हैं और मनमाना वर्त्ताव करते हैं, देखो। कामी पुरुष होली तथा गौर अर्थात् मदनमहोत्सव (होली तथा गौर की उत्पत्ति का हाल ग्रन्थ बढ जाने के भय से यहा नहीं लिखना चाहते हैं फिर किसी समय इन का वृत्तान्त पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जावेगा) में कैसा २ वर्त्ताव करने लगे हैं, इस महोत्सव में वे लोग यद्यपि दालिये और बडे आदि कफोच्छेदक पदार्थों को खाते है तथा खेल तमाशा आदि करने के बहाने रात को जागना आदि परिश्रम भी करते हैं जिस से कफ घटता है परन्तु होली के महोत्सव मे वे लोग कैसे २ महा असम्बद्ध वचन बोलते है, यह बहुत ही खराब प्रथा पड गई है, बुद्धिमानों को चाहिये कि इस हानिकारक तथा भांडों की सी चेष्टा को अवश्य छोड दें, क्योंकि इन महा असम्बद्ध वचनों के बकने से मज्जातन्तु कम जोर होकर शरीर में तथा बुद्धि में खराबी होती है, यह प्राचीन प्रथा नहीं है किन्तु अनुमान ढाई हजार वर्ष से यह भाण्ड चेष्टा वाममार्गी (कूण्डा पन्थी) लोगो के मताध्यक्षों ने चलाई है तथा भोले लोगों ने इस को मङ्गलकारी मान रक्खा है, क्योंकि उन को इस बात की बिलकुल खबर नहीं है कि यह महा असम्बद्ध वचनों का बकना कूडा पन्थियो का मुख्य भजन है, यह दुश्चेष्टा मारवाड के लोगो में बहुत ही प्रचलित हो रही है, इस से यद्यपि वहा के लोग अनेक बार अनेक हानियो को उठा चुके है परन्तु अबतक नहीं सँभलते है, यह केवल अविद्या देवी का प्रसाद है कि—वर्त्तमान समय में ऋतु के विपरीत अनेक मन.कल्पित व्यवहार प्रचलित हो गये हैं तथा एक दूसरे की देखा देखी और भी प्रचलित होते जाते हैं, अब तो सचमुच कुए में भाग गिरने की कहावत हो गई है, यथा—"अविद्याऽनेक प्रकार की, घट घट मॉहि अडी। को काको समुझावही, कूए भाग पड़ी" ॥ १ ॥ जिस में भी मारवाड की दशा को तो कुछ भी न पूछिये, यहा तो मारवाडी भाषा की यह कहावत बिलकुल ही सत्य होगई है कि—"म्हानें तो रातींधो भाभे जी ने भज लोई राम" अर्थात् कोई २ मर्द लोग तो इन बातों को रोकना भी चाहते हैं परन्तु घर की धणियानियो (स्वामिनियों) के सामने बिल्ली से चूहे की तरह उन बेचारों को डरना ही पडता है, देखो। वसन्त ऋतु मे ठढा खाना बहुत ही हानि करता है परन्तु यहा शील सातम (शीतला सप्तमी) को सब ही लोग ठढा खाते हैं, गुड भी इस ऋतु में महा हानिकारक है उस के भी शीलसातम के दिन खाने के लिये एक दिन पहिले ही से गुलराब, गुलपपड़ी और तेलपपडी आदि

इस लिये इस ऋतु के प्राचीन उत्सवों का प्रचार कर उन में प्रवृत्त होना परम आवश्यक है, क्योंकि इन उत्सवों से शरीर नीरोग रहता है तथा चित्त को प्रसन्नता भी प्राप्त होती है।

पदार्थ बना कर अवश्य ही इस मौसम में खाते हैं, यह वास्तव में तो अविद्या देवी का प्रसाद है परन्तु शीतला देवी के नाम का बहाना है, हे कुलवती गृहलक्ष्मियो ! जरा विचार तो करो कि–दया धर्म से विरुद्ध और शरीर को हानि पहुँचानेवाले अर्थात् इस भव और परभव को बिगाडनेवाले इस प्रकार के खान पान से क्या लाभ है ? जिस शीतला देवी को पूजते २ तुम्हारी पीढियां तक गुज़र गई परन्तु आज तक शीतला देवी ने तुम पर कृपा नहीं की अर्थात् आज तक तुम्हारे बच्चे इसी शीतला देवी के प्रभाव से काने अन्धे, कुरूप, लूले और लँगडे हो रहे हैं और हजारों मर रहे है, फिर ऐसी देवी को पूजने से तुम्हें क्या लाभ हुआ ? इस लिये इस की पूजा को छोडकर उन प्रत्यक्ष अंग्रेज देवों को पूजो कि जिन्हो ने इस देवी को माता के दूध का विकार समझ कर उस को खोद कर (टीके की चाल को प्रचलित कर) निकाल डाला और बालकों को महा संकट से बचाया है, देखो ! वे लोग ऐसे २ उपकारों के करने से ही आज साहिब के नाम से विख्यात है, देखो ! अन्धपरम्परा पर न चलकर तत्त्व का विचार करना बुद्धिमानों का काम है, कितने अफसोस की बात है कि–कोई २ स्त्रिया तीन २ दिन तक का ठढा (वासा) अन्न खाती हैं, भला कहिये इस से हानि के सिवाय और क्या मतलब निकलता है, स्मरण रक्खो कि ठढा खाना सदा ही अनेक हानियों को करता है अर्थात् इस से बुद्धि कम हो जाती है तथा शरीर मे अनेक रोग हो जाते हैं, जब हम बीकानेर की तरफ देखते है तो वहा भी बड़ी ही अन्धपरम्परा दृष्टिगत होती है कि–यहा के लोग तो सवेरे की सिरावणी में प्राय. बालक से लेकर वृद्धपर्यन्त दही और बाजरी की अथवा गेहूँ की बासी रोटी खाते हैं जिस का फल भी हम प्रत्यक्ष ही नेत्रों से देख रहे है कि यहा के लोग उत्साह बुद्धि और सद्विचार आदि गुणों से हीन दीख पडते हैं, अब अन्त मे हमें इस पवित्र देश की कुलवतियों से यही कहना है कि–हे कुलवती स्त्रियो । शीतला रोग की तो समस्त हानियो को उपकारी डाक्टरों ने बिलकुल ही कम कर दिया है अब तुम इस कुत्सित प्रथा को क्यों तिलाञ्जलि नही देती हो ? देखो । ऐसा प्रतीत होता है कि–प्राचीन समय मे इस ऋतु मे कफ की और दुष्कर्मों की निवृत्ति के प्रयोजन से किसी महापुरुष ने सप्तमी वा अष्टमी को शीलव्रत पालने और चूल्हे को न सुलगाने के लिये अर्थात् उपवास करने के लिये कहा होगा परन्तु पीछे से उस कथन के असली तात्पर्य को न समझ कर मिथ्यात्व वश किसी धूर्त ने यह शीतला का ढंग शुरु कर दिया और वह क्रम २ से पनघट के घाघरे के समान बढता २ इस मारवाड़ मे तथा अन्य देशों मे भी सर्वत्र फैल गया (पनघट के घाघरे का वृत्तान्त इस प्रकार है कि–किसी समय दिल्ली मे पनघट पर किसी स्त्री का घाघरा खुल गया, उसे देखकर लोगों ने कहा कि "घाघरा पड़ गया रे, घाघरा पड़ गया" उन लोगों का कथन दूर खडे हुए लोगों को ऐसा सुनाई दिया कि–'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, इस के बाद यह बात कर्णपरम्परा के द्वारा तमाम दिल्ली मे फैल गई और बादशाह तक के कानों तक पहुँच गई कि 'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, परन्तु जब बादशाहने इस बात की तहकीकात की तो मालूम हुआ कि आगरा नही जल गया किन्तु पनघट की स्त्री का घाघरा खुल गया है) हे परममित्रो । देखो । संसार का तो ऐसा ढग है इसलिये सुज्ञ पुरुषो को उक्त हानिकारक बातो पर अवश्य ध्यान देकर उन का सुधार करना चाहिये ॥

४–वसन्तऋतु की हवा बहुत फायदेमन्द मानी गई है इसी लिये शास्त्रकारों का कथन है कि "वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्" अर्थात् वसन्तऋतु में भ्रमण करना पथ्य है, इस लिये इस ऋतु में प्रातःकाल तथा सायंकाल को वायु के सेवन के लिये दो चार मील तक अवश्य जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से वायु का सेवन भी हो जाता है तथा जाने आने के परिश्रम के द्वारा कसरत भी हो जाती है, देखो ! किसी बुद्धिमान् का कथन है कि–"सौ दवा और एक हवा" यह बात बहुत ही ठीक है इसलिये आरोग्यता रखने की इच्छावालों को उचित है कि अवश्यमेव प्रातःकाल सदैव दो चार मील तक फिरा करें ॥

ग्रीष्म ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

ग्रीष्म ऋतु में शरीर का कफ सूखने लगता है तथा उस कफ की खाली जगह में हवा भरने लगती है, इस ऋतु में सूर्य का ताप जैसा ज़मीन पर स्थित रस को खींच लेता है उसी प्रकार मनुष्यों के शरीर के भीतर के कफरूप प्रवाही (बहनेवाले) पदार्थों का शोषण करता है इस लिये सावधानता के साथ गरीब और अमीर सब ही को अपनी २ शक्ति के अनुसार इस का उपाय अवश्य करना चाहिये, इस ऋतु में जितने गर्म पदार्थ हैं वे सब अपथ्य है यदि उन का उपयोग किया जावे तो शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, इस लिये इस ऋतु में जिन पदार्थों के सेवन से रस न घटने पावे अर्थात् जितना रस सूखे उतना ही फिर उत्पन्न हो जावे और वायु को जगह न मिलसके ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिये, इस ऋतुमें मधुर रसवाले पदार्थों के सेवन की आवश्यकता है और वे स्वाभाविक नियम से इस ऋतु में प्रायः मिलते भी है जैसे–पके आम, फालसे, सन्तरे, नारंगी, इमली, नेचू जामुन और गुलाबजामुन आदि, इस लिये स्वाभाविक नियम से आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुए इन पदार्थों का सेवन इस ऋतु में अवश्य करना चाहिये ।

मीठे, ठंढे, हलके और रसवाले पदार्थ इस ऋतु में अधिक खाने चाहियें जिन से क्षीण होनेवाले रस की कमी पूरी हो जावे ।

गेहूँ, चावल, मिश्री, दूध, शकर, जल झरा हुआ तथा मिश्री मिलाया हुआ दही और श्रीखंड[1] आदि पदार्थ खाने चाहियें, ठंढा पानी पीना चाहिये, गुलाब तथा केवड़े के जल का उपयोग करना चाहिये, गुलाब, केवड़ा, खस और मोतिये का अतर सूंघना चाहिये ।

प्रातःकाल में सफेद और हलका सूती वस्त्र, दश से पांच बजे तक सूती जीन वा गजी का कोई मोटा वस्त्र तथा पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र पहरना चाहिये, बर्फ

१–श्रीखण्ड के गुण इसी अध्याय के पाचवें प्रकरण मे कह चुके है, इस के बनाने की विधि भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थों में अथवा पाकशास्त्र मे देख लेनी चाहिये ॥

का जल पीना चाहिये, दिन में तहखाने में वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है।

आँवला, सेव और ईख का मुरब्बा भी इन दिनों में लाभकारी है, मैदा का शीरा जिस में मिश्री और घी अच्छे प्रकार से डाला गया हो प्रातःकाल में खाने से बहुत लाभ पहुँचाता है और दिन भर प्यास नहीं सताती है ।

ग्रीष्म ऋतु आम की तो फसल ही है सब का दिल चाहता है कि आम खावें परन्तु अकेला आम या उस का रस बहुत गर्मी करता है इस लिये आम के रस में घी दूध और काली मिर्चे डाल कर सेवन करना चाहिये ऐसा करने से वह गर्मी नहीं करता है तथा शरीर को अपने रंग जैसा बना देता है।

ग्रीष्म ऋतु में क्या गरीब और क्या अमीर सब ही लोग शर्वत को पीना चाहते है और पीते भी है तथा शर्वत का पीना इस ऋतु में लाभकारी भी बहुत है परन्तु वह (शर्वत) शुद्ध और अच्छा होना चाहिये, अत्तार लोग जो केवल मिश्री की चासनी बना कर शीशियों में भर कर बाज़ार में वेंचते है वह शर्वत ठीक नहीं होता है अर्थात् उस के पीने से कोई लाभ नहीं हो सकता है इस लिये असली चिकित्सा प्रणाली से बना हुआ शर्वत व्यवहार में लाना चाहिये किन्तु जिन को प्रमेह आदि या गर्मी की बीमारी कभी हुई हो उन लोगों को चन्दन गुलाब केवड़े वा खस का शर्वत इन दिनों में अवश्य पीना चाहिये, चन्दन का शर्वत बहुत ठंढा होता है और पीने से तबीयत को खुश करता है, दस्त को साफ ला कर दिल को ताकत पहुँचाता है, कफ प्यास पित्त और लोहू के विकारों को दूर करता है तथा दाह को मिटाता है, दो तोले चन्दन का शर्वत दश तोले पानी के साथ पीना चाहिये तथा गुलाब वा केवड़े का शर्वत भी इसी रीति से पीना अच्छा है इस के पीने से गर्मी शान्त होकर कलेजा तर रहता है, यदि दो तोले नींबू का शर्वत दश तोले जल में डाल कर पिया जावे तो भी गर्मी शान्त हो जाती है और भूख भी दुगुनी लगती है, चालीस तोले मिश्री की चासनी में वीस नीवुओं के रस को डाल कर बनाने से नींबू का शर्वत अच्छा बन सकता है, चार तोले भर अनार का शर्वत बीस तोले पानी में डालकर पीने से वह नज़ले को मिटा कर दिमाग को ताकत पहुँचाता है, इसी रीति से सन्तरा तथा नेचू का शर्वत भी पीने से इन दिनों में बहुत फायदा करता है।

जिस स्थान में असली शर्वत न मिल सके और गर्मी का अधिक ज़ोर दिखाई देता हो तो यह उपाय करना चाहिये कि—पचीस बादामों की गिरी निकाल कर उन्हें एक घण्टेतक पानी में भीगने दे, पीछे उन का लाल छिलका दूर कर तथा उन्हें घोट कर

१—परन्तु मन्दाग्निवाले पुरुषो को इसे नहीं खाना चाहिये ॥

एक गिलास भर जल बनावे और उस में मिश्री डाल कर पी जावे, ऐसा करने से गर्मी बिलकुल न सतावेगी और दिमाग को तरी भी पहुँचेगी।

गरीब और साधारण लोग ऊपर कहे हुए शर्बतों की एवज़ में इमली का पानी कर उस में खजूर अथवा पुराना गुड़ मिला कर पी सकते हैं, यद्यपि इमली सदा खाने के योग्य वस्तु नहीं है तो भी यदि प्रकृति के अनुकूल हो तो गर्मी की सख्त ऋतु में एक वर्ष की पुरानी इमली का शर्बत पीने में कोई हानि नहीं है किन्तु फायदा ही करता है, गेहूँ के फुल्कों (पतली २ रोटियों) को इस के शर्बत में मींज कर (भिगो कर) खाने से भी फायदा होता है, दाह से पीड़ित तथा लू लगे हुए पुरुष के इमली के भीगे हुए गूदे में नमक मिला कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मलने से तत्काल फायदा पहुँचता है अर्थात् दाह और लू की गर्मी शान्त हो जाती है।

इस ऋतु में खिले हुए सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला का धारण करना वा उन को सूंघना तथा सफेद चन्दन का लेप करना भी श्रेष्ठ है।

चन्दन, केवड़ा, गुलाब, हिना, खस, मोतिया, जुही और पनड़ी आदि के अतरों से बनाये हुए साबुन भी (लगाने से) गर्मी के दिनों में दिल को खुश तथा तर रखते हैं इस लिये इन साबुनों को भी प्रायः तमाम शरीर में स्नान करते समय लगाना चाहिये।

इस ऋतु में स्त्रीगमन १५ दिन में एक वार करना उचित है, क्योंकि इस ऋतु में स्वभाव से ही शरीर में शक्ति कम होजाती है ॥

१-परन्तु ये सब ऋतु के अनुकूल पदार्थ उन्ही पुरुषों को प्राप्त हो सकते है जिन्हों ने पूर्व भव में देव गुरु और धर्म की सेवा की हैं, इस भव मे जिन पुरुषों का मन धर्म में लगा हुआ है और जो उदार स्वभाव हैं तथा वास्तव मे उन्ही का जन्म प्रशसा के योग्य है, क्योकि-देखो! शाल और दुशाले आदि उत्तमोत्तम वस्त्र, कडे और कण्ठी आदि भूषण, सब प्रकार के वाहन और मोतियों के हार आदि सर्व पदार्थ धर्म की ही बदौलत लोगो को मिले है और मिल सकते हैं, परन्तु अफसोस है कि इस समय उस (धर्म) को मनुष्य बिलकुल भूले हुए हैं, इस समय में तो ऐसी व्यवस्था हो रही है कि-धनवान् लोग धन के नशे में पड कर धर्म को बिलकुल ही छोड बैठे हैं, वे लोग कहते हैं कि-हमें किसी की क्या परवाह है, हमारे पास धन है इसलिये हम जो चाहें सो कर सकते हैं इत्यादि, परन्तु यह उनकी महाभूल है, उन को अज्ञानता के कारण यह नही मालूम होता है कि-जिस से हम ने ये सब फल पाये हैं उस को हमे नमते रहना चाहिये और आगे के लिये पर लोक का मार्ग साफ करना चाहिये, देखो! जो धनवान् और धर्मवान् होता है उस की दोनो लोकों में प्रशसा होती है, जिन्हों ने पूर्वभव में धर्म किया है उन्ही को भोजन और वस्त्र आदि की तंगी नहीं रहती है अर्थात् पुण्यवानों को ही खान पान आदि सब बातों का सुखरहता है, देखो! ससार मे बहुत से लोग ऐसे भी हैं जिन को खानपान का भी सुख नहीं है, कहिये संसार मे इस से अधिक और क्या तकलीफ होगी अर्थात् उन के दुःख का क्या अन्त हो सकता है कि जिन के लिये रोटी-तक का भी ठिकाना नहीं है, आदमी अन्य सब प्रकार के दु ख भुगत सकता है परन्तु रोटी का दु.ख किसी से नहीं सहा जाता है, इसी लिये कहा जाता है कि हे भाइयो! धर्म पर सदा प्रेम रक्खो, वही तुम्हारा सच्चा मित्र है ॥

इस ऋतु में अपथ्य—सिरका, खारी तीखे खट्टे और रूक्ष पदार्थों का सेवन, कसरत, धूप में फिरना और अग्नि के पास बैठना आदि कार्य रस को सुखाकर गर्मी को बढाते है इस लिये इस ऋतु में इन का सेवन नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार गर्म मसाला, चटनियां, लाल मिर्च और तेल आदि पदार्थ सदा ही बहुत खाने से हानि करते है परन्तु इस ऋतु में तो ये (सेवन करने से) अकथनीय हानि करते है इस लिये इस ऋतु में इन सब का अवश्य ही त्याग करना चाहिये ॥

वर्षा और प्रावृट् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

चार महीने बरसात के होते हैं, मारवाड़ तथा पूर्व के देशों में आर्द्रा नक्षत्र से तथा दक्षिण के देशों में मृगशिर नक्षत्र से वर्षा की हवा का प्रारम्भ होता है, पूर्व बीते हुए ग्रीष्म में वायु का संचय हो चुका है, रस के सूख जाने से शक्ति घट चुकी है तथा जठराग्नि मन्द हो गई है, इस दशा में जब जलकणों के सहित बरसाती हवा चलती है तथा मेंह बरसता है तब पुराने जल में नया जल मिलता है, ठंढे पानी के बरसने से शरीर की गर्मी भाफ रूप होकर पित्त को बिगाड़ती है, ज़मीन की भाफ और खटासवाला पाक पित्त को बढ़ा कर वायु तथा कफ को दबाने का प्रयत्न करता है तथा बरसात का मैला पानी कफ को बढा कर वायु और पित्त को दबाता है, इस प्रकार से इस ऋतु में तीनों दोषों का आपस में विरोध रहता है, इस लिये इस ऋतु में तीनों दोषों की शान्ति के लिये युक्तिपूर्वक आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन करते है:—

१—जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले तथा सब दोषों को बराबर रखनेवाले खान पान का उपयोग करना चाहिये अर्थात् सब रस खाने चाहियें।

२—यदि हो सके तो ऋतु के लगते ही हलका सा जुलाब ले लेना चाहिये।

३—खुराक में वर्षभर का पुराना अन्न वर्त्तना चाहिये।

४—मूंग और अरहर की दाल का ओसावण बना कर उस में छाछ डाल कर पीना चाहिये, यह इस ऋतु में फायदेमन्द है।

५—दही में सञ्चल, सेंधा या सादा नमक डाल कर खाना बहुत अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार से खाया हुआ दही इस ऋतु में वायु को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा इस प्रकार से खाया हुआ दही हेमन्त ऋतु में भी पथ्य है।

१—बहुत से लोग मूर्खता के कारण गर्मी की ऋतु मे दही खाना अच्छा समझते हैं, सो यह ठीक नहीं है, यद्यपि उक्त ऋतु मे वह खाते समय तो ठंढा मालूम होता है परन्तु पचने के समय पित्त को बढ़ा कर कर उलटी अधिक गर्मी करता है, हा यदि इस ऋतु मे दही खाया भी जावे तो मिश्री डाल कर युक्तिपूर्वक खाने से पित्त को शान्त करता है, किन्तु युक्ति के विना तो खाया हुआ दही सब ही ऋतुओं में हानि करता है ॥

६–छाछ, नींबू और कच्चे आम आदि खट्टे पदार्थ भी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में अधिक पथ्य है ।

७–इन वस्तुओं का उपयोग भी प्रकृति के अनुसार तथा परिमाण मूजब करने से लाभ होता है अन्यथा हानि होती है ।

८–नदी तालाव और कुए के पानी में वरसात का मैला पानी मिल जाने से इन का जल पीने योग्य नहीं रहता है, इस लिये जिस कुए में वा कुण्ड में वरसाती पानी न मिलता हो उस का जल पीना चाहिये ।

९–वरसात के दिनों में पापड़, काचरी और अचार आदि क्षारवाले पदार्थ तथा भुजिये, वड़े, चीलड़े, वेढ़ई, कचोड़ी आदि स्नेहवाले पदार्थ अधिक फायदेमन्द हैं, इस लिये इन का सेवन करना चाहिये ।

१०–इस ऋतु में नमक अधिक खाना चाहिये ॥

इस ऋतु में अपथ्य—तलघर में बैठना, नदी या तालाव का गँदला जल पीना, दिन में सोना, धूप का सेवन और शरीर पर मिट्टी लगाकर कसरत करना, इन सब बातों से बचना चाहिये ।

इस ऋतु में रूक्ष पदार्थ नहीं खाने चाहियें, क्योंकि रूक्ष पदार्थ वायु को बढ़ाते हैं, ठंढी हवा नहीं लेनी चाहिये, कीचड़ और भीगी हुई पृथिवी पर नंगे पैर नहीं फिरना चाहिये, भीगे हुए कपड़े नहीं पहरने चाहियें, हवा और जल की बूंदों के सामने नहीं बैठना चाहिये, घर के सामने कीचड़ और मैलापन नहीं होने देना चाहिये, वरसात का जल नहीं पीना चाहिये और न उस में नहाना चाहिये, यदि नहाने की इच्छा हो तो शरीर में तैल की मालिस कर नहाना चाहिये, इस प्रकार से आरोग्यता की इच्छा रखने वालों को इन चार मासतक (प्रावृट् और वर्षा ऋतु में) वर्त्ताव करना उचित है ॥

शरद् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

सव ऋतुओं में शरद् ऋतु रोगों के उपद्रव की जड़ है, देखो ! वैद्यकशास्त्रकारों का कथन है कि–"रोगाणां शारदी माता पिता तु कुसुमाकरः" अर्थात् शरद् ऋतु रोगों को पैदा करनेवाली माता है और वसन्त ऋतु रोगों को पैदा कर पालनेवाला पिता है, यह सब ही जानते हैं कि–सब रोगों में ज्वर राजा है और ज्वर ही इस ऋतु का मुख्य उपद्रव है, इसलिये इस ऋतु में बहुत ही सँभल कर चलना चाहिये, वर्षा ऋतु में सञ्चित हुआ पित्त इस ऋतु के ताप की गर्मी से शरीर में कुपित होकर बुखार को करता है तथा वरसात के कारण जमीन भीगी हुई होती है इसलिये उस से भी धूप के द्वारा जल की

१–यह कल्पसूत्र की टीका में लिखा है ॥

भाफ उठ कर हवा को विगाड़ती है, विशेष कर जो देश नीचे है अर्थात् जहां बरसात का पानी भरा रहता है वहां भाफ के अधिक उठने के कारण हवा अधिक विगड़ती है, वस यही जहरीली हवा ज्वर को पैदा करने वाली है, इस लिये शीतज्वर, एकान्तर, तिजारी और चौथिया आदि विषम ज्वरों की यही खास ऋतु है, ये सब ज्वर केवल पित्त के कुपित होने से होते है, वहुत से मनुष्यों की सेवा में तो ये ज्वर प्रतिवर्ष आकर हाजिरी देते है और वहुत से लोगों की सेवा को तो ये मुद्दततक उठाया करते है, जो ज्वर शरीर में मुद्दततक रहता है वह छोड़ता भी नहीं है किन्तु शरीर को मिट्टी में मिला कर ही पीछा छोड़ता है तथा रहने के समय में भी अनेक कष्ट देता है अर्थात् तिल्ली बढ़ जाती है, रोगी कुरूप हो जाता है तथा जब ज्वर जीर्णरूप से शरीर में निवास करता है तब वह वारंवार वापिस आता और जाता है अर्थात् पीछा नही छोड़ता है, इस लिये इस ऋतुमें वहुत ही सावधानता के साथ अपनी प्रकृति तथा ऋतु के अनुकूल आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार से है कि:—

१–इस ऋतु में यथाशक्य पित्त को शान्त करने का उपाय करना चाहिये, पित्त को जीतने वा शान्त करने के मुख्य तीन उपाय है:—

(A)–पित्त के शमन करनेवाले खान पान से और दवा से पित्त को दवाना चाहिये।

(B) वमन और विरेचन के द्वारा पित्त को निकाल डालना चाहिये।

(C) फस्त खुलवा कर या जोंक लगवा कर खून को निकलवाना चाहिये।

२–वायु की प्रकृतिवाले को शरद् ऋतु में घी पीकर पित्त की शान्ति करनी चाहिये।

३–पित्त की प्रकृतिवाले को कड़ुए पदार्थ खानेपीने चाहियें, कड़ुए पदार्थों में नीम पर की गिलोय, नीम की भीतरी छाल, पित्तपापड़ा और चिरायता आदि उत्तम और गुण-

---

१–इस हवा को अग्रेजी में मलेरिया कहते हैं तथा इस से उत्पन्न हुए ज्वर को मलेरिया फीवर कहते हैं॥

२–वहुत से प्रमादी लोग इस ऋतु में ज्वरादि रोगों से ग्रस्त होने पर भी अज्ञानता के कारण आहार विहार का नियम नहीं रखते हैं, वस इसी मूर्खता से वे अत्यन्त भुगत २ कर मरणान्त कष्ट पाते है ॥

३–यदि वमन और विरेचन का सेवन किया जावे तो उसे पथ्य से करना उचित है, क्योंकि पुरुष का विरेचन (जुलाव) और स्त्री का जापा (प्रसूतिसमय) समान होता है इसलिये पूर्ण वैद्य की सम्मति से अथवा आगे इसी ग्रन्थ में लिखी हुई विरेचन की विधि के अनुसार विरेचन लेना ठीक है, हा इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–जव विरेचन लेना हो तव शरीर मे घृत की मालिस करा के तथा घी पीकर तीन पाच या सात दिनतक पहिले वमन कर फिर तीन दिन ठहर कर पीछे विरेचन लेना चाहिये, घी पीने की मात्रा नित्य की दो तोले से लेकर चार तोलेतक की काफी है, इन सव वातों का वर्णन आगे किया जायगा ॥

४–यह तीसरा उपाय तो विरले लोगों से ही भाग्ययोग से वन पडता है, क्योंकि पहिले जो दो उपाय हैं वे तो सहज और सव से हो सकने योग्य है परन्तु तीसरा उपाय कठिन अर्थात् सव से हो सकने योग्य नहीं है ॥

कारी पदार्थ हैं, इसलिये इन में से किसी एक चीज़ की फँकी ले लेना चाहिये, अथवा रात को भिगो कर प्रातःकाल उस का क्वाथ कर (उबाल कर) छान कर तथा ठंढा कर मिश्री डालकर पीना चाहिये, इस दवा की मात्रा एक रुपये भर है, इस से ज्वर नहीं आता है और यदि ज्वर हो तो भी चला जाता है, क्योंकि इस दवा से पित्त की शान्ति ो जाती है।

४–पित्त की प्रकृतिवाले के लिये दूसरा इलाज यह भी है कि वह दूध और मिश्री के साथ चावलों को खावे, क्योंकि इस के खानेसे भी पित्त शान्त हो जाता है।

५–पित्त की प्रकृतिवाले को पित्तशामक जुलाब भी ले लेना चाहिये, उस से भी पित्त निकल कर शान्त हो जावेगा, वह जुलाब यह है कि–अमृतसर की हरड़ें अथवा छोटी हरड़ें अथवा निसोतकी छाल, इन तीनों चीजों में से किसी एक चीज़ की फंकी बूरा मिला कर लेनी चाहिये तथा दाल भात या कोई पतला पदार्थ पथ्य में लेना चाहिये, ये सब साधारण दस्त लानेवाली चीजें हैं।

६–इस ऋतु में मिश्री, बूरा, कन्द, कमोद वा साठी चावल, दूध, ऊख, सेंधा नमक (थोड़ा), गेहू, जौ और मूंग पथ्य हैं, इस लिये इन को खाना चाहिये।

७–जिस पर दिन में सूर्य की किरणें पड़ें और रात को चन्द्रमा की किरणें पड़ें, ऐसा नदी तथा तालाब का पानी पीना पथ्य है।

८–चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, फूलों की मालायें और सफेद वस्त्र, ये भी शरद् ऋतु में पथ्य है।

९–वैद्यकशास्त्र कहता है कि–ग्रीष्म ऋतु में दिन को सोना, हेमन्त ऋतु में गर्म और पुष्टिकारक खुराक का खाना और शरद् ऋतु में दूध में मिश्री मिला कर पीना चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करने से प्राणी नीरोग और दीर्घायु होता है।

१०–रक्तपित्त के लिये जो २ पथ्य कहा है वह २ इस ऋतु में भी पथ्य है॥

इस ऋतु में अपथ्य—ओस, पूर्व की हवा, क्षार, पेट[1] भर भोजन, दही, खिचडी, तेल, खटाई, सोंठ और मिर्च आदि तीखे पदार्थ, हिंग, खारे पदार्थ, अधिक चरबीवाले पदार्थ, सूर्य तथा अग्नि का ताप, गरमागरम रसोई, दिन में सोना और भारी खुराक इन सब का त्याग[2] करना चाहिये॥

१–इस ऋतु में पेट भर खाने से बहुत हानि होती है, वैद्यकशास्त्र में कार्त्तिक वदि अष्टमी से लेकर मृगशिर के आठ दिन बाकी रहने तक दिनों को यमदाढ कहा गया है, जो पुरुष इन दिनों में थोडा और हलका भोजन करता है वही यम की दाढ से बचता है॥

२–शरीर की नीरोगता के लिये उक्त बातों का जो त्याग है वह भी तप है, क्योंकि इच्छा का जो रोधन करना (रोकना) है उसी का नाम तप है॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मनुष्यों की ताकत को खींच लेती है उसी प्रकार हेमन्त और शिशिर ऋतु ताकत की वृद्धि कर देती है, क्योंकि सूर्य पदार्थों की ताकत को खींचने वाला और चन्द्रमा ताकत को देने वाला है, शरद् ऋतु के लगते ही सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तथा हेमन्त में चन्द्रमा की शीतलता के बढ जाने से मनुष्यों में ताकत का बढ़ना प्रारंभ हो जाता है, सूर्य का उदय दरियाव में होता है इसलिये बाहर ठंढ के रहने से भीतर की जठराग्नि तेज़ होने से इस ऋतु में खुराक अधिक हज़म होने लगती है, गर्मी में जो सुस्ती और शीतकाल में तेज़ी रहती है उस का भी यही कारण है, इस ऋतु के आहार विहार का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है:—

१जिस की जठराग्नि तेज़ हो उस को इस ऋतु में पौष्टिक खुराक खानी चाहिये तथा मन्दाग्निवाले को हलकी और थोड़ी खुराक खानी चाहिये, यदि तेज़ अग्निवाला पुरुष पूरी और पुष्टिकारक खुराक को न खावे तो वह अग्नि उस के शरीर के रस और रुधिर आदि को सुखा डालती है, परन्तु मन्दाग्निवालों को पुष्टिकारक खुराक के खाने से हानि पहुँचती है, क्योंकि ऐसा करने से अग्नि और भी मन्द हो जाती है तथा अनेक रोग उत्पन्न हो जाते ह ।

२–इस ऋतु में मीठे खट्टे और खारी पदार्थ खाने चाहियें, क्योंकि मीठे रस से जब कफ बढ़ता है तब ही वह प्रबल जठराग्नि शरीर का ठीक १ पोषण करती है, मीठे रस के साथ रुचि को पैदा करने के लिये खट्टे और खारी रस भी अवश्य खाने चाहियें ।

३–इन तीनों रसों का सेवन अनुक्रम से भी करने का विधान है, क्योंकि ऐसा लिखा है–हेमन्त ऋतु के साठ दिनों में से पहिले वीस दिन तक मीठा रस अधिक खाना चाहिये, बीच के बीस दिनों में खट्टा रस अधिक खाना चाहिये तथा अन्त के बीस दिनों में खारा रस अधिक खाना चाहिये, इसी प्रकार खाते समय मीठे रस का ग्रास पहिले लेना चाहिये, पीछे नींबू, कोकम, दाल, शाक, राइता, कढी और अचार आदि का ग्रास लेना चाहिये, इस के बाद चटनी, पापड़ और खीचिया आदि पदार्थ (अन्त में) खाने चाहियें, यदि इस क्रम से न खाकर उलट पुलट कर उक्त रस खाये जावें तो हानि होती है, क्योंकि शरद् ऋतु के पित्त का कुछ अंश हेमन्त ऋतु के पहिले पक्षतक में शरीर में रहता है इस लिये पहिले खट्टे और खारे रस के खाने से पित्त कुपित होकर हानि होती है, इस लिये इस का अवश्य स्मरण रखना चाहिये ।

४–अच्छे प्रकार पोषण करनेवाली (पुष्टिकारक) खुराक खानी चाहिये ।

५–स्त्री सेवन, तेल की मालिश, कसरत, पुष्टिकारक दवा, पौष्टिक खुराक, पाक, धूप

का सेवन, ऊन आदि का गर्म कपड़ा, अँगीठी (सिगड़ी) से मकान को गर्म रखना आदि बातें इस ऋतु में पथ्य है ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का प्रायः एक सा ही वर्त्ताव है, ये दोनों ऋतुयें वीर्य को सुधारने के लिये बहुत अच्छी है, क्योंकि इन ऋतुओं में जो वीर्य और शरीर को पोषण दिया जाता है वह बाकी के आठ महीने तक ताकत रखता है अर्थात् वीर्य पुष्ट रहता है ।

यद्यपि सबही ऋतुओं में आहार और विहार के नियमों का पालन करने से शरीर का सुधार होता है परन्तु यह सब ही जानते हैं कि वीर्य के सुधार के विना शरीर का सुधार कुछ भी नहीं हो सकता है, इस लिये वीर्य का सुधार अवश्य करना चाहिये और वीर्य के सुधारने के लिये शीत ऋतु, शीतल प्रकृति और शीतल देश विशेष अनुकूल होता है, देखो ! ठंढी तासीर, ठंढी मौसम और ठंढे देश के बसने वालों का वीर्य अधिक दृढ होता है ।

यद्यपि यह तीनों प्रकार की अनुकूलता इस देश के निवासियों को पूरे तौर से प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह देश सम शीतोष्ण है तथापि प्रकृति और ऋतु की अनुकूलता तो इस देश के भी निवासियों के भी आधीन ही है, क्योंकि अपनी प्रकृति को ठंढी अर्थात् दृढ़ता और सत्वगुण से युक्त रखना यह बात स्वाधीन ही है, इसी प्रकार वीर्य को सुधारने के लिये तथा गर्भाधान करने के लिये शीतकाल को पसन्द करना भी इन के स्वाधीन ही है, इसलिये इस ऋतु में अच्छे वैद्य वा डाक्टर की सलाह से पौष्टिक दवा, पाक अथवा खुराक के खाने से बहुत ही फायदा होता है ।

जायफल, जावित्री, लौंग, बादाम की गिरी और केशर को मिलाकर गर्म किये हुए दूध का पीना भी बहुत फायदा करता है ।

बादाम की कतली वा बादाम की रोटी का खाना वीर्य पुष्टि के लिये बहुत ही फायदे मन्द है ।

इन ऋतुओं में अपथ्य—जुलाब का लेना, एक समय भोजन करना, बासी रसोई का खाना, तीखे और तुर्स पदार्थों का अधिक सेवन करना, खुली जगह में सोना, ठंढे पानी से नहाना और दिनमें सोना, ये सब बातें इन ऋतुओं में अपथ्य हैं, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये ॥

यह जो ऊपर छःओं ऋतुओं का पथ्यापथ्य लिखा गया है वह नीरोग प्रकृतिवालों के लिये समझना चाहिये, किन्तु रोगी का पथ्यापथ्य तो रोग के अनुसार होता है, वह संक्षेप से आगे लिखेंगे ।

पथ्यापथ्य के विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–देश और अपनी प्रकृति को पहचान कर पथ्य का सेवन करना चाहिये तथा अपथ्य का त्याग करना चाहिये, इस विषय में यदि किसी विशेष बात का विवेचन करना हो तो चतुर वैद्य तथा डाक्टरों की सलाह से कर लेना चाहिये, यह विषय बहुत गहन (कठिन) है, इस लिये जो इस विद्या के जानकार हों उन की संगति अवश्य करनी चाहिये कि जिस से शरीर की आरोग्यता के नियमों का ठीक २ ज्ञान होने से सदा आरोग्यता बनी रहे तथा समयानुसार दूसरों का भी कुछ उपकार हो सके, वैसे भी बुद्धिमानों की संगति करने से अनेक लाभ ही होते है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का ऋतुचर्यावर्णन नामक सातवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवां प्रकरण—दिनचर्या वर्णन ॥

प्रातःकाल का उठना ॥

यह वात तो स्पष्टतया प्रकट ही है कि–स्वाभाविक नियम के अनुसार सोने के लिये रात और कार्य करने के लिये दिन नियत है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि–प्रातःकाल जब चार घड़ी रात बाकी रहे तब ही नीद को छोड़कर जागृत हो जाना अव्वल दर्जे का काम है, यदि उस समय अधिक निद्रा आती हो अथवा उठने में कुछ अड़चल मालूम होती हो तो दूसरा दर्जा यह है कि दो घड़ी रात रहने पर उठना चाहिये और तीसरा दर्जा सूर्य चढे वाद उठने का है, परन्तु यह दर्जा निकृष्ट और हानिकारक है, इसलिये आयु की रक्षा के लिये मनुष्यों को रात्रि के चौथे पहर में आलस्य को त्याग कर अवश्य उठना चाहिये, क्योंकि जल्दी उठने से मन उत्साह में रहता है, दिन में काम काज अच्छी तरह होता है, वुद्धि निर्मल रहती है और स्मरणशक्ति तेज़ रहती है, पढ़नेवालों के लिये भी यही (प्रातःकाल का) समय बहुत श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहें इस विषय के लाभों के वर्णन करने में बड़े २ ज्ञानी पूर्वाचार्य तत्त्ववेत्ताओं ने अपने २ ग्रन्थों में लेखनी को खूब ही दौड़ाया है, इस लिये चार घड़ी के तड़के उठने का सब मनुष्यों को अवश्य अभ्यास डालना चाहिये परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विना जल्दी सोये मनुष्य प्रातःकाल चार वजे कभी नही उठ सकता है, यदि कोई जल्दी सोये उक्त समय में उठ भी जावे तो इस से नाना प्रकार की हानियां होती हैं अर्थात् शरीर दुर्वल होजाता है, शरीर में आलस्य जान पड़ता है, आंखों में जलन सी रहती है, शिर में दर्द रहता है तथा भोजन पर भी ठीक रुचि नही रहती है, इस लिये रात को नौ वा दश वजे पर अवश्य

सो रहना चाहिये कि जिस से प्रातःकाल में विना दिक्कत के उठ सके, क्योंकि प्राणी मात्र को कम से कम छः घण्टे अवश्य सोना चाहिये, इस से कम सोने में मस्तक का रोग आदि अनेक विकार उत्पन्न होजाते है, परन्तु आठ घण्टे से अधिक भी नहीं सोना चाहिये क्योंकि आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन जान पड़ता है और कार्यों में भी हानि होने से दरिद्रता घेर लेती है, इसलिये उचित तो यही है कि रात को नौ या अधिक से अधिक दश बजे पर अवश्य सो रहना चाहिये तथा प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के अवश्य उठना चाहिये, यदि कारणवश चार घड़ी के तड़के का उठना कदाचित् न निभसके तो दो घड़ी के तड़के तो अवश्य उठना ही चाहिये।

प्रातःकाल उठते ही पहिले स्वरोदय का विचार करना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो वांयां पांव और सूर्य स्वर चलता हो तो दाहिना पांव ज़मीन पर रख कर थोड़ी देरतक विना ओठ हिलाये परमेष्ठी का स्मरण करना चाहिये, परन्तु यदि सुषुम्ना स्वर चलता हो तो पलँग पर ही बैठे रहकर परमेष्ठी का ध्यान करना ठीक है क्योंकि यही समय योगाभ्यास तथा ईश्वराराधन अथवा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, देखो! जितने सुजन और ज्ञानी लोग आजतक हुए है वे सब ही प्रातःकाल उठते थे परन्तु कैसे पश्चात्ताप का विषय है कि इन सब अकथनीय लाभों का कुछ भी विचार न कर भारतवासी जन करवटें ही लेते २ नौ बजा देते हैं इसी का यह फल है कि वे नाना प्रकार के क्लेशों में सदा फँसे रहते है ॥

प्रातःकाल का वायुसेवन ॥

प्रातःकाल के वायु का सेवन करने से मनुष्य हृष्ट पुष्ट बना रहता है, दीर्घायु और चतुर होता है, उस की बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण हो जाती है कि कठिन से कठिन आशय कोभी सहज में ही जान लेता है और सदा नीरोग बना रहता है, इसी (प्रातःकाल के) समय बस्ती के बाहर बागों की शोभा के देखने में बड़ा आनंद मिलता है, क्योंकि इसी समय वृक्षों से जो नवीन और स्वच्छ प्राणप्रद वायु निकलता है वह हवा के सेवन के लिये बाहर जाने वालों की श्वास के साथ उन के शरीर के भीतर जाता है जिस के प्रभाव से मन कली की भांति खिल जाता और शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, इसलिये हे प्यारे भ्रातृ-गणो। हे सुजनो! और हे घर की लक्ष्मियो! प्रातःकाल तड़के जागकर स्वच्छ वायु के सेवन का अभ्यास करो कि जिस से तुम को व्याधिजन्य क्लेश न सहने पड़ें और सदा तुम्हारा मन प्रफुल्लित और शरीर नीरोग रहे, देखो। उक्त समय में बुद्धि भी निर्मल

१–स्वरोदय के विषय में इसी ग्रन्थ के पांचवें अध्याय में वर्णन किया जावेगा, वहां इस का सम्पूर्ण विषय देख लेना चाहिये ॥

रहती है इसलिये उसके द्वारा उभय लोकसम्बंधी कार्यों का विचार कर तुम अपने समय को लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में व्यय कर सफल कर सकते हो।

देखो! प्रातःकाल चिड़ियां भी कैसी चुहचुहातीं, कोयलें भी कू कू करतीं मैना तोता आदि सब पक्षी भी मानु उस परमेष्ठी परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते है, फिर कैसे शोक की बातहै कि—हम मनुष्य लोग सब से उत्तम होकर भी पक्षी पखेरू आदि से भी निषिद्ध कार्य करें और उन के जगाने पर भी चैतन्य न हों॥

प्रातःकाल का जलपान॥

ऊपर कहे हुए लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल के उठने से एक यह भी बड़ा लाभ हो सकता है कि—प्रातःकाल उठकर सूर्य के उदय से प्रथम थोड़ा सा शीतल जल पीने से बवासीर और ग्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते है।

वैद्यक शास्त्रों में इस (प्रातःकाल के) समय में नाकै से जल पीने के लिये आज्ञा दी है क्योंकि नाक से जल पीने से बुद्धि तथा दृष्टि की वृद्धि होती है तथा पीनस आदि रोग जाते रहते हैं॥

शौच अर्थात् मलमूत्र का त्याग॥

प्रातःकाल जागकर आधे मील की दूरी पर मैदान में मल का त्याग करने के लिये जाना चाहिये, देखो! किसी अनुभवी ने कहा है कि—"ओढे सोवै ताजा खावै, पाव कोस मैदान में जावे। तिस घर वैद्य कभी नहिं आवै" इस लिये मैदान में जाकर निर्जीव साफ ज़मीनपर मस्तक को ढांक कर मल का त्याग करना चाहिये, दूसरे के किये हुए मलमूत्र पर मल मूत्र का त्याग नही करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दाद खाज और सुज़ाख आदि रोगों के हो जाने का सम्भव है, मलमूत्र का त्याग करते समय बोलना नहीं

१—इस की यह विधि है कि—ऊपर लिखे अनुसार जागृत होकर तथा परमेष्ठी का ध्यान कर आठ अञ्जलि, अर्थात् आध सेर पानी नाक से नित्य पीना चाहिये, यदि नाक से न पिया जासके तो मुँह से ही पीना चाहिये, फिर आध घण्टे तक बायें कर वट से लेट जाना चाहिये परन्तु निद्रा नहीं लेनी चाहिये, फिर मल मूत्र के त्याग के लिये जाना चाहिये, इस (जलपान) का गुण वैद्यक शास्त्रों मे बहुत ही अच्छा लिखा है अर्थात् इस के सेवन से आयु बढ़ता है तथा हरस, शोथ, दस्त, जीर्ण ज्वर, पेट का रोग, कोढ़, मेद, मूत्र का रोग, रक्तविकार, पित्तविकार तथा कान आंख गले और शिर का रोग मिटता है, पानी यद्यपि सामान्य पदार्थ है अर्थात् सब ही की प्रकृति के लिये अनुकूल है परन्तु जो लोग समय बिताकर अर्थात् देरी कर उठते हैं उन लोगों के लिये तथा रात्रि में खानपान के त्यागी पुरुषों के लिये एव कफ और वायु के रोगों मे सन्निपात मे तथा ज्वर मे प्रात.काल मे जलपान नहीं करना चाहिये, रात्रि में जो खान पान के त्यागी पुरुष हैं उन को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो लाभ रात्रि मे खानपान के त्याग में है उस लाभका हजार वा भाग भी प्रात काल के जलपान मे नहीं है, इसलिये जो रात के खान पान के त्यागी नहीं हैं उन को उषापान (प्रात काल मे जलपीना) कर्त्तव्य है॥

चाहिये, क्योंकि इस समय बोलने से दुर्गन्धि मुख में प्रविष्ट होकर रोगों का कारण होती है तथा दूसरी तरफ ध्यान होने से मलादि की शुद्धि भी ठीक रीतिसे नहीं होती है, मलमूत्र का त्याग बहुत बल करके नहीं करना चाहिये।

मल का त्याग करने के पश्चात् गुदा और लिंग आदि अंगों को जल से खूब धोकर साफ करना चाहिये।

जो मनुष्य सूर्योदय के पीछे (दिन चढने पर) पाखाने जाते है उन की बुद्धि मलीन और मस्तक न्यून बलवाला हो जाता है तथा शरीर में भी नाना प्रकार के रोग हो जाते है।

बहुत से मूर्ख मनुष्य आलस्य आदि में फँस कर मल मूत्र आदि के वेग को रोक लेते है, यह बड़ी हानिकारक बात है, क्योंकि–इस से मूत्रकृच्छ्र शिरोरोग तथा पेड़ू पीठ और पेट आदि में दर्द होने लगता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु मल के रोकने से अनेक उदावर्त्त आदि रोगों की उत्पत्ति होती है, इस लिये मल और मूत्र के वेग को भूल कर भी नहीं रोकना चाहिये, इसी प्रकार छींक डकार हिचकी और अपान वायु आदि के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये, क्योंकि इन के वेग को रोकने से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

मलमूत्र के त्याग करने के पीछे मिट्टी और जल से हाथ और पांवों को भी खूब स्वच्छता के साथ धोकर शुद्ध कर लेना चाहिये॥

मुखशुद्धि॥

यदि प्रत्याख्यान हो तो उस की समाप्ति होने पर मुख की शुद्धि के लिये नीम, खैर, बबूल, आक, पियावांस, आमला, सिरोहा, करञ्ज, बट, महुआ और मौलसिरी आदि दूध वाले वृक्षों की दाँतोन करे, दाँतोन एक बालिस्त लंबी और अंगुली के बराबर मोटी होनी चाहिये, उस की छाल में कीड़ा या कोई विकार नही होना चाहिये तथा वह गाँठ दार भी नहीं होनी चाहिये, दाँतोन करने के पीछे सेंधानमक, सोंठ और भुना हुआ जीरा, इन तीनोंको पीस तथा कपड़ छान कर रक्खे हुए मञ्जन से दाँतों को माँजना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य दाँतोन नहीं करते है उन के मुँह में दुर्गन्ध आने लगती है और जो प्रतिदिन

१–सूर्य का उदय हो जाने से पेट मे गर्मी समाकर मल शुष्क हो जाता है उसके शुष्क होने से मगज मे खुश्की और गर्मी पहुँचती है, इसलिये मस्तक न्यून बलवाला होजाता है॥

२–भूख, प्यास, छींक, डकार, मल का वेग, मूत्र का वेग, अपानवायुका वेग, जम्भा (जमुहाई) आंसू, वमन, वीर्य (कामेच्छा), श्वास और निद्रा, ये १३ वेग शरीर में स्वाभाविक उत्पन्न होते हैं, इसलिये इन के वेग को रोकना नहीं चाहियें, क्योंकि इन वेगों के रोकने से उदावर्त्त आदि अनेक रोग होते हैं, (देखो वैद्यक ग्रन्थों में उदावर्त्त रोग का प्रकरण)॥

मञ्जन नहीं लगाते है उन के दाँतों में नाना प्रकार के रोग हो जाते है अर्थात् कभी २ वादी के कारण मसूडे फूल जाते हैं, कभी २ रुधिर निकलने लगता है और कभी २ दाँतों में दर्द भी होता है, दाँतों के मलीन होने से मुख की छवि बिगड़ जाती है तथा मुख में दुर्गन्ध आने से सभ्य मण्डली में (बैठने से) निन्दा होती है, इस लिये दाँतोन तथा मञ्जन का सर्वदा सेवन करना चाहिये, तत्पश्चात् स्वच्छ जल से मुख को अच्छे प्रकार से साफ करना चाहिये परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी नहीं धोना चाहिये क्योंकि गर्म जल नेत्रों को हानि पहुँचाता है ॥

दाँतोन करने का निषेध—अजीर्ण, वमन, दमा, ज्वर, लकवा, अधिक प्यास, मुखपाक, हृदयरोग, शीर्ष रोग, कर्णरोग, कंठरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, हिचकी और खांसी की बीमारीवाले को तथा नशे में दाँतोन नहीं करना चाहिये ॥

दाँतों के लिये हानिकारक कार्य—गर्म पानी से कुल्ले करना, अधिक गर्म रोटी को खाना, अधिक बर्फ का खाना या जल के साथ पीना और गर्म- चीज़ खाकर शीघ्र ही ठंढी चीज़ का खाना या पीना, ये सब कार्य दाँतों को शीघ्र ही बिगाड़ देते है तथा कमज़ोर कर देते है इस लिये इन से बचना चाहिये ॥

व्यायाम अर्थात् कसरत ॥

व्यायाम भी आरोग्यता के रखने में एक आवश्यक कार्य है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का विषय है कि भारत से इस की प्रथा बहुत कुछ तो उठ गई तथा उठती चली जाती है, उस में भी हमारे मारवाड़ देश में अर्थात् मारवाड़ के निवासी जनसमूह में तो इस की प्रथा बिलकुल ही जाती रही ।

आजकल देखा जाता है कि भद्र पुरुष तो इस का नामतक नहीं लेते है किन्तु वे ऐसे (व्यायाम करनेवाले) जनों को असभ्य (नाशाइस्तह) बतलाते और उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, केवल यही कारण है कि—जिस से प्रतिदिन इस का प्रचार कम ही होता चला जाता है, देखो ! एक समय इस आर्यावर्त्त देश में ऐसा था कि जिस में महावीर के पिता सिद्धार्थ[1] राजा जैसे पुरुष भी इस अमृतरूप व्यायाम का सेवन करते थे अर्थात् उस समय में यह आरोग्यता के सर्व उपायों में प्रधान और शिरोमणि उपाय गिना जाता था और उस समय के लोग "एक तन दुरुस्ती हजार नियामत" इस वाक्य के तत्त्व को अच्छे प्रकार से समझते थे ।

विचार कर देखो तो मालूम होगा कि मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी अथवा दूसरे यन्त्रों के समान है, यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूंकें और

1—इस विषय का पूरा वर्णन कल्पसूत्र की लक्ष्मीवल्लभी टीका में किया गया है, वहां देख लेना चाहिये॥

न उस के पुर्जों को साफ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जावेगी, उस के सब पुर्जे बिगड़ जावेंगे और जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई है वह कदापि सिद्ध न होगा, बस ठीक यही दशा मनुष्य के शरीर की भी है, देखो! यदि शरीर को स्वच्छ और सुथरा बनाये रहें, उस को उमंग और साहस में नियुक्त रक्खें तथा स्वास्थ्य रक्षा पर ध्यान देते रहें तो सम्पूर्ण शरीर का बल यथावत् बना रहेगा और शरीरस्थ प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के लिये बनी हुई है उस से वह कार्य ठीक रीति से होता रहेगा परन्तु यदि ऊपर लिखी बातों का सेवन न किया जावे तो शरीरस्थ सब वस्तुयें निकम्मी हो जावेंगी और स्वाभाविक नियमानुकूल रचना के प्रतिकूल फल दीखने लगेगा अर्थात् जिन कार्यों के लिये यह मनुष्य का शरीर बना है वे कार्य उस से कदापि सिद्ध नहीं होंगे।

घड़ी के पुर्जों में तेल के पहुँचने के समान शरीर के पुर्जों में (अवयवों में) रक्त (खून) पहुँचने की आवश्यकता है, अर्थात् मनुष्य का जीवन रक्त के चलने फिरने पर निर्भर है, जिस प्रकार कूर्चिका (कुची) आदि के द्वारा घड़ी के पुर्जों में तेल पहुँचाया जाता है उसी प्रकार व्यायाम के द्वारा शरीर के सब अवयवों में रक्त पहुँचाया जाता है अर्थात् व्यायाम ही एक ऐसी वस्तु है कि जो रक्त की चाल को तेज़ बना कर सब अवयवों में यथावत् रक्त को पहुँचा देती है।

जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को भी जो शीघ्र सूख जानेवाला है फिर हरा भरा कर देता है उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर को हरा भरा रखता है अर्थात् शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता है, इसलिये सिद्ध है कि—शारीरिक बल और उस की दृढता के रहने के लिये व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि रुधिर की चाल को ठीक रखनेवाला केवल व्यायाम है और मनुष्य के शरीर में रुधिर की चाल उस नहर के पानी के समान है जो कि किसी बाग में हर पटरी में होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुँच कर तमाम बाग को सींच कर प्रफुल्लित करता है, प्रिय पाठक गण! देखो! उस बाग में जितने हरे भरे वृक्ष और रंग विरंगे पुष्प अपनी छवि को दिखलाते है और नाना भाँति के फल अपनी २ सुन्दरता से मन को मोहित करते हैं वह सब उसी पानी की महिमा है, यदि उस की नालियां न खोली जातीं तो सम्पूर्ण बाग के वृक्ष और बेल बूटे मुरझा जाते तथा फूल फल कुम्हलाकर शुष्क हो जाते कि जिस से उस आनंदबाग में उदासी बरसने लगती और मनुष्यों के नेत्रों को जो उन के विलोकन करने अर्थात् देखने से तरावट व सुख मिलता है उस के स्वप्न में भी दर्शन नही होते, ठीक यही दशा शरीररूपी बाग की रुधिररूपी पानी के साथ में समझनी चाहिये, सुजनो! सोचो तो सही कि—इसी व्यायाम के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष नीरोग,

सुडौल, बलवान् और योद्धा हो गये है कि जिन की कीर्त्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने श्रीकृष्ण, रांम, हनुमान्, भीमसेन, अर्जुन और वालि आदि योद्धाओं का नाम नहीं सुना है कि–जिन की ललकार से सिंह भी कोसों दूर भागते थे, केवल इसी व्यायाम का प्रताप था कि भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन कर लिया था परन्तु वर्त्तमान समय में इस अभागे भारत में उस वीरशक्ति का केवल नाम ही रह गया है।

बहुत से लोग यह कहते हैं कि–हमें क्या योद्धा बन कर किसी देश को जीतना है वा पहलवान बन कर किसी से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करना है जो हम व्यायाम के परिश्रम को उठावें इत्यादि, परन्तु यह उन की बड़ी भारी भूल है क्योंकि देखो! व्यायाम केवल इसी लिये नहीं किया जाता है कि–मनुष्य योद्धा वा पहलवान बने, किन्तु अभी कह चुके है कि–इस से रुधिर की गति के ठीक रहने से आरोग्यता बनी रहती है और आरोग्यता की अभिलाषा मनुष्यमात्र को क्या किन्तु प्राणिमात्र को होती है, यदि इस में आरोग्यता का गुण न होता तो प्राचीन जन इस का इतना आदर कभी न करते जितना कि उन्होंने किया है, सत्य पूछो तो व्यायाम ही मनुष्य का जीवन रूप है अर्थात् व्यायाम के विना मनुष्य का जीवन कदापि सुस्थिर दशा में नहीं रह सकता है, क्योंकि देखो! इस के अभ्यास से ही अन्न शीघ्र पच जाता है, भूख अच्छे प्रकार से लगती है, मनुष्य शर्दी गर्मी का सहन कर सकता है, वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोभायमान और बलयुक्त हो जाता है, इन बातों के सिवाय इस के अभ्यास से ये भी लाभ होते है कि–शरीर में जो मेद की वृद्धि और स्थूलता हो जाती है वह सब जाती रहती है, दुर्बल मनुष्य किसी कदर मोटा हो जाता है, कसरती मनुष्य के शरीर में प्रतिसमय उत्साह बना रहता है और वह निर्भय हो जाता है अर्थात् उस को किसी स्थान में भी जाने में भय नहीं लगता है, देखो! व्यायामी पुरुष पहाड़, खोह, दुर्ग, जंगल और संग्रामादि भयंकर स्थानों में बेखटके चले जाते है और अपने मन के मनोरथों को सिद्ध कर दिखलाते और गृहकार्यों को सुगमता से कर लेते है और चोर आदि को घर में नहीं आने देते है, बल्कि सत्य तो यह है कि–चोर उस मार्ग होकर नहीं निकलते हैं जहां व्यायामी पुरुष रहता है, इस के अभ्यासी पुरुष को शीघ्र बुढापा तथा रोगादि नहीं होते हैं, इस के करने से कुरूप मनुष्य भी अच्छे और सुडौल जान पड़ते है, परन्तु जो मनुष्य दिन में सोते, व्यायाम नहीं करते तथा दिनभर आलस्य में पड़े रहते है उन को अवश्य प्रमेह आदि रोग हो जाते हैं, इस लिये इन सब बातों को विचार कर सब मनुष्यों को

१–इन महात्मा का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिकृत संस्कृत रामायण को देखो ॥

अवश्य स्वयं व्यायाम करना चाहिये तथा अपने सन्तानों को भी प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास कराना चाहिये जिस से इस भारत में पूर्ववत् वीरशक्ति पुनः आ जावे ।

व्यायाम करने में सदा देश काल और शरीर का बल भी देखना उचित है क्योंकि इस से विपरीत दशामें रोग हो जाते हैं ।

कसरत करने के पीछे तुरंत पानी नहीं पीना चाहिये, किन्तु एक दो घण्टे के पीछे कुछ बलदायक भोजन का करना आवश्यक है जैसे—मिश्रीसंयुक्त गायका दूध वा बादाम की कतली आदि, अथवा अन्य किसी प्रकार के पुष्टिकारक लड्डू आदि जो कि देश काल और प्रकृति के अनुकूल हों खाने चाहियें ॥

व्यायाम का निषेध—मिश्रित वातपित्त रोगी, बालक, वृद्ध और अजीर्णी मनुष्यों को कसरत नही करनी चाहिये, शीतकाल और वसन्तऋतु में अच्छे प्रकार से तथा अन्य ऋतुओं में थोड़ा व्यायाम करना योग्य है, अति व्यायाम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त व्यायाम के करने से तृषा, क्षय, तमक, श्वास, रक्तपित्त, श्रम, ग्लानि, कास, ज्वर और छर्दि आदि रोग हो जाते हैं ॥

तैलमर्दन ॥

तेल का मर्दन करना भी एक प्रकार की कसरत है तथा लाभदायक भी है इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल में स्नान करने से पहिले तेल की मालिश करानी चाहिये, यदि कसरत करने वाला पुरुष कसरत करने के एक घंटे पीछे शरीर में तेल का मर्दन करवाया करे तो इस के गुणों का पार नहीं है, तेल के मर्दन के समय में इस बात का भी स्मरण रहना चाहिये कि—तेल की मालिश सब से अधिक पैरों में करानी चाहिये, क्योंकि पैरों में तेल की अच्छी तरह से मालिश कराने से शरीर में अधिक बल आता है, तेल के मर्दन के गुण इस प्रकार हैं:—

१—तेल की मालिश नीरोगता और दीर्घायु की करने वाली तथा ताकत को बढाने वाली[1] है ।

२—इस से चमड़ी सुहावनी हो जाती है तथा चमड़ी का रूखापन और खसरा जाता रहता है तथा अन्य भी चमड़ी के नाना प्रकार के रोग जाते रहते हैं और चमड़ी में नया रोग पैदा नहीं होने पाता है ।

३—शरीर के साधे नरम और मजबूत हो जाते हैं ।

४—रस और खून के बंद हुए मार्ग खुल जाते है ।

५—जमा हुआ खून गतिमान् होकर शरीर में फिरने लगता है ।

६—खून में मिली हुई वायु के दूर हो जाने से बहुत से आनेवाले रोग रुक जाते है ।

१—थोड़े दिनों तक निरन्तर तेल की मालिश कराने से उस का फायदा आप ही मालूम होने लगता है ॥

७–जीर्णज्वर तथा ताज़े खून से तपाहुआ शरीर ठंढा पड़ जाता है ।

८–हवा में उड़ते हुए ज़हरीले तथा चेपी (उड़कर लगनेवाले) रोगोंके जन्तु तथा उन के परमाणु शरीर में असर नहीं कर सकते है ।

९–नित्य कसरत और तेल का मर्दन करनेवाले पुरुष की ताकत और कान्ति बढ़ती है अर्थात् पुरुषार्थ का प्राप्त होता है ।

१०–ऋतु तथा अपनी प्रकृति के अनुसार तेल में मसाले डालकर तैयार करके उस तेल की मालिश कराई जावे तो बहुत ही फायदा होता है, तेल के बनाने की मुख्य चार रीतियां हैं, उन में से प्रथम रीति यह है कि–पातालयंत्र से लौंग भिलांवा और जमालगोटे का रसनिकाल कर तेल में डाल कर वह तेल पकाया जावे, दूसरी रीति यह है कि–तेल में डालने की यथोचित दवाइयों को उकाल कर उन का रस निकालकर तेल में डाल के वह (तेल) पकाया जावे, तीसरी रीति यह है कि–घाणी में डालकर फूलों की पुट देकर चमेली और मोगरे आदि का तेल बनाया जावे तथा चौथी रीति यह है कि–सूखे मसालों को कूट कर जल में आर्द्र (गीला) कर तेल में डाल कर मिट्टी के वर्तन का मुख वंद कर दिन में धूप में रक्खे तथा रात को अन्दर रक्खे तथा एक महीने के बाद छान कर काम में लावे ।

वैद्यक शास्त्रों में दवाइयों के साथ में सब रोगों को मिटाने के लिये न्यारे २ तैल और घी के बनाने की विधिया लिखी है, वे सब विधियां आवश्यकता के अनुसार उन्हीं ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें, ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां उन का वर्णन नही करते है ।

तेलमर्दन की प्रथा मलवारदेश तथा वंगदेश (पूर्व) में अभीतक जारी है परन्तु अन्य देशों में इस की प्रथा बहुत ही कम दीखती है यह बड़े शोक की बात है, इस लिये सुजन पुरुषों को इस विषय में अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

दवा का जो तेल बनाया जाता है उस का असर केवल चार महीने तक रहता है पीछे वह हीनसत्त्व होजाताहै अर्थात् शास्त्र में कहा हुआ उस का वह गुण नही रहता है ।

सामान्यतया तिली का सादा तेल सब के लिये फायदेमन्द होता है तथा शीतकाल में सरसों का तेल फायदेमन्द है ।

शरीर में मर्दन कराने के सिवाय तेल को शिर में डाल कर तालुए में रमाना तथा कान में और नाक में भी डालना जरूरी है, यदि सब शरीर की मालिश प्रतिदिन न बन

१–परन्तु भिलावे आदि वस्तुओं का तेल निकालते समय पूरी होशियारी रखनी चाहिये ॥

२–सुलसा श्राविका के चरित्र मे लक्षपाक तैल का वर्णन आया है तथा कल्पसूत्र की टीका में राजा सिद्धार्थ की मालिश के विषय मे शतपाक सहस्रपाक और लक्षपाक तैलों का वर्णन आया है तथा उन का गुण भी वर्णन किया गया है ॥

सके तो पैरों की पींडियों और हाथ पैरों के तलवों में तो अवश्य मसलाना चाहिये तथा शिर और कान में डालना तथा मसलाना चाहिये, यदि प्रतिदिन तेल का मर्दन न बन सके तो अठवाड़े में तो एकवार अवश्य मर्दन करवाना चाहिये और यदि यह भी न बन सके तो शीतकाल में तो अवश्य इस का मर्दन कर वाना ही चाहिये ।

तेल का मर्दन कराने के बाद चने के आटे से अथवा आंवले के चूर्ण से चिकनाहट को दूर कर देना चाहिये ॥

सुगन्धित तैलों के गुण ॥

चमेली का तेल—इस की तासीर ठंढी और तर है ।

हिने का तेल—यह गर्म होता है, इस लिये जिन की वादीकी प्रकृति होवे इस को लगाया करें, चौमासेमें भी इस का लगाना लाभदायक है ।

अरगजे का तेल—यह गर्म होता है तथा उग्रगन्ध होता है अर्थात् इस की खुशबू तीन दिनतक केशों में बनी रहती है ।

गुलाब का तेल—यह ठंढा होता है तथा जितनी सुगन्धि इस में होती है उतनी दूसरे में नहीं होती है, इस की खुशबू ठंढी और तर होती है ।

केवड़े का तेल—यह बहुत उत्तम हृदयप्रिय और ठंढा होता है ।

मोगरे का तेल—यह ठंढा और तर है ।

नींबू का तेल—यह ठंढा होता है तथा पित्तकी प्रकृतिवालों के लिये फायदेमन्द है ॥

स्नान ॥

तैलादि के मर्दन के पीछे स्नान करना चाहिये, स्नान करने से गर्मी का रोग, हृदय का ताप, रुधिर का कोप और शरीर की दुर्गन्ध दूर होकर कान्ति तेज बल और प्रकाश बढ़ता है, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती है, बुद्धि चैतन्य हो जाती है, आयु की वृद्धि होती है, सम्पूर्ण शरीर को आराम मालूम पड़ता है, निर्बलता तथा मार्ग का खेद दूर होता है और

१–इन सब तैलों को उत्तम बनाने की रीति को वे ही जानते हैं जो प्रतिसमय इन को बनाया करते हैं, क्योंकि तिलों मे फूलों को बसा कर बड़े परिश्रम से फुलेला बनाया जाता है, दो रुपये सेर के भावका सुगन्धित तैल साधारण होता है, तीन चार पाच सात और दश रुपये सेर के भाव का भी लेना चाहो तो मिल सकता है, परन्तु उस की ठीक पहिचान का करना प्रत्येक पुरुष का काम नही है अर्थात् बहुत कठिन है, यदि सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर केवड़े का अतर डाल दिया जावे तो वह तेल बहुत खुशबूदार हो जावेगा तथा उस से सारा मकान मॅहक उठेगा, इसी प्रकार सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर चमेली का अतर, हिने के तेल में हिने का अतर, अरगजे के तेल में अरगजे का अतर, गुलाब के तेल मे गुलाब का अतर और मोगरे के तेल में मोगरे का अतर डाल दिया जावे तो वे तेल अत्यन्त ही खुशबूदार हो जावेंगे ॥

आलस्य पास तक नहीं आने पाता है, देखो! इस बात को तो सब ही लोग जानते है कि–शरीर में सहस्रों छिद्र हैं जिन में रोम जमे हुए है और वे निष्प्रयोजन नहीं है किन्तु सार्थक हैं अर्थात् इन्हीं छिद्रों में से शरीर के भीतर का पानी (पसीना) तथा दुर्गन्धित वायु निकलता है और बाहर से उत्तम वायु शरीर के भीतर जाता है, इस लिये जब मनुष्य स्नान करता रहता है तब वे सब छिद्र खुले और साफ रहते हैं परन्तु स्नान न करने से मैल आदि के द्वारा जब ये सब छिद्र बंद हो जाते है तब ऊपर कही हुई क्रिया भी नहीं होती है, इस क्रिया के बंद हो जाने से दाद, खाज, फोड़ा और फुंसी आदि रोग होकर अनेक प्रकार का क्लेश देते हैं, इस लिये शरीर के स्वच्छ रहने के लिये प्रतिदिन स्वयं स्नान करना योग्य है तथा अपने बालकों को भी नित्य स्नान कराना उचित है।

स्नान करने में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिये:—

१–शिर पर बहुत गर्म पानी कभी नही डालना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से नेत्रोंको हानि पहुँचती है।

२–बीमार आदमी को तथा ज्वर के जाने के बाद जबतक शरीर में ताकत न आवे तबतक स्नान नही करना चाहिये, उस में भी ठंढे जल से तो भूल कर भी स्नान नहीं करना चाहिये।

३–बीमार और निर्बलपुरुष को भूखे पेट नहीं नहाना चाहिये अर्थात् चाह और दूध आदि का नास्ता कर एक घंटे के पीछे नहाना चाहिये।

४–शिर पर ठंढा जल अथवा कुए के जल के समान गुनगुना जल, शिर के नीचे के धड़ पर सामान्य गर्म जल और कमर के नीचे के भाग पर सुहाता हुआ तेज़ गर्म जल डालना चाहिये।

५–पित्त की प्रकृतिवाले जवान आदमी को ठंढे पानी से नहाना हानि नहीं करता है किन्तु लाभ करता है।

६–सामान्यतया थोड़े गर्म जल से स्नान करना प्रायः सब ही के अनुकूल आता है।

७–यदि गर्म पानी से स्नान करना हो तो जहां बाहर की हवा न लगे ऐसे बंद मकानमें कन्धों से स्नान करना उत्तम है, परन्तु इस बात का ठीक २ प्रबन्ध करना सामान्य जनों के लिये प्रायः असम्भवसा है, इस लिये साधारण पुरुषों को यही उचित है कि–सदा शीतल जल से ही स्नान करने का अभ्यास डालें।

८–जहांतक हो सके स्नान के लिये ताज़ा जल लेना चाहिये क्योंकि ताज़े जल से स्नान करने से बहुत लाभ होता है परन्तु वह ताज़ा जल भी स्वच्छ होना चाहिये।

९–स्नान के विषय में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि तरुण तथा नीरोग पुरुषों को शीतल जल से तथा बुड्ढे दुर्बल और रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये।

१०—शरीर की पीठी उबटन वा साबुन[1] लगा कर रगड़ २ के खूब धोना चाहिये पीछे स्नान करना चाहिये ।

११—स्नान करने के पश्चात् मोटे निर्मल कपड़े[2] से शरीर को खूब पोंछना चाहिये कि जिस से सम्पूर्ण शरीर के किसी अंग में तरी न रहे ।

१२—गर्भिणी स्त्री को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये ।

१३—नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतीसार, पीनस तथा ज्वर आदि रोगवालों को स्नान नहीं करना चाहिये ।

१४—स्नान करने से प्रथम अथवा प्रातःकाल में नेत्रों में ठंढे पानी के छींटे देकर धोना बहुत लाभदायक है ।

१५—स्नान करने के बाद घंटे दो घण्टेतक द्रव्यभाव से ईश्वर की भक्ति को ध्यान लगाकर करना चाहिये, यदि अधिक न बन सके तो एक सामायिक को तो शास्त्रोक्त नियमानुसार गृहस्थों को अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि जो पुरुष इतना भी नहीं करता है वह गृहस्थाश्रम की पङ्क्तिमें नहीं गिना जा सकता है अर्थात् वह गृहस्थ नहीं है किन्तु उसे इस (गृहस्थ) आश्रम से भी भ्रष्ट और पतित समझना चाहिये ॥

पैर धोना ॥

पैरों के धोने से थकावट जाती रहती है, पैरों का मैल निकल जाने से स्वच्छता आ जाती है, नेत्रों को तरावट तथा मन को आनंद प्राप्त होता है, इस कारण जब कहीं से चलकर आया हो वा जब आवश्यकता हो तब पैरों को धोकर पोंछ डालना चाहिये, यदि सोते समय पैर धोकर शयन करे तो नींद अच्छे प्रकार से आजाती है ॥

भोजन ॥

प्यारे मित्रो ! यह सब ही जानते है कि—अन्न के ही भोजन से प्राणी बढ़ते और जीवित रहते हैं इस के विना न तो प्राणी जीवित ही रह सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, इसी लिये चतुर पुरुषों ने कहा है कि—प्राण अन्नमय है यद्यपि भोजन का रिवाज़ भिन्न २ देशों के भिन्न २ पुरुषों का भिन्न २ है इसलिये यहां पर उस के लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है तथापि यहां पर संक्षेप से शास्त्रीय नियम के अनुसार सामान्यतया सर्व हितकारी जो भोजन है उस का वर्णन किया जाता है:—

१—आजकल बहुत से शौकीन लोग चर्बी से बने हुए खुशबूदार साबुन को लगा कर स्नान करते हैं परन्तु धर्म से भ्रष्ट होने की तरफ बिलकुल ख्याल नहीं करते हैं, यदि साबुन लगाकर नहाना हो तो उत्तम देशी साबुन लगाकर नहाना चाहिये, क्योंकि देशी साबुन में चर्बी नहीं होती है ॥

२—इस वस्त्र को अंगोछा कहते हैं, क्योंकि इस से अंग पोंछा जाता है अंगोछा प्रायः गजी का अच्छा होता है ॥

जो भोजन स्वच्छ और शास्त्रीय नियम से बना हुआ हो, बल बुद्धि आरोग्यता और आयु का बढ़ानेवाला तथा सात्त्विकी (सतो गुण से युक्त) हो, वही भोजन करना चाहिये, जो लोग ऐसा करते है वे इस जन्म और पर जन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप मनुष्य जन्म के चारों फलों को प्राप्त कर लेते है और वास्तव में जो पदार्थ उक्त-गुणों से युक्त है उन्ही पदार्थों को भक्ष्य भी कहा गया है, परन्तु जिस भोजन से मन बुद्धि शरीर और धातुओं में विषमता हो उस को अभक्ष्य कहते है, इसी कारण अभक्ष्य भोजन की आज्ञा शास्त्रकारों ने नहीं दी है।

भोजन मुख्यतया तीन प्रकार का होता है जिस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–जो भोजन अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, बल, आरोग्यता और उपशमात्मक (शान्तिस्वरूप) सुख का बढ़ाने वाला, रसयुक्त, कोमल और तर हो, जिस का रस चिरकालतक ठहरनेवाला हो तथा जिस के देखने से मन प्रसन्न हो, उस भोजन को सात्त्विक भोजन कहते है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है।

२–जो भोजन अति चर्परा, खट्टा, खारी, गर्म, तीक्ष्ण, रूक्ष और दाहकारी है, उस को राजसी भोजन कहते हैं अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से राजसी भाव उत्पन्न होता है।

३–जो भोजन बहुत काल का बना हुआ हो, अतिठंढा, रूखा, दुर्गन्धि युक्त, बासा तथा जूठा हो, उस भोजन को तामसी भोजन कहा है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार के भोजन को शास्त्रों में अभक्ष्य कहा है, इस प्रकार के निषिद्ध भोजन के सेवन से विषूचिका आदि रोग भी हो जाते है ॥

भोजन के नियम ॥

१–भोजन बनाने का स्थान (रसोईघर) हमेशा साफ रहना चाहिये तथा यह स्थान अन्य स्थानों से अलग होना चाहिये अर्थात् भोजन बनाने की जगह, भोजन करने की जगह, आटा दाल आदि सामान रखने की जगह, पानी रखने की जगह, सोने की जगह, बैठने की जगह, धर्मध्यान करने की जगह तथा स्नान करने की जगह, ये सब स्थान अलग २ होने चाहियें तथा इन स्थानों में चांदनी भी बांधना चाहिये कि जिस से मकड़ी और गिलहरी आदि जहरीले जानवरों की लार और मल मूत्र आदि के गिरने से पैदा होनेवाले अनेक रोगों से रक्षा रहे।

२–रसोई बनाने के सब वर्तन साफ रहने चाहियें, पीतल और तांबे आदि धातु के वासन में खटाई की चीज़ बिलकुल नही बनानी चाहिये और न रखनी चाहिये, मिट्टी का वासन सब से उत्तम होता है, क्योंकि इस में खटाई आदि किसी प्रकार की कोई वस्तु कभी नहीं बिगड़ती है।

कवच ही है, इस लिये मुझको भी उचित है कि मैं भी रथ से उतर कर शस्त्र छोड़ कर और कवच को उतार कर इस के साथ युद्ध कर इसे जीतूं, इस प्रकार मन में विचार कर रथ से उतर पड़ा और शस्त्र तथा कवच का त्याग कर सिंह को दूर से ललकारा, जब सिंह नज़दीक आया तब दोनों हाथों से उस के दोनों ओठों को पकड़ कर जीर्ण वस्त्र की तरह चीर कर ज़मीन पर गिरा दिया परन्तु इतना करने पर भी सिंह का जीव शरीर से न निकला तब राजा के सारथि ने सिंह से कहा कि—हे सिंह! जैसे तू मृगराज है उसी प्रकार तुझ को मारनेवाला यह नरराज है, यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, इस लिये अब तू अपनी वीरता के साहस को छोड़ दे, सारथि के इस वचन को सुन कर सिंह के प्राण चले गये।

वर्त्तमान समय में जो राजा आदि लोग सिंह का शिकार करते हैं वे भी अनेक छल बल कर तथा अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर छिपकर शिकार करते हैं, विना शस्त्र के तो सिंह की शिकार करना दूर रहा किन्तु समक्ष में ललकार कर तलवार या गोली के चलानेवाले भी आर्यावर्त्त भर में दो चार ही नरेश होंगे।

धर्मशास्त्रों का सिद्धान्त है कि जो राजे महाराजे अनाथ पशुओं की हत्या करते है उन के राज्य में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, रोग होता है तथा वे सन्तानरहित होते हैं, इत्यादि अनेक कष्ट इस भव में ही उन को प्राप्त होते हैं और पर भव में नरक में जाना पड़ता है, विचार करने की बात है कि— यदि हमको दूसरा कोई मारे तो हमारे जीव को कैसी तकलीफ़ मालूम होती है, उसी प्रकार हम भी जब किसी प्राणी को मारें तो उस को भी वैसा ही दुःख होता है, इसलिये राजे महाराजों का यही मुख्य धर्म है कि अपने २ राज्य में प्राणियों को मारना बंद कर दें और स्वयं भी उक्त व्यसन को छोड़ कर पुत्रवत् सब प्राणियों की तन मन धन से रक्षा करें, इस संसार में जो पुरुष इन बड़े सात व्यसनों से बचे हुए हैं उन को धन्य है और मनुष्यजन्म का पाना भी उन्हीं का सफल समझना चाहिये, और भी बहुत से हानिकारक छोटे २ व्यसन इन्हीं सात व्यसनों के अन्तर्गत है, जैसे—१—कौड़ियों से तो जुए को न खेलना परन्तु अनेक प्रकार का फाटका (चांदी आदिका सट्टा) करना, २—नई चीज़ों में पुरानी और नकली चीज़ों का बेंचना, कम तौलना, दगाबाज़ी करना, ठगाई करना (यह सब चोरी ही है), ३—अनेक प्रकार का नशा करना, ४—घर का असबाव चाहें बिक ही जावे परन्तु मोल मँगाकर नित्य मिठाई खाये विना नहीं रहना, ५—रात्रि को विना खाये चैन का न पड़ना, ६—इधर उधर की चुगली करना, ७—सत्य न बोलना आदि, इस प्रकार अनेक तरह के व्यसन हैं, जिन के फन्दे में पड़ कर उन से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि—"डांकण मन्त्र अफीम रस। तस्कर ने जूआ॥ पर घर रीझी

का मणी, ये छूटसी मूआ" ॥ १ ॥ यद्यपि कवि का यह कथन बिलकुल सत्य है कि ये बातें मरने पर ही छूटती है तथापि इन की हानि को समझकर जो पुरुप सच्चे मन से छोड़ना चाहे वह अवश्य छोड़ सकता है, इस लिये व्यसनी पुरुष को चाहिये कि यथाशक्य व्यसन को धीरे २ कम करता जावे, यही उस (व्यसन) के छूटने का एक सहज उपाय है तथा यदि आप व्यसन में पड़ कर उस से निकलने में असमर्थ हो जावे तो अपनी सन्तति का तो उस से अवश्य बचाव रक्खे जिस से भावी में वह तो दुर्दशा में न पड़े ।

इन पूर्व कहे हुए सात महा व्यसनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कुव्यसन है जिन से बचना बुद्धिमानों का परम धर्म है, हे पाठक गणो ! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नति का, सुखपूर्वक धन को प्राप्त करने का तथा उस की रक्षा का ध्यान है, एवं धर्म के पालन करने की, नाना आपत्तियों से बचने की तथा देश और जाति को आनन्द मंगल में देखने की अभिलाषा है तो सदा अफीम, चण्डू, गांजा, चरस, धतूरा और भांग आदि निकृष्ट पदार्थों से बचिये, क्योंकि ये पदार्थ परिणाम में बहुत ही हानि करते हैं, इसी लिये धर्मशास्त्रों में इन के त्याग के लिये अनेकशः आज्ञा दी गई है, यद्यपि इन पदार्थों के सेवन करने वालोंकी दुर्दशा को बुद्धिमानोंने देखा ही होगा तथापि सर्व साधारण के जानने के लिये इन पदार्थों के सेवन से उत्पन्न होनेवाली हानियों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

अफीम—अफीम के खाने से बुद्धि कम हो जाती है तथा मगज़ में खुश्की बढ़ जाती है, मनुष्य न्यूनबल तथा सुस्त हो जाता है, मुख का प्रकाश कम हो जाता है, मुखपर स्याही आ जाती है, मांस सूख जाता है तथा खाल मुरझा जाती है, वीर्यका बल कम हो जाता है, इस का सेवन करनेवाले पुरुष घंटोंतक पीनेंक[1] में पड़े रहते है, उन को रात्रि में नींद नहीं आती है और प्रातःकाल में दिन चढने तक सोते है जिस से आयु कम हो जाती है, दो पहर को शौच के लिये जाकर वहां (शौचस्थान में) घण्टों तक बैठे रहते है, समय पर यदि अफीम खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती है तथा हाथ पैर ऐंठने लगते है, जाड़े के दिनों में उनको पानी से ऐसा डर लगता है कि वे स्नानतक नहीं करते है इस से उन के शरीर में दुर्गंध आने लगती है, उन का रंग पीला पड़ जाता है तथा खांसी आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते है ।

चण्डू—इस के नशे से भी ऊपर लिखी हुई सब हानियां होती है, हां इस में इतनी विशेषता और भी है कि इस के पीने से हृदय में मैल जम जाता है जिस

१—पीनक में पडने पर उन लोगों को यह भी सुध बुध नहीं रहती है कि हम कहा है, संसार किधर है और ससार में क्या हो रहा है ॥

से हृदयसम्बंधी अनेक महाभयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा हृदय निर्बल हो जाता है।

गांजा, चरस, धतूरा और भांग—इन चारों पदार्थों के भी सेवन से खांसी और दमा आदि अनेक हृदय रोग हो जाते हैं, मगज़ में विक्षिप्तता को स्थान मिलता है, विचारशक्ति, स्मरणशक्ति और बुद्धि का नाश होता है, इन का सेवन करनेवाला पुरुष सभ्य मण्डली में बैठने योग्य नहीं रहता है तथा अनेक रोगों के उत्पन्न होने से इन का सेवन करनेवालों को आधी उम्रमें ही मरना पड़ता है।

तमाखू—मान्यवरो! वैद्यक ग्रन्थों के देखने से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तमाखू संखिया से भी अधिक नशेदार और हानिकारक पदार्थ है अर्थात् किसी वनस्पति में इस के समान वा इस से अधिक नशा नही है।

डाक्टर टेलर साहब का कथन है कि—"जो मनुष्य तमाखू के कारखानों में काम करते है उन के शरीरमें नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में उन के शिर में दर्द होने लगता है, जी मचलाने लगता है, बल घट जाता है, सुस्ती घेरे रहती है, भूख कम हो जाती है और काम करने की शक्ति नहीं रहती है" इत्यादि।

बहुत से वैद्यों और डाक्टरोंने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि इस के धुएँ में ज़हर होता है इसलिये इस का धुआं भी शरीर की आरोग्यता को हानि पहुँचाता है अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीते है उन का जी मचलाने लगता है, कय होने लगती है, हिचकी उत्पन्न हो जाती है, श्वास कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है, परन्तु जब मनुष्य को इस का अभ्यास हो जाता है तब ये सब बातें सेवन के समय में कम मालूम पड़ती है परन्तु परिणाम में अत्यन्त हानि होती है।

डाक्टर स्मिथ का कथन है कि—तमाखू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज़ और फिर धीरे २ कम हो जाती है।

वैद्यक ग्रन्थों से यह स्पष्ट प्रकाशित है कि—तमाखू बहुत ही ज़हरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इस में नेकोशिया कार्बोनिक एसिड और मगनेशिया आदि वस्तुयें मिली रहती हैं जो कि मनुष्य के दिल को निर्बल कर देती है कि जिस से खांसी और दम आदि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, दिल पर कीट अर्थात् मैल जम जाता है, तिल्ली का रोग उत्पन्न होकर चिरकालतक ठहरता है तथा प्रतिसमय में जी मचलाता रहता है और मुख में दुर्गन्ध बनी रहती है, अब बुद्धि से विचारने की यह बात है कि लोग मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा ही परहेज़ करते है परन्तु वाह री तमाखू! तेरी प्रीति में लोग धर्म कर्म की भी कुछ सुध और परवाह न कर सब ही से परहेज़ को तोड़ देते है, देखो! तमाखू के बनाने

रोग के दूरवर्त्ती कारण ॥

देखो ! घर में रहनेवाले बहुत से मनुष्यों में से किसी एक मनुष्य को विषूचिका (हैज़ा वा कोलेरा) हो जाता है, दूसरों को नहीं होता है, इस का कारण यही है कि–रोगोत्पत्ति के करनेवाले जो कारण है वे आहार विहार के विरुद्ध वर्त्ताव से अथवा माता-पिता की ओर से सन्तान को प्राप्त हुई शरीर की प्राकृतिक निर्बलता से जिस आदमीका शरीर जिन २ दोषों से दब जाता है उसी के रोगोत्पत्ति करते हैं क्योंकि वे दोष शरीर को उसी रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बना कर उन्हीं कारणों के सहायक हो जाते है इसलिये उन्हीं २ कारणों से उन्हीं २ दोष विशेषवाला शरीर उन्हीं २ रोग विशेषों के ग्रहण करने के लिये प्रथम से ही तैयार रहता है, इस लिये वह रोग विशेष उसी एक आदमी के होता है किन्तु दूसरे के नहीं होता है, जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति नही होती है परन्तु वे (कारण) शरीर को निर्बल कर उस को दूसरे रोगोत्पादक कारणों का स्थानरूप बना देते है वे रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बनानेवाले कारण कहलाते हैं, जैसे देखो ! जब पृथ्वी में बीज को बोना होता है तब पहिले पृथ्वी को जोतकर तथा खाद आदि डाल कर तैयार कर लेते हैं पीछे बीज को बोते हैं, क्योंकि जब पृथ्वी बीज के बोने के योग्य हो जाती है तब ही तो उस में बोया हुआ बीज उगता

जाता है कि–यह जीवात्मा जैसा २ पुण्य परभव में करता है वैसा २ ही उस को फल भी प्राप्त होता है, देखो ! मनुष्य यदि चाहे तो अपनी जीवित दशा में धन्यवाद और सुख्याति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि धन्यवाद और सुख्याति के प्राप्त करने के सब साधन उस के पास विद्यमान हैं अर्थात् ज्यों ही गुणों की वृद्धि की त्यों ही मानो धन्यवाद और सुख्याति प्राप्त हुई, ये दोनों ऐसी वस्तुयें हैं कि इन के साधन-भूत शरीर आदि का नाश होनेपर भी इन का कभी नाश नहीं होता है, जैसे कि तेल में फूल नहीं रहता है परन्तु उस की सुगन्धि बनी रहती है, देखो ! संसार में जन्म पाकर अलवत्तह सब ही मनुष्य प्रायः मानापमान सुख दुःख और हर्ष शोक आदि को प्राप्त होते हैं परन्तु प्रशसनीय वे ही मनुष्य हैं जो कि सम भाव से रहते हैं, क्योंकि सुख दुःख और हर्ष शोकादि वास्तव मे शत्रुरूप हैं, उन के आधीन अपने को कर देना अत्यन्त मूर्खता है, बहुत से लोग जरा से सुख से इतने प्रसन्न होते हैं कि फूले नहीं समाते हैं तथा जरा से दुःख और शोक से इतने घबडा जाते हैं कि जल में डूब मरना तथा विष खाकर मरना आदि निकृष्ट कार्य कर बैठते हैं, यह अति मूर्खों का काम है, भला कहो तो सही क्या इस तरह मरने से उन को स्वर्ग मिलता है ? कभी नहीं, किन्तु आत्मघातरूप पाप से बुरी गति होकर जन्म जन्म मे कष्ट ही उठाना पड़ेगा, आत्मघात करनेवाले समझते हैं कि ऐसा करने से ससार में हमारी प्रतिष्ठा बनी रहेगी कि अमुक पुरुष अमुक अपराध के हो जाने से लज्जित होकर आत्मघात कर मर गया, परन्तु यह उन की महा मूर्खता है, यदि अच्छे लोगों की शिक्षा पाई है तो याद रक्खो कि इस तरह से जान को खोना केवल बुरा ही नहीं किन्तु महापाप भी है, देखो ! स्थानागसूत्र के दूसरे स्थान में लिखा है कि–क्रोध, मान, माया और लोभ कर के जो आत्मघात करना है वह दुर्गति का हेतु है, अज्ञानी और अव्रती का मरना बालमरण मे दाखिल है, ज्ञानी और सर्व विरति पुरुष का मरना पण्डित मरण है, देशविरति पुरुष का मरना बालपण्डित मरण है और आराधना करके अच्छे ध्यान मे मरना अच्छी गति के पाने का सूचक है ॥

है, इसीप्रकार बहुत से दोषरूप कारण शरीर को ऐसी दशा मे ले आते हैं कि वह (शरीर) रोगोत्पत्ति के योग्य बन जाता है, पीछे उत्पन्न हुए नवीन कारण शीघ्र ही रोग को उत्पन्न कर देते है, यद्यपि शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले कारणं बहुत से हैं परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय सें उन सब का वर्णन नहीं करना चाहते हैं–किन्तु उन में से कुछ मुख्य २ कारणों का वर्णन करते हैं—१–माता पिता की निर्बलता। २–निज कुटुम्ब में विवाह। ३–बालकपन में (कच्ची अवस्था में) विवाह। ४–सन्तान का विगड़ना। ५–अवस्था। ६–जाति। ७–जीविका वा वृत्ति (व्यापार)। ८–प्रकृति (तासीर)। बस शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले ये ही आठ मुख्य कारण हैं, अब इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

१–माता पिता की निर्बलता—यदि गर्भ रहने के समय दोनों में से (माता-पिता में से) एक का शरीर निर्बल होगा तो बालक भी अवश्य निर्बल ही उत्पन्न होगा, इसी प्रकार यदि पिता की अपेक्षा माता अधिक अवस्थावाली होगी अथवा माता की अपेक्षा पिता बहुत ही अधिक अवस्थावाला होगा (स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अवस्था ड्योढी तथा दूनीतक होगी तबतक तो जोड़ा ही गिना जावेगा परन्तु इस से अधिक अवस्थावाला यदि पुरुष होगा) तो वह जोड़ा नही किन्तु कुजोड़ा गिना जायगा इस कुजोड़े से भी उत्पन्न हुआ बालक निर्बल होता है और निर्बलता जो है वही बहुत से रोगों का मूल कारण है।

२–निज कुटुम्ब में विवाह—यह भी निर्बलता का एक मुख्य हेतु है, इस लिये वैद्यक शास्त्र आदि में इस का निषेध किया है, न केवल वैद्यक शास्त्र आदि में ही इस का निषेध किया है किन्तु इस के निषेध के लौकिक कारण भी बहुत से है परन्तु उन का वर्णन ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहांपर नहीं करना चाहते हैं। हां उन में से दो तीन कारणों को तो अवश्य ही दिखलाना चाहते है–देखिये:—

१–देखो! इसी लिये युगादि भगवान् श्रीऋषभदेव ने प्रजा को बलवती करने के लिये युगला धर्म को दूर किया था अर्थात् पूर्व समय में युगल जोडों से मैथुन होता था इस लिये उस समय में न तो प्रजा की वृद्धि ही थी और न [illegible] कोई पुरुषार्थ का काम ही कर सकते थे, किन्तु वे तो केवल पूर्व बद्ध पुण्य का फल कल्पवृक्षों से भोगते [illegible] उस समय कल्पवृक्ष का नाश होता हुआ देख कर प्रभुने पुरुषार्थ बढाने के लिये दूसरों २ की सन्तति से विवाह करने की आज्ञा दी, तब सब लोग एक के साथ जन्मे हुए जोडे का दूसरे के साथ जन्मे हुए जोड़े से विवाह करने लगे, बडी मनु में भी ऐसी ही आज्ञा है परन्तु भृगुऋषि की बनाई हुई छोटी मनु में ऐसा लिखा है कि–जो माता के सपिण्ड में न हो और पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या के साथ उत्तम जातिवाले पुरुष को विवाह करना चाहिये इत्यादि, परन्तु वास्तव मे तो बडी मनु का जो नियम है वह अर्हन्नीति के अनुकूल होने से माननीय है॥

१–संस्कृत भाषा में बेटीका नाम दुहिता रक्खा है और उस का अर्थ ऐसा होता है कि–जिस के दूर ब्याहे जाने से सब का हित होता है ।

२–प्राचीन इतिहासों से यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है और इतिहासवेत्ता इस बात को भलीभाँति से जानते भी है कि इस आर्यावर्त्त देश में पूर्व समय में पुत्री के विवाह के लिये स्वयंवर मण्डप की रचना की जाती थी अर्थात् स्वयंवर की रीति से विवाह किया जाता था और उस के वास्तविक तत्त्वपर विचार कर देखने से यह बात मालूम होती है कि वास्तव में उक्त रीति अति उत्तम थी, क्योंकि उस में कन्या अपने गुण कर्म और स्वभावादि के अनुकूल अपने योग्य वर का वरण (स्वीकार) कर लेती थी कि जिस से आजन्म वे (स्त्री पुरुष) अपनी जीवनयात्रा को सानन्द व्यतीत करते थे, क्योंकि सब ही जानते और मानते है कि स्त्री पुरुष का समान स्वभावादि ही गृहस्थाश्रम के सुख का वास्तविक (असली) कारण है ।

३–ऊपर कही हुई रीति के अतिरिक्त उस से उतर कर (घट कर) दूसरी रीति यह थी कि वर और कन्या के माता पिता आदि गुरुजन वर और कन्या की अवस्था, रूप, विद्या आदि गुण, सद्बर्ताव और स्वभावादि बातों का विचार कर अर्थात् दोनों में, उक्त बातों की समानता को देखकर उन का विवाह कर देते थे, इस से भी वही अभीष्ट सिद्ध होता था जैसा कि ऊपर लिख चुके है अर्थात् दोनों (स्त्री पुरुष) गृहस्थाश्रम के सुख को प्राप्त कर अपने जीवन को विताते थे ।

४–ऊपर कही हुई दोनों रीतियाँ जब नष्टप्राय हो गई अर्थात् स्वयंवर की रीति बन्द होगई और माता पिता आदि गुरुजनों ने भी वर और कन्या के रूप, अवस्था, गुण, कर्म और स्वभावादि का मिलान करना छोड़ दिया, तब परिणाम में होनेवाली हानि

१–जैसा कि निरुक्त ग्रन्थ में 'दुहिता' शब्द का व्याख्यान है कि–"दूरे हिता दुहिता" इस का भावार्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है, विचार कर देखा जावे तो एक ही नगर में वसनेवाली कन्या से विवाह होने की अपेक्षा दूर देश मे वसनेवाली कन्या से विवाह होना सर्वोत्तम भी प्रतीत होता है, परन्तु खेद का विषय है कि–बीकानेर आदि कई एक नगरों में अपने ही नगर में विवाह करने की रीति प्रचलित हो गई है तथा उक्त नगरों में यह भी प्रथा है कि स्त्री दिनभर तो अपने पितृगृह (पीहर) मे रहती है और रात को अपने श्वशुर गृह (सासरे) में रहती है और यह प्रथा खासकर वहा के निवासी उत्तम वर्णों मे अधिक है, परन्तु यह महानिकृष्ट प्रथा है, क्योंकि इस से गृहस्थाश्रम को बहुत हानि पहुँचती है, इस बुरी प्रथा से उक्त नगरों को जो २ हानियाँ पहुँच चुकी है और पहुँच रही हैं उन का विशेष वर्णन लेखके बढ़ने के भय से यहा नहीं करना चाहते हैं, बुद्धिमान् पुरुष स्वय ही उन हानियों को सोचलेंगे ॥

२–कन्नौज के महाराज जयचन्द्रजी राठौर ने अपनी पुत्री के विवाह के लिये स्वयवरमण्डप की रचना करवाई थी अर्थात् स्वयवर की रीति से अपनी पुत्री का विवाह किया था, बस उस के बाद से प्रायः उक्त रीती से विवाह नहीं हुआ अर्थात् स्वयवर की रीती उठ गई, यह बात इतिहासों से प्रकट है ॥

३–द्रव्य के लोभ आदि अनेक कारणों से ॥

की सम्भावना को विचार करें अनेक बुद्धिमानों ने वर और कन्या के गुण आदि का विचार उन के जन्मपत्रादिपर रक्खा अर्थात् ज्योतिषी के द्वारा जन्मपत्र और ग्रहगोचर के विचार से उन के गुण आदि का विचार करवा कर तथा किसी मनुष्य को भेज कर वर और कन्या के रूप और अवस्था आदि को जान कर उन (ज्योतिषी आदि) के कहदेने पर वर और कन्या का विवाह करने लगे, बस तब से यही रीति प्रचलित हो गई, जो कि अब भी प्रायः सर्वत्र देखी जाती है।

अब पाठक गण प्रथम संख्या में लिखे हुए दुहिता शब्द के अर्थ से तथा दूसरी संख्या से चौथी संख्या पर्यन्त लिखी हुई विवाह की तीनों रीतियों से भी (लौकिक कारणों के द्वारा) निश्चय कर सकते हैं कि इन ऊपर कहे हुए कारणों से क्या सिद्ध होता है, केवल यही सिद्ध होता है कि निजकुटुम्ब में विवाह का होना सर्वथा निषिद्ध है, क्योंकि देखो! दुहिता शब्द का अर्थ तो स्पष्ट कह ही रहा है कि—कन्या का विवाह दूर होना चाहिये, अर्थात् अपने ग्राम वा नगर आदि में नही होना चाहिये, अब विचारो! कि—जब कन्या का विवाह अपने ग्राम वा नगर आदि में भी करना निषिद्ध है तब भला निज कुटुम्ब में व्याह के विषय में तो कहना ही क्या है! इस के अतिरिक्त विवाह की जो उत्तम मध्यम और अधम रूप ऊपर तीन रीतियाँ कही गई हैं वे भी घोषणा कर साफ २ बतलाती है कि—निज कुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये, देखो!

१—अर्थात् समान स्वभाव और गुण आदि का विचार न करने पर विरुद्ध स्वभाव आदिके कारण वर और कन्या को गृहस्थाश्रम का सुख नहीं प्राप्त होगा, इत्यादि हानि की सम्भावना को विचार कर ॥

२—परन्तु महाशोक का विषय है कि—वर और कन्या के माता पिता आदि गुरु जन अब इस अति साधारण तीसरे दर्जे की रीती का भी द्रव्य लोभादि से परित्याग करते चले जाते हैं अर्थात् वर्तमान में प्रायः देखा जाता है कि—श्रीमान् (द्रव्यपात्र) लोग अपने समान अथवा अपने से भी अधिक केवल द्रव्यास्पद घर देखते हैं, दूसरी बातों (लडके का लडकी से छोटा होना आदि हानिकारक भी बातों) को बिलकुल ही नहीं देखते हैं, इस का कारण यह है कि द्रव्यास्पद घराने में सम्बध होने से वे ससार मे अपनी नामवरी को चाहते हैं (कि अमुक के सम्बन्धी अमुक बडे सेठजी हैं इत्यादि), अब श्रीमान् लोगों के सिवाय जो साधारण जन हैं उन को तो बडों को देखकर वैसा करना ही है अर्थात् वे कब चाहने लगे कि हमारी कन्या बडे घर में न जावे अथवा हमारे लड़के का सम्बध बड़े घर में न होवे, तात्पर्य यह है कि—गुण और स्वभावादि सब बातों का विचार छोडकर द्रव्य की ओर देखने लगे, यहाँतक कि ज्योतिषी जी आदितक को भी द्रव्य का लोभ देकर अपने वश मे करने लगे अर्थात् उन से भी अपना ही अभीष्ट करवाने लगे, इस के सिवाय लोभादि के कारण जो विवाह के विषय में कन्याविक्रय आदि अनेक हानियां हो चुकी हैं और होती जाती हैं उन को पाठक गण अच्छे प्रकार से जानते ही हैं अतः उन को लिखकर हम ग्रन्थ का विस्तार करना नही चाहते हैं, किन्तु यहां पर तो "निजकुटुम्ब मे विवाह कदापि नहीं होना चाहिये" इस विषय को लिखते हुए प्रसंगवशात् यह इतना आवश्यक समझ कर लिखा गया है। आशा है कि—पाठक गण हमारे इस लेख से यथार्थ तत्वको समझ गये होंगे ॥

स्वयंवर की रीति से विवाह करने में यह होता था कि–निजकुटुम्ब से भिन्न (किन्तु देश की प्रथा के अनुसार स्वजातीय) जन देश देशान्तरों से आते थे और उन सब के गुण आदि का श्रवण कर कन्या ऊपर लिखे अनुसार सब वातों में अपने समान पति का स्वयं (खुद) वरण (स्वीकार) कर लेती थी, अब पाठकगण सोच सकते है कि–यह (स्वयंवर की) रीति न केवल यही वतलाती है कि–निज कुटुम्ब में विवाह नही होना चाहिये किन्तु यह रीति दुहिता शब्द के अर्थ को और भी पुष्ट करती है (कि कन्या का स्वग्राम वा स्वनगर आदि में विवाह नहीं होना चाहिये) क्योंकि यदि निज कुटुम्ब में विवाह करना अभीष्ट वा लोकसिद्ध होता अथवा स्वग्राम वा स्वनगरादि में ही विवाह करना योग्य होता तो स्वयंवर की रचना करना ही व्यर्थ था, क्योंकि वह (निज कुटुम्ब में वा स्वग्रामादि में) विवाह तो विना ही स्वयंवर रचना के कर दिया जा सकता था, क्योंकि अपने कुटुम्ब के अथवा स्वग्रामादि के सब पुरुषों के गुण आदि प्रायः सब को विदित ही होवे है, अब स्वयंवर के सिवाय जो दूसरी और तीसरी रीति लिखी है उस का भी प्रयोजन वही है कि जो ऊपर लिख चुके है, क्योंकि–ये दोनों रीतियां स्वयंवर नहीं तो उस का रूपान्तर वा उसी के कार्य को सिद्ध करनेवाली कही जा सकती है, इन में विशेषता केवल यही है कि–पति का वरण कन्या स्वयं नहीं करती थी किन्तु माता पिता के द्वारा तथा ज्योतिषी आदि के द्वारा पति का वरण कराया जाता था, परन्तु तात्पर्य वही था कि–निज कुटुम्ब में तथा यथासम्भव स्वग्रामादि में कन्या का विवाह न हो ।

ऊपर लिखे अनुसार शास्त्रीय सिद्धान्त से तथा लौकिक कारणों से निजकुटुम्ब में विवाह करना निषिद्ध है अतः निर्वलता आदि दोषों के हेतु इस का सर्वथा परित्याग करना चाहिये ॥

३–**बालकपन में विवाह**—प्यारे सुजनो ! आप को विदित ही है कि इस वर्त्तमान समय में हमारे देश में ज्वर, शीतला, विषूचिका (हैज़ा) और प्लेग आदि अनेक रोगों की अत्यन्त ही अधिकता है कि जिन से इस अभागे भारत की यह शोचनीय कुदशा हो रही है जिस का स्मरण कर अश्रुधारा बहने लगती है और दुःख विसराया भी नहीं जाता है, परन्तु इन रोगों से भी बढ़ कर एक अन्य भी महान् भयंकर रोग ने इस जीर्ण भारत को धर दवाया है, जिस को देख व सुनकर वज्रहृदय भी दीर्ण होता है, तिस पर भी आश्चर्य तो यह है कि उस महा भयंकर रोग के पञ्जे से शायद कोई ही भारतवासी रिहाई पा चुका होगा, यह ऐसा भयंकर रोग है कि–ज्यों ही वह (रोग) शिर पर चढ़ा त्योंही (थोड़े ही दिनों में) वह इस प्रकार थोथा और निकम्मा कर देता है कि जिस प्रकार गेहूँ आदि अन्न में घुन लगने से उस का सत निकल कर उस की अत्यन्त कुदशा हो जाती है कि जिस से वह किसी काम का नहीं रहता है, फिर देखो,।

दूसरे रोगों से तो व्यक्तिविशेष (किसी खास) को ही हानि पहुँचती है परन्तु इस भयंकर रोग से समूह का समूह ही बरन उस से भी अधिक जाति जनसंख्या व देश जनसंख्या ही निकम्मी होकर कुदशा को प्राप्त हो जाती है, सुजनो ! क्या आप को मालूम नहीं है कि यह वही महाभयानक रोग है कि जिस से मनुष्य की सुरत भयावनी तथा नाक कान और आंख आदि इन्द्रियां थोड़े ही दिनों में निकम्मी हो जाती है, उस में विचारशक्ति का नाम तक नहीं रहता है, उस को उत्साह और साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते है, सच पूँछो तो जैसे ज्वर के रहने से तिल्ली आदि रोग हो जाते है उसी प्रकार बरन उस से भी अधिक इस महाभयंकर रोग के होने से प्रमेह, निर्बलता, वीर्यविकार, अफरा, दमा, खांसी और क्षय आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जिन से शरीर की चमक दमक और शोभा जाती रहती है तथा मनुष्य आलसी और क्रोधी बन जाता है तथा उस की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तात्पर्य लिखने का यही है कि इसी महाभयंकर रोग ने इस भारत को बिलकूल ही चौपट कर दिया, इसी ने लोगों को सभ्य से असभ्य, राजा से रंक (फकीर) और दीर्घायु से अल्पायु बना दिया, भाइयो ! कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख और वैभव को इसी ने छीन लिया ।

हमारे पाठकगण इस बात को सुनकर अपने मन में विचार करने लगे होंगे कि वह कौन सा महान् रोग बला के समान है तथा उस के नाम को सुनने के लिये अत्यन्त विकल होते होंगे, सो हे सज्जनो ! इस महान् रोग को तो आप जैसे सुजन तो क्या किन्तु सब ही जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही सबों के गृहों में इस का निवास हो रहा है, देखो ! कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो कि वर्त्तमान समय में इस से न सताया गया हो, जिस ने इस के पापड़ों को न बेला हो, जो इस के दुःखों से घायल होकर न तड़फड़ाता हो, यह वह मीठी मार है कि जिस के लगते ही मनुष्य अपने आप ही सर्व सुखों की पूर्णाहुति देकर मियांमिट्ठू बन जाते है, इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह रोग किसी गृह में प्रवेश करने को होता है तब दो तीन चार अथवा छः मास पहिले ही अपने आगमन की सूचना देता है, जब इस के आगमन के दिन निकट आते है तब तो यह उस गृह को पूर्णरूप से स्वच्छ कराता है, उस गृह के निवासियों को ही नहीं किन्तु उन से सम्बन्ध रखनेवालों को भी कपड़े लत्ते सुथरे पहिनाता है, इस के आगमन की खबर को सुनकर गृह में मंगलाचार होते है, इधर उधर से भाई बन्धु आते है यह सब कुछ तो होता ही है किन्तु जिस रात्रि को इन महारोग का आगमन होता है उस रात्रि को सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है और उस गृह में तो ऐसा उत्साह होता है कि जिस का पारावार ही नही है अर्थात् दर्वाजो पर नौबत झड़ती है, रण्डियां नाच २ कर मुबारक बादें देती है, घूर गोले और आतिशबाज़ी चलती है, पण्डित जन मन्त्रों

का उच्चारण करते हैं, फिर सब लोग मिल कर अत्यन्त हर्ष के
उस नादान भोली मूर्त्ति से चपेट देते है कि जिस के शिरपर
उस के दूसरे ही दिन प्रातःकाल होते ही सब स्थानों में इस के
की घोषणा (मुनादी) हो जाती है ।

पाठक गण ! अब तो यह महान् रोग आप को प्रत्यक्ष प्र
सही यह किस धूमधाम से आता है ? क्या २ खेल खिलाता
है ? किस प्रकार सब को बेहोश कर देता है कि उस गृह
अड़ोसीपड़ोसीतक इस के कौतुक में वशीभूत हो जाते है । २
ऐसे गाजे बाजे के साथ में घर में दखल होता है कि जिस में
नहीं होती है वरन यह कहना भी यथार्थ ही होगा कि सब ले
महारोग को बुलाते हैं कि जिस का नाम "बाल्यविवाह" (न्यू

पाठक गण ऊपर के वर्णन से समझ गये होंगे कि—जो २
हुई है उन का मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है, इ
समय के अच्छे २ बुद्धिमान् डाक्टर लोग भी पुकार २ कर
से कुछ लाभ नहीं है किन्तु अनेक हानियां होती हैं, देखिये
साहब (साबिक प्रिन्सिपिल मेडिकल कालेज कलकत्ता) का
के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इस से शरी
जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है—फिर सामाजिक

डाक्टर नीबीमन कृष्ण बोष का वचन है कि—"शारीरिक
कारण हैं उन सब में मुख्य कारण न्यून अवस्था का विवाह ज
की उन्नति का रोकनेवाला है" ।

मिसस पी. जी. फिफासिन (लेडी डाक्टर मुम्बई) का क
स्त्रियों में रुधिरविकार तथा चर्मदूषण आदि बीमारियों के अ
विवाह ही है, क्योंकि इस से सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है, ि
दूध पिलाना पड़ता है जब कि माता की रगें दृढ़ नहीं होती
होकर नाना प्रकार के रोगों में फँस जाती है" ।

डाक्टर महेन्द्रलाल सर्कार एम. डी. का वचन है कि—

विवाह के हेतु से मरती है तथा फी सदी दो मनुष्य इसी से ऐसे हो जाते हैं कि जिन को सदा रोग घेरे रहते हैं और वे आधे आयु में ही मरते हैं।

प्रिय सज्जनो! इस के अतिरिक्त अपने शास्त्रों की तरफ तथा प्राचीन इतिहासों की तरफ भी ज़रा दृष्टि दीजिये कि विवाह का क्या समय है और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता है—आर्ष (ऋषिप्रणीत) ग्रन्थोंपर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान का उत्पन्न करना है और उस का (सन्तानोत्पत्ति का) समय शास्त्रकारों नें इस प्रकार कहा है कि:—

स्त्रियां षोडशवर्षायां, पञ्चविंशतिहायनः ॥
बुद्धिमानुद्यमं कुर्यात्, विशिष्टसुतकाम्यया ॥ १ ॥

अर्थ—पच्चीस वर्ष की अवस्थावाले (जवान) बुद्धिमान् पुरुष को सोलह वर्ष की स्त्री के साथ सुपुत्र की कामना से संभोग करना चाहिये ॥ १ ॥

तदा हि प्राप्तवीर्यौ तौ, सुतं जनयतः परम् ॥
आयुर्बलसमायुक्तं, सर्वेन्द्रिय समन्वितम् ॥ २ ॥

अर्थ—क्योंकि—उस समय दोनों ही (स्त्री पुरुष) परिपक्व (पके हुए) वीर्य से युक्त होने से आयु बल तथा सर्व इन्द्रियों से परिपूर्ण पुत्र को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

न्यूनषोडशवर्षायां, न्यूनाब्दपञ्चविंशतिः ॥
पुमान् यं जनयेद् गर्भं, स प्रायेण विपद्यते ॥ ३ ॥
अल्पायुर्बलहीनो वा, दारिद्र्योपद्रुतोऽथवा ॥
कुष्ठादि रोगी यदि वा, भवेद्वा विकलेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि पच्चीस वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष—सोलह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री के साथ सम्भोग कर गर्भाधान करे तो वह गर्भ प्रायः गर्भाशय में ही नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

अथवा वह सन्तति अल्प आयुवाली, निर्बल, दरिद्री, कुष्ठ आदि रोगों से युक्त, अथवा विकलेन्द्रिय (अपांग) होती है ॥ ४ ॥

शास्त्रों में इस प्रकार के वाक्य अनेक स्थानों में लिखे हैं जिन का कहांतक वर्णन करें।

प्रियमित्रो! अपने और देश के शुभचिन्तको! अब आप से यही कहना है कि—यदि आप अपने सन्तानों को सुखी देखना चाहते हो तथा परिवार और देश की उन्नति को चाहते हो तो सब से प्रथम आप का यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि—अनेक रोगों के मूल कारण इस बाल्यावस्था के विवाह की कुरीति को बंद कर शास्त्रोक्त रीति को प्रचलित

१—ये सब श्लोक जैनाचार्य श्रीजिनदत्तसूरिकृत "विवेकविलास" के पञ्चम उल्लास में लिखे है ॥

कीजिये, यही आप के पूर्व पुरुषों की सनातन रीति है इसी के अनुसार चलकर प्राचीन काल में तुल्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुष शास्त्रानुसार स्वयम्वर[1] में विवाह कर गृहस्थाश्रम के आनन्द को भोगते थे, बाल्यावस्था में विवाह होने की यह कुरीति तो इस भारत वर्ष में मुसलमानों की बादशाही होने के समय से चली है, क्योंकि मुसलमान लोग हिन्दुओं की रूपवती अविवाहिता कन्याओं को जबरदस्ती से छीन लेते थे किन्तु विवाहिताओं को नहीं छीनते थे, क्योंकि मुसलमानों की धर्मपुस्तक के अनुसार विवाहिता कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है[3], बस हिन्दुओं ने "भरता क्या न करता" की कहावत को चरितार्थ किया क्योंकि उन्हों ने यही सोचा कि अब बाल्य विवाह के विना इन (मुसलमानों) से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह विचार कर छोटे २ पुत्रों और पुत्रियों का विवाह करना प्रारम्भ कर दिया, बस तब से आजतक वही रीति चल रही है, परन्तु प्रियमित्रो! अब वह समय नहीं है अब तो न्यायशीला श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट का वह न्याय राज्य है कि जिस में सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं, कोई किसी के धर्मपर आक्षेप नहीं कर सकता है और न कोई किसी को विना कारण छेड़ वा सता सकता है, इस के सिवाय राज्यशासकों की अति प्रशंसनीय बात यह है कि—वे परस्त्री को बुरी दृष्टि से कदापि नहीं देखते हैं, जब वर्त्तमान ऐसा शुभ समय है तो अब भी हमारे हिन्दू (आर्य) जनों का इन कुरीतियों को न सुधारना बड़े ही अफ़सोस का स्थान है।

इस के सिवाय एक विचारणीय विषय यह है कि—जिस समय जिस वस्तु की प्राप्ति की मन में इच्छा होती है उसी समय उस के मिलने से परम सुख होता है किन्तु विना समय के वस्तु के मिलने से कुछ भी उत्साह और उमंग नही होती है और न किसी

१—स्वयवररूप विवाह परम उत्तम विवाह है, इस मे यह होता था कि कन्या का पिता अपनी जाति के योग्य मनुष्यों को एक तिथिपर एकत्रित होने की सूचना देता था और वे सब लोग सूचना के अनुसार नियमित तिथिपर एकत्रित होते थे तथा उन आये हुए पुरुषों में से जिसको कन्या अपने गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल जान लेती थी उसी के गले मे जयमाला (वरमाला) डाल कर उस से विवाह करती थी, बहुधा यह भी प्रथा थी कि स्वयवरों में कन्या का पिता कोई प्रण करता था तथा उस प्रण को जो पुरुष पूर्ण कर देता था तब कन्या का पिता अपनी कन्या का विवाह उसी पुरुष से कर देता था, इन सब बातों का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत सस्कृत रामायण तथा पाण्डवचरित्र आदि ग्रन्थो को देखो ॥

२—इतिहासों से सिद्ध है कि आर्यावर्त्त के बहुत से राजाओं की भी कन्याओं के डोले यवन बादशाहों ने लिये हैं, फिर भला सामान्य हिन्दुओं की तो क्या गिनती है ॥

३—क्योंकि विवाहिता कन्यापर दूसरे पुरुष का (उसके स्वामी का) हक हो जाता है और इन के मत का यह सिद्धान्त है कि दूसरे के हक में आई हुई वस्तु का छीनना पाप है ॥

४—सचमुच यही गृहस्थाश्रमका प्रथम पाया भी है ॥

प्रकार का आनन्द ही आता है, जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है परन्तु भूख के विना मोहनभोग को खाने को भी जी नही चाहता है, इसी प्रकार योग्य अवस्था के होनेपर तथा स्त्री पुरुष को विवाह की इच्छा होनेपर दोनों को आनन्द प्राप्त होता है किन्तु छोटे २ पुत्र और पुत्रियों का उस दशा में जब कि उन को न तो कामाग्नि ही सताती है और न उन का मन ही उधर को जाता है, विवाह कर देने से क्या लाभ हो सकता है? कुछ भी नहीं, किन्तु यह विवाह तो विना भूख के खाये हुए भोजन के समान अनेक हानियां ही करता है।

हे सुजनो! इन ऊपर कही हुई हानियों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि वह होती है कि जिस के कारण इस भारत में चारों ओर हाहाकार मच रहा है तथा जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लग रहा है, वह बुरी बाल विधवाओं का समूह है कि जिन की आहें इस भारत के घाव पर और भी नमक डाल रही हैं, हा प्रभो! वह कौन सा ऐसा घर है जिस में विधवाओं के दर्शन नहीं होते हैं, उसपर भी वे भोली विधवायें कैसी है कि जिन के दूध के दाँततक नहीं गिरे है, न उन को अपने विवाह की कुछ सुध बुध है और न वे यह जानती है कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी है, हमारे ऊपर पैदा होते ही कौन सा वज्रपात हो गया है, इसपर भी तुर्रा यह है कि—जब वे बेचारी तरुण होती हैं तब कामानल (कामाग्नि) के प्रबल होनेपर उन का नियोग भी नहीं होता है। भला सोचिये तो सही कि कामानल के दुःसह तेज का सहन कैसे हो सकता है? सिर्फ यही कारण है कि हज़ारों में से दश पांच ही सुन्दर आचरणवाली होती है, नहीं तो प्रायः नाना लीलायें रचती हैं कि जिन से निष्कलंक कुलवालों के भी शिर से लज्जा की पगड़ी गिर जाती है, क्या उस समय कुलीन पुरुषों की मूछें उन के मुँहपर शोभा देती है? नहीं कभी नहीं, उन के यौवन का मद एकदम उतर जाता है, उन की प्रतिष्ठापर भी इस प्रकार छार पड़ जाती है कि—दश आदमियों में ऊँचा मुँह कर के उन की बोलने की भी ताकत नहीं रहती है, सत्य तो यह है कि—मातापिता इस जलती हुई चिताको अपनी छातीपर देख २ कर हाड़ों का सांचा बन जाते है, इन सब क्लेशों का कारण बाल्यावस्था का विवाह ही है, देखो! भारत में विधवाओं की संख्या वर्त्तमान में इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नही पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता है, देखो! पूर्वकाल में जब इस भारत में बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता था तब यहां विधवाओं की गणना (संख्या) बहुत ही न्यून थी।

बाल्यावस्था के विवाह से हानि का प्रत्यक्ष प्रमाण और दृष्टान्त यही है कि—देखो! जब किसी खेत में गेहूँ आदि अन्न को बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मर जाते है, एक महीने के पीछे बहुत कम मरते हैं, दो चार महीने के पीछे

अत्यन्त ही कम मरते हं, इस के पश्चात् बचे हुए चिरस्थायी हो जाते हैं, इसी प्रकार जन्म से पांच वर्षतक जितने बालक मरते है उतने पांच से दश वर्षतक नहीं मरते हैं, दश से पन्द्रह वर्षतक उस से भी बहुत कम मरते है, इस का हेतु यही है कि बाल्यावस्था में दाँतों का निकलना तथा शीतला आदि अनेक रोग प्रकट होकर बालकों के प्राणघातक होते हैं।

समझने की बात है कि—जब किसी पेड़ की जड़ मज़बूत हो जाती है तो वह बड़ी २ आँधियों से भी बच जाता है किन्तु निर्बल जड़वाले वृक्षों को आंधी आदि तूफ़ान समूल उखाड डालते है, इसी प्रकार बाल्यावस्था में नाना भांति के रोग उत्पन्न होकर मृत्युकारक हो जाते है परन्तु अधिक अवस्था में नहीं होते है, यदि होते भी है तो सौ में पांच को ही होते है।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि—यदि बाल्यावस्था का विवाह भारत से उठा दिया जावे तो प्रायः बालविधवाओं का यूथ (समूह) अवश्य कम हो सकता है तथा ये सब (ऊपर कहे हुए) उपद्रव मिट सकते है, यद्यपि वर्त्तमान में इस निकृष्ट प्रथा के रोकने में कुछ दिक़त अवश्य होगी परन्तु बुद्धिमान् जन यदि इस के हटाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करें तो यह धीरे २ अवश्य हट सकती है अर्थात् धीरे २ इस निकृष्ट प्रथा का अवश्य नाश हो सकता है और जब इस निकृष्ट प्रथा का बिलकुल नाश हो जावे गा अर्थात् बाल्यविवाह की प्रथा बिलकुल उठ जावे गी तब निस्सन्देह ऊपर लिखे सब ही उपद्रव शान्त हो जावेंगे और महादुःख का एक मात्र हेतु विधवाओं की संख्या भी अति न्यून हो जावेगी अर्थात् नाममात्र को रह जावेगी (ऐसी दशा में विधवा विवाह वा नियोग विषयक चर्चा के प्रश्नके भी उठने की कोई आवश्यकता नही रहेगी कि जिस का नाम सुनकर साधारण जन चकित से रह जाते है) क्योंकि देखो ! यह निश्चयपूर्वक माना जा सकता है कि—यदि शास्त्रानुसार १६ वर्ष की कन्या के साथ २५ वर्ष के पुरुष का विवाह होने लगे तो सौ स्त्रियों में से शायद पॉच स्त्रियॉ ही मुश्किल से विधवा हो सकती है (इस का हेतु विस्तारपूर्वक ऊपर लिख ही चुके है कि बाल्यावस्था में रोगों से विशेष मृत्यु होती है किन्तु अधिकावस्था में नहीं इत्यादि) और उन पॉच विधवाओं में से भी तीन विधवायें योग्य समय में विवाह होने के कारण अवश्य सन्तानवती माननी पड़ेगी अर्थात् विवाह होने के बाद दो तीन वर्ष में उन के बालबच्चे हो जावेंगे पीछे वे विधवा होंगी ऐसी दशा में उन के लिये वैधव्ययातना अति कष्टदायिनी नहीं हो सकती है, क्योंकि—सन्तान के होने के बाद यदि कुछ समय के पीछे पतिका मरण भी हो जावे तो वे स्त्रियाँ उन बच्चों की भावी आशापर उन के लालन पालन में अपनी आयु को सहज में व्यतीत कर सकती हैं और उन को उक्त दशा में

विधवापन की तकलीफ विशेष नहीं हो सकती है, बस इस हिसाब से सौ विवाहिता स्त्रियों में से केवल दो विधवायें ऐसी दीख पड़ेंगी कि जो सन्तानहीन तथा निराश्रयवत् होंगी अर्थात् जिन का कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता रहेगी।

इस लिये सब उच्च वर्ण (ऊंची जाति)वालों को उचित है कि स्वयंवर की रीति से विवाह करने की प्रथा को अवश्य प्रचलित करें, यदि इस समय किसी कारण से उक्त रीति का प्रचार न हो सके तो आप खुद गुण कर्म और स्वभाव को मिलाकर उसी प्रकार कार्य को कीजिये कि जिस प्रकार आप के प्राचीन पुरुष करते थे।

देखिये ! विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ हो जाते है और उन को प्रायः गृहस्थोपयोगी सब ही प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है तथा वे सब पदार्थ धन ही से प्राप्त होते है और धन की प्राप्ति विद्या आदि उत्तम गुणों से ही होती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के प्राप्त करने का समय केवल बाल्यावस्था ही है, अतः यदि बाल्यावस्था में विवाह कर सन्तान को बन्धन में डाल दिया जावे तो कहिये विद्या आदि उत्तम गुणों की प्राप्ति कब और कैसे हो सकती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के अभाव में धन की प्राप्ति कैसे हो सकती है और उस के बिना आवश्यक गृहस्थोपयोगी पदार्थों की अनुपलब्धि (अप्राप्ति) से गृहस्थाश्रम में पूर्ण सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? सत्य तो यह है कि-बाल्यावस्था में विवाह का कर देना मानो सब आश्रमों को और उन के सुखों को नष्ट कर देता है, इसी कारण से तो प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था, शास्त्रकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि-प्रथम अच्छे प्रकार से विद्याध्ययन कर फिर विवाह कर के गृह में वास करें, क्योंकि विद्या, जितेन्द्रियता और पुरुषार्थ के प्राप्त हुए विना गृहस्थाश्रम का पालन नहीं किया जा सकता है और जिस ने इन (विद्या आदि) को प्राप्त नहीं किया वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को भी नहीं सिद्ध कर सकता है ॥

१-माता पिता को उचित है कि जब अपने पुत्र और पुत्री युवावस्था को प्राप्त हो जावें तब उन के योग्य कन्या और वर के ब्रह्मचर्य की, विद्या आदि सद्गुणों की तथा उन के धर्माचरण की अच्छे प्रकार से परीक्षा करके ही उन का विवाह करें, इस की विधि शास्त्रकारों ने इस प्रकार कही है कि—१-लडके की अवस्था २५ वर्ष की तथा लड़की की अवस्था सोलह वर्ष की होनी चाहिये। २-ऊँचाई में लडकी लड़के के कन्धे के बराबर होनी चाहिये, अथवा इस से भी कुछ कम होनी चाहिये अर्थात् लडके से लडकी ऊँची नहीं होनी चाहिये। ३-दोनों के शरीर सम होने चाहिये। ४-दोनों या तो विद्वान् होने चाहियें अथवा दोनों ही मूर्ख होने चाहियें ॥

पुत्रीके गुण—१-जिस के शरीर मे कोई रोग न हो। २-जिस के शरीर में दुर्गन्ध न आती हो। ३-जिस के शरीरपर बड़े २ बाल न हो तथा मूँछ के बाल भी न हों। ४-जो बहुत बकवाद करनेवाली न हो। ५-जिस का शरीर टेढा न हो तथा अगहीन भी न हो। ६-जिस का शरीर कोमल हो परन्तु दृढ़ हो। ७-जिस की वाणी मधुर हो ८- जिस का वर्ण पीला न हो। ९ जो भूरे नेत्रवाली न हो। १०-जिस

४–सन्तान का विगड़ना—वहुत से रोग ऐसे हैं जो कि पूर्व क्रम से सन्तानों के हो जाते है अर्थात् माता पिता के रोग बच्चों को हो जाते हैं, इस प्रकार के रोगों में मुख्य २ ये रोग हैं–क्षय, दमा, क्षिप्तचित्तता (दीवानापन), मृगी, गोला, हरस (मस्सा), सुज़ाख, गर्मी, आंख और कान का रोग तथा कुष्ठ इत्यादि, पूर्वक्रम से सन्तान में होनेवाले वहुत से रोग अनेक समयों में वृद्धि को प्राप्त होकर जब सर्व कुटुम्ब का संहार कर डालते हैं उस समय लोग कहते हैं कि–देखो ! इस कुटुम्ब पर परमेश्वर का कोप हो गया है परन्तु वास्तव में तो परमेश्वर न तो किसी पर कोप करता है और न किसी पर प्रसन्न होता है किन्तु उन २ जीवों के कर्म के योग से वैसा ही संयोग आकर उपस्थित हो जाता है क्योंकि क्षय और क्षिप्तचित्तता रोग की दशा में रहा हुआ जो गर्भ है वह भी क्षय रोगी तथा क्षिप्तचित्त (पागल) होता है, यह वैद्यकशास्त्र का नियम है, इसलिये चतुर पुरुषों को इस प्रकार के रोगों की दशा में विवाह करने तथा सन्तान के उत्पन्न करने से दूर रहना चाहिये।

किसी २ समय ऐसा भी होता है कि–सन्तान के होनेवाले रोग एक पीढ़ी को छोड़ कर पोते के हो जाते है।

सन्तान के होनेवाले रोगों से युक्त बालक यद्यपि अनेक समयों में प्रायः पहिले तनदुरुस्त दीखते है परन्तु उन की उस तनदुरुस्ती को देखकर यह नहीं समझना चाहिये कि वे नीरोग हैं, क्योंकि ऐसे बालकों का शरीर रोग के लायक अथवा रोग के लायक होने की दशा में ही होता है, ज्योंही रोग को उत्तेजन देनेवाला कोई कारण बन जाता है त्यों ही उन के शरीर में शीघ्र ही रोग दिखलाई देने लगता है, यद्यपि सन्तान के होनेवाले रोगों का ज्ञान होने से तथा बचपन में ही योग्य सम्भाल रखने से भी सम्भव है कि उस रोग की बिलकुल जड़ न जावे तो भी मनुष्य का उचित उद्यम उस को कई दर्जों में कम कर सकता तथा रोक भी सकता है ॥

का नाम शास्त्रानुसार हो, जैसे–यशोदा, सुभद्रा, विमला, सावित्री आदि। ११–जिस की चाल हंस वा हथिनी के तुल्य हो। १२–जो अपने चार गोत्रों मे की न हो। १३–मनस्मृति आदि धर्म शास्त्रों में कन्या के नाम के विषय में कहा है कि–"नर्क्षवृक्षनदी नाम्नीं, नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं, न च भीषणनामिकाम् ॥ १ ॥" अर्थात् कन्या नक्षत्र नामवाली न हो, जैसे–रोहिणी, रेवती इत्यादि, वृक्ष नामवाली न हो, जैसे–चम्पा, तुलसी आदि, नदी नामवाली न हो, जैसे–गंगा, यमुना, सरस्वती आदि अन्त्य (नीच) नामवाली न हो, जैसे–चाण्डाली आदि, पर्वत नामवाली न हो, जैसे–विन्ध्याचला, हिमालया आदि, पक्षी नामवाली न हो, जैसे–कोकिला, मैना, हंसा आदि, सर्प नामवाली न हो, जैसे–सर्पिणी, नागी, व्याली आदि, प्रेष्य (भृत्य) नामवाली न हो, जैसे–दासी किङ्करी आदि, तथा भीषण (भयानक) नामवाली न हो, जैसे–भीमा, भयंकरी, चण्डिका आदि, क्योंकि ये सब नाम निषिद्ध हैं अतः कन्याओं के ऐसे नाम ही नहीं रखने चाहियें)।

५–अवस्था—शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में से एक कारण अवस्था भी है, देखो! बचपन में शरीर की गर्मी के कम होने से ठंढ जल्दी असर कर जाती है, उस की योग्य सम्भाल न रखने से थोड़ीसी ही देर में हाफनी, दम, खांसी और कफ आदि के अनेक रोग हो जाते हैं।

जवानी (युवावस्था) में रोगों को रोकनेवाली शातावेदनी शक्ति की प्रबलता के होने से शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों का ज़ोर थोड़ा ही रहता है।

तीसरी वृद्धावस्था में शरीर फिर निर्बल पड़ जाता है और यह निर्बलता वृद्ध मनुष्य के शरीर को बार २ रोग के योग्य बनाती है॥

६–जाति—विचार कर देखा जावे तो पुरुषजाति की अपेक्षा स्त्रीजाति का शरीर रोग के असर के योग्य अधिक होता है, क्योंकि स्त्रीजाति में कुछ न कुछ अज्ञान, विचार से हीनता और हठ अवश्य होता है, इस लिये वह आहार विहार में हानि लाभ का कुछ भी विचार नहीं रखती है, दूसरे–उस के शरीर के बन्धेज नाजुक होने से गर्भ-

---

प्यारे सुजनो! विवाह के विषय में शास्त्रानुसार इन बातों का विचार अवश्यमेव करना चाहिये, क्योंकि इन बातों का विचार न करने से जन्मभरतक दुःख भोगना पडता है तथा गृहस्थाश्रम दुःखों की खानि हो जाता है, देखो! उत्तम कुल वृक्षके तुल्य है, उस की सम्पत्ति शाखाओं के सदृश है तथा पुत्र मूलवत् है, जैसे मूलके नष्ट होने से वृक्ष कभी कायम नहीं रह सकता है, उसी प्रकार अयोग्य विवाह के द्वारा पुत्रके नष्ट भ्रष्ट होने से कुल का नाश हो जाता है, इसलिये जो पुरुष अपने पुत्र और पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वे सुखरूपी तत्व का विचार कर शास्त्रानुसार उचित विधि से विवाह करें क्योंकि जो ऐसा करेंगे वे ही लोग कुलरूपी वृक्ष की वृद्धिरूपी फल फूल और पत्तो को देख सकते हैं, बल्कि सत्य पूछो तो सन्तान ही नहीं किन्तु उस का योग्य विवाह ही कुलरूपी वृक्ष का मूल है, इस लिये जैसे वृक्ष की रक्षा के लिये उसके मूल की रक्षा करनी पडती है उसी प्रकार कुल की रक्षा के लिये योग्य विवाह की सभाल और रक्षा करनी चाहिये, जैसे जिस वृक्ष का मूल दृढ होगा तो वह बडे २ प्रचण्ड वायु के झपटों से भी कभी नहीं गिर सकेगा परन्तु यदि मूल ही निर्बल हुआ तो हवा के थोडे ही झटके से उखड कर गिर पड़ेगा इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तथा उसका योग्य विवाह होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति होगी, सर्व प्रकार से बाप दादे का नाम तथा यश फैलेगा और नाना भांति से सुख तथा आनन्द की वृद्धि होगी, क्योंकि गुणवान् और उत्तम आचरणवाले एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल इस प्रकार शोभित और प्रख्यात हो जाता है जैसे चन्दनके एक ही वृक्ष से तमाम वन सुगन्धित रहता है, परन्तु यदि पुत्र कुपूत वा कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन, मन, धन, मान और कीर्त्ति आदि को धूल में मिला देगा, इस लिये विवाह में धन आदि की अपेक्षा लडके के गुण कर्म और शील आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है, क्योंकि धन तो इस ससार मे बादल की छाया के समान है, प्रतिष्ठा पतङ्ग के रग के सदृश और कुल केवल नाम के लिये है, इस कारण मूलपर सदा ध्यान करने से परम सुख मिल सकता है अन्यथा कदापि नहीं, देखो! किसी ने सत्य कहा है कि–"एक हि साधे सब सधैं, सब साधे सब जाय॥ जो तू सींचै मूल को, फूले फले अघाय" ॥ १ ॥ अतः वर और कन्या के ऊपर लिखे हुए गुणों को मिला कर विवाह करना उचित है, जिस से उन दोनों की प्रकृति सदा एक सी रहे, क्योंकि यही सुख का मूल है, देखो! किसी कविने कहा है कि–"प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिल से न मिलाय॥

स्थान में वार २ परिवर्त्तन (उथलपुथल) हुआ करता है, इसलिये स्त्री का निर्बल शरीर रोग के योग्य होता है, वर्त्तमान में स्त्रीजाति की उत्पत्ति पुरुषजाति से तिगुनी दीखती है तथा स्त्रीजाति पुरुषजाति की अपेक्षा अधिक मरती है, यही कारण है कि–एक एक पुरुष तीन २ चार २ तक विवाह किया करते है ॥

दूध दही से जमत है, काञ्जी से फटि जाय" ॥ १ ॥ ऊपर लिखी हुई वातो के मिलाने के अतिरिक्त यह भी देखना उचित है कि जो लड़का ज्वारी, मद्यप (शरावी), वेश्यागामी (रण्डीवाज़) और चोर आदि न हो किन्तु पढा लिखा, श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता और धर्मात्मा हो उसी से कन्या का विवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि–वर्तमान समय मे इस उत्तम परिपाटी पर कुछ भी ध्यान न देकर केवल कुभ मीन आदि का मिलान कर वर कन्या का विवाह कर देते है, जिस का फल यह होता है कि उत्तम गुणवती कन्या का विवाह दुर्गुण वाले वर के साथ अथवा उत्तम गुणवाले पुत्र का विवाह दुर्गुणवाली कन्या के साथ हो जाने से घरों मे प्रतिदिन देवासुरसग्राम मचा रहता है, इन सब हानियों के अतिरिक्त जब से भारत में बालहत्या के मुख्य हेतु बालविवाह तथा वृद्धविवाह का प्रचार हुआ तब से एक और भी खोटी रीति का प्रचार हो गया है और वह यह है कि लड़की के लिये वर खोजने के लिये–नाई, बारी, धीवर, भाट और पुरोहित आदि भेजे जाते हैं, यह कैसे शोक की वात है कि–अपनी प्यारी पुत्री के जन्मभर के सुख दु ख का भार दूसरे परम लोभी, मूर्ख, गुणहीन, स्वार्थी और नीच पुरुषों पर डाल दिया जाता है, देखो ! जब कोई पुरुष एक पैसे की हाडी को भी मोल लेता है तो उस को खूब ठोक बजा कर लेता है परन्तु अफसोस है कि इस कार्य पर कि जिस पर अपने आत्मजों का सुख निर्भर है किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया जाता है, सुजनो ! यह कार्य ऐसा नहीं है कि इस को सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य कर सके किन्तु यह कार्य तो ऐसे मनुष्य के करने का है कि जो विद्वान् तथा निर्लोभ हो और ससार को खूब देखे हुए हो, क्या आप इन नाई बारी भाट और पुरोहितों को नहीं जानते हैं कि ये लोग केवल एक एक पैसे पर प्राण देते हैं, फिर उन की बुद्धि की क्या तारीफ़ करें, उन की बुद्धि का तो साधारण नमूना यही है कि चार सभ्य पुरुषों में बैठ कर वे बात तक का कहना भी नहीं जानते हैं, न तो वे कुछ पढे लिखे ही होते हैं और न विद्वानों का ही सग किये हुए होते हैं फिर भला वे लोभरहित और बुद्धिमान् कहा से हो सकते हैं, देखो ! संसार में लोभ से बचना अति कठिन काम है क्योंकि यह बड़ा प्रवल ग्रह है, इस ने बड़े २ विद्वान् तथा महात्माओ को भी सताया है तथा सताता है, इसी लोभ मे आकर औरगजेब ने अपने पिता और भ्राता को भी मार डाला था, लोभ के ही कारण आजकल भाई भाइयों में भी नहीं बनती है, फिर भला उन का क्या कहना है कि जो दिन रात धन ही की लालसा में लगे रहते हैं और उस के लिये लोगों की झूठी खुशामदें करते हैं, उन की तो साक्षात् यह दशा देखी गई है कि चाहें लडका काला और कुवडा आदि कैसा ही क्यों न हो किन्तु जहा लडके के पिता ने उन से मुट्ठी गर्म करने का प्रण किया वा खूब आवभगत से उन को लिया त्यों ही वे लोग लडकी वाले से आकर लडके की तथा कुल की बहुत ही प्रशसा करते हैं अर्थात् सम्बध करा ही देते हैं, परन्तु यदि लडकेवाला उन की मुट्ठी को गर्म नहीं करता है तथा उन की आवभक्ति नहीं करता है तो चाहे लड़का

७-जीविका वा वृत्ति—बहुत सी जीविकायें वा वृत्तियें (रोज़गार) भी ऐसी है जो कि शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारण बन जाती हैं, जैसे देखो! सब दिन बैठ कर काम करनेवालों, आंख को बहुत परिश्रम देनेवालों, कलेजा और फेफसा दवा रहे इस प्रकार बैठकर काम करने वालों, रंग का काम करने वालों, पारा तथा फास॰

कैसा ही उत्तम क्यों न हो तो भी वे लोग आकर लड़की वाले से बहुत अप्रशंसा तथा निन्दा कर देते हैं जिस के कारण परस्पर सम्बध नहीं होता है और यदि दैवयोग से सम्बंध हो भी आता है तो पति पत्नियों में परस्पर प्रेम नहीं रहता है क्योंकि वे (वर और कन्या) भाट आदि के द्वारा एक दूसरे की निन्दा सुने हुए होते हैं, इन्हीं अप्रबन्धों और परस्पर के द्वेष के कारण बहुधा मनुष्य नाना प्रकार की कुचालों में पड़ गये और उन्हों ने अपनी अर्धाङ्गिनी रूप बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रंडापे का स्वाद चखा दिया, इधर नाई बारी और पुरोहित आदि के दुखड़े का तो रोना है ही परन्तु उधर एक महान् शोक का स्थान और भी है कि माता पिता आदि भी न पुत्र को देखते हैं और न पुत्री को देखते हैं, हा यदि आंखें खोल कर देखते हैं तो यही देखते हैं कि कितना रुपया पास है और क्या २ माल टाल है किन्तु पुत्र और पुत्री चाहे चोर और ज्वारी क्यों न हो, चाहे समस्त धन को दो ही दिन में उड़ा दें और चाहें लड़की अपने फूहरपन से गृह को पति के वास्ते जेलखाना ही क्यों न बना दे परन्तु इस की उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती है, सत्य पूछो तो यही कहा जा सकता है कि वे विवाह को पुत्र के साथ नहीं वरन धन के साथ करते हैं, जब उन की कोई बुराई प्रकट होती है तब कहते हैं कि हम क्या करें, हमारे यहां तो सदा से ऐसा ही होता चला आया है, प्रिय महाशयो! देखिये! इधर माता पिता आदि की तो यह लीला है, अब उधर शास्त्रकार क्या कहते हैं-शास्त्रकारो का कथन है कि-चाहें पुत्र और पुत्री मरणपर्यन्त कुमारे (अविवाहित) ही क्यों न रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्परविरुद्ध गुण कर्म और स्वभाव वालों का विवाह नहीं करना चाहिये इत्यादि, देखिये। प्राचीन काल में आप के पुरुषा लोग इसी शास्त्रोक्त आज्ञा के अनुसार अपने पुत्र और पुत्रियों का विवाह करते थे, जिस का फल यह था कि उस समय में यह गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम की शोभा को दिखला रहा था, शास्त्रकारों की यह भी सम्मति है कि जो स्त्री पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त एक दूसरे को अपनी इच्छा से पसन्द कर विवाह करते हैं वे ही उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं, इस कथन का मुख्य तात्पर्य यही है कि-इन ऊपर कहे हुए गुणों में जिस स्त्री से जिस पुरुष को और जिस पुरुष से जिस स्त्री को अधिक आनन्द मिले उन्हीं को परस्पर विवाह करना चाहिये, (देखो! श्रीपाल राजा का प्राकृत चरित्र, उस में इस का वर्णन आया है) शास्त्र कार यह भी पुकार २ कर कहते हैं कि-अति उत्तम विवाह वही है कि जिस में तुल्य रूप और स्वभाव आदि गुणों से युक्त कन्या और वर का परस्पर सम्बन्ध हो तथा कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा तो अवश्य हो, परन्तु अफसोस का विषय तो यह है कि-शास्त्र को आज कल न कोई देखता और न कोई सुनता ही है, फिर इस दशा में शास्त्रों और शास्त्रकारों की सम्मति प्रत्येक विषय में कैसे मालूम हो सकती है? बस यही कारण है कि-विवाहविषय में शास्त्रीय सिद्धान्त ज्ञात न होने से अनेक प्रकार की कुरीतियां प्रचलित हो गई और होती जाती है, जिन का वर्णन करते हुए अतिखेद होता है, देखिये! विवाह के विषय में एक यह और भी बड़ी भारी कुरीति प्रचलित है कि

फरस की चीजों के बनानेवालों, पत्थर को घड़नेवालों, धातुओं का काम करनेवालों (लुहार, कसेरे, ठँठेरे और सुनार आदिकों) कोयले की खान को खोदने वाले मजूरों, कपड़े की मिल में काम करनेवाले मजूरों, बहुत बोलनेवालों, बहुत फूंकनेवालों और रसोई का काम प्रतिदिन करनेवालों का तथा इसी प्रकार के अन्य धन्धे (रोज़गार) करनेवालों का शरीर रोग के योग्य हो जाता है तथा इन की आयु भी परिमाण से कम हो जाती है ॥

८-प्रकृति—प्रकृति (सभाव वा मिजाज़) भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाला कारण है, देखो! किसी का मिजाज़ ठंढा, किसी का गर्म, किसी का वातल और

बहुधा उत्तम २ जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् सगाई करने से पूर्व इकरार (करार) हो जाता है कि-हम इतनी बडी बरात लावेंगे और इतने रुपये आप को खर्च करने पडेंगे इत्यादि, उधर बेटी वाले वर के पिता से करार करा लेते हैं कि तुम को इतना गहना बींदणी को चढ़ाना पड़ेगा, यह तो बडे २ श्रीमन्तों का हाल देखने मे आता है, अब बाकी रह गये हजारिये और गरीब गृहस्थ लोग, सो इन में भी बहुत से लोग रुपया लेकर कन्या का विवाह करते हैं तथा रुपये के लोभ मे पड़ कर ऐसे अन्धे बन जाते हैं कि वर की आयु आदि का भी कुछ विचार नहीं करते हैं अर्थात् वर चाहे साठ वर्ष का बुड्ढा क्यों न हो तो भी रुपये के लोभ से अपनी अबोध (अज्ञान वा भोली) बालिका को उस जर्जर के गले से बाध कर उस के लिये दुःखागार का द्वार खोल देते हैं, सत्य तो यह है कि जब से यहा कन्याविक्रय की कुरीति प्रचलित हुई तब ही से इस भारतवर्ष का सत्यानाश हो गया है, हे प्रभो! क्या ऐसे निर्दयी माता पिता भी कन्या के माता पिता कहे जा सकते हैं? जो कि केवल रुपये की तरफ देखते हैं और इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं कि दो वर्ष के बाद यह बुड्ढा मर जायगा और हमारी पुत्री विधवा होकर दुःखसागर मे गोते मारेगी या हमारे कुल को कलङ्कित करेगी, इस कुरीति के प्रचार से इस देश मे जो २ हानिया हो चुकी हैं और हो रही हैं उन का वर्णन करने मे हृदय विदीर्ण होता है तथा विस्तृत होने से उन का वर्णन भी पूरे तौर पर यहा नहीं कर सकते हैं और न उन के वर्णन करने की कोई आवश्यकता ही है क्योंकि इस की हानिया प्रायः सुजनों को विदित ही हैं, अब आप से यहा पर यही निवेदन करना है कि हे प्रिय मित्रो! आप लोग अपनी २ जाति में इस बुरी रीति को बिलकुल ही उठा देने (नेस्तनाबूद करने) का पूरा २ प्रतिबन्ध कीजिये, क्योंकि यदि इस (बुरी रीति) को जड (मूल) से न उठा दिया जावेगा तो कालान्तर मे अत्यन्त हानि की सम्भावना है, इस लिये इस कुरीतिको उठा देना और इन निम्न लिखित कतिपय बातों का भी ध्यान रखना आप का मुख्य कर्त्तव्य है कि जिस से दोनों तरफ किसी प्रकार का क्लेश न हो और मन न बिगडे, जैसा कि इस समय हमारे देश मे हो रहा है, जिस के कारण भारत की प्रतिष्ठारूपी पताका भी छिन्न भिन्न हो गई है तथा उत्तम २ वर्णवालों को भी नीचा देखना पडता है, इस विषय मे ध्यान रखने योग्य ये बाते हैं— १-बरात में बहुत भीड़ नहीं ले जानी चाहिये। २-बखेर या लूट की चाल को उठाना चाहिये। ३-बागबहारी में फजूल खर्ची नहीं करनी चाहिये। ४-आतिशबाज़ी में रुपये को व्यर्थ मे नहीं फूंकना चाहिये। ५-रण्डियों का नाच कराना मानो अशुभ मार्ग की प्रवृत्ति करना है, इस लिये इस को भी

किसी का मिश्र होता है, मिश्रित प्रकृतिवालों में से कोई २ पुरुष दो प्रकृति की प्रधानतावाले तथा कोई २ तीनों प्रकृतियों की प्रधानतावाले भी होते हैं।

गर्म मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही क्रोध तथा बुखार के आधीन हो जाता है, ठंढे मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही शर्दी कफ और दम आदि रोगों के आधीन हो जाता है, एवं वायु प्रकृतिवाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही वादी के रोगों के आधीन हो जाता है।

यद्यपि मूल में तो यह प्रकृतिरूप दोष होता है परन्तु पीछे जब उस प्रकृति को बिगाड़नेवाले आहार विहार से सहायता मिलती है तब उसी के अनुसार रोगोत्पत्ति हो जाती है, इसलिये प्रकृति को भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में गिनते हैं॥

उठा देना चाहिये। बुद्धिमान् जन यद्यपि इन पांचों ही कुरीतियों के फल को अच्छे प्रकार से जानते ही होंगे तथापि साधारण पुरुषों के ज्ञानार्थ इन कुरीतियों की हानियों का सक्षेप से वर्णन करते हैं:—

बरात में बहुत भीड़भाड़ का ले जाना—प्रथम तो यही विचार करना चाहिये कि बरात को खूब ठाठ बाट से ले जाने में दोनों तरफ के लोगोंको क्लेश होता है और अच्छा प्रबन्ध तथा आदर सत्कार नहीं बन पड़ता है, इस के सिवाय इधर उधर का धन भी बहुत खर्च हो जाता है, अतः बहुत धूमधाम से बरातको ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, बरन थोड़ी सी बरात को अच्छे सजाव के साथ ले जाना अति उत्तम है, क्योंकि थोड़ी सी बरात का दोनों तरफ वाले उत्तम खान पान आदि से अच्छे प्रकार से सत्कार कर अपनी शोभा को कायम रख सकते हैं, इस के सिवाय यह भी विचार की बात है कि–इस कार्य में विशेष धन का लगाना वृथा ही है, क्योंकि यह कोई चिरस्थायी कार्य तो है ही नहीं सिर्फ दो दिन की बात है, अधिक बरात के ले जाने में नेकनामी की प्रायः कम आशा होती है किन्तु बदनामी की ही सम्भावना रहती है, क्योंकि यह कायदे की बात है कि समर्थ पुरुष को भी बहुत से जनोंका उनकी इच्छा के अनुसार पूरा २ प्रबध करने में कठिनता पड़ती है, बस जहां बरातियों के आदर सत्कार में ज़रा त्रुटि हुई तो शीघ्र ही बराती जन यही कहते हैं कि अमुक पुरुष की बरात में गये थे वहा खाने पीने तक का भी कुछ प्रबन्ध नहीं था, सब लोग भूखों के मारे मरते थे, पानी तथा दाना घास भी समय पर नहीं मिलता था, इधर सेठजी ले जाने के समय तो बडी चीप चाप (लल्लो चप्पो) करते थे परन्तु वहां तो दुम दबाये जनवासे ही में बैठे रहे इत्यादि, कहिये यह कितना अशोभा का स्थान है। एक तो धन जावे और दूसरे कुयश हो, इस में क्या फायदा है? इस लिये बुद्धिमानों को थोड़ी ही सी बरात ले जाना चाहिये।

बखेर या लूट—बखेर का करना तो सर्व प्रकार ही महा हानिकारक कार्य है, देखो! बखेर का नाम सुनकर दूर २ के भगी आदि नीच जाति के लोग तथा लूले, लँगड़े, अपाहज, कँगले और दुर्बल आदि इकट्ठे होते हैं, क्योंकि लालच बुरी बला है, इधर नगर निवासियों में से सब ही छोटे बड़े छत और अटारियो पर तथा बाज़ारों में इकट्ठे होकर ठट्ठके ठट्ठ लग जाते हैं, बखेर करनेवाले वहा पर मुट्ठिया अधिक मारते हैं जहा स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं, उन मुट्ठियों के चलते ही हज़ारों स्त्री पुरुष

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारण ॥

रोगको उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारणों में से मुख्य कारण अठारह है और वे ये है–हवा, पानी, खुराक, कसरत, नींद, वस्त्र, विहार, मलीनता, व्यसन, विषयोग, रस-विकार, जीव, चेप, ठंढ, गर्मी, मनके विकार, अकस्मात् और दवा, ये सब पृथक् २ अनेक रोगों के कारण हो जाते है, इन में से मुख्य सात बातें है जिन को अच्छे प्रकार से उपयोग में लाने से शरीर का पोषण होकर तनदुरुस्ती बनी रहती है तथा इन्हीं वस्तुओं का आवश्यकता से कम अधिक अथवा विपरीत उपयोग करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है ।

और बाल बच्चे तले ऊपर गिरते हैं कि जिस से अवश्य ही दश वीस लोगों के चोट लगती है तथा एक आध मर भी जाते हैं, उस समय में लोभवश आये हुए बेचारे अन्धे लूले और लँगड़े आदि की तो अत्यन्त ही दुर्दशा होती है और ऐसी अन्धाधुन्धी मचती है कि कोई किसी की नहीं सुनता है, इधर तो ऊपर से मुट्ठी धड़ाधड़ चली आती है तथा वह दूर की मुट्ठी जिस किसी की नाक वा कान में लगती है वह वैसा ही रह जाता है, उधर लुच्चे गुंडे लोग स्त्रियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मार कर भागते हैं कि जिस से उन वेचारियों की नथ आदि तो जाती ही है किन्तु नाक आदि भी फट जाती है, यह तो मार्ग की दशा हुई–अब आगे बढ़िये–लूट का नाम सुनकर समधी के दर्वाजे पर भी झुडके झुण्ड लग जाते है और जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटनेवालों को वेहोसी हो जाती है और तले ऊपर गिरने से बहुत से लोग कुचल जाते हैं, किसी के दांत टूटते है, किसी के हाथ पैर टूटते हैं, किसी के मुख आदि अगों से खून बहता है और कोई पड़ा २ सिसकता है इत्यादि जो २ वहा दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है, भला बतलाइये तो इस वखेर से क्या लाभ है कि जिस मे ऐसे २ कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ में जावे? देखो! वखेर मे जितना रुपया फेंका जाता है उस मे से आधे से अधिक तो मिट्टी आदि मे मिल जाता है, वाकी एक तिहाई हट्टे कट्टे भंगी आदि नीचों को मिलता है जिस को पाकर वे लोग खूब मास और मद्य का खान पान करते हैं तथा अन्य बुरे कामो मे भी व्यय करते हैं, शेष रहा सो अन्य सामान्य जनों को मिलता है, परन्तु लूले लँगड़े और अपाहिजों के हाथ मे तो कुछ भी नहीं आता है, वरन् उन वेचारो का तो काम हो जाता है अर्थात् अनेको के चोट लग जाती है, इस के अतिरिक्त किन्हीं २ के पहुँची, छल्ला, नथुनी और अगुठी आदि भूषण जाते रहते हैं इस दशामे चाहे पानेवाले कुछ लोग तो सेठजीकी प्रशंसा भी करें परन्तु बहुधा वे जन कि जिन के चोट लग जाती है या जिन की कोई चीज़ जाती रहती है सेठजी तथा लालाजी के नाम को रोते ही हैं, जिन मनुष्यों को कुछ भी नहीं मिलता है वे यही कहते है कि सेठजी ने वखेर का तो नाम किया था, कहीं २ कुछ पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है, वह कजूस क्या वखेर करेगा इत्यादि, देखिये! यह कैसी वात है–एक तो रुपये गमाना और दुसरे वदनामी कराना, इस लिये वखेर की प्रथा को अवश्य बन्द कर देना चाहिये, हा यदि सेठजी के हृदय मे ऐसी ही उदारता हो तथा द्रव्य खर्चकर नामवरी ही लेना चाहते हों तो लूले और लँगड़ों के लिये सदावर्त्त आदि जारी कर देना चाहिये।

इन अठारहों विषयों में से बहुत से विषयों का विवरण हम विस्तारपूर्वक पहिले भी कर चुके हैं, इसलिये यहां पर इन अठारहों विषयों का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार से किया जायगा कि इन में से प्रत्येक विषय से कौन २ से रोग उत्पन्न होते हैं, इस वर्णन से पाठक गणों को यह बात ज्ञात हो जायगी कि शरीर को अनेक रोगों के योग्य बनानेवाले कारण कौन २ से हैं।

१-**हवा**—अच्छी हवा रोग को मिटाती है तथा खराब हवा रोग को उत्पन्न करती है, खराब हवा से मलेरिया अर्थात् विषम जीर्ण ज्वर नामक बुखार, दस्त, मरोड़ा, हैजा, कामला, आधाशीसी, शिर का दुखना (दर्द), मंदाग्नि और अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

बहुत ठंढी हवा से खांसी, कफ, दम, सिसकना, शोथ और सन्धिवायु आदि रोग उत्पन्न होते है।

बाग बहारी अर्थात् फूल टट्टी—बाग बहारी की भी वर्तमान समय में वह चर्चेरी है कि—रंगीन कागज और अबरख (भोडल) के फूलों के स्थान में (यद्यपि वे भी फजूल खर्ची में कुछ कम नहीं थे) हुडी, नोट, चादी सोने की कटोरियां, बादाम, रुपये और अशर्फियों को तख्तामें लगाने की नौबत आ पँहुची। यों तो सब ही लोग अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं परन्तु हमारे देशभाई अपने द्रव्य को आंखो के सामने खडे होकर खुशी से लुटवा देते हैं और द्रव्यको खर्च कर के भी कुछ लाभ नहीं उठाते हैं, हा यह तो अवश्यमेव सुनने मे आता है कि अमुक लाला या साहूकार की बरात में फूलटट्टी अच्छी थी, हरतरह बचाई गई परन्तु न बची, लडकीवालेके सामने तक न पहुँचने पाई कि फूल टट्टी लुट गई, अब प्रथम तो यही विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लुटने की अशुभ वाणी का मुँह से निकलना (कि अमुक की फूल टट्टी लुट गई) कैसा बुरा है। इसके सिवाय इस में कभी २ लट्ठ भी चल जाते हैं, जब टोपी तथा पगडी उतर जाती है तब वह फूल हाथ मे आते हैं मानो लुटनेवालों की प्रतिष्ठा के जाने पर कुछ मिलता है, आपस में दगा हो जाने से बहुधा मेजिस्ट्रेट तक भी नौबत पहुँचती है सब से बडी शोचनीय बात यह है कि विवाह जैसे शुभ कार्य के आरम्भ ही मे गमी का सब सामान करना पडता है।

आतिशबाजी—आतिशबाजी से न तो कोई सासारिक ही लाभ है और न पारलौकिक ही है, वरन् वर्षों के उपार्जन किये हुए धन को क्षणमात्र में जला कर राख की ढेरी का बना देना है, इस मे भीडभाड भी इतनी हो जाती है कि एक एक के ऊपर दश दश गिरते है, एक इधर दौडता है, एक उधर दोडता है इस से यहां तक धक्कमधक्का मच जाती है कि—बहुधा लोग बेदम हो जाते हैं, तमाशा यह होता है कि—किसी के पैर की उँगली पिची, किसी की डाढी जली, किसी की भौंओं तथा मूछो का सफाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अँगरखा जल गया तथा किसी २ के हाथ पॉव भुन गये, इस से बहुधा मकानो के छप्परों में भी आग लग जाती है कि जिस से चारो ओर हाहाकार मच जाता है और उस से अन्यत्र भी आग लगने के द्वारा बहुधा अनेक हानिया हो जाती है, कभी २ मनुष्य तथा पशु भी

बहुत गर्म हवा से जलन, रूखापन, गर्मवायु, प्रमेह, प्रदर, भ्रम, अँधेरी, चक्कर, भँवर आना, वातरक्त, गलत्कुष्ठ, शील, ओरी, पिंडलियों का फटना, हैज़ा और दस्त आदि रोग उत्पन्न होते है ॥

२–पानी—निर्मल (साफ) पानी के जो लाभ है वे पहिले लिख चुके हैं उन के लिखने की अब कोई आवश्यकता नहीं है ।

खराब पानी से–हैज़ा, कृमि, अनेक प्रकार का ज्वर, दस्त, कामला, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, मरोड़ा, गलगण्ड, फीकापन और निर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न होते है ।

अधिक खारवाले पानी से–पथरी, अजीर्ण, मन्दाग्नि और गलगण्ड आदि रोग होते है।

सड़ी हुई वनस्पति से अथवा दूसरी चीज़ों से मिश्रित (मिले हुए) पानी से दस्त, शीत ज्वर, कामला और तापतिल्ली आदि रोग होते हैं ।

मरे हुए जन्तुओं के सड़े हुए पदार्थ से मिले हुए पानी से हैज़ा, अतीसार तथा दूसरे भी भयंकर और ज़हरीले बुखार उत्पन्न होते है ।

जल कर प्राणों को त्यागते हैं, इस के अतिरिक्त इस निकृष्ट कार्य से हवा भी बिगड जाती है कि जिस से प्राणी मात्र की आरोग्यता मे अन्तर पड जाता है, इस से द्रव्य का नुकसान तो होता ही है किन्तु उस के साथ मे महारम्भ (जीवहिंसाजन्य अपराध) भी होता है, तिस पर भी बुरों यह है कि–घर वालों को कामों की अधिकता से घर फूंक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहुँचती है ।

रण्डी (वेश्या) का नाच—सत्य तो यह है कि–रण्डियों के नाच ने इस भारत को गारत कर दिया है, क्योंकि तबला और सारंगी के बिना भारत वासियों को कल ही नहीं पड़ती है, जब यह दशा है तो बरात मे आने जाने वालों के लिये वह सञ्जीवनी क्यों न हो। समधी तथा समधिन का भी पेट उस के बिना नहीं भरता है, ज्यों ही बरात चली त्यों ही विषयी जन बिना बुलाये चलने लगते हैं, वेश्या को जो रुपया दिया जाता है उस का तो सत्यानाश होता ही है किन्तु उस के साथ में अन्य भी बहुत सी हानियों के द्वार खुल जाते हैं, देखो ! नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न हो जाते हैं, नाच ही मे हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलाञ्जलि देते हैं, नाच ही में वेश्याओं को अपनी शिकार के फँसने तथा नौ जवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौका) हाथ लगता है, बाप बेटे भाई और भतीजे आदि सब ही छोटे बडे एक महफिल में बैठकर लज्जा का परदा उठा कर अच्छे प्रकार से घूरते तथा अपनी आंखों को गर्म करते हैं वेश्या भी अपने मतलब को सिद्ध करने के लिये महफिलों में ठुमरी, टप्पा, बारहमासा और गजल आदि इश्क के द्योतक रसीले रागों को गाती हैं, तिस पर भी बुरों यह है कि–ऐसे रसीले रागों के साथ में तीक्ष्ण कटाक्ष तथा हाव भाव भी इस प्रकार बताये जाते हैं कि जिन से मनुष्य लोट पोट हो जाते हैं तथा खूब सूरत और शृंगार किये हुए नौ जवान तो उस की सुरीली आवाज़ और उन तीक्ष्ण कटाक्ष आदि से ऐसे घायल हो जाते हैं कि फिर उन को सिवाय इश्क वस्ल यार के और कुछ भी नहीं सूझता है, देखिये ! किसी महात्मा ने कहा है कि—

धातुओं के योग से मिले हुए पानी से (जिस में पारा सोमल और सीसा आदि विषैले पदार्थ गलकर मिले रहते हैं उस जलसे) भी रोगों की उत्पत्ति होती है ॥

२–खुराक—शुद्ध, अच्छी, प्रकृति के अनुकूल और ठीक तौर से सिजाई हुई खुराक के खाने से शरीर का पोषण होता है तथा अशुद्ध, सड़ी हुई, वासी, विगड़ी हुई, कच्ची, रूखी, वहुत ठंढी, वहुत गर्म, भारी, मात्रा से अधिक तथा मात्रा से न्यून खुराक के खाने से वहुत से रोग उत्पन्न होते हैं, इन सब का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—

१–सड़ी हुई खुराक से—कृमि, हैज़ा, वमन, कुष्ठ (कोढ़), पित्त तथा दस्त आदि रोग होते हैं ।

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते वलम् ।
मैथुनात् हरते वीर्यं, वेश्या प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥

अर्थात् दर्शन से चित्त को, छूने से वल को और मैथुन से वीर्य को हर लेती है, अतः वेश्या सचमुच राक्षसी ही है ॥ १ ॥ यद्यपि सब ही जानते हैं कि इस राक्षसी वेश्या ने हज़ारों घरों को धूल में मिला दिया है तिस पर भी तो बाप और बेटे को साथ में बैठ कर भी कुछ नहीं सूझता है, जहां उस की आँख लगी कि चकनाचूर हो जाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर वदनामी का तौक़ गले में पहनते हैं, देखो ! हजारों लोग इश्क के नशे में चूर होकर अपना घर वार बेंचकर दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, वहुत से नादान लोग धन लुटा २ कर इन की भेंट चढाते हैं और उनके मातापिता दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, सच पूछो तो इस कुकार्य से उन की जो २ कुदशा होती है वह सब अपनी करनी का ही निकृष्ट फल है, क्योंकि वे ही प्रत्येक उत्सव अर्थात् बालकजन्म, नामकरण, मुण्डन, सगाई और विवाह में तथा इन के सिवाय जन्माष्टमी, रासलीला, रामलीला, होली, दिवाली, दशहरा और वसन्तपञ्चमी आदि पर बुलवा २ कर अपने नौ जवानों को उन राक्षसियों की रसभरी आवाज़ तथा मधुरी आँखें दिखलवाते हैं कि जिस से वे बहुधा रण्डीबाज़ हो जाते हैं तथा उन को आतशक और सुजाख आदि बीमारियां घेर लेती हैं, जिन की आग में वे खुद भुनते रहते हैं तथा उन की परबादी अपनी औलाद को भी देकर निराश छोड़ जाते हैं, बहुतसे मूर्ख जन रण्डीयों के नाज़ नखरे तथा बनाव शृंगार आदि पर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते हैं तथा उन (विवाहिता स्त्रियों) पर नाना प्रकार के दोष रखकर मुँह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते हैं, वे बेचारी दुःख के कारण रातदिन रोती रहती हैं, यह भी अनुभव किया गया है कि–बहुधा जो स्त्रियां महफिल का नाच देख लेती हैं उन पर इस का ऐसा बुरा असर पड़ता है कि–जिस से घर के घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि–जब वे देखती हैं कि–सम्पूर्ण महफिल के लोग उस रण्डी की ओर टकटकी लगाये हुए उस के नाज़ और नखरों को सह रहे हैं, यहांतक कि जब वह थूकने का इरादा करती है तो एक आदमी पीकदान लेकर हाज़िर होता है, इसी प्रकार यदि पान खाने की ज़रूरत हुई तो भी निहायत नाज़ तथा अदब के साथ उपस्थित किया जाता है, इस के सिवाय वह दुष्टा नीचे से ऊपरतक सोने और चांदी के आभूषणों तथा अतलस, गुलबदन और कमख्वाब आदि बहुमूल्य वस्त्रों के पेसवाज़ को एक एक दिन में चार २ दफे

२–कच्ची खुराक से–अजीर्ण, दस्त, पेट का दुखना और कृमि आदि रोग होते हैं।

३–रूखी खुराक से–वायु, शूल, गोला, दस्त, कब्ज़ी, दम और श्वास आदि रोग उत्पन्न होते है।

४–वातल खुराक से–शूल, पेट में चूंक, गोला तथा वायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

५–बहुत गर्म खुराक से–खांसी, अम्लपित्त (खट्टी वमन), रक्तपित्त (नाक और मुख आदि छिद्रों से रुधिर का गिरना) और अतीसार आदि रोग उत्पन्न होते है।

६–बहुत ठंढी खुराक से–खांसी, श्वास, दम, हांफनी, शूल, शर्दी और कफ आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

नई २ किस्म के बदलती है तथा अतर और फुलेल की लपटें उस के पास से चली आती हैं बस इन्हीं सब बातों को देखकर उन विवाहीन स्त्रियों के मन में एक ऐसा बुरा असर पड़ जाता है कि जिस का अन्तिम (आखिरी) फल यह होता है कि बहुधा वे भी उसी नगर में खुल्लमखुल्ला लज्जा को त्याग कर रण्डी बन कर गुलछर्रे उड़ाने लगती हैं और कोई २ रेल पर सवार होकर अन्य देशों में जाकर अपने मन की आशा को पूर्ण करती हैं, इस प्रकार रण्डी के नाच से गृहस्थों को अनेक प्रकार की हानियां पहुंचती हैं, इस के अतिरिक्त यह कैसी कुप्रथा चल रही है कि–जब दर्वाज़ों पर रण्डियां गाली गाती हैं और उधर से (घर की स्त्रियों के द्वारा) उस का जवाब होता है, देखिये! उस समय कैसे २ अपशब्द बोले जाते हैं कि–जिन को सुन कर अन्यदेशीयलोगों का हँसते २ पेट फूल जाता है और वे कहते हैं कि इन्हों ने तो रण्डियों को भी मात कर दिया, धिक्कार है ऐसी सास आदि को। जो कि मनुष्यों के सम्मुख (सामने) ऐसे २ शब्दो का उच्चारण करें! अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियों को सुनकर भाई बन्धु माता और पिता आदि की किञ्चित् भी लज्जा न करें और गृह के अन्दर घूंघट बनाये रखकर तथा ऊंची आवाज़ से बात भी न कह कर अपने को परम लज्जावती प्रकट करें! ऐसी दशा में सच पूछो तो विवाह क्या मानो परदे वाली स्त्रियों (शर्म रखनेवाली स्त्रियों) को जान बूझकर बेशर्म बनाना है, इस पर भी तुर्रा यह है कि–खुश होकर रण्डियों को रुपया दिया जाता है (मानो घर की लज्जावती स्त्रियों को निर्लज्ज बनाने का पुरस्कार दिया जाता है), प्यारे सुजनो! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य वेश्यागामी (रण्डीबाज) हो जाते हैं तो वे अपने धर्म कर्म पर भी धता भेज देते हैं, प्रायः आपने देखा होगा कि जहा नाच होता है वहा दश पांच तो अवश्य मुड ही जाते हैं, फिर जरा इस बात को भी सोचो कि जो रुपया उत्सवों और खुशियों में उन को दिया जाता है वे उस रुपये से बकराईद में जो कुछ करती हैं वह हत्या भी रुपया देनेवालों के ही शिर पर चढ़ती है, क्योंकि–जब रुपया देनेवालों को यह बात प्रकट है कि यदि इन के पास रुपया न होगा तो ये हाथ मलमल कर रह जावेंगी और हत्या आदि कुछ भी न कर सकेंगी–फिर यह जानते हुए भी जो लोग उन्हें रुपया देते हैं तो मानो वे खुद ही उन से हत्या करवाते हैं, फिर ऐसी दशा में वह पाप रुपया देनेवालों के शिर पर क्यों न चढेगा? अब कहिये कि यह कौन सी बुद्धिमानी है कि रुपया खर्च करना और पाप को शिर पर लेना! प्यारे सुजनो! इस वेश्या के नृत्य से विचार कर देखा जावे तो उभयलोक के सुख नष्ट होते हैं और इस के समान कोई भी कुत्सित प्रथा नहीं है, यद्यपि बहुत से लोग इस दुष्कर्म की हानियों

७–भारी खुराक से–अपची, दस्त, मरोड़ा और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

८–मात्रा से अधिक खुराक से–दस्त, अजीर्ण, मरोड़ा और ज्वर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

९–मात्रा से न्यून खुराक से–क्षय, निर्बलता, चेहरे और शरीर का फीकापन और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

इस के सिवाय मिट्टी से मिली हुई खुराक से–पाण्डु रोग होता है, बहुत मसालेदार खुराक से–यकृत् (कलेजा अर्थात् लीवर) विगड़ता है और बहुत उपवास के करने से शूल और वायुजन्य रोग आदि उत्पन्न होकर शरीर को निर्बल कर देते हैं॥

को अच्छे प्रकार से जानते भी हैं तो भी इस को नहीं छोड़ते हैं, संसार की अनेक बदनामियों को शिर पर उठाते हैं तो भी इस से मुख नहीं मोड़ते हैं, इस कुरीति की जो कुछ निकृष्टता है उस को दूसरे तो क्या बतलावें किन्तु वह नृत्य तथा उस का सर्व सामान ही बतलाता है, देखो! जब नृत्य होता है तथा वेश्या गाती है तब यह उपदेश मिलता है कि—

सवैया—शुभ काजको छाड कुकाज रचैं, धन जात है व्यर्थ सदा तिन को।
एक रांड बुलाय नचावत हैं, नहिं आवत लाज जरा तिनको॥
मिरदंग भनै धृक् है धृक् है, सुरताल पुछै किन को किन को।
तब उत्तर रांड बतावत है, धृक् है इन को इन को इन को॥ १॥

एक समय का प्रसंग है कि– किसी भाग्यवान् वैश्य के यहां एक ब्राह्मण ने भागवत की कथा बाची तब उस वैश्य ने कथा पर केवल तीस रुपये चढ़ाये परन्तु उसी भाग्यवान् के यहां जब पुत्र का विवाह हुआ तो उस ने वेश्या को बुलाई और उसे सात सौ रुपये दिये, उस समय उस ब्राह्मण ने कहा है कि—

दोहा—उलटी गति गोपाल की, घट गई विश्वा बीस॥
रामजनी को सात सौ, अभयराम को तीस॥ १॥

प्रियवरो! अब अन्त मे आप से यही कहना है कि–यदि आप के विचार में भी ऊपर कहीं हुई सब बातें ठीक हों तो शीघ्र ही भारतसन्तान के उद्धार के लिये वेश्या के नाच कराने की प्रथा को अवश्य त्याग दीजिये, अन्यथा (इस का त्याग न करने से) सम्मति देने के द्वारा आप भी दोषी अवश्य होंगे, क्योंकि–किसी विषय का त्याग न करना सम्मति रूप ही है॥

भांड—वेश्या के नृत्य के समान इस देश में भांडों के कौतुक कराने की भी प्रथा पड रही है, इस का भी कुछ वर्णन करना चाहते हैं, सुनिये–ज्योंही वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंही भांडों का लश्कर बसांत के मेंडकों की भांति भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा, अब लगीं तालियां बजने, कोई किसी की घुटी हुई खोपड़ी में चपत जमाता है, कोई गधे की भांति चिल्लाता है, एक कहता है कि मियां ओ! दूसरा कहता है फुस, तात्पर्य यह है कि वे लोग अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते हैं तथा ऐसी २ नकलें बनाते और सुनाते हैं कि लालाजी सेठजी और बाबू जी आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़ जाता है, ऐसे २ शब्दों का उच्चारण करते हैं कि जिन के लिखने में भी लेखनीको तो लज्जा आती

वायु के कोप के कारण ॥

अपान वायु के, दस्त के और पेशाब के वेग को रोकना, तिक्त तथा कषैले रसवाले पदार्थों का खाना, बहुत ठंढे पदार्थों का खाना, रात्रि को जागरण करना, बहुत स्त्रीसंग (मैथुन) करना, बहुत परिश्रम करना, बहुत खाना, बहुत मार्ग चलना, अधिक बोलना, भय करना, रूखे पदार्थों का खाना, उपवास करना, बहुत खारी कडुए तथा तीखे पदार्थों का खाना, बहुत हिचके खाना और सवारी पर बैठ कर यात्रा करना, इत्यादि कार्य वायु को कुपित करने में कारण होते हैं।

इन के सिवाय–बहुत ठंढ में, बरसात की भीगी हुई जमीन में, बरसते समय में, स्नान करने के पीछे, पानी पीने के पीछे, दिन के पिछले भाग में, खाये हुए भोजन के पचने के पीछे और जोर से पवन (हवा) चल रहा हो उस समय में शरीर में वायु जोर करता है तथा शरीर में ८० प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, उन ८० प्रकार के रोगों के नाम ये हैं:—

१–**आक्षेपवायु**—इस रोग में शरीर की नसों में हवा भरकर शरीर को इधर उधर फेंकती है।

२–**हनुस्तम्भ**—इस रोग में ठोडी वादी से जकड कर टेढ़ी हो जाती है।

३–**ऊरुस्तम्भ**—इस रोग में वादी से जंघा अकड़ कर चलने की शक्ति कम हो जाती है।

४–**शिरोग्रह**—इस रोग में शरीर की नसों में वादी भर कर शिर को जकड़ देती और पीडा करती है।

५–**बाह्यायाम**—इस रोग में पीठ की रगों में वादी भर कर शरीर को धनुष के समान झुका देती है।

६–**अन्तरायाम**—इस रोग में छाती की तरफ से शरीर कमान के समान बांका (टेढ़ा) हो जाता है।

७–**पार्श्वशूल**—इस रोग में पसवाड़ों की पसलियों में चसके चलते हैं।

८–**कटिग्रह**—इस रोग में वादी कमर को पकड़ के जकड़ देती है।

९–**दण्डापतानक**—इस रोग में वादी शरीर को लकड़ी की तरह सीधा ही जकड़ देती है।

१०–**खल्ली**—इस रोग में वायु भर कर पैर, हाथ, जांघ, गोड़े और पींडियों का कम्पन करती है।

११–**जिह्वास्तम्भ**—इस रोग में वादी जीभ की नसों को पकड़ कर बोलने की शक्ति को बन्द कर देती है।

१२–**अर्दित**—इस रोग में मुख का आधा भाग टेढ़ा होकर जीभ का लोचा बँधता है और करड़ा (सख्त) हो जाता है।

१३-**पक्षाघात**—इस रोग में आधे शरीर की नसों का शोषण हो कर गति की रुकावट हो जाती है ।

१४-**क्रोष्टुशीर्षक**—इस रोग में गोड़ों में वादी खून को पकड़ कर कठिन सूजन[1] को पैदा करती है ।

१५-**मन्यास्तम्भ**—इस रोग में गर्दन की नसों में वायु कफ को पकड़ कर गर्दन को जकड़ देती है ।

१६-**पङ्गु**—इस रोग में कमर तथा जांघों में वादी घुस कर दोनों पैरों को निकम्मा कर देती है ।

१७-**कलायखञ्ज**—इस रोग में चलते समय शरीर में कम्पन होता है तथा पैर टेढे पड़ जाते हैं ।

१८-**तूनी**—इस रोग में पक्काशय में चिनग पैदा होकर गुदा और उपस्थ (पेशाब की इन्द्रिय) में जाती है ।

१९-**प्रतितूनी**[2]—इस रोग में तूनी की पीड़ा नीचे को उतर कर पीछे नाभि की तरफ जाती है ।

२०-**खञ्ज**—इस रोग में पंगु (पांगले) के समान सब लक्षण होते हैं, परन्तु विशेषता केवल यही है कि-यह रोग केवल एक पैर में होता है, इस लिये इस रोगवाले को लँगड़ा कहते हैं ।

२१-**पादहर्ष**—इस रोग में पैर में केवल झनझनाहट होती है तथा पैर शून्य जैसा हो जाता है ।

२२-**गृध्रसी**—इस रोग में कटि (कमर) के नीचे का भाग (जांघ) और पैर आदि) जकड़ जाता है ।

२३-**विश्वाची**—इस रोग में हथेली तथा अंगुलियां जकड़ जाती हैं और हाथ से काम नहीं होता है ।

२४-**अपबाहुक**—इस रोग में हाथों की नाड़ी जकड़ कर हाथ दूखते (दर्द करते) रहते हैं ।

२५-**अपतानक**—इस रोग में वादी हृदय में जाकर दृष्टि को स्तब्ध (रुकी हुई) करती है, ज्ञान और संज्ञा (चेतनता) का नाश करती है और कण्ठ से एक विलक्षण (अजीब) तरह की आवाज निकलती है, जब यह वायु हृदय से अलग हटती है तब रोगी को संज्ञा प्राप्त होती है (होश आता है), इस रोग में हिष्टीरिया (उन्माद) के समान चिह्न बार २ होते तथा मिट जाते हैं ।

१-यह सूजन शृगाल के शिर के समान होती है, इसी लिये इस को क्रोष्टुशीर्षक (शृगाल का शिर) कहते हैं ॥

२-इस को कोई २ शास्त्रकार प्रतूनी भी कहते हैं ॥

२६–व्रणायाम—इस रोग में चोट अथवा ज़खम से उत्पन्न हुए व्रण (घाव) में वादी दर्द करती है।

२७–व्यथा—इस रोग में पैरों में तथा घुटनों में चलते समय दर्द होता है।

२८–अपतन्त्रक—इस रोग में पैरों में तथा शिर में दर्द होता है, मोह होता है, गिर पड़ता है, शरीर धनुष कमान की तरह बांका हो जाता है, दृष्टि स्तब्ध होती है तथा कबूतर की तरह गले में शब्द होता है।

२९–अंगभेद—इस रोग में सब शरीर टूटा करता है।

३०–अंगशोष—इस रोग में वादी सब शरीर के खून को सुखा डालती है तथा शरीर को भी सुखा देती है।

३१–मिनमिनाना—इस रोग में मुँह से निकलनेवाला शब्द नाक से निकलता है, इसे गूंगापन कहते है।

३२–कल्लता—इस रोग में हिचक २ कर तथा रुक २ कर थोड़ा २ बोला जाता है तथा बोलने में उबकाई खाता है।

३३–अष्ठीला—इस रोग में नाभि के नीचे पत्थर के समान गांठ होती है।

३४–प्रत्यष्ठीला—इस रोग में नाभि के ऊपर पेट में गांठ तिरछी होकर रहती है।

३५–वामनत्व—इस रोग में गर्भ में प्राप्त होकर जब वादी गर्भविकार को करती है तब बालक वामन होता है।

३६–कुब्जत्व—इस रोग में पीठ और छाती में वायु भर कर कूबड़ निकाल देती है।

३७–अंगपीड़—इस रोग में सब शरीर में दर्द होता है।

३८–अंगशूल—इस रोग में सब शरीर में चसके चलते है।

३९–संकोच—इस रोग में वादी नसों को संकुचित कर शरीर को अकड़ देती है।

४०–स्तम्भ—इस रोग में वादी से सब शरीर ग्रस्त हो जाता है।

४१–रूक्षपन—इस रोग में वादी के कोप से शरीर रूखा और निस्तेज हो जाता है।

४२–अंगभंग—इस रोग में ऐसा प्रतीत होता है कि–मानो वादी से शरीर टूट जायगा।

४३–अंगविभ्रम—इस रोग में शरीर का कोई भाग लकड़ी के समान जड़ हो जाता है।

४४–मूकत्व—इस रोग में बोलने की नाड़ी में वादी के भर जाने से ज़बान बन्द हो जाती है।

४५–विट्ग्रह—इस रोग में आँतों में वायु भर कर दस्त और पेशाब को रोक देती है।

३–भरी नाड़ी—जिस प्रकार नाड़ीपरीक्षा में अंगुलियों को नाड़ी का वेग अर्थात् चाल मालूम देती है उसी प्रकार नाड़ी का वज़न अथवा कद भी मालूम होता है, यह वज़न अथवा कद जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तब उस को भरी नाड़ी अथवा बड़ी नाड़ी कहते हैं, जैसे–खून के भराव में, पौरुष की दशा में, बुखार में तथा चरम में नाड़ी भरी हुई मालूम देती है, इस भरीहुई नाड़ी से ऐसी हालत मालूम होती है कि शरीर में खून पूरा और बहुत है, जिस प्रकार नदी में अधिक पानी के आने से पानी का जोर बढ़ता है उसी प्रकार खून के भराव से नाड़ी भरीहुई लगती है।

४–हलकी नाड़ी—थोड़े खूनवाली नाड़ी को छोटी या हलकी कहते हैं, क्योंकि अंगुलि के नीचे ऐसी नाड़ी का कद पतला अर्थात् हलका लगता है, जिन रोगों में किसी द्वार से खून बहुत चला गया हो या जाता हो ऐसे रोगों में, बहुत से पुराने रोगों में, हैजे में तथा रोग के जाने के बाद निर्बलता में नाड़ी पतली सी मालूम देती है, इस नाड़ी से ऐसा मालूम हो जाता है कि इस के शरीर में खून कम है या बहुत कम हो गया है, क्योंकि नाड़ी की गति का मुख्य आधार खून ही है, इस लिये खून के ही वज़न से नाड़ी के ४ वर्ग किये जाते हैं–भरीहुई, मध्यम, छोटी वा पतली और बेमालूम, खून के विशेष जोर में भरीहुई, मध्यम खून में मध्यम तथा थोड़े खून में छोटी वा पतली नाड़ी होती है, एवं हैजे के रोग में खून बिलकुल नष्ट होकर नाड़ी अंगुली के नीचे कठिनता से मालूम पड़ती है उस को बेमालूम नाड़ी कहते हैं।

५–सख्त नाड़ी—जिस धोरी नस में होकर खून बहता है उस के भीतरी पड़दे की तांतों में संकुचित होने की शक्ति अधिक हो जाती है, इस लिये नाड़ी सख्त चलती है, परन्तु जब वही संकुचित होने की शक्ति कम हो जाती है तब नाड़ी नरम चलती है, इन दोनों की परीक्षा इस प्रकार से है कि नाड़ीपर तीन अंगुलियों को रख कर ऊपर की (तीसरी) अंगुलि से नाड़ी को दबाते समय यदि बाकी की (नीचे की) दो अंगुलियों को धड़का लगे तो समझना चाहिये कि नाड़ी सख्त है और दोनों अंगुलियों को धड़का न लगे तो नाड़ी को नरम समझना चाहिये।

६–अनियमित नाड़ी—नाड़ी की परिमाण के अनुकूल चाल में यदि उस के दो ठनकों के बीच में एक सदृश समयविभाग चला आवे तो उसे नियमित नाड़ी (कायदे के अनुसार चलनेवाली नाड़ी) जानना चाहिये, परन्तु जिस समय कोई रोग हो और नाड़ी नियमविरुद्ध (बेकायदे) चले अर्थात् समय विभाग ठीक न चलता हो (एक ठनका जल्दी आवे और दूसरा अधिक देरतक ठहर कर आवे) उस नाड़ी को अनियमित नाड़ी समझना चाहिये, जब ऐसी (अनियमित) नाड़ी चलती है तब

प्रायः इतने रोगों की शंका होती है—हृदय का दर्द, फेफसे का रोग, मगज़ का रोग, सन्निपातज्वर, सुवा रोग और शरीर का अत्यन्त सड़ना, इस नाड़ी से उक्त रोगों के सिवाय अन्य भी कई प्रकार के अत्यन्त भयंकर स्थितिवाले रोगों की सम्भावना रहती है।

७—**अन्तरिया नाड़ी**—जिस नाड़ी के दो तीन ठनके होकर वीच में एकाघ ठनके जितनी नागा पड़े अर्थात् ठवका ही न लगे, फिर एकदम दो तीन ठवके होकर पूर्ववत् (पहिले की तरह) नाड़ी बंद पड़ जावे और फिर वारंवार यही व्यवस्था होती रहे वह अन्तरिया नाड़ी कहलाती है, जब हृदय की बीमारी में खून ठीक रीति से नहीं फिरता है तब बड़ी धोरी नस चौड़ी हो जाती है और मगज़ का कोई भाग विगड़ जाता है तब ऐसी नाड़ी चलती है ॥

डाक्टर लोग प्रायः नाड़ी की परीक्षा में तीन बातों को ध्यान में रखते हैं वे ये हैं—
१—नाड़ी की चाल जल्दी है या धीमी है। २— नाड़ी का कद बड़ा है या छोटा है। ३—नाड़ी सख्त है या नरम है।

खूनवाले जोरावर आदमी के बुखार में, मगज के शोथ में कलेजे के रोग में और गँठियावायु आदि रोगों में जल्दी, बहुत बड़ी और सख्त नाड़ी देखने में आती है, ऐसी नाड़ी यदि बहुत देरतक चलती रहे तो जान को जोखम आ जाती है, जब बुखार के रोग में ऐसी नाड़ी बहुत दिनोंतक चलती है तब रोगी के बचने की आशा थोड़ी रहती है, हां यदि नाड़ी की चाल धीरे २ कम पड़ती जावे तो रोगी के सुधरने की आशा रहती है, प्रायः यह देखा गया है कि—फस्त खोलने से, जोंक लगाने से, अथवा अपने आप ही खून का रास्ता होकर जब बढ़ा हुआ खून निकल जाता है तो नाड़ी सुधर जाती है, निर्बल आदमी को जब बुखार आता है अथवा शरीरपर किसी जगह सूजन आ जाती है तब उतावली छोटी और नरम नाड़ी चलती है, जब खून कम होता है, आंतों में शोथ होता है तथा पेट के पड़दे पर शोथ होता है तब जल्दी छोटी और सख्त नाड़ी चलती है, यह नाड़ी यद्यपि छोटी तथा महीन होती है परन्तु बहुत ही सख्त होती है, यहांतक कि अंगुलि को तार के समान महीन और करड़ी लगती है, ऐसी नाड़ी भी खून का जोर बतलाती है ॥

नाडी के विषय में लोगों का विचार—केवल नाड़ी के देखने से सब रोगों की सम्पूर्ण परीक्षा हो सकती है ऐसा जो लोगों के मनों में हद्द से ज्यादा विश्वास जम गया है उस से वे लोग प्रायः ठगाये जाते हैं, क्योंकि नाड़ी के विषय में झूंठा फांका मारने-वाले धूर्त वैद्य और हकीम अज्ञानी लोगों को अपने बचनजाल में फँसाकर उन्हें मन माना ठगते है, इन धूर्तोंने यहांतक लीला फैलाई है कि जिस से नाड़ीपरीक्षा के विषय

में अनेक अद्भुत और असम्भव बातें प्रायः सुनी जाती हैं, जैसे—हाथ में कच्चे सूत का तागा बांधकर सब हाल कह देना इत्यादि, ऐसी बातों में सत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है किन्तु केवल झूठ ही होता है, इस लिये सुजनों को उचित है कि धूर्तों के बनावटी जाल से बचकर नाड़ीपरीक्षा के यथार्थ तत्त्व को समझें।

इस ग्रन्थ में जो नाड़ीपरीक्षा का विवरण किया है वह नाड़ीज्ञान के सच्चे अभिलाषियों और अभ्यासियों के लिये बहुत उपयोगी है, क्योंकि इस ग्रन्थ में किये हुए विवरण के अनुसार कुछ समयतक अभ्यास और अनुभव होने से नाड़ीपरीक्षा के सूक्ष्म विचार और रोगपरीक्षा की बहुत सी आवश्यक कूंचियां भी मिल सकती हैं, इस लिये विद्वानों की लिखीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस ग्रन्थ में वर्णित नाड़ीपरीक्षा का ही अभ्यास करना चाहिये किन्तु नाड़ीपरीक्षा के विषय में जो धूर्तों ने अत्यन्त झूंठी बातें प्रसिद्ध कर रक्खी है उनपर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिये, देखो! धूर्तों ने नाड़ीपरीक्षा के विषय में कैसी २ मिथ्या बातें प्रसिद्ध कर रक्खी हैं कि रोगी ने छः महीने पहिले अमुक साग खाया था, कल अमुक ने ये २ चीजें खाई थीं, इत्यादि, कहिये ये सब गप्पें नहीं तो और क्या हैं?

बहुत से हकीमसाहबों ने और वैद्यों ने नाड़ी की हद्द से ज्यादा महिमा बढ़ा रक्खी है तथा असम्भव और घड़ीहुई गप्पों को लोगों के दिलों में जमा दी है, ऐसे भोले लोगों का जब कभी डाक्टरी चिकित्साके द्वारा रोग का मिटना कठिन होता है अथवा देरी लगती है तब वे मूर्ख लोग डाक्टरों की बेवकूफी को प्रकट करने लगते है और कहते हैं कि—"डाक्टरों को नाड़ीपरीक्षा का ज्ञान नहीं है" पीछे वे लोग देशी वैद्य के पास जाकर कहते है कि—"हमारी नाड़ी को देखो, हमारे शरीर में क्या रोग है, हम वैद्य उसी को समझते हैं कि—जो नाड़ी देखकर रोग को बतला देवे[1]" ऐसी दशा में जो सत्यवादी वैद्य होता है वह तो सत्य २ कह देता है कि—"भाइयो! नाड़ीपरीक्षा से तुम्हारी प्रकृति की कुछ बातों को तो हम समझ लेंगे परन्तु तुम अपनी अव्वल से आखिरतक जो २ हकीक़त बीती है और जो हकीक़त है वह सब साफ २ कह दो कि किस कारण से रोग हुआ है, रोग कितने दिनों का हुआ है, क्या २ दवा ली थी और क्या २ पथ्य खाया पिया था, क्योंकि तुम्हारा यह सब हाल विदित होने से हम रोग की परीक्षा कर सकेंगे" यद्यपि विद्वान् तथा चतुर वैद्य नाड़ी को देखकर रोगी के शरीर की स्थिति का बहुत कुछ अनुमान तो स्वयं कर सकते है तथा वह अनुमान प्रायः सच्चा भी निकलता है तथापि वे (विद्वान् वैद्य) नाड़ीपरीक्षा पर अतिशय श्रद्धा रखनेवाले अज्ञान लोगों के सामने अपनी परीक्षा देकर आपनी कीमत[2] नहीं करना चाहते हैं, परन्तु

१—अर्थात् केवल नाड़ी देखकर सब वृत्तान्त कह कर ॥ २—कीमत अर्थात् बेक़दरी ॥

ऊपर लिखे अनुसार मूत्र में स्थित सब पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान यद्यपि सर्वसाधारण के लिये अति दुस्तर है और उन सब पदार्थों के स्वरूप का वर्णन करना भी एक अति कठिन तथा विशेषस्थानापेक्षी (अधिक स्थान की आकांक्षा रखनेवाला) विषय है अतः उन सब का वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिख सकते हैं परन्तु तथापि संक्षेप से कुछ इस परीक्षा के विषय में तथा मूत्र में स्थित अत्यावश्यक कुछ पदार्थों के स्वरूप के विषय में गृहस्थों के लाभ के लिये लिखते हैं:—

१—पहिले कह चुके हैं कि—नीरोग मनुष्य के मूत्र का रँग ठीक सूखी हुई घास के रंग के समान होता है, तथा उस में जो खार और खटास आदि पदार्थ यथोचित परिमाण में रहते हैं उन का भी वर्णन कर चुके है, इस लिये सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करनेपर नीरोग मनुष्य का मूत्र ऊपर लिखे अनुसार (उक्त रँग से युक्त तथा यथोचित खार आदि के परिमाण से युक्त) ऊपर से स्पष्टतया न दीखने पर भी उक्त यन्त्र से साफ तौर से दीख जाता है।

२—वात, पित्त, कफ, द्विदोष (दो २ मिले हुए दोष) तथा सन्निपात (त्रिदोष) दोषवाले, एवं अजीर्ण और ज्वर आदि विकारवाले रोगियों का मूत्र पहिले लिखे अनुसार उक्त यन्त्र से ठीक दीख जाता है, जिस से उक्त दोषों वा उक्त विकारों का निश्चय स्पष्टतया हो जाता है।

३—मूत्र में तैल की बूँद के डालने से दूसरी रीति से जो मूत्रपरीक्षा तालाब, हंस, छत्र, चमर और तोरण आदि चिह्नों के द्वारा रोग के साध्यासाध्यविचार के लिये लिख चुके हैं वे सब चिह्न स्पष्ट न होने पर भी इस यन्त्र से ठीक दीख जाते हैं अर्थात् इस यन्त्र के द्वारा उक्त चिह्न ठीक २ मालूम होकर रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा सहज में हो जाती है।

४—पहिले कह चुके हैं कि—डाक्टरों के मत से मूत्र में मुख्यतया दो चीजें हैं—युरिआ और एसिड, तथा इन के सिवाय—नमक, गन्धक का तेज़ाब, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सब वस्तुओं का भी थोड़ा २ तत्त्व और बहुत सा भाग पानी का होता है[1], अतः इस यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करने पर उक्त पदार्थों का ठीक २ परिमाण प्रतीत होजाता है, यदि न्यूनाधिक परिमाण हो तो पूर्व लिखे अनुसार विकार वा हानि समझ लेनी चाहिये, इन पदार्थों में से गन्धक का तेज़ाब, चूना, पोटास तथा सोडा, इन के स्वरूप को प्रायः मनुष्य जानते ही हैं अतः इस यन्त्र के द्वारा इन के परिमाणादि का निश्चय कर सकते हैं, शेष आवश्यक पदार्थों का स्वरूप आगे कहा जायगा।

१—इन सब पदार्थों के परिमाण का विवरण पहिले ही लिख चुके हैं॥

५–इस यन्त्र के द्वारा मूत्र को देखने से यदि उस (मूत्र) के नीचे कुछ जमाव सा मालूम पड़े तो समझ लेना चाहिये कि–खार, खून, रसी (पीप) तथा चर्बी आदि का भाग मूत्र के साथ जाता है, इन में भी विशेषता यह है कि–खार का भाग अधिक होने से मूत्र फटा हुआ सा, खून का भाग अधिक होने से धूम्रवर्ण, रसी (पीप) का भाग अधिक होने से मैल और गदलेपन से युक्त तथा चर्बी का भाग अधिक होने से चिकना और चर्बी के कतरों से युक्त दीख पड़ता है ।

६–मूत्र में खटास का भाग अधिक होने से वह (मूत्र) रक्तवर्ण का (लाल रँग का) तथा पित्त का भाग अधिक होने से पीत वर्णका (पीले रँग का) और फेनों से हीन इस यन्त्र के द्वारा स्पष्टतया (साफ तौर से) दीख पड़ता है ।

७–मूत्र में शक्कर के भाग का जाना इस यन्त्र के द्वारा प्रायः सब ही जान सकते हैं, क्योंकि शक्कर का स्वरूप सब ही को विदित है ।

८–इस यन्त्र के द्वारा परीक्षा करने से यदि मूत्र–फेनरहित, अतिश्वेत (बहुत सफेद अर्थात् अण्डे की सफेदी के समान सफेद), स्निग्ध (चिकना), पौष्टिक तत्त्व से युक्त, आँटे के लस के समान लसदार, पोस्त के तेल के समान स्निग्ध तथा नारियल के गूदे के समान स्निग्ध (चिकने) पदार्थ से संघट्ट (गुथा हुआ), गाढा तथा रक्त (खून) की कान्ति (चमक) से युक्त दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि–मूत्र में आल्व्यूमीनें है, इस प्रकार आल्व्युमीन का निश्चय हो जाने पर मूत्राशय के जलन्धर का भी निश्चय हो सकता है, जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ।

९–इस यन्त्र के द्वारा देखने पर यदि मूत्र में जलाये हुए पौधे की राख के समान, वा कढ़ाई में भूने हुए पदार्थ के समान कोई पदार्थ दीखे अथवा सोडे की राख

१–इस का कुछ वर्णन आगे नवीं संख्या में किया जावेगा ॥

२–यह शब्द दो प्रकार का है–जिन में से एक का उच्चारण आल्ब्युम्यन है, यह लाटिन तथा फ्रेञ्च भाषा का शब्द है, इस को फ्रेंच भाषा में अलवस भी कहते हैं, जिस का अर्थ 'सफेद, है, इस शब्द के तीन अर्थ हैं–१–अण्डे की सफेदी, २–परवरिश करनेवाला मादा जो बहुत से पौधों के बीजके परदे में इकट्ठा रहता है परन्तु गर्भ में मिला नहीं रहता है, यह अन्न अर्थात् गेहूँ और इसी किस्म के दूसरे अन्नों में आटे का हिस्सा होता है, पोस्त के दाने में रोगनी (तेल का) हिस्सा होता है और नारियल में गूदेदार हिस्सा होता है, ३–यह रसायन के लिहाज़ से वही वस्तु है जो कि आल्ब्युमीन है (जिस का अर्थ अभी आगे कहते हैं), दूसरे शब्द का उच्चारण आल्ब्युमीन है, यह गाढ़ा द्रव तथा विषैला पदार्थ होता है जो कि खास आवश्यक (जरूरी) मादा अण्डे का होता है और लोहू का पंछा होता है और वह दूसरे हैवानी मादों में पाया जाता है, वह चाहे द्रव हो और चाहे दृढ़ हो. इस के सिवाय यह पौधों में भी पाया जाता है, यह पानी में घुलजाता है तथा गर्मी और दूसरी रसायनिक रीतियों से जम जाता है ॥

सी दीख पड़े अथवा तेज़ावी सोडा वा तेज़ावी पोटास दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में खार और खटास (आलकैली खार और एसिड) है।

यह संक्षेप से सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा कही गई है, इस के विषय में यदि विशेष हाल जानना हो तो डाक्टरी ग्रन्थों से वा डाक्टरों से पूँछ कर जान सकते है॥

मलपरीक्षा—मल से भी रोग की बहुत कुछ परीक्षा हो सकती है तथा रोग के साध्य वा असाध्य की भी परीक्षा हो सकती है, इस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–वायुदोषवाले का मल–फेनवाला, रूखा तथा धुएँके रंग के समान होता है और उस में चौथा भाग पानी के सदृश होता है।

२–पित्तदोषवाले का मल–हरा, पीला, गन्धवाला, ढीला तथा गर्म होता है।

३–कफदोषवाले का मल–सफेद, कुछ सूखा, कुछ भीगा तथा चिकना होता है।

४–वातपित्तदोषवाले का मल–पीला और काला, भीगा तथा अन्दर गांठोंवाला होता है।

५–वातकफदोषवाले का मल–भीगा, काला तथा पपोटेवाला होता है।

६–पित्तकफदोषवाले का मल–पीला तथा सफेद होता है।

७–त्रिदोषवाले का मल–सफेद, काला, पीला, ढीला तथा गांठोंवाला होता है।

८–अजीर्णरोगवाले का मल–दुर्गन्धयुक्त और ढीला होता है।

९–जलोदररोगवाले का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त और सफेद होता है।

१०–मृत्युसमय को प्राप्त हुए रोगी का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त, लाल, कुछ सफेद, मांस के समान तथा काला होता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस रोगी का मल पानी में डूब जावे वह रोगी बचता नहीं है।

इस के अतिरिक्त मलपरीक्षा के विषय में निम्नलिखित बातों का भी जानना अत्यावश्यक है जिन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

१–इस शब्द का प्रयोग बहुवचन मे होता है अर्थात् अलकलिस वा अलकलीज, इस को फ्रेंच भाषा में अल्कली भी कहते है, यह एक प्रकार का खार पदार्थ है, इस शब्द के कोषकारों ने कई अर्थ लिखे हैं, जैसे–पौधे की राख, कढाई में भूनना, वा भूनना, सोडे की राख, तेज़ावी सोडा तथा तेज़ावी पोटास इत्यादि, इस का रासायनिक स्वरूप यह है कि–यह तेजावी असली चीजों मे से है, जैसे–सोडा, पोटास, गोंदविशेष और सोडे की किस्म का एक तेज तेजाब, इस का मुख्य गुण यह है कि–यह पानी और अलकोहल (विष) में मिल जाता है तथा तेल और चर्बी से मिल कर साबुन को बनाता है और तेजाब से मिलकर नमक को बनाता है या उसे मातदिल कर देता है, एवं बहुत से पौधों की ज़र्दी (पीलेपन) को भूरे रंग की कर देता है और काई वा पौधे के लाल रंग को नीला कर देता है॥

परन्तु इस प्रकार से शरीर के तपने का क्या कारण है और वह (तपने की) क्रिया किस प्रकार होती है यह विषय बहुत सूक्ष्म है, देशी वैद्यकशास्त्रने ज्वर के विषय में यही सिद्धान्त ठहराया है कि वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष अयोग्य आहार और विहार से कुपित होकर जठर (पेट) में जाकर अग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि–वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों की समानता (बराबर रहना) ही आरोग्यता का चिह्न है और इन की विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता (कम वा ज्यादा होना) ही रोग का चिह्न है तथा उक्त दोषों की समानता और विषमता केवल आहार और विहार पर ही निर्भर है।

इस के सिवाय–इस विषय पर विचार करने से यह भी सिद्ध होता है कि जैसे शरीर में वायु की वृद्धि दूसरे रोगों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार वह वातज्वर को भी उत्पन्न करती है, इसी प्रकार पित्त की अधिकता अन्य रोगों के समान पित्तज्वर को तथा कफ की अधिकता अन्य रोगों के समान कफज्वर को भी उत्पन्न करती है, उक्त क्रम पर ध्यान देने से यह भी समझमें आ सकता है कि–इन में से दो दो दोषों की अधिकता अन्य रोगों के समान दो दो दोषों के लक्षणवाले ज्वर को उत्पन्न करती है और तीनों दोषों के विकृत होने से वे (तीनों दोष) अन्य रोगों के समान तीनों दोषों के लक्षणवाले त्रिदोष (सन्निपात) ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन करना एक बहुत ही कठिन विषय है, क्योंकि ज्वर की उत्पत्तिके अनेक कारण हैं, तथापि पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त के अनुसार ज्वर के कारण को यहां दिखलाते हैं–ज्वर के कारण मुख्यतया दो प्रकार के है–आन्तर और बाह्य, इन में से आन्तर कारण उन्हें कहते हैं जो कि शरीर के भीतर ही उत्पन्न होते हैं तथा बाह्य कारण उन्हें कहते हैं जो कि बाहर से उत्पन्न होते हैं, इन में से आन्तर कारणों के दो भेद हैं–आहार विहार की विषमता अर्थात् आहार (भोजन पान) आदि की तथा विहार (डोलना फिरना तथा स्त्रीसङ्ग आदि) की विषमता (विरुद्ध चेष्टा) से रस का विगड़ना औ उस से ज्वर का आना, इस प्रकार के कारणों से सर्व साधारण ज्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे कि–तीन तो पृथक् २ दोषवाले, तीन दो २ दोषवाले तथा मिश्रित तीनों दोषवाला इत्यादि, इन्हीं कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में विषमज्वर आदि ज्वरों का भी समावेश हो जाता है, शरीर के अन्दर शोथ (सूजन) तथा गांठ आदि का होना आन्तर कारण का दूसरा भेद है अर्थात् भीतरी शोथ तथा गांठ आदि के वेग से ज्वर

का आना, ज्वर के बाह्य कारण वे कहलाते हैं जो कि सब आगन्तुक ज्वरों (जिन के विषयमें आगे लिखा जावेगा) के कारण हैं, इन के सिवाय हवा में उड़ते हुए जो चेपी ज्वरों के परमाणु हैं उनका भी इन्हीं कारणों में समावेश होता है अर्थात् वे भी ज्वर के बाह्य कारण माने जाते हैं ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल दश भेद हैं अर्थात् दश प्रकार का ज्वर माना जाता है, जिन के नाम ये हैं—वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, वातपित्तज्वर, वातकफज्वर, कफपित्तज्वर, सन्निपातज्वर, आगन्तुक ज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर ॥

अंग्रेजी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

अंग्रेजी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल चार भेद हैं अर्थात् अंग्रेजी वैद्यक शास्त्र में मुख्यतया चार ही प्रकार का ज्वर माना गया है, जिन के नाम ये है—जारीज्वर, आन्तरज्वर, रिमिटेंट ज्वर और फूट कर निकलनेवाला ज्वर ।

इन में से प्रथम जारी ज्वर के चार भेद हैं—सादातप, टाइफस, टाईफोइड और फिर २ कर आनेवाला ।

दूसरे आन्तरज्वर के भी चार भेद है—ठंढ देकर (शीत लग कर) नित्य आनेवाला, एकान्तर, तेजरा और चौथिया ।

तीसरे रिमिटेंट ज्वर का कोई भी भेद नहीं है[3], इसे दूसरे नाम से रिमिटेंट फीवेंर भी कहते हैं ।

चौथे फूट कर निकलने वालेज्वर के बारह भेद हैं—शीतला, ओरी, अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा), लाल बुखार, रंगीला बुखार, रक्तवायु (विसर्प), हैजा वा मरी का तप, इनफ्लुएञ्जा, मोती झरा, पानी झरा, थोथी झरा और काला मूंधोरो ।

इन सब ज्वरों का वर्णन क्रमानुसार आगे किया जावेगा ॥

१—इस कारण को अंग्रेजी वैद्यक मे ज्वर के कारण के प्रकरण मे यद्यपि नहीं गिना है परन्तु देशी वैद्यकशास्त्र मे इस को ज्वर के कारणों मे माना ही है, इस लिये ज्वर के आन्तर कारण का दूसरा भेद यही है ॥

२—देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ये चारो भेद विषम ज्वर के हो सकते है ॥

३—देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार यह (रिमिटेट ज्वर) विषमज्वर का एक भेद सन्ततज्वर नामक हो सकता है ॥

४—अंग्रेजी भाषा मे ज्वर को फीवर कहते हैं ॥

५—देशी वैद्यकशास्त्र मे मसूरिका को क्षुद्र रोग तथा मुंधोरा नाम से लिखा है ॥

ज्वर के सामान्य कारण ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहार ही ज्वर के सामान्य कारण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों कारणों से शरीरस्थ (शरीर में स्थित) धातु विकृत (विकार युक्त) होकर ज्वर को उत्पन्न करता है ।

यह भी स्मरण रहे कि–अयोग्य आहार में बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे बहुत गर्म तथा बहुत ठंढी खुराक का खाना, बहुत भारी खुराक का खाना, विगड़ी हुई और बासी खुराक का खाना, प्रकृति के विरुद्ध खुराक का खाना, ऋतु के विरुद्ध खुराक का खाना, भूख से अधिक खाना तथा दूषित (दोष से युक्त) जल का पीना, इत्यादि ।

इसी प्रकार अयोग्य विहार में भी बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे–बहुत महनत का करना, बहुत गर्मी तथा बहुत ठंढ का सेवन करना, बहुत विलास करना तथा खराब हवा का सेवन करना, इत्यादि ।

बस ये ही दोनों कारण अनेक प्रकार के ज्वरों को उत्पन्न करते हैं[1] ॥

ज्वर के सामान्य लक्षण ॥

ज्वर के बाहर प्रकट होने के पूर्व श्रान्ति (थकावट), चित्त की विकलता (बेचैनी), मुख की विरसता (विरसपन अर्थात् स्वाद का न रहना), आंखों में पानी का आना, जँभाई, ठंढ हवा तथा धूप की वारंवार इच्छा और अनिच्छा, अंगों का टूटना, शरीर में भारीपन, रोमाञ्च का होना (रोंगटे खड़े होना) तथा भोजन पर अरुचि इत्यादि लक्षण होते हैं, किन्तु ज्वर के बाहर प्रकट होने के पीछे (ज्वर भरने के पीछे) त्वचा (चमड़ी) गर्म मालूम पड़ती है, यही ज्वर का प्रकट चिह्न है, ज्वर में प्रायः पित्त अथवा गर्मी का मुख्य उपद्रव होता है, इस लिये ज्वर के प्रकट होने के पीछे शरीर में उष्णता के भरने के साथ ऊपर लिखे हुए सब चिह्न बराबर बने रहते हैं ॥

वातज्वर का वर्णन[2] ॥

कारण—विरुद्ध आहार और विहार से कोप को प्राप्त हुआ वायु आमाशय (होजरी)

१–तात्पर्य यह है कि–अयोग्य आहार और अयोग्य विहार, इन दोनों हेतुओं से आमाशय मे स्थित जो वात पित्त और कफ हैं वे रस आदि धातुओं को दूषित कर तथा जठराग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

२–यद्यपि प्रत्येक रोग के ज्ञान के लिये हेतु (कारण), सम्प्राप्ति (दुष्ट हुए दोष से अथवा फैलते हुए रोग से रोग की उत्पत्ति), पूर्वरूप (रोग की उत्पत्ति होने से पहिले होनेवाले चिह्न), लक्षण (रोगोत्पत्ति के हो जाने पर उस के चिह्न) और उपशय (औषध आदि देने के द्वारा रोगी को सुख मिलने से वा न मिलने से रोग का निश्चय), इन पांच बातों की आवश्यकता है इस लिये प्रत्येक रोग के वर्णन में इन पाँचों का वर्णन करना यद्यपि आवश्यक था तथापि इन का विज्ञान वैद्यों के लिये आवश्यक समझकर हम ने इन पाँचों का वर्णन न करके केवल हेतु (कारण) और लक्षण, इन दो ही बातों का वर्णन रोग प्रकरण में किया है, क्योंकि साधारण गृहस्थों को उक्त दो ही विषय बहुत लाभदायक हो सकते हैं ॥

में जाकर उस में स्थित रस (आम) को दूषित कर जठर (पेट) की गर्मी (अग्नि) को बाहर निकालता है उस से वातज्वर उत्पन्न होता है ।

लक्षण[1]—जँभाई (उबासी) का आना, यह वातज्वर का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय ज्वर के वेग का न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होना, गला ओष्ठ (होठ) और मुख का सूखना, निद्रा का नाश, छींक का बन्द होना, शरीर में रूक्षता (रूखापन), दस्त की कबजी का होना, सब शरीर में पीड़ा का होना, विशेष कर मस्तक और हृदय में बहुत पीड़ा का होना, मुख की विरसता, शूल और अफरा, इत्यादि दूसरे भी चिह्न मालूम पड़ते हैं, यह वातज्वर प्रायः वायुप्रकृतिवाले पुरुष के तथा वायु के प्रकोप की ऋतु (वर्षा ऋतु) में उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—१–यद्यपि सब प्रकार के ज्वर में परम हितकारक होने से लङ्घन सर्वोपरि (सब से ऊपर अर्थात् सब से उत्तम) चिकित्सा (इलाज) है[2] तथापि दोष, प्रकृति, देश, काल और अवस्था के अनुसार शरीर की स्थिति (अवस्था) का विचार कर लङ्घन करना चाहिये, अर्थात् प्रबल वातज्वर में शक्तिमान् (ताक़तवर) पुरुष को अपनी शक्ति का विचार कर आवश्यकता के अनुसार एक से छः लंघन तक करना चाहिये, यह भी जान लेना चाहिये कि–लंघन के दो भेद हैं–निराहार और अल्पाहार, इन में से बिलकुल ही नहीं खाना, इस को निराहार कहते है, तथा एकाध वख्त थोड़ी और हलकी खुराक का खाना जैसे–दलिया, भात तथा अच्छे प्रकार से सिजाई हुई मूंग और अरहर (तूर) की दाल इत्यादि, इस को अल्पाहार कहते है, साधारण वात ज्वर में एकाध टंक (वख्त) निराहार लंघन करके पीछे प्रकृति तथा दोष के अनुकूल ज्वर के दिनों की मर्यादा तक (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) ऊपर लिखे अनुसार हलकी तथा थोड़ी खुराक खानी चाहिये, क्योंकि–ज्वर का यही उत्तम पथ्य है, यदि इस का सेवन भली भांति से किया जावे तो औषधि के लेने की भी आवश्यकता नहीं रहती है ।

१–चौपाई—बड़ो वेग कम्प तन होई ॥ ओठ कण्ठ मुख सूखत सोई ॥ १ ॥
निद्रा अरु छिक्का को नासू ॥ रूखो अङ्ग कबज हो तासू ॥ २ ॥
शिर हृद सब अँग पीड़ा होवै ॥ बहुत उबासी मुख रस खोवै ॥ ३ ॥
गाढी विष्ठा मूत्र जु काला ॥ उष्ण वस्तु चाहै चित चाला ॥ ४ ॥
नेत्र जु लाल रक्त पुनि होई ॥ उदर आफरा पीड़ा सोई ॥ ५ ॥
वातज्वरी के एते लक्षण ॥ इन पर ध्यानहिँ धरो विचक्षण ॥ ६ ॥

२–क्योंकि लघन करने से अग्नि (आहार के न पहुँचने से) कोठे मे स्थित दोषों को पकाती है और जब दोष पक जाते हैं तब उन की प्रबलता जाती रहती है, परन्तु जब लंघन नहीं किया जाता है अर्थात् आहार को पेठ मे पहुँचाया जाता है तब अग्नि उसी आहार को ही पकाती है किन्तु दोषों को नहीं पकाती है ॥

२–यदि कदाचित् ऊपर कहे हुए लंघन का सेवन करने पर भी ज्वर न उतरे तो सब प्रकार के ज्वरवालों को तीन दिन के बाद इस औषधि का सेवन करना चाहिये–देवदारु दो रुपये भर, धनिया दो रुपये भर, सोंठ दो रुपये भर, रींगणी दो रुपये भर तथा बड़ी कण्टाली दो रुपये भर, इन सब औषधों को कूट कर इस में से एक रुपये भर औषध का काढ़ा पाव भर पानी में चढ़ा कर तथा डेढ़ छटांक पानी के बाकी रहने पर छान कर लेना चाहिये, क्योंकि इस क्राथ से ज्वर पाचन को प्राप्त होकर (परिपक्क होकर) उतर जाता है।

३–अथवा ज्वर आने के सातवें दिन दोष के पाचन के लिये गिलोय, सोंठ और पीपरा मूल, इन तीनों औषधों के क्राथ का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये, इस से दोष का पाचन होकर ज्वर उतर जाता है ॥

पित्तज्वर का वर्णन ॥

कारण—पित्त को बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार से बिगड़ा हुआ पित्त आमाशय (होजरी) में जाकर उस (आमाशय) में स्थित रस को दूषित कर जठर की गर्मी को बाहर निकालता है तथा जठर में स्थित वायु को भी कुपित करता है, इस लिये कोप को प्राप्त हुआ वायु अपने स्वभाव के अनुकूल जठर की गर्मी को बाहर निकालता है उस से पित्तज्वर उत्पन्न होता है।

लक्षण[3]—आंखों में दाह (जलन) का होना, यह पित्तज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय ज्वर का तीक्ष्ण वेग, प्यास का अत्यंत लगना, निद्रा थोड़ी आना, अतीसार अर्थात् पित्त के वेग से दस्त का पतला होना, कण्ठ ओष्ठ (ओठ) मुख और नासिका

१–यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–एक दोष कुपित होकर दूसरे दोष को भी कुपित वा विकृत (विकार युक्त) कर देता है ॥

२–वायु का यह स्वरूप वा स्वभाव है कि वायु दोष (कफ और पित्त), धातु (रस और रक्त आदि) और मल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचानेवाला, आशुकारी (जल्दी करने वाला), रजो गुणवाला, सूक्ष्म (बहुत बारीक अर्थात् देखने में न आनेवाला), रूक्ष (रूखा), शीतल (ठण्डा), हलका और चञ्चल (एक जगह पर न रहनेवाला) है, इस (वायु) के पांच भेद हैं–उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान, इन में से कण्ठ मे उदान, हृदय मे प्राण, नाभि में समान, गुदा मे अपान और सम्पूर्ण शरीर में व्यान वायु रहता है, इन पांचों वायुओं के पृथक् २ कार्य आदि सब बातें दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें, यहां उन का वर्णन विस्तार के भय से तथा अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं ॥

३–चौपाई—तीक्ष्ण वेग जु तृषा अपारा ॥ निद्रा अल्प होय अतिसारा ॥ १ ॥
कण्ठ ओष्ठ मुख नासा पाके ॥ मुर्छा दाह चित्त भ्रम ताके ॥ २ ॥
परसा तन कटु मुख बक वादा ॥ वमन करत अरु रह उन्मादा ॥ ३ ॥
शीतल वस्तु चाह तिस रहई ॥ नेत्रन तें जु प्रवाह जल बहई ॥ ४ ॥
नेत्र मूत्र पुनि मल हु पीता ॥ पित्त ज्वर के ये लक्षण मीता ॥ ५ ॥

४–इस ज्वर में पित्त के वेग से दस्त ही पतला होता है परन्तु इस पतले दस्त के होने से अतीसार रोग नहीं समझ लेना चाहिये ॥

(नाक) का पकना तथा पसीनों का आना, मूर्छा, दाह, चित्तभ्रम[1], मुख में कडुआपन, प्रलाप (बड़बड़ाना), वमन का होना, उन्मत्तपन, शीतल वस्तु पर इच्छा का होना, नेत्रों से जल का गिरना तथा विष्ठा (मल) मूत्र और नेत्र का पीला होना, इत्यादि पित्तज्वर में दूसरे भी लक्षण होते है, यह पित्तज्वर प्रायः पित्तप्रकृतिवाले पुरुष के तथा पित्त के प्रकोपकी ऋतु (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में दोष के बल के अनुसार[2] एक टंक (वख्त) अथवा एक दिन वा जब तक ठीक रीति से भूख न लगे[3] तब तक लंघन करना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का पानी, भात तथा पानी में पकाया (सिजाया) हुआ साबूदाना पीना चाहिये।

२–अथवा–पित्तपापड़े वा घासिया पित्तपापड़े का काढ़ा[4], फांट वा हिम पीना चाहिये॥

३–अथवा–दाख, हरड़, मोथा[5], कुटकी, किरमाले की गिरी (अमलतास का गूदा) और पित्तपापड़ा, इन का काढ़ा पीने से पित्तज्वर, शोष[6], दाह, भ्रम और मूर्छा आदि उपद्रव मिटकर दस्त साफ आता है।

४–अथवा–पित्तपापड़ा, रक्त (लाल) चन्दन, दोनों प्रकार का (सफेद तथा काला) वालाँ[7], इन का क्वाथ, फांट अथवा हिम पित्तज्वर को मिटाता है।

५–रात को ठंढे पानी में भिगाया हुआ धनिये का अथवा गिलोय का हिम पीने से पित्तज्वर का दाह शान्त होता है।

६–यदि पित्तज्वर के साथ में दाह बहुत होता हो तो कच्चे चावलों के धोवन में थोड़े से चन्दन तथा सोंठ को घिस कर और चावलों के धोवन में मिला कर थोड़ा शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये॥

१–चित्तभ्रम अर्थात् चित्त का स्थिर न रहना॥

२–दोष के बल के अनुसार अर्थात् विकृत (विकार को प्राप्त हुआ) दोष जैसे लंघन का सहन कर सके उतना ही और वैसा ही लंघन करना चाहिये॥

३–दोष के विकार की यह सर्वोत्तम पहिचान भी है कि जब तक दोष विकृत तथा कच्चा रहता है तब तक भूख नहीं लगती है॥

४–काढा, फांट तथा हिम आदि बनाने की विधि इसी अध्याय के औषधप्रयोगवर्णन नामक तेरहवें प्रकरण में लिख चुके हैं, वहां देख लेना चाहिये॥

५–मोथा अर्थात् नागरमोथा (इसी प्रकार मोथा शब्द से सर्वत्र नागरमोथा समझना चाहिये)॥

६–शोष अर्थात् शरीर का सूखना॥

७–वाला अर्थात् नेत्रवाला, इस को सुगन्धवाला भी कहते हैं, यह एक प्रकार का सुगन्धित (खुशबूदार) तृण होता है, परन्तु पसारी लोग इस की जगह नाडी के सूखे साग को दे देते हैं उसे नहीं लेना चाहिये॥

कफज्वर का वर्णन ॥

कारण—कफ को बढानेवाले[1] मिथ्या आहार और विहार से दूषित हुआ कफ जठर में जाकर तथा उस में स्थित रस को दूषित कर उस की उष्णता को बाहर निकालता है, एवं कुपित हुआ वह कफ वायु को भी कुपित करता है, फिर कोप को प्राप्त हुआ वायु उष्णता को बाहर लाता है उस से कफज्वर उत्पन्न होता है।

लक्षण[2]—अन्न पर अरुचि का होना, यह कफज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय अंगों में भीगापन, ज्वर का मन्द वेग[3], मुख का मीठा होना, आलस्य, तृप्ति का मालूम होना, शीत का लगना, देह का भारी होना, नींद का अधिक आना, रोमाञ्च का होना, श्लेष्म (कफ) का गिरना, वमन, उबाकी, मल; मूत्र; नेत्र; त्वचा और नख का श्वेत (सफेद) होना, श्वास, खांसी, गर्मी का प्रिय लगना और मन्दाग्नि, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस ज्वर में होते हैं, यह कफज्वर प्रायः कफप्रकृतिवाले पुरुष के तथा कफ के कोप की ऋतु (वसन्त ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–कफज्वरवाले रोगी को लंघन विशेष सह्य होता[4] है तथा योग्य लंघन से दूषित हुए दोष का पाचन भी होता[5] है, इसलिये रोगी को जब तक अच्छे प्रकार से भूख न लगे तब तक नहीं खाना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का ओसामण पीना चाहिये।

२–गिलोय का काढ़ा, फांट अथवा हिम शहद डाल कर पीना चाहिये।

३–छोटी पीपल, हरड़, बहेड़ा और आंवला, इन सब को समभाग (बराबर) लेकर तथा चूर्ण कर उस में से तीन मासे चूर्ण को शहद के साथ चाटना चाहिये, इस से कफ ज्वर तथा उस के साथ में उत्पन्न हुए खांसी श्वास और कफ दूर हो जाते है।

१–कफ को बढानेवाले आहार–स्निग्ध शीतल तथा मधुर पदार्थ हैं तथा कफ को बढानेवाले विहार अधिक निद्रा आदि जानने चाहियें॥

२–**चौपाई**—मन्द वेग मुख मीठो रहई॥ आलस तृप्ति शीत तन गहई॥ १॥
भारी तन अति निद्रा होवै॥ रोम उठें पीनस रुचि खोवै॥ २॥
शुक्र मूत्र नख विष्ठा जासू॥ श्वेत नेत्र त्वच खांसी श्वासू॥ ३॥
वमन उबाकी उष्ण मन चहही॥ एते लक्षण कफज्वर अहहीं॥ ४॥

३–कफ शीतल है तथा मन्द गतिवाला है इस लिये ज्वर का भी वेग मन्द ही होता है॥

४–कफ का स्वभाव तृप्तिकारक (तृप्ति का करनेवाला) है इस लिये कफज्वरी लंघन का विशेष सहन कर सकता है, दूसरे–कफ के विकृत तथा कुपित होने से जठराग्नि अत्यन्त शान्त हो जाती है, इस लिये भूख पर रुचि के न होने से भी उस को लंघन सह्य होता है॥

५–पहिले कह ही चुके हैं कि लंघन करने से जठराग्नि दोष का पाचन करती है॥

४–इस ज्वर में अडूसे का पत्ता, भूरींगणी[1] तथा गिलोय का काढा शहद डाल कर पीने से फायदा करता है ॥

द्विदोषज (दो २ दोषोंवाले) ज्वरों का वर्णन ॥

पहिले कह चुके है कि–दो २ दोषवाले ज्वरों के तीन भेद है अर्थात् वातपित्तज्वर, वातकफज्वर और पित्तकफज्वर इन दो २ दोषवाले ज्वरों में दो २ दोषों के लक्षण मिले हुए होते है[2], जिन की पहिचान सूक्ष्म दृष्टि वाले तथा वैद्यक विद्या में कुशल अनुभवी वैद्य ही अच्छे प्रकार से कर सकते है[3], इन दो२ दोषवाले ज्वरों को वैद्यक शास्त्र में द्वन्द्वज तथा मिश्रज्वर कहा गया है, अब क्रम से इन का विषय संक्षेप से दिखलाया जाता है ॥

वातपित्तज्वर का वर्णन[4] ॥

लक्षण[5]—जँभाई का बहुत आना और नेत्रों का जलना, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य है, इन के सिवाय–प्यास, मूर्छा, भ्रम, दाह, निद्रा का नाश, मस्तक में पीड़ा, वमन, अरुचि, रोमाञ्च (रोंगटों का खड़ा होना), कण्ठ और मुख का सूखना, सन्धियों में पीड़ा और अन्धकार दर्शन (अँधेरे का दीखना), ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते है ।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार[6] लङ्घन का करना पथ्य है ।

१–भूरींगणी को रेंगनी तथा कण्टकारी (कटेरी) भी कहते है, प्रयोग मे इस की जड़ ली जाती है, परन्तु जब न मिलने पर पञ्चाङ्ग (पांचों अंग अर्थात् जड, पत्ते, फूल, फल और शाखा) भी काम में आता है, इस की साधारण मात्रा एक मासे की है ॥

२–अर्थात् दोनों ही दोपो के लक्षण पाये जाते है, जैसे–वातपित्तज्वर मे–वातज्वर के तथा पित्त-ज्वर के (दोनों के) मिश्रित लक्षण होते हैं, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के विषय में भी जान लेना चाहिये ॥

३–क्योंकि मिश्रित लक्षणों में दोपो के अंशांशी भाव की कल्पना (कौन सा दोष कितना बढा हुआ है तथा कौन सा दोप कितना कम है, इस बात का निश्चय करना) बहुत कठिन है, वह पूर्ण विद्वान् तथा अनुभवी वैद्य के सिवाय और किसी (साधारण वैद्य आदि) से नहीं हो सकती है ॥

४–इन दो २ दोपवाले ज्वरो के वर्णन मे कारण का वर्णन नहीं किया जावेगा, क्योंकि प्रत्येक दोप-वाले ज्वर के विषय मे जो कारण कह चुके है उसी को मिश्रित कर दो २ दोषवाले ज्वरों में समझ लेना चाहिये, जैसे–वातज्वर का जो कारण कह चुके हैं तथा पित्तज्वर का जो कारण कह चुके है इन्हीं दोनों को मिलाकर वातपित्तज्वर का कारण जान लेना चाहिये, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के विषय मे भी समझ लेना चाहिये ॥

५–चौपाई—तृषा मूरछा भ्रम अरु दाहा ॥ नींदनाश शिर पीड़ा ताहा ॥ १ ॥
अरुचि वमन जृम्भा रोमाञ्चा ॥ कण्ठ तथा मुखशोष हु साँचा ॥ २ ॥
सन्धि शूल पुनि तम हू रहई ॥ वातपित्तज्वर लक्षण अहई ॥ ३ ॥

६–पूर्व लिखे अनुसार अर्थात् जब तक दोपों का पाचन न होवे तथा भूख न लगे तब तक लंघन करना चाहिये अर्थात् नहीं खाना चाहिये ॥

२–चिरायता, गिलोय, दाख, आँवला और कचूर, इन का काढ़ा कर के तथा उस में त्रिवर्षीय (तीन वर्ष का पुराना) गुड़ डाल कर पीना चाहिये।

३–अथवा–गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ, इन का क्वाथ करके पीना चाहिये, यह पञ्चभद्र क्वाथ वातपित्तज्वर में अतिलाभदायक (फायदेमन्द) माना गया है ॥

वातकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—जँभाई (उवासी) का आना और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–सन्धियों में फूटनी (पीड़ा का होना), मस्तक का भारी होना, निद्रा, गीले कपड़े से देह को ढाकने के समान मालूम होना, देह का भारीपन, खांसी, नाक से पानी का गिरना, पसीने का आना, शरीर में दाह का होना तथा ज्वर का मध्यम वेग, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है।

२–पसर कंटाली, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह लघुक्षुद्रादि क्वाथ है।

३–किरमाले (अमलतास) की गिरी, पीपलामूल, मोथा, कुटकी और जौं हरड़े (छोटी अर्थात् काली हरड़े), इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह आरग्वधादि क्वाथ है[3]।

४–अथवा–केवल (अकेली) छोटी पीपल की उकाली पीनी चाहिये ॥

पित्तकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—नेत्रों में दाह और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–तन्द्रा, मूर्छा, मुख का कफ से लिप्त होना (लिसा रहना), पित्त के ज़ोर से मुख

१–**सोरठा**—देह दाह गुरु गात, स्तैमित जृम्भा अरुचि हो ॥
मध्य हु वेग दिखात, स्वेद कास पीनस सही ॥ १ ॥
नींद न आवै कोय, सन्धि पीड़ मस्तक गहै ॥
वैद्य विचारै जोय, ये लक्षण कफवात के ॥ २ ॥

२–वायु शीघ्रगतिवाला है तथा कफ मन्दगतिवाला है, इस लिये दोनों के संयोग से वातकफज्वर मध्यमवेगवाला होता है ॥

३–यह आरग्वधादि क्वाथ–दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (दोषों को पकानेवाला) तथा संशोधन (मल और दोषों को पका कर बाहर निकालनेवाला) भी है, इन के ये गुण होने से ही दोषों का पाचन आदि होकर ज्वर से शीघ्र ही मुक्ति (छुटकारा) हो जाती है ॥

४–**सोरठा**—मुख कटुता परतीत, तन्द्रा मूर्छा अरुचि हो ॥
बार बार में शीत, बार बार में तप्त हो ॥ १ ॥
लिप्त विरस मुख जान, नेत्र जलन अरु कास हो ॥
लक्षण होत सुजान, पित्तकफज्वर के यही ॥ २ ॥

में कडुआहट (कडुआपन,), खांसी, प्यास, वारंवार दाह का होना और वारंवार शीत का लगना, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते है ।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है ।

२–जहां तक हो सके इस ज्वर में पाचन ओषधि लेनी चाहिये ।

३–रक्त (लाल) चन्दन, पदमाख, धनियाँ, गिलोय और नींव की अन्तर (भीतरी) छाल, इन का काढा पीना चाहिये, यह रक्तचन्दनादि क्वाथ[1] है ।

४–आठ आनेभर कुटकी को जल में पीस कर तथा मिश्री मिला कर गर्म जल से पीना चाहिये ।

५–अडूसे के पत्तों का रस दो रुपये भर लेकर उस में २॥ मासे मिश्री तथा २॥ मासे शहद को डाल कर पीना चाहिये[2] ॥

सामान्यज्वर का वर्णन ॥

कारण तथा लक्षण—अनियमित खानपान, अजीर्ण, अचानक अतिशीत वा गर्मी का लगना, अतिवायु का लगना, रात्रि में जागरण और अतिश्रम, ये ही प्रायः सामान्यज्वर के कारण[3] है, ऐसा ज्वर प्रायः ऋतु के बदलने से भी हो जाता[4] है और उस की मुख्य ऋतु मार्च और अप्रेल मास अर्थात् वसन्तऋतु है तथा सितम्बर और अक्टूबर मास अर्थात् शरदृऋतु है, शरदृऋतु में प्रायः पित्त का बुखार होता[5] है तथा वसन्तऋतु में प्रायः कफ का बुखार होता है, इन के सिवाय–जून और जुलाई महीने में भी अर्थात् बरसात की वातकोपवाली ऋतु में भी वायु के उपद्रवसहित ज्वर चढ आता[6] है ।

ऊपर जिन भिन्न २ दोषवाले ज्वरों का वर्णन किया है उन सबों की भी गिनती इस (सामान्य ज्वर) में हो सकती है, इन ज्वरों में अन्तरिया ज्वर के समान चढ़ाव उतार नहीं रहता है किन्तु ये (सामान्यज्वर) एक दो दिन आकर जल्दी ही उतर जाते है ।

१–यह क्वाथ दीपन और पाचन है तथा प्यास, दाह, अरुचि, वमन और इस ज्वर (पित्तकफज्वर) को शीघ्र ही दूर करता है ॥

२–यह ओषधि अम्लपित्त तथा कामलासहित पित्तकफज्वर को भी शीघ्र ही दूर कर देती है, इस ओषधि के विषय मे किन्हीं आचार्यों की यह सम्मति है कि अडूसे के पत्तों का रस (ऊपर लिखे अनुसार) दो तोले लेना चाहिये तथा उस मे मिश्री और शहद को (प्रत्येक को) चार २ मासे डालना चाहिये ॥

३–अर्थात् इन कारणों से देश, काल और प्रकृति के अनुसार–एक वा दो दोष विकृत तथा कुपित होकर जठराग्नि को बाहर निकाल कर रसों के अनुगामी होकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

४–ऋतु के बदलने से ज्वर के आने का अनुभव तो प्रायः वर्तमान मे प्रत्येक गृह में हो जाता है ॥

५–क्योंकि शरदृऋतु में पित्त प्रकुपित होता है ॥

६–पसीनों का न आना, सन्ताप (देह और इन्द्रियों में सन्ताप), सर्व अंगों का पीडा करके रह जाना अथवा सब अंगों का स्तम्भित के समान (स्तब्ध सा) रह जाना, ये सब लक्षण ज्वरमात्र के साधारण हैं अर्थात् ज्वरमात्र में होते है इन के सिवाय शेष लक्षण दोषों के अनुसार पृथक् २ होते है ॥

चिकित्सा—१–सामान्यज्वर के लिये प्रायः वही चिकित्सा हो सकती है जो कि भिन्न २ दोषवाले ज्वरों के लिये लिखी है ।

२–इस के सिवाय–इस ज्वर के लिये सामान्यचिकित्सा तथा इस में रखने योग्य कुछ नियमों को लिखते हैं उन के अनुसार वर्त्ताव करना चाहिये ।

३–जब तक ज्वर में किसी एक दोष का निश्चय न हो वहां तक विशेष चिकित्सा नहीं करनी चाहिये[1], क्योंकि सामान्यज्वर में विशेष चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु एकाध टंक (वख्त) लंघन करने से, आराम लेने से, हलकी खुराक के खाने से तथा यदि दस्त की कब्जी हो तो उस का निवारण करने से ही यह ज्वर उतर जाता है ।

४–इस ज्वर के प्रारम्भ में गर्म पानी में पैरों को डुबाना चाहिये, इस से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है[2] ।

५–इस ज्वर मे ठंढा पानी नहीं पीना चाहिये[3] किन्तु तीन उफान आने तक पानी को गर्म कर के फिर उस को ठंढा करके प्यास के लगने पर थोड़ा २ पीना चाहिये ।

६–सोंठ, काली मिर्च और पीपल को घिस कर उस का अञ्जन आंख में करवाना चाहिये ।

७–बहुत खुली हवा में तथा खुली हुई छत पर नहीं सोना चाहिये ।

८–स्थलप्रदेश में (मारवाड़ आदि प्रान्त में) बाजरी का दलिया, पूर्व देश में भात की कांजी वा मांड, मध्य मारवाड़ में मूंग का ओसामण वा भात तथा दक्षिण में अरहर (तूर) की पतली दाल का पानी अथवा उस में भात मिला कर खाना चाहिये ।

९–यह भी स्मरण रहे कि–यह ज्वर जाने के बाद कभी २ फिर भी वापिस आ जाता है इस लिये इस के जाने के बाद भी पथ्य रखना चाहिये अर्थात् जब तक शरीर में पूरी ताकत न आ जावे तब तक भारी अन्न नहीं खाना चाहिये तथा परिश्रम का काम भी नहीं करना चाहिये[4] ।

१–सामान्यज्वर में दोष का निश्चय हुए विना विशेष चिकित्सा करने से कभी २ बड़ी भारी हानि भी हो जाती है अर्थात् दोष अधिक प्रकुपित हो कर तथा प्रबलरूप धारण कर रोगी के प्राणघातक हो जाते हैं ॥

२–क्योंकि पसीने के द्वारा ज्वर की भीतरी गर्मी तथा उस का वेग बाहर निकल जाता है ॥

३–क्योंकि शीतल जल दशाविशेष अथवा कारणविशेष के सिवाय ज्वर मे अपथ्य (हानिकारक) माना गया है ॥

४–ज्वर के जाने के बाद पूरी शक्ति के न आने तक भारी अन्न का खाना तथा परिश्रम के कार्य का करना तो निषिद्ध है ही, किन्तु इन के सिवाय–व्यायाम (दण्डकसरत), मैथुन, स्नान, इधर उधर विशेष डोलना फिरना, विशेष हवा का खाना तथा अधिक शीतल जल का सेवन, ये कार्य भी निषिद्ध हैं ॥

१०–वातज्वर में जो काढ़ा दूसरे नम्बर में लिखा है उसे लेना चाहिये[1]।

११–गिलोय, सोंठ और पीपरामूल, इन का काढ़ा पीना चाहिये[2]।

१२–मूर्वागणी, चिरायता, कुटकी, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१३–दाख, धमासा और अडूसे का पत्ता, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१४–चिरायता, वाला, कुटकी, गिलोय और नागरमोथा, इन का काढा पीना चाहिये।

१५–ऊपर कहे हुए काढ़ों में से किसी एक काथ (काढ़ों) को विधिपूर्वक[3] तैयार कर थोड़े दिन तक लगातार दोनों समय पीना चाहिये, ऐसा करने से दोष का पाचन और शमन (शान्ति) हो कर[4] ज्वर उतर जाता है॥

सन्निपातज्वर का वर्णन ॥

तीनों दोषों के एक साथ कुपित होने को सन्निपात वा त्रिदोष कहते हैं, यह दशा प्रायः सब रोगों की अन्तिम (आखिरी) अवस्था (हालत) में हुआ करती है[5], यह दशा ज्वर में जब होती है तब उस ज्वर को सन्निपातज्वर कहते है, किसी में एक दोष की प्रबलता तथा दो दोषों की न्यूनता से तथा किसी में दो दोषों की प्रबलता और एक दोष की न्यूनता से इस ज्वर के वैद्यकशास्त्र में एकोल्बणादि ५२ भेद[6] दिखलाये है तथा इस के तेरह दूसरे नाम भी रख कर इस का वर्णन किया है।

यह निश्चय ही समझना चाहिये कि–यह सन्निपात मौत के विना नहीं होता है चाहे मनुष्य बोलता चालता तथा खाता पीता ही क्यों न हो।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सन्निपात को निदान और कालज्ञान को पूर्णतया जाननेवाला अनुभवी वैद्य ही पहिचान सकता है, किन्तु मूर्ख वैद्यों को तो अन्तदशा तक में भी इस का पहिचानना कठिन है, हां यह निश्चय है कि–सन्निपात के वा त्रिदोष के साधारण लक्षणों को विद्वान् वैद्य तथा डाक्टर लोग सहज में जान सकते हैं[7]।

१–अर्थात् देवदार्वादि क्वाथ (देखो वातज्वर की चिकित्सा में दूसरी संख्या)॥

२–यह काढा दीपन और पाचन भी है॥

३–काढ़े की विधि पहिले तेरहवें प्रकरण में लिख चुके हैं॥

४–अर्थात् अपक्व (कच्चे) दोष का पाचन और बढ़े हुए दोष का शमन होकर ज्वर उतर जाता है॥

५–तात्पर्य यह है कि–सन्निपात की दशा में दोषों का सँभालना अति कठिन क्या किन्तु असाध्य सा हो जाता है, बस वही रोग की वा यों समझिये कि प्राणी की अन्तिम (आखिरी) अवस्था होती है, अर्थात् इस संसार से विदा होने का समय समीप ही आजाता है॥

६–उन सब ५२ भेदों का तथा तेरह नामों का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यहां पर अनावश्यक समझकर उन का वर्णन नहीं किया गया है॥

७–तात्पर्य यह है कि–तीनों दोषों के लक्षणों को देख कर सन्निपात की सत्ता का जान लेना योग्य वैद्यों के लिये कुछ कठिन बात नहीं है परन्तु सन्निपात के निदान (मूलकारण) तथा दोषों के अंशांशीभाव का निश्चय करना पूर्ण अनुभवी वैद्य का ही कार्य है॥

इस के सिवाय यह भी देखा गया है कि–रात दिन के अभ्यासी अपठित (विना पढ़े हुए) भी बहुत से जन मृत्यु के चिह्नों को प्रायः अनेक समयों में बतला देते है, तात्पर्य सिर्फ यही हैं कि–"**जो जामें निशदिन रहत, सो तामें परवीन**" अर्थात् जिस का जिस विषय में रात दिन का अभ्यास होता है वह उस विषय में प्रायः प्रवीण हो जाता है, परन्तु यह बात तो अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि–सन्निपात ज्वर के जो १३ भेद कहे गये है उन के बतलाने में तो अच्छे २ चतुर वैद्यों को भी पूरा २ विचार करना पड़ता है अर्थात् यह अमुक प्रकार का सन्निपात है इस बात का बतलाना उन को भी महा कठिन पड़ जाता है।

इन सब बातों का विचार कर यही कहा जा सकता है कि–जो वैद्य सन्निपात की योग्य चिकित्सा कर मनुष्य को बचाता है उस पुण्यवान् वैद्य की प्रशंसा के लिखने में लेखनी सर्वथा असमर्थ है, यदि रोगी उस वैद्य को अपना तन मन और धन अर्थात् सर्वस्व भी दे देवे तो भी वह उस वैद्य का यथोचित प्रत्युपकार नहीं कर सकता है अर्थात् बदला नहीं उतार सकता है किन्तु वह (रोगी) उस वैद्य का सर्वदा ऋणी ही रहता है।

यहां हम सन्निपातज्वर के प्रथम सामान्य लक्षण और उस के बाद उस के विषय में आवश्यक सूचना को ही लिखेंगे किन्तु सन्निपात के १३ भेदों को नहीं लिखेंगे, इस का कारण केवल यही है कि सामान्य बुद्धिवाले जन उक्त विषय को नहीं समझ सकते है और हमारा परिश्रम केवल गृहस्थ लोगों को इस विषय का ज्ञान कराने मात्र के लिये है किन्तु उन को वैद्य बनाने के लिये नहीं है, क्योंकि गृहस्थजन तो यदि इस के विषय में इतना भी जान लेंगे तो भी उन के लिये इतना ही ज्ञान (जितना हम लिखते है) अत्यन्त हितकारी होगा।

लक्षण—जिस ज्वर में वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष कोप को प्राप्त हुए होते

१–चौपाई—क्षण क्षण दाह शीत पुनि होई ॥ पीड़ा हाड सन्धि शिर सोई ॥ १ ॥
गदले नैन नीर को स्रावैं ॥ रक्त कुटिल लोचन मे आवें ॥ २ ॥
कर्ण शूल भरणाटो जामे ॥ कण्ठ रोध पुनि होवै तामे ॥ ३ ॥
तन्द्रा मोह अरु भ्रम परलापा ॥ अरुचि श्वास पुनि कास सँतापा ॥ ४ ॥
जिह्वा श्याम द्रव सी दीसै ॥ तीक्ष्ण स्पर्श पुनि विश्वा वीसे ॥ ५ ॥
अग शिथिल अति होवैं जासू ॥ नासा रुधिर स्रवैं सो तासू ॥ ६ ॥
कफ पित मिल्यो रुधिर मुख आवै ॥ रक्त पीत ज्यों वरण दिखावै ॥ ७ ॥
तृष्णा शोष शीस को चालै ॥ नींदें न आवैं काल अकालै ॥ ८ ॥
मल रु मूत्र चिर कालहु वरसै ॥ अल्प स्वेद पुनि अँग मे दरसैं ॥ ९ ॥
कण्ठकूज कफ की अति बाधा ॥ कुथित अङ्ग वा को नहि लाधा ॥ १० ॥
श्याम रक्त मण्डल है ऐसा ॥ ढाव्या खादा दाफड़ जैसा ॥ ११ ॥
भारी उदर सुने नहिं काना ॥ श्रोत्रपाक इत्यादिक नाना ॥ १२ ॥
वहुत काल में दोप जु पावै ॥ सन्निपातज्वर लक्षण सावै ॥ १३ ॥
सन्निपातज्वर सहज सुरूपा ॥ ग्रन्थान्तर मे वरण अनूपा ॥ १४ ॥

है (कुपित हो जाते हैं) वह सन्निपातज्वर कहलाता है, इस ज्वर में प्रायः ये चिह्न होते हैं कि–अकस्मात् क्षण भर में दाह होता है, क्षण भर में शीत लगता है, हाड़ सन्धि और मस्तक में शूल होता है, अश्रुपातयुक्त[1] गदले और लाल तथा फटे से नेत्र हो जाते हैं[2], कानों में शब्द और पीड़ा होती है, कण्ठ में कांटे पड़ जाते हैं, तन्द्रा तथा बेहोशी होती है, रोगी अनर्थप्रलाप (व्यर्थ बकवाद) करता है, खांसी, श्वास, अरुचि और भ्रम होता है, जीभ परिदग्धवत् (जले हुए पदार्थ के समान अर्थात् काली) और गाय की जीभ के समान खरदरी तथा शिथिल (लठर) हो जाती है, पित्त और रुधिर से मिला हुआ कफ थूक में आता है, रोगी शिर को इधर उधर पटकता है, तृषा बहुत लगती है, निद्रा का नाश होता है, हृदय में पीड़ा होती है, पसीना; मूत्र और मल, ये बहुत काल में थोड़े २ उतरते हैं, दोषों के पूर्ण होने से रोगी का देह कृश (दुबला) नहीं होता है, कण्ठ में कफ निरन्तर (लगातार) बोलता है, रुधिर से काले और लाल कोठ (टांटिये अर्थात् बर्रे के काटने से उत्पन्न हुए दाफड़ अर्थात् ददोड़े के समान) और चकत्ते होते हैं. शब्द बहुत मन्द (धीमा) निकलता है, कान; नाक और मुख आदि छिद्रों में पाक (पकना) होता है, पेट भारी रहता है तथा वात, पित्त और कफ, इन दोषों का देर में पाक होता है[3]।

१–अश्रुपातयुक्त अर्थात् आँसुओं की धारा सहित ॥

२–कफ के कारण गदले, पित्त के कारण लाल तथा वायु के कारण फटे से नेत्र होते हैं ॥

३–(प्रश्न) वात आदि तीन दोष परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं वे सब मिल कर एक ही कार्य सन्निपात को कैसे करते हैं, क्योंकि प्रत्येक दोष परस्पर (एक दूसरे) के कार्य का नाशक है, जैसे कि–अग्नि और जल परस्पर मिलकर समान कार्य को नहीं कर सकते हैं (क्योंकि परस्पर विरुद्ध हैं) इसी प्रकार वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष भी परस्पर विरुद्ध होने से एक विकार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं? (उत्तर) वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष साथ ही में प्रकट हुए हैं तथा तीनों बराबर हैं, इस लिये गुणों में परस्पर (एक दूसरे से) विरुद्ध होने पर भी अपने २ गुणों से दूसरे का नाश नहीं कर सकते हैं, जैसे कि–साँप अपने विष से एक दूसरे को नहीं मार सकते हैं, यही समाधान (जो हमने लिखा है) दृढबल आचार्य ने किया है, परन्तु इस प्रश्न का उत्तर गदाधर आचार्य ने दूसरे हेतु का आश्रय लेकर दिया है, वह यह है कि–विरुद्ध गुणवाले भी वात आदि दोष सन्निपातावस्था में दैवेच्छा से (पूर्व जन्म के किये हुए प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों के प्रभाव से) अथवा अपने स्वभाव से ही इकट्ठे रहते हैं तथा एक दूसरे का विघात नहीं करते हैं। (प्रश्न) अस्तु–इस बात को तो हम ने मान लिया कि–सन्निपातावस्था में विरुद्ध गुणवाले हो कर भी तीनों दोष एक दूसरे का विघात नहीं करते हैं परन्तु यह प्रश्न फिर भी होता है कि वात आदि तीनों दोषों के सञ्चय और प्रकोप का काल पृथक् २ है इस लिये वे सब ही एक काल में न तो प्रकट ही हो सकते हैं (क्योंकि सञ्चय का काल पृथक् २ है) और न प्रकुपित ही हो सकते हैं (क्योंकि जब तीनों का सञ्चय ही नहीं है फिर प्रकोप कहाँ से हो सकता है) तो ऐसी दशा में सन्निपात रूप कार्य कैसे हो सकता है? क्योंकि कार्य का होना कारण के आधीन है। (उत्तर) तुम्हारा यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में वात आदि दोष स्वभाव से ही विद्यमान हैं, वे (तीनों दोष) अपने (त्रिदोष) को प्रकट करनेवाले निदान के बल से एक साथ ही प्रकुपित हो जाते हैं अर्थात् त्रिदोषकर्त्ता मिथ्या आहार और मिथ्या विहार से तीनों ही दोष एक ही काल में कुपित हो जाते हैं और कुपित हो कर सन्निपात रूप कार्य को उत्पन्न कर देते हैं ॥

इन लक्षणों के सिवाय वाग्भट्टने ये भी लक्षण कहे हैं कि–इस ज्वर में शीत लगता है, दिन में घोर निद्रा आती है, रात्रिमें नित्य जागता है, अथवा निद्रा कभी नहीं आती है, पसीना बहुत आता है, अथवा आता ही नहीं है, रोगी कभी गान करता है (गाता है), कभी नाचता है, कभी हँसता और रोता है तथा उस की चेष्टा पलट (बदल) जाती है, इत्यादि ।

यह भी स्मरण रहे कि–इन लक्षणों में से थोड़े लक्षण कष्टसाध्य में और पूरे (ऊपर कहे हुए सब) लक्षण प्रायः असाध्य सन्निपात में होते हैं ।

विशेषवक्तव्य—सन्निपातज्वर में जब रोगी के दोषों का पाचन होता है अर्थात् मल पकते हैं तब ही आराम होता है अर्थात् रोगी होश में आता है, यह भी जान लेना चाहिये कि–जब दोषों का वेग (जोर) कम होता है तब आराम होने की अवधि (मुद्दत) सात दश वा बारह दिन की होती है, परन्तु यदि दोष अधिक बलवान् हों तो आराम होने की अवधि चौदह बीस वा चौबीस दिन की जाननी चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सन्निपात ज्वर में बहुत ही सँभाल रखनी चाहिये, किसी तरह की गड़बड़ नहीं करनी चाहिये अर्थात् अपने मनमाना तथा मूर्ख वैद्य से रोगी का कभी इलाज नहीं करवाना चाहिये, किन्तु बहुत ही धैर्य (धीरज)के साथ चतुर वैद्य से परीक्षा करा के उस के कहने के अनुसार रस आदि दवा देनी चाहिये, क्योंकि सन्निपात में रस आदि दवा ही प्रायः विशेष लाभ पहुँचाती है, हां चतुर वैद्य की सम्मति से दिये हुए काष्ठादि ओषधियों के काढे आदि से भी फायदा होता है, परन्तु पूरे तौर से तो फायदा इस रोग में रसादि दवा से ही होता है और उन रसों की दवा में भी शीघ्र ही फायदा पहुँचानेवाले ये रस मुख्य है–हेमगर्भ, अमृतसञ्जीवनी, मकरध्वज, षड्गुणगन्धक और चन्द्रोदय आदि, ये सब प्रधानरस पान के रस के साथ, आर्द्रक (अदरख) के रसमें, सोंठ के साथ, लौंग के साथ तथा तुलसी के पत्तों के रस के साथ देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी की ज़बान बन्द हो तो सहजने की छाल के रस के साथ इन में से किसी रस को ज़रा गर्म कर के देना चाहिये, अथवा असली अम्बर वा कस्तूरी के साथ देना चाहिये ।

यदि ऊपर कहे हुए रसों में से कोई भी रस विद्यमान (मौजूद) न हो तो साधारण रस ही इस रोग में देने चाहियें जैसे–ब्राह्मी गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरभैरव, आनन्द-भैरव और अमरसुन्दरी आदि, क्योंकि ये रस भी सामान्य (साधारण) दोष में काम दे सकते हैं ।

इन के सिवाय तीक्ष्ण (तेज़) नस्य का देना तथा तीक्ष्ण अञ्जन का आंखों में डालना आदि क्रिया भी विद्वान् वैद्य के कथनानुसार करनी चाहिये ।

उग्र (बड़े वा तेज़) सन्निपात में एक महीनेतक खूब होशियारी के साथ पथ्य तथा दवा का वर्त्ताव करना चाहिये तथा यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सोलह सेर जल का उबालने से जब एक सेर जल रह जावे तब उस जल को रोगी को देना चाहिये, क्योंकि यह जल दस्त, वमन (उलटी), प्यास तथा सन्निपात में परम हितकारक है अर्थात् यह सौ मात्रा की एक मात्रा है ।

इस के सिवाय जब तक रोगी का मल शुद्ध न हो, होश न आवे तथा सब इन्द्रियां निर्मल न हो जावें तब तक और कुछ खाने पीने को नही देना चाहिये[1] अर्थात् रोगी को इस रोग में उत्कृष्टतया (अच्छे प्रकार से) बारह लंघन अवश्य करवा देने चाहियें[2], अर्थात् उक्त समय तक केवल ऊपर लिखे हुए जल और दवा के सहारे ही रोगी को रखना चाहिये, इस के बाद मूंग की दाल का, अरहर (तूर) की दाल का तथा खारक (छुहारे) का पानी देना चाहिये, जब खूब (कड़क कर) भूख लगे तब दाल के पानी में भात को मिला कर थोड़ा २ देना चाहिये, इस के सेवन के २५ दिन बाद देश की खुराक के अनुसार रोटी और कुछ घी देना चाहिये ।

कर्णक नाम का सन्निपात तीन महीने का होता है, उस का खयाल उक्त समय तक वैद्य के वचन के अनुसार रखना चाहिये, इस बीच में रोगी को खाने को नही देना चाहिये, क्योंकि सन्निपात रोगी को पहिले ही खाने को देना विष के तुल्य असर करता है, इस रोग में यदि रोगी को दूध दे दिया जावे तो वह अवश्य ही मर जाता है ।

सन्निपात रोग काल के सदृश है इस लिये इस में सप्तस्मरण का पाठ और दान पुण्य आदि को भी अवश्य करना चाहिये, क्यों कि सन्निपात रोग के होने के बाद फिर उसी शरीर से इस संसार की हवा का प्राप्त होना मानो दूसरा जन्म लेना है ।

इस वर्त्तमान समय में विचार कर देखने से विदित होता है कि—अन्य देशों की अपेक्षा मरुस्थल देश में इस के चक्कर में आ कर बचनेवाले बहुत ही कम पुरुष होते है, इस का कारण व्यवहार नय की अपेक्षासे हम तो यही कहेंगे कि—उन को न तो ठीक तौर से ओषधि ही मिलती है और न उन की परिचर्या (सेवा) ही अच्छे प्रकार से की जाती है, बस इसी का यह परिणाम होता है कि—उन को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है ।

पूर्व समय में इस देशके निवासी धनाढ्य (अमीर) सेठ और साहूकार आदि ऊपर

१—क्योंकि मल की शुद्धि और इन्द्रियो के निर्मल हुए विना आहार को दे देने से पुन. दोषों के अधिक कुपित हो जाने की सम्भावना होती है, सम्भावना क्या—दोष कुपित हो ही जाते हैं ॥

२—उत्कृष्टतया बारह लघनों के करवा देने से मल और कुपित दोषों का अच्छे प्रकार से पाचन हो जाता है, ऐसा होने से जठराग्नि मे भी कुछ बल आ जाता है ॥

कहे हुए रसों को विद्वान् वैद्यों के द्वारा बनवा कर सदा अपने घरों में रखते थे[1] तथा अवसर (मौक़ा) पड़ने पर अपने कुटुम्ब, सगे, सम्बन्धी और ग़रीब लोगों को देते थे, जिससे रोगियों को तत्काल लाभ पहुँचता था और इस भयंकर रोग से बच जाते थे, परन्तु वर्त्तमान में वह बात बहुत ही कम देखने में आती है, कहिये ऐसी दशा में इस रोग में फँस कर बेचारे ग़रीबों की क्या व्यवस्था हो सकती है? इस पर भी आश्चर्य का विषय यह है कि उक्त रस वैद्यों के पास भी बने हुए शायद ही कहीं मिल सकते है, क्यों कि उन के बनाने में द्रव्य की तथा गुरुगमता की आवश्यकता है, और न ऐसे दयावान् वैद्य ही देखे जाते हैं कि ऐसी कीमती दवा गरीबों को मुफ्त में दे देवें।

पूर्व समय में ऊपर लिखे अनुसार यहां के धनाढ्य सेठ और साहूकार परमार्थ का विचार कर वैद्यों के द्वारा रसोंको बनवा कर रखते थे और समय आने पर अपने कुटुम्बियों सगे सम्बन्धियों और ग़रीबों को देते थे, परन्तु अब तो परमार्थ का विचार, श्रद्धा तथा दया के न होने से वह समय नहीं है, किन्तु अब तो यहां के धनाढ्य लोग अविद्या देवी के प्रसाद से व्याह शादी गांवसारणी और औसर आदि व्यर्थ कामों में हज़ारों रुपये अपनी तारीफ़ के लिये लगा देते हैं और दूसरे अविद्या देवी के उपासक जन भी उन्हीं कामों में व्यय करने से जब उन की तारीफ करते हैं तब वे बहुत ही खुश होते हैं, परन्तु विद्या देवी के उपासक विद्वान् जन ऐसे कामों में व्यय करने की कभी तारीफ़ नही कर सकते है, क्यों कि ऐसे व्यर्थ कार्यों में हज़ारों रुपयोंका व्यय कर देना शिष्टसम्मत (विद्वानों की सम्मति के अनुकूल) नहीं है।

पाठक गण ऊपर के लेख से मरुदेश के धनाढ्यों और सेठ साहूकारों की उदारता का परिचय अच्छे प्रकारसे पा गये होंगे, अब कहिये ऐसी दशा में इस देश के कल्याण

१–वर्त्तमान समय में तो यहा के (मरुस्थल देश के) निवासी धनाढ्य सेठ और साहूकार आदि ऐसे मलीन हृदय के हो रहे हैं कि इन के विषय में कुछ कहा नहीं जाता है किन्तु अन्तःकरण में ही महासन्ताप करना पड़ता है, इन के चरित्र और बर्त्ताव ऐसे निन्द्य हो रहे हैं कि जिन्हें देखकर दारुण दुःख उत्पन्न होता है, ये लोग धन पाकर ऐसे मदोन्मत्त हो रहे हैं कि इन को अपने कर्त्तव्य की कुछ भी सुधि बुधि नहीं है, रातदिन इन लोगों का कुत्सिताचारी दुर्जनों के साथ सहवास रहता है, विद्वान् और ज्ञानवान् पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी भर भी अच्छी नहीं लगती है, यदि कोई योग्य पुरुष इन के पास आकर बैठता है तो इन की आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि–कब यह पुरुष उठ कर जावे और हम उपहास ठट्ठा तथा दिल्लगी बाजी में अपने समय को वितावें, हँसी ठट्ठा करना, स्त्रियों को देखना, उन की चर्चा करना, तास वा चौपड का खेलना, भंग आदि मादक द्रव्यों का सेवन करना, दूसरों की निन्दा करना तथा अमूल्य समय को व्यर्थ मे नष्ट करना, यही इन का रातदिन का कार्य है, यह हम नहीं कहते हैं कि–मरुस्थल देशवासी सब ही धनाढ्य सेठ साहूकार आदि ऐसे हैं क्योकि यहा भी कितनेक विद्वान् धर्मात्मा और विचारशील पुरुष देखे जाते हैं जो कि–दया और सद्भाव आदि गुणों से युक्त हैं, परन्तु अधिकांश में उन्हीं लोगों की संख्या है जिन का वर्णन हम अभी कर चुके है ॥

की संभावना कैसे हो सकती है? हां इस समय में हम मुर्शिदाबाद के निवासी धनाढ्य और सेठ साहूकारों को धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते है, क्यों कि उन में अब भी ऊपर कही हुई बात कुछ २ देखी जाती है, अर्थात् उस देश में बड़े रसों में से मकरध्वज और साधारण रसों में विलासगुटिका, ये दो रस प्रायः श्रीमानों के घरों में बने हुए तैयार रहते हैं और मौके पर वे सब को देते भी हैं, वास्तव में यह विद्यादेवी के उपासक होने की ही एकनिशानी है[3] ।

अन्त में हमारा कथन केवल यही है कि-हमारे मरुस्थल देश के निवासी श्रीमान् लोग ऊपर लिखे हुए लेख को पढ़ कर तथा अपने हिताहित और कर्तव्यका विचार कर सन्मार्ग का अवलम्बन करें तो उन के लिये परम कल्याण हो सकता है, क्यों कि अपने कर्तव्य में प्रवृत्त होना ही परलोकसाधन का एक मुख्य सोपान (सीढ़ी) है[4] ॥

आगन्तुक ज्वर का वर्णन ॥

कारण—शस्त्र और लकड़ी आदि की चोट तथा काम, भय और क्रोध आदि बाहर के कारण शरीरपर अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करते है, उसे आगन्तुक ज्वर कहते हैं, यद्यपि अयोग्य आहार और विहार से विगड़ी हुई वायु भी आमाशय (होजरी) में जाकर भीतर की अग्नि को विगाड़ कर रस तथा खून में मिल कर ज्वर को उत्पन्न करती है परन्तु यह कारण सब प्रकार के ज्वरों का कारण नही हो सकता है—क्यों कि ज्वर दो प्रकार का है—शारीरिक और आगन्तुक, इन में से शारीरिक स्वतन्त्र (स्वाधीन) और आगन्तुक परतन्त्र (पराधीन) है, इन में से शारीरिक ज्वर में ऊपर लिखा हुआ कारण हो सकता है, क्यों कि शारीरिक ज्वर वायु का कोप होकर ही उत्पन्न होता है, किन्तु आगन्तुक ज्वर में पहिले ज्वर चढ जाता है पीछे दोष का कोप होता है, जैसे—

१—इन को वहा की बोली में बाबू कहते हैं, इन के पुरुषाजन वास्तव मे मरुस्थलदेश के निवासी थे ॥

२—इस को वहा की देश भाषा मे लक्खी विलासगुटिका कहते हैं ॥

३—क्योंकि उन के हृदय में दया और परोपकार आदि मानुषी गुण विद्यमान है ॥

४—उन को स्मरण रखना चाहिये कि यह मनुष्य जन्म बडी कठिनता से प्राप्त होता है तथा वारंवार नहीं मिलता है, इस लिये पशुवत् व्यवहारों को छोड कर मानुषी वर्त्ताव को अपने हृदय मे स्थान दें, विद्वानों और ज्ञानी महात्माओं की सङ्गति करें, कुछ शक्ति के अनुसार शास्त्रों का अभ्यास करें, लक्ष्मी और तज्जन्य विलास को अनित्य समझ कर द्रव्य को सन्मार्ग मे खर्च कर परलोक के सुख का सम्पादन करें, क्योंकि इस मल से भरे हुए तथा अनित्य शरीर से निर्मल और शाश्वत (नित्य रहनेवाले) परलोक के सुख का सम्पादन कर लेना ही मानुषी जन्म की कृतार्थता है ॥

५—आदि शब्द से भूत आदि का आवेश, अभिचार (घात और मूठ आदि का चलाना), अभिशाप (ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और महात्मा आदि का शाप) विषभक्षण, अग्निदाह तथा हड्डी आदि का टूटना, इत्यादि कारण भी समझ लेने चाहियें ॥

६—यह स्वाधीन इस लिये है कि अपने ही किये हुए मिथ्या आहार और विहार से प्राप्त होता है ॥

ो। काम शोक तथा डर से चढ़े हुए ज्वर में पित्त का कोप होता है और भूतादि के प्रतिबिम्ब के बुखार में आवेश होनेसे तीनों दोषोंका कोप होता है, इत्यादि।

भेद तथा लक्षण—१–विषजन्य (विषसे पैदा होनेवाला) आगन्तुक ज्वर–विष के खाने से चढ़े हुए ज्वर में रोगी का मुख काला पड़ जाता है, सुई के चुभाने के समान पीड़ा होती है, अन्न पर अरुचि, प्यास और मूर्छा होती है, स्थावर विषसे उत्पन्न हुए ज्वर में दस्त भी होते हैं, क्यों कि विष नीचे को गति करता है तथा मल आदि से युक्त वमन (उलटी) भी होती है।

२–ओषधिगन्धजन्य ज्वर—किसी तेज तथा दुर्गन्धयुक्त वनस्पति की गन्ध से चढ़े हुए ज्वर में मूर्छा, शिर में दर्द तथा क़य (उलटी) होती है।

३–कामज्वर—अभीष्ट (प्रिय) स्त्री अथवा पुरुष की प्राप्ति के न होने से उत्पन्न हुए ज्वर को कामज्वर कहते है, इस ज्वर में चित्तकी अस्थिरता (चञ्चलता), तन्द्रा (ऊंघ) आलस्य, छाती में दर्द, अरुचि, हाथ पैरों का ऐंठना, गलहस्त (गलहत्था) देकर फिक्र का करना, किसी की कही हुई बात का अच्छा न लगना, शरीर का सूखना, मुँह पर पसीने का आना तथा निःश्वास का होना आदि चिह्न होते[2] हैं।

४–भयज्वर—डर से चढ़े हुए ज्वर में रोगी प्रलाप (बकवाद) बहुत करता है।

५–क्रोधज्वर—क्रोध से चढ़े हुए ज्वर में कम्पन (काँपनी) होता[3] है तथा मुख कडुआ रहता है।

६–भूताभिषङ्गज्वर—इस ज्वर में उद्वेग, हँसना, गाना, नाचना, काँपना तथा अचिन्त्य शक्ति का होना आदि चिह्न होते हैं।

इन के सिवाय क्षतज्वर अर्थात् शरीर में घाव के लगने से उत्पन्न होनेवाला ज्वर, दाहज्वर, श्रमज्वर (परिश्रम के करने से उत्पन्न हुआ ज्वर) और छेदज्वर (शरीर के किसी भाग के कटने से उत्पन्न हुआ ज्वर) आदिज्वरों का इस आगन्तुक ज्वर में ही समावेश होता है।

१–वाग्भट्टने इस ज्वरके लक्षण–भ्रम, अरुचि, दाह और लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धैर्य का नाश माने हैं॥

२–स्त्री के कामज्वर होने पर मूर्छा, देह का टूटना, प्यास का लगना, नेत्र स्तन और मुख का चञ्चल होना, पसीनों का आना तथा हृदय में दाह का होना-ये लक्षण होते हैं॥

३–(प्रश्न) कम्पन का होना वात का कार्य है फिर वह (कम्पन) क्रोध ज्वर मे कैसे होता है, क्योंकि क्रोध में तो पित्त का प्रकोप होता है? (उत्तर) पहिले कह चुके हैं कि एक कुपित हुआ दोष दूसरे दोप को भी कुपित करता है इसलिये पित्त के प्रकोप के कारण वात भी कुपित हो जाता है और उसी से कम्पन होता है, अथवा क्रोध से केवल पित्त का ही प्रकोप होता है, यह बात नहीं है किन्तु–वात का भी प्रकोप होता है, जैसा कि–विदेह आचार्य ने कहा है कि–"क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपनौ" अर्थात् क्रोध और शोक ये दोनों वात, पित्त और रक्त को प्रकुपित करनेवाले माने गये हैं, बस जब क्रोध से वात का भी प्रकोप होता है तो उस से कम्पन का होना साधारण बात है॥

चिकित्सा—१–विष से तथा ओषधि के गन्ध से उत्पन्न हुए ज्वर में–पित्तशमन, कर्त्ता (पित्त को शान्त करनेवाला) औषध लेना चाहिये[1], अर्थात् तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, कबावचीनी, अगर, केशर और लौंग, इन में से सब वा थोड़े सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा उनका काथ (काढा) बना कर पीना चाहिये ।

२–काम से उत्पन्न हुए ज्वर में–वाला, कमल, चन्दन, नेत्रवाला, तज, धनियाँ तथा जटामांसी आदि शीतल पदार्थों की उकाली, ठंढा लेप तथा इच्छित वस्तु की प्राप्ति आदि उपाय करने चाहियें ।

३–क्रोध, भय और शोक आदि मानसिक (मनःसम्बन्धी) विकारों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–उन के कारणों को (क्रोध, भय और शोक आदिको) दूर करने चाहियें, रोगी को धैर्य (दिलासा) देना चाहिये, इच्छित वस्तु की प्राप्ति करानी चाहिये, यह ज्वर पित्त को शान्त करनेवाले शीतल उपचार, आहार और विहार आदि से मिट जाता है ।

४–चोट, श्रम, मार्गजन्य श्रान्ति (रास्ते में चलने से उत्पन्न हुई थकावट) और गिर जाना इत्यादि कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–पहिले दूध और भात खाने को देना चाहिये तथा मार्गजन्य श्रान्ति से उत्पन्न हुए ज्वर में तेल की मालिश करवानी चाहिये तथा सुखपूर्वक (आराम के साथ) नींद लेनी चाहिये ।

५–आगन्तुक ज्वरवाले को लंघन नहीं करना चाहिये[2] किन्तु स्निग्ध (चिकना), तर तथा पित्तशामक (पित्त को शान्त करनेवाला) शीतल भोजन करना चाहिये और मन को शान्त रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ज्वर नरम (मन्द) पड़ कर उतर जाता है ।

६–आगन्तुकज्वर वाले को वारंवार सन्तोष देना तथा उस के प्रिय पदार्थों की प्राप्ति कराना अति लाभदायक होता है, इस लिये इस बात का अवश्य खयाल रखना चाहिये[3] ॥

विषमज्वर का वर्णन ॥

कारण—किसी समय में आये हुए ज्वर के दोषों का शास्त्र की रीति के विना किसी प्रकार निवारण करने के पीछे, अथवा किसी ओषधि[4] से ज्वर को दबा देने से जब उस

१–इन दोनों (विषजन्य तथा ओषधिगन्धजन्य) ज्वरों में–पित्त प्रकुपित हो जाता है इस लिये पित्त को शान्त करनेवाली ओषधि के लेने से पित्त शान्त हो कर ज्वर शीघ्र ही उतर जाता है ॥

२–वाग्भट ने लिखा है कि "शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लङ्घनम्" नेष्यते, इति शेषः, अर्थात् शुद्ध वात में (केवल वातजन्य रोग में), क्षयजन्य (क्षयसे उत्पन्न हुए) ज्वर में, आगन्तुकज्वर में तथा जीर्णज्वर में लंघन नहीं करना चाहिये, बस यही सम्मति प्रायः सब आचार्यों की है ॥

३–इस ज्वर का सम्बन्ध प्राय. मन के साथ होता है इसी लिये मन को सन्तोष प्राप्त होने से तथा अभीष्ट वस्तु के मिलने से मन की शान्तिद्वारा यह ज्वर उतर जाता है ॥

४–जैसे क्विनाइन आदि से ॥

की लिंगस (अंश) नहीं जाती है तब वह ज्वर धातुओं में छिप कर ठहर जाता है तथा अहित आहार और विहार से दोष कोप को प्राप्त होकर पुनः ज्वर को प्रकट कर देते[1] हैं उसे विषमज्वर कहते हैं, इस के सिवाय–इस ज्वर की उत्पत्ति खराब हवा आदि दूसरे कारणों से भी प्रारंभ दशों में हो जाती है[2]।

लक्षण—विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है[3], न उस में ठंढ वा गर्मी का कोई नियम है और न उस के वेग की ही तादाद है, क्योंकि यह ज्वर किसी समय थोड़ा तथा किसी समय अधिक रहता है, किसी समय ठंढ और किसी समय गर्मी लग कर चढ़ता है, किसी समय अधिक वेग से और किसी समय मन्द (कम) वेग से चढ़ता है तथा इस ज्वर में प्रायः पित्त का कोप होता है।

भेद—विषम ज्वर के पांच भेद हैं—सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क (एकान्तरा), तेजरा और चौथिया, अब इन के स्वरूप का वर्णन किया जाता है:—

१–सन्तत—बहुत दिनोंतक विना उतरे ही अर्थात् एकसदृश रहनेवाले ज्वर को सन्तत कहते हैं, यह ज्वर वातिक (वायु से उत्पन्न हुआ) सात दिन तक, पैत्तिक (पित्त से उत्पन्न हुआ) दश दिन तक और कफज (कफ से उत्पन्न हुआ) बारह दिन तक अपने २ दोष की शक्ति के अनुसार रह कर चला जाता है, परन्तु पीछे (उतर कर पुनः) फिर भी बहुत दिनों तक आता रहता[4] है, यह ज्वर शरीर के रस नामक धातु में रहता[5] है।

१–तात्पर्य यह है कि जब प्राणी का ज्वर चला जाता है तब अल्प दोष भी अहित आहार और विहार के सेवन से पूर्ण होकर रस और रक्त आदि किसी धातु में प्राप्त होकर तथा उस को दूषित (विगाड़) कर फिर विषम ज्वर को उत्पन्न कर देता है ॥

२–अर्थात् ज्वर की प्रारम्भदशा में जब खराब वा विषैली हवा का सेवन अथवा प्रवेश आदि हो जाता है तब भी वह ज्वर विकृत होकर विषमज्वररूप हो जाता है ॥

३–"विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है" इस कथन का तात्पर्य यह है कि–जैसे वातजन्य ज्वर सात रात्रि तक, पित्तज्वर दश रात्रि तक तथा कफज्वर बारह रात्रि (दिन) तक रहता है तथा प्रबल वेग होने से वातजन्य चौदह दिन तक, पि॰ज्वर तीस दिन तक तथा कफज्वर चौवीस दिन तक रहता है, इस प्रकार विषमज्वर नहीं रहता है, अर्थात् इस का नियमित काल नहीं है तथा इस के वेग का भी नियम नहीं है अर्थात् कभी प्रचण्ड वेग से चढ़ता है और कभी मन्द वेग से चढ़ता है ॥

४–इस ज्वर से सततज्वर भिन्न है, क्योंकि सततज्वर प्रायः दिन रात में दो वार चढ़ता है अर्थात् एक वार दिन में और एक वार रात्रि में, क्योंकि–प्रत्येक दोष का रात दिन में दो वार प्रकोप का समय आता है परन्तु यह वैसा नहीं है, क्योंकि यह तो अपनी स्थिति के समय बराबर बना ही रहता है ॥

५–परन्तु किन्हीं आचार्यों की सम्मति है कि–यह ज्वर शरीर के रस और रक्त नामक (दोनों) धातुओं में रहता है ॥

२–सतत—बारह घण्टे के अन्तर से आनेवाले तथा दिन में और रात्रि समय आनेवाले ज्वर को सतत कहते हैं, इस ज्वर का दोष रक्त (खून) नामक रहता है।

३–अन्येद्युष्क (एकान्तरा)—यह ज्वर सदा २४ घण्टे के अन्तर से अर्थात् प्रतिदिन एक वार चढता और उतरता है[2], यह ज्वर मांस नामक धातु में र

४–तेजरा—यह ज्वर ४८ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में ए नहीं आता है[3], इस को तेजरा कहते हैं परन्तु इस ज्वर को कोई आचार्य एकान्त है, यह ज्वर मेद नामक धातु में रहता है।

५–चौथिया—यह ज्वर ७२ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में न आकर तीसरे दिन आता है, इस को चौथिया ज्वर कहते हैं, इस का दोष (हाड़) नामक धातु में तथा मज्जा नामक धातु में रहता है।

इस ज्वरों में दोष भिन्न २ धातुओं का आश्रय लेकर रहता है इसलिये इस ज वैद्यजन रसगत, रक्तगत, इत्यादि नामों से कहते हैं, इन में पूर्व २ की अपेक्षा उ अधिक भयंकर होता है[7], इसी लिये इस अनुक्रम से अस्थि तथा मज्जा धातु में गय (प्राप्त हुआ) चौथिया ज्वर अधिक भयङ्कर होता है, इस ज्वर में जब दोष पहुँच जाता है तब प्राणी अवश्य मर जाता है।

अब विषमज्वरों की सामान्यतया तथा प्रत्येक के लिये भिन्न २ चिकित्सा लिखते

१–क्योंकि दोष के प्रकोप का समय दिन और रातभर में (२४ घण्टे में) दो वार आता है ॥

२–इस में दिन वा रात्रि का नियम नहीं है कि दिन ही में चढे वा रात्रि में ही चढे किन्तु २४ नियम है ॥

३–अर्थात् तीसरे दिन आता है, इस में ज्वर के आने का दिन भी ले लिया जाता है अर्था दिन आता है उस दिन समेत तीसरे दिन पुनः आता है ॥

४–तीसरे दिन से तात्पर्य यहां पर ज्वर आने के दिन का भी परिगणन कर के चौथे दिन क्योंकि ज्वर आने के दिन का परिगणन कर के ही इस का नाम चातुर्थिक वा चौथिया रक्खा गया

५–इस ज्वर में अर्थात् विषमज्वर में ॥

६–अर्थात् आश्रय की अपेक्षा से नाम रखते हैं, जैसे–सन्तत को रसगत, सतत को रक्तगत, अ को मांसगत, तेजरा को मेदोगत तथा चौथिया को मज्जास्थिगत कहते हैं ॥

७–अर्थात् सन्तत से सतत, सतत से अन्येद्युष्क, अन्येद्युष्क से तेजरा और तेजरे से चौथिया भयकर होता है ॥

८–अर्थात् सब की अपेक्षा चौथिया ज्वर अधिक भयकर होता है ॥

९–सम्पूर्ण विषमज्वर सन्निपात से होते हैं परन्तु इन में जो दोष अधिक हो उन में उसी प्रधानता से चिकित्सा करनी चाहिये, विषमज्वरों में भी देह का ऊपर नीचे से (वमन और विरे द्वारा) शोधन करना चाहिये तथा स्निग्ध और उष्ण अन्नपानों से इन (विषम) ज्वरों को जीतना चा

चिकित्सा—१–**सन्तत ज्वर**—इस ज्वर में–पटोल, इन्द्रयव, देवदारु, गिलोय और नीम की छाल का क्वाथ देना चाहिये ।

२–**सततज्वर**—इस ज्वर में–त्रायमाण, कुटकी, धमासा और उपलसिरी का क्वाथ देना चाहिये ।

३–**अन्येद्युष्क (एकान्तर)**—इस ज्वर में–दाख, पटोल, कडुआ नीम, मोथ, इन्द्रयव तथा त्रिफला, इन का क्वाथ देना चाहिये ।

४–**तेजरा**—इस ज्वर में–बाला, रक्तचन्दन, मोथ, गिलोय, धनिया और सोंठ, इन का क्वाथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये ।

५–**चौथिया**—इस ज्वर में–अडूसा, आँवला, सालवण, देवदारु, जौं हरड़ें और सोंठ का क्वाथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये ।

सामान्य चिकित्सा—६–दोनों प्रकार की (छोटी बड़ी) रींगणी, सोंठ, धनिया और देवदारु, इन का क्वाथ देना चाहिये, यह क्वाथ पाचन है इस लिये विषमज्वर तथा सब प्रकार के ज्वरों में इस क्वाथ को पहिले देना चाहिये ।

७–**मुस्तादि क्वाथ**—मोथ, भूरींगणी, गिलोय, सोंठ और आँवला, इन पांचों की उकाली को शीतल कर शहद तथा पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये ।

८–**ज्वरांकुश**—शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाग, सोंठ, मिर्च और पीपल, इन छःओं पदार्थों का एक एक भाग तथा शुद्ध किये हुए धतूरे के बीज दो भाग लेने चाहियें, इन में से प्रथम पारे और गन्धक की कजली कर शेष चारों पदार्थों को कपड़छान कर तथा सब को मिला कर नींबू के रसमें खूब खरल कर दो दो रत्ती की गोलियां बनानी चाहियें, इन में से एक वा दो गोलियों को पानी में वा अदरख के रस में अथवा सोंठ के पानी में ज्वर आने तथा ठंढ लगने से आध घण्टे अथवा घण्टे भर पहिले लेना चाहिये, इस से ज्वर का आना तथा ठंढ का लगना बिलकुल बन्द हो जाता है, ठंढ के ज्वर में ये गोलियां किनाइन से भी अधिक फायदेमन्द हैं ।

१–पहिले इसी क्वाथ के देने से दोषों का पाचन होकर उन का वेग मन्द हो जाता है तथा उन की प्रबलता मिट जाती है और प्रबलता के मिट जाने से पीछे दी हुई साधारण भी ओषधि शीघ्र ही तथा विशेष फायदा करती है ॥

२–भूरींगणी अर्थात् कटेरी ॥

३–आते हुए ज्वर के रोकने के लिये तथा ठंढ लगने को दूर करने के लिये यह (ज्वरांकुश) बहुत उत्तम ओषधि है ॥

४–खरल कर अर्थात् खरल में घोंट कर ॥

५–क्योंकि ये गोलियां ठंढ को मिटा कर तथा शरीर में उष्णता का सञ्चार कर बुखार को मिटाती हैं और शरीर में शक्ति को भी उत्पन्न करती हैं ॥

फुटकर चिकित्सा—९–चौथिया तथा तेजरा के ज्वर में अगस्त के पत्तों का रस अथवा उस के सूखे पत्तों को पीस तथा कपड़छान कर रोगी को सुँघाना चाहिये तथा पुराने घी में हींग को पीस कर सुँघाना चाहिये।

१०–इन के सिवाय–सब ही विषम ज्वरों में ये (नीचे लिखे) उपाय हितकारी हैं– काली मिर्चें तथा तुलसी के पत्तों को घोट कर पीना चाहिये, अथवा–काली जीरी तथा गुड़ में थोड़ी सी काली मिर्चें को डाल कर खाना चाहिये, अथवा–सोंठ जीरा और गुड़, इन को गर्म पानी में अथवा पुराने शहद में अथवा गाढ़ी छाछ मै पीना चाहिये, इस के पीने से ठंढ का ज्वर उतर जाता है, अथवा–नीम की भीतरी छाल, गिलोय तथा चिरायते के पत्ते, इन तीनों में से किसी एक वस्तु को रात को भिगा कर प्रातःकाल कपड़े से छान कर तथा उस जल में मिश्री मिला कर और थोड़ी सी काली मिर्चें डाल कर पीना चाहिये, इस के पीने से ठंढ के ज्वर में बहुत फायदा होता है।

स्मरण रहे कि–देशी इलाजों में से वनस्पति के काथ के लेने में सब प्रकार की निर्भयता है तथा इस के सेवन में धर्म का संरक्षण भी है क्योंकि सब प्रकार के काढ़े ज्वर के होने पर तथा न भी होने पर प्रति समय दिये जा सकते है, इस के अतिरिक्त–इन से मल का पाचन होकर दस्त भी साफ़ आता है, इस लिये इन के सेवन के समय में साफ़ दस्त के आने के लिये पृथक् जुलाब आदि के लेने की आवश्यकता नहीं रहती है, तात्पर्य यह है कि–वनस्पति का काथ सर्वथा और सर्वदा हितकारी है तथा साधारण चिकित्सा है, इसलिये जहां तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये[2] ॥

सन्तत ज्वर (रिमिटेंट फीवर) का विशेष वर्णन ॥

कारण—विषमज्वर का कारण यह सन्ततज्वर ही है जिस के लक्षण तथा

१–इस के–अगस्त्य, वगसेन, मुनिपुष्प और मुनिद्रुम, ये संस्कृत नाम हैं, हिन्दी मे इसे अगस्त अगस्तिया तथा हथिया भी कहते हैं, बगाली में–बक, मराठी में–हदगा, गुजराती में–अगथियों तथा अंग्रेजी में आण्डी फलोरा कहते हैं, इस का वृक्ष लम्बा होता है और इस पर पत्तेवाली बेलें अधिक चढती हैं, इस के पत्ते इमली के समान छोटे २ होते हैं, फूल सफेद, पीला, लाल और काला होता है अर्थात् इस का फूल चार प्रकार का होता है तथा वह (फूल) केसूला के फूल के समान वाका (टेढ़ा) और उत्तम होता है, इस वृक्ष की लम्बी पतली और चपटी फलिया होती हैं, इस के पत्ते शीतल, रूक्ष, वातकर्ता और कड़ुए होते हैं, इस के सेवन से पित्त, कफ, चौथिया ज्वर और सरेकमा दूर हो जाता है ॥

२–यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि–वनस्पति की खुराक तथा रूपान्तर में उस का सेवन प्राणियों के लिये सर्वदा हितकारक ही है, यदि वनस्पति का काथ आदि कोई पदार्थ किसी रोगी के अनुकूल न भी आवे तो उसे छोड देना चाहिये परन्तु उस से शरीर में किसी प्रकार का विकार होकर हानि की सम्भावना कभी नहीं होती है जैसी कि अन्य रसादि की मात्राओं आदि से होती है, इसी लिये ऊपर कहा गया है कि–जहा तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये ॥

इस रोग में जो यह प्रथा देखी जाती है कि— शील और ओरी आदिवाले रोगी को पड़दे में रखते हैं तथा दूसरे आदमियों को उस के पास नही जाने देते हैं, सो यह प्रथा तो प्रायः उत्तम ही है परन्तु इस के असली तत्त्व को न समझ कर लोग भ्रम (वहम) के मार्ग में चलने लगे हैं, देखो! रोगी को पड़दे में रखने तथा उस के पास दूसरे जनों को न जाने देने का कारण तो केवल यही है कि—यह रोग चेपी है, परन्तु भ्रम में पड़े हुए जन उस का तात्पर्य यह समझते हैं कि—रोगी के पास दूसरे जनों के जाने से शीतला देवी क्रुद्ध हो जावेगी इत्यादि, यह केवल उन की मूर्खता और अज्ञानता ही है[1] ।

रोगी के सोने के स्थान में स्वच्छता (सफाई) रखनी चाहिये, वहां साफ हवा को आने देना चाहिये[2], अगरबत्ती आदि जलानी चाहिये वा धूप आदिके द्वारा उस स्थान को सुगन्धित रखना चाहिये कि जिस से उस स्थान की हवा न बिगड़ने पावे[3] ।

रोगी के अच्छे होने के बाद उस के कपड़े और बिछौने आदि जला देने चाहियें अथवा धुलवा कर साफ होने के बाद उन में गन्धक का धुँआ देना चाहिये[4] ।

खुराक—शीतला रोग से युक्त बच्चे को तथा बड़े आदमी को खान पान में दूध, चावल, दलिया, रोटी, बूरा डाल कर बनाई हुई राबड़ी, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाल, दाख, मीठी नारंगी तथा अञ्जीर आदि मीठे और ठंढे पदार्थ प्रायः देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी के कफ का ज़ोर हो गया हो तो मीठे पदार्थ तथा फल नहीं देने चाहियें[5], उसे कोई भी गर्म वस्तु खाने को नहीं देनी चाहिये ।

रोग की पहिली अवस्था में तथा दूसरी स्थिति में केवल दूध भात ही देना अच्छा है, तीसरी स्थिति में केवल (अकेला) दूध ही अच्छा है, पीने के लिये ठंढा पानी अथवा बर्फ का पानी देना चाहिये ।

रोग के मिटने के पीछे रोगी अशक्त (नाताकत) हो गया हो तो जब तक ताकत

१–इस विषय में पहिले कुछ कथन कर ही चुके हैं जिस से पाठकों को विदित हो ही गया होगा कि वास्तव मे यह उन लोगों की मूर्खता और अज्ञानता ही है ॥

२–अर्थात् बाहर से आती हुई हवा की रुकावट नहीं होनी चाहिये ॥

३–क्योंकि हवा के बिगडने से दूसरे रोगो के उठ खड़े होने (उत्पन्न हो जाने) की सम्भावना रहती है ॥

४–क्योंकि रोगी के कपडे और बिछौने में उक्त रोग के परमाणु प्रविष्ट रहते हैं यदि उन को जलाया न जावे अथवा साफ तौर से विना धुलाये ही काम में लाया जावे तो वे परमाणु दूसरे मनुष्यों के शरीर मे प्रविष्ट हो कर रोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥

५–क्योंकि मीठे पदार्थ और फल कफ की और भी वृद्धि कर देते है, जिस से रोगी के कफविकार के उत्पन्न हो जाने की आशङ्का रहती है ॥

यह रोग यद्यपि शीतला के समान भयंकर नहीं है तो भी इस रोग में प्रायः अनेक समयों में छोटे बच्चों को हांफनी तथा फेफसे का वरम (शोथ) हो जाता है, उस दशामें यह रोग भी भयंकर हो जाता है अर्थात् उस समय में तन्द्रादि सन्निपात हो जाता है, ऐसे समय में इस का खूब सावधानी से इलाज करना चाहिये, नहीं तो पूरी हानि पहुँचती है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सख्त ओरी के दाने कुछ गहरे जामुनी रंग के होते हैं ।

चिकित्सा—इस रोग में चिकित्सा प्रायः शीतला के अनुसार ही करनी चाहिये, क्योंकि इस की मुख्यतया चिकित्सा कुछ भी नहीं है, हां इस में भी यह अवश्य होना चाहिये कि रोगी को हवा में तथा ठंढ में नहीं रखना चाहिये[1] ।

खुराक—भात दाल और दलिया आदि हलकी खुराक देनी चाहिये तथा दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाना चाहिये[2] ।

इस रोगी को मासे भर सोंठ को जल में रगड़ कर (घिस कर) सात दिन तक दोनों समय (प्रातः काल और सायंकाल) विना गर्म किये हुए ही पिलाना चाहिये ॥

अछपड़ा[3] (चीनक पाक्स) का वर्णन ॥

यह रोग छोटे बच्चों के होता है तथा यह बहुत साधारण रोग है, इस रोग में एक दिन कुछ २ ज्वर आकर दूसरे दिन छाती पीठ तथा कन्धे पर छोटे २ लाल २ दाने उत्पन्न होते हैं, दिन भर में अनुमान दो २ दाने बड़े हो जाते है तथा उन में पानी भर जाता है, इस लिये वे दाने मोती के दाने के समान हो जाते हैं तथा ये दाने भी लगभग शीतला के दानों के समान होते है परन्तु बहुत थोड़े और दूर २ होते है ।

इस रोग में ज्वर थोड़ा होता है तथा दानों में पीप नही होता है इस लिये इस में कुछ डर नही है, इस रोग की साधारणता प्रायः यहां तक है कि— कभी २ इस रोग के दाने बच्चों के खेलते २ ही मिट जाते[4] है, इस लिये इस रोग में चिकित्सा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥

१–क्योंकि रोगी को हवा अथवा ठंढ मे रखने से शरीर के जकड़ने की और सन्धियों मे पीड़ा उत्पन्न होने की आशंका रहती है ॥

२–दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाने से अग्नि का दीपन, भोजन का पाचन तथा अन्न पर इच्छा होती है ॥

३–वास्तव मे यह भी शीतला का ही एक भेद है ॥

४–पहिले कह चुके है कि–शीतला सात प्रकार की होती है उन मे से कोई तो ऐसी होती है कि विना यत्न के भी अच्छी हो जाती है (जैसे यही अछपडा), कोई ऐसी होती है कि–कुछ कष्ट से दूर होती है तथा कोई ऐसी भी होती है कि यत्न करने पर भी नहीं जाती है ॥

रोगी बालक, बुड्ढा, अथवा अशक्त (नाताकत) हो तथा अधिक दस्तों को न सह सकता हो तो आम के दस्तों को भी एकदम रोक देना चाहिये[1]।

१–इस रोग की सब से अच्छी चिकित्सा लंघन है परन्तु पित्तातीसार तथा रक्तातीसार में लंघन नहीं कराना चाहिये, इन के सिवाय शेष अतीसारों में उचित लंघन कराने से रोगी को प्यास बहुत लगती है, उस को मिटाने के लिये धनियां तथा बाला को उकाल कर वह पानी ठंढा कर पिलाना चाहिये, अथवा धनियां, सोंठ, मोथा और पित्तपापड़े का तथा बाला का जल पिलाना चाहिये।

२–यदि अजीर्ण तथा आम का दस्त होता हो तो लंघन कराने के पीछे रोगी को प्रवाही[2] तथा हलका भोजन देना चाहिये तथा आम को पचानेवाला, दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (मल और अन्न को पचानेवाला) और स्तम्भन (मल को रोकनेवाला) औषध देना चाहिये।

अब पृथक् २ दोषों के अनुसार पृथक् २ चिकित्सा को लिखते हैं:—

१–वातातीसार—इस में भुनी हुई भांग का चूर्ण शहद के साथ लेना चाहिये।

अथवा चावल भर अफीम तथा केशर को शहद में लेना चाहिये तथा पथ्य में दही चावल खाना चाहिये।

२–पित्तातीसार—इस में बेल की गिरी, इन्द्रजौं, मोथा, बाला और अतिविष, इन औषधों की उकाली लेनी चाहिये, क्योंकि यह उकाली पित्त तथा आम के दस्त को शीघ्र ही मिटाती है।

अथवा—अतीस, कुड़ाछाल तथा इन्द्रजौं, इन का चूर्ण चावलों के धोवन में शहद डाल कर लेना चाहिये।

३–कफातीसार—इस में लङ्घन करना चाहिये तथा पाचनक्रिया करनी चाहिये।

अथवा–हरड़, दारुहलदी, वच, मोथा, सोंठ और अतीस, इन औषधों का काढ़ा पीना चाहिये।

१–वातपित्त की प्रकृतिवाला जो रोगी हो, जिस का बल और धातु क्षीण हो गये हों, जो अत्यन्त दोषों से युक्त हो और जिस को बे परिमाण दस्त हो चुके हों, ऐसे रोगी के भी आम के दस्तों को रोक देना चाहिये, ऐसे रोगियों को पाचन औषध के देने से मृत्यु हो जाती है, क्योंकि पाचन औषध के देने से और भी दस्त होने लगते हैं और रोगी उन का सहन नहीं कर सकता है, इस लिये पूर्व की अपेक्षा और भी अशक्ति (निर्बलता) बढ़ कर मृत्यु हो जाती है ॥

२–प्रवाही अर्थात् पतले पदार्थ, जैसे—यवागू और यूप आदि। (प्रश्न) वैद्यक ग्रन्थों में यह लिखा है कि–शूलरोगी दो दल के अन्नों को (मूंग आदि को), क्षयरोगी स्त्रीसंग को, अतीसाररोगी पतले पदार्थों और खटाई को तथा ज्वररोगी उक्त सब को त्याग देवे, इस कथन से अतीसाररोगी को पतले पदार्थ तो वर्जित हैं, फिर आपने प्रवाही पदार्थ देने को क्यों कहा? (उत्तर) पतले पदार्थों का जो अतीसार रोग में निषेध किया है वहां दूध और घृत आदि का निषेध समझना चाहिये किन्तु यूप और पेया आदि पतले पदार्थों का निषेध नहीं है ॥

थवा–हिङ्गाष्टक चूर्ण में हरड़ तथा सज्जीखार मिला कर उस की फंकी लेनी चाहिये।

–**आमातीसार**—इस में भी यथाशक्य लंघन करना चाहिये।

थवा–एरंडी का तेल पीकर कच्चे आम को निकाल डालना चाहिये।

थवा–गर्म पानी में घी डालकर पीना चाहिये।

थवा—सोंठ, सोंफ, खसखस और मिश्री, इन का चूर्ण खाना चाहिये।

थवा–सोंठ के चूर्ण को पुटपाक की तरह पका कर तथा उस में मिश्री डाल कर
 चाहिये।

–**रक्तातीसार**—इस में पित्तातीसार की चिकित्सा करनी चाहिये।

अथवा—चावलों के धोवन में सफेद चन्दन को घिस कर तथा उस में शहद और
ी को डाल कर पीना चाहिये।

अथवा–आम की गुठली को छाछ में अथवा चावलों के धोवन में पीस कर खाना
िये।

अथवा–कच्चे बेल की गिरी को गुड़ में लेना चाहिये।

अथवा–जामुन, आम तथा इमली के कच्चे पत्तों को पीस कर तथा इन का रस निकाल
उस में शहद घी और दूध को मिला कर पीना चाहिये।

सामान्यचिकित्सा–१—आम की गुठली का मगज (गिरी) तथा बेल की
ी, इन के चूर्ण को अथवा इन के क्वाथ को शहद तथा मिश्री डाल कर लेना चाहिये।

२–अफीम तथा केशर की आधी चिरमी के समान गोली को शहद के साथ लेना
हिये।

३–जायफल, अफीम तथा खारक (छुहारे) को नागरवेल के पान के रस में घोट
तथा बाल के परिमाण की गोली बनाकर उस गोली को छाछ के साथ लेना चाहिये।

४–जीरा, भांग, बेल की गिरी तथा अफीम को दही में घोट कर बाल के परिमाण की
ली बना कर एक गोली लेनी चाहिये।

विशेषवक्तव्य—जब किसी को दस्त होने लगते हैं तब बहुत से लोग यह सम-
ते हैं कि–नाभि के बीच की गांठ (धरन वा पेचोंटी) खिसक गई है इस लिये दस्त
ते हैं, ऐसा समझ कर वे मूर्ख स्त्रियों से पेट को मसलाते (मलवाते) हैं, सो उन का
ह समझना बिलकुल ठीक नहीं है और पेट के मसलाने से बड़ी भारी हानि पहुँचती है,

---

१–सामान्य चिकित्सा अर्थात् जो सब प्रकार के अतीसारों में फायदा करती है॥

२–परन्तु आम की गुठली के मगज (गिरी) के ऊपर जो एक प्रकार का मोटा छिलकासा होता है
से निकाल डालना चाहिये अर्थात् उसे उपयोग में नहीं लाना चाहिये॥

३–क्वाथ में अवशिष्ट जल पावभर का छटांकभर रखना चाहिये॥

४–चिरमी अर्थात् गुञ्जा, जिसे भाषा में घुंघुची कहते हैं॥

देखो ! शारीरिक विद्या के जाननेवाले डाक्टरों का कथन है कि-धरन अथवा पेचोंटी नाम का कोई भी अवयव शरीर में नहीं है और न नाभि के बीच में इस नाम की कोई गांठ है और विचार कर देखने से डाक्टरों का उक्त कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है[1], क्योंकि किसी ग्रन्थ में भी धरन का स्वरूप वा लक्षण आदि नहीं देखा जाता है, हां केवल इतनी बात अवश्य है कि-रगों में वायु अस्तव्यस्त होती है[2] और वह वायु किसी २ के मसलने से शान्त पड़ जाती है, क्योंकि वायु का धर्म है कि मसलने से तथा सेक करने से शान्त हो जाती है, परन्तु पेट के मसलने से यह हानि होती है कि-पेट की रगें नाताकत (कमजोर) हो जाती[3] हैं, जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, इस लिये धरन के झूठे ख्याल को छोड़ देना चाहिये क्योंकि शरीर में धरन कोई अवयव नहीं है ।

अतीसार रोग में आवश्यक सूचना—दस्तों के रोग में खान पान की बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये तथा कभी २ एकाध दिन निराहार लंघन कर लेना चाहिये[4], यदि रोग अधिक दिन का हो जावे तो दाह को न करनेवाली थोड़ी २ खुराक लेनी चाहिये, जैसे-चावल और साबूदाना की कुटी हुई घाट तथा दही चावल इत्यादि ।

पथ्य—इस रोग में-वमन (उलटी) का लेना, लंघन करना, नींद लेना, पुराने चावल, मसूर, तूर (अरहर), शहद, तिल, बकरी तथा गाय का दूध, दही, छाछ, गाय का घी, बेल का ताज़ा फल, जामुन, कवीठ, अनार, सब तुरे पदार्थ तथा हलका भोजन इत्यादि पथ्य हैं[5] ।

कुपथ्य—इस रोग में-स्नान, मर्दन, करड़ा तथा चिकना अन्न, कसरत, सेक, नया अन्न, गर्म वस्तु, स्त्रीसंग, चिन्ता, जागरण करना, बीड़ी का पीना, गेहूँ, उड़द, कच्चे आम,

---

१-क्योंकि प्रथम तो उन लोगों का इस विषय में प्रत्यक्ष अनुभव है और प्रत्यक्ष अनुभव सब ही को मान्य होता है और होना ही चाहिये और दूसरे-जब वैद्यक आदि अन्य ग्रन्थ भी इस विषय में वही साक्षी देते हैं तो भला इस में सन्देह होने का ही क्या काम है ॥

२-अस्तव्यस्त होती है अर्थात् कभी इकट्ठी होती है और कभी फैलती है ॥

३-पेट के मसलने से प्रथम तो रगें नाताकत हो जाती हैं जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, दूसरे-यदि वायु की शान्ति के लिये मसला भी जावे तो आदत बिगड़ जाती है अर्थात् फिर ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि पेट के मसलाये विना भूख प्यास आदि कुछ भी नहीं लगती है, इस लिये पेट को विशेष आवश्यकता के सिवाय कभी नहीं मसलाना चाहिये ॥

४-क्योंकि कभी २ एकाध दिन निराहार लंघन कर लेने से दोषों का पाचन तथा अग्नि का कुछ दीपन हो जाता है ॥

५-जब अतीसार रोग चला जाता है तब मल के निकले विना मूत्र का साफ उतरना अधोवायु (अपानवायु) की ठीक प्रवृत्ति का होना, अग्नि का प्रदीप्त होना, कोष्ठ (कोठे) का हलका मालूम पड़ना शुद्ध डकार का आना, अन्न और जल का अच्छा लगना, हृदय में उत्साह होना तथा इन्द्रियों का स्वस्थ होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ॥

९ इस क्षत का असर स्थानिक है अर्थात् उसी जगहपर इस का असर होता है किन्तु वद के स्थान के सिवाय शरीर-पर दूसरी जगह असर नहीं होता है॥	९ इस क्षत के होने के पीछे थोड़े समय में इस का दूसरा चिह्न शरीर के ऊपर मालूम होने लगता है ॥

इस रीति से दोनों प्रकार की चाँदियों के भिन्न २ चिह्न ऊपर के कोष्ठ से मालूम हो सकते हैं और इन चिह्नों से बहुधा इन दोनों का निश्चय होना सुगम है[1] परन्तु कभी २ जब क्षत की दुर्दशा होने के पीछे ये चिह्न देखने में आते हैं तब उन का निर्णय होना कठिन पड़ जाता है[2] ।

कभी २ किसी दशा में शिश्न[3] के ऊपर कठिन और नरम दोनों प्रकार की चाँदियां साथ में ही होती हैं और कभी २ ऐसा होता है कि द्वितीय चिह्न के समय के आने से पूर्व चाँदी के भेद का निश्चय नहीं हो सकता है[4] ॥

कठिन टांकी (हार्ड[5] शांकर)—कठिन टांकी के होने के पीछे शरीर के दूसरे भागोंपर गर्मी का असर मालूम होने लगता है[6], जिस प्रकार नरम टांकी स्त्रीसंसर्ग के होने के पीछे शीघ्र ही एक वा दो दिन में दीखने लगती है उस प्रकार यह कठिन टांकी नहीं दीखती है किन्तु इस में तो यह क्रम होता है कि बहुधा इस में चार पांच दिन में अथवा एक अठवाड़े से लेकर तीन अठवाड़ों के भीतर एक बारीक[7] फुंसी होती है और वह फूट जाती है तथा उस की चाँदी पड़ जाती है, इस चांदी में से प्रायः गाढा पीप नहीं निकलता है किन्तु पानी के समान थोड़ी सी रसी आती है, इस टांकी का मुख्य गुण यह है कि—इस को दबा कर देखने से इस का तलभाग कठिन मालूम होता है[8], कठिन इस तलभाग के द्वारा ही यह निश्चय, कर लिया जाता है कि गर्मी के विषने शरीर में प्रवेश कर लिया है[9], यह टांकी बहुधा एक ही होती है तथा इस के साथ में एक अथवा

१–अर्थात् ऊपर लिखे हुए पृथक् २ चिन्हों से दोनों प्रकार की चाँदी सहज में ही पहिचान ली जाती है ॥

२–क्योंकि क्षत के विगड़ जाने के बाद मिश्रितवत् हो जाने के कारण चिह्नों का ठीक पता नहीं लगता है ॥

३–शिश्न अर्थात् सुखेन्द्रिय (लिङ्ग) ॥

४–अर्थात् यह नहीं मालूम होता है कि यह कौन से प्रकार की चाँदी है ॥

५–हार्ड अर्थात् कठिन वा सख्त ॥

६–अर्थात् शरीर के अन्य भागोंपर भी गर्मी का कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है ॥

७–बारीक अर्थात् बहुत छोटीसी ॥

८–अर्थात् चाँदी के नीचे का भाग सख्त प्रतीत होता है ॥

९–क्योंकि उस तलभाग के कठिन होने से यह निश्चय हो जाता है कि इसका उभाड़ (वेगपूर्वक उठना) कठिनता के साथ उठनेवाला है ॥

दोनों वंक्षणों में वद हो जाती है अर्थात् एक अथवा दो मोटी गांठें हो जाती हैं परन्तु उस में दर्द थोड़ा होता है और वह पकती नहीं है, परन्तु यदि वद होने के पीछे बहुत चला फिरा जावे अथवा पैरों से किसी दूसरे प्रकार का परिश्रम करना पड़े तो कदाचित् यह गांठ भी पक जाती है[1] ।

चिकित्सा—१–इस चाँदी के ऊपर आयोडोफार्म, क्यालोमेल, रसकपूर का पानी-अथवा लाल मल्हम चुपडना चाहिये, ऐसा करने से टांकी शीघ्र ही मिट जावेगी, यद्यपि इस टांकी के मिटाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है[2] परन्तु इस टांकी से जो शरीरपर गर्मी हो जाती है तथा खून में विगाड़ हो जाता है उस का यथोचित (ठीक २) उपाय करने की वहुत ही आवश्यकता पड़ती है अर्थात् उस के लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है[3] ।

२–रसकपूर, मुरदासींग, कत्था, शंखजीरा और माजूफल, इन प्रत्येक का एक एक तोला, त्रिफले की राख दो तोले तथा धोया हुआ घृत[4] दश तोले, इन सब दवाइयों को मिला कर चाँदी तथा उपदंश के दूसरे किसी क्षत पर लगाने से वह मिट जाता है ।

३–त्रिफले की राख को घृत में मिला कर तथा उस में थोडा सा मोरथोथा पीस कर मिला कर चाँदी पर लगाना चाहिये ।

४–ऊपर कहे हुए दोनों नुसखों में से चाहे जिस को काम में लाना चाहिये परन्तु यह स्मरण रहे कि—पहिले त्रिफले के तथा नींव के पत्तों के जल से चाँदी को धो कर फिर उस पर दवा को लगाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से जल्दी आराम होता है ॥

गर्मी द्वितीयोपदंश (सीफीलीस) का वर्णन ॥

कठिन चाँदी के दीखने के पीछे बहुत समय के वाद शरीर के कई भागों पर जिस का असर मालूम होता है उस को गर्मी कहते हैं ।

यद्यपि यह रोग मुख्यतया (खासकर) व्यभिचार से ही होता है परन्तु कभी २ यह किसी दूसरे कारण से भी हो जाता है, जैसे—इसका चेप लग जाने से भी यह रोग हो जाता है, क्योंकि प्रायः देखागया है कि—गर्मीवाले रोगी के शरीरपर किसी भाग के काटने आदि का काम करते हुए किसी २ डाक्टर के भी जखम होगया है और उस के

१–तात्पर्य यह है कि वह गाँठ विना कारण नहीं पकती है ॥

२–क्योंकि यह मृदु होती है ॥

३–उस रक्तविकार आदि की चिकित्सा किसी कुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

४–घृत के धोने का नियम प्रायः सौ वार का है, हां फिर यह भी है कि जितनी ही वार अधिक धोया जावे उतना ही वह लाभदायक होता है ॥

चेप के प्रविष्ट (दाखिल) हो जाने से उस जखम के स्थान में टांकी पड़गई है और पीछे से उस के शरीर में भी गर्मी फूट निकली है, यह तो बहुत से लोगों ने देखा ही होगा कि–शीतला का टीका लगाते समय उस की गर्मी का चेप एक बालक से दूसरे बालक के लग जाता है, इस से सिद्ध है कि–यदि गर्मीवाला लड़का नीरोग धाय का भी दूध पीवे तो उस धाय के भी गर्मीका रोग हो जाता है तथा गर्मीवाली धाय हो और लड़का नीरोग भी हो तो भी उस धाय का दूध पीने से उस लड़के के भी गर्मीका रोग हो जाता है, तात्पर्य यह है कि–इस रीति से इस गर्मी देवी की प्रसादी एक दूसरे के द्वारा बँटती है[1] ।

गर्मी का रोग प्रायः वारसा में जाता है[2], इस तरह–व्यभिचार, रोगी के रुधिर के रस का चेप और वारसा से यह रोग होता है[3] ।

यद्यपि यह बात तो निर्विवाद है[4] कि कठिन चाँदी के होने के पीछे शरीर की गर्मी प्रकट होती है परन्तु कई एक डाक्टरों के देखने में यह भी आता है कि टांकी के नरम हो जाने तक अर्थात् टांकी के होने के पीछे उस के मिटने तक उस के आस पास और तलभाग में कुछ भी कठिनता न मालूम देने पर भी उस नरम टांकी के होने के पीछे कभी २ शरीर पर गर्मी प्रकट होने लगती है ।

कठिन चाँदी की यह तासीर है कि जब से वह टांकी उत्पन्न होती है उसी समय से उस का तल भाग तथा कोर (किनारे का भाग) कठिन होती है, इस के समान दूसरा कोई भी घाव नहीं होता है अर्थात् सब ही घाव प्रथम से ही नरम होते हैं, हां यह दूसरी बात है कि–दूसरे घावों को छेड़ने से वे कदाचित् कुछ कठिन हो जावें परन्तु मूल से ही (प्रारंभ से ही) वे कठिन नहीं होते हैं ॥

इस दो प्रकार की (मृदु और कठिन) चाँदी के सिवाय एक प्रकार की चाँदी और भी होती है जिस में उक्त दोनों प्रकार की चाँदियों का गुण मिश्रित (मिला हुआ) होता है[5], अर्थात् यह तीसरे प्रकार की चाँदी व्यभिचार के पीछे शीघ्र ही दिखलाई देती है और उस में से रसी निकलती है तथा थोड़े दिनों के बाद वह कठिन हो जाती है और आखिरकार शरीर पर गर्मी दिखलाई देने लगती है ॥

कई बार तो इस मिश्रित (मृदु और कठिन[6]) टांकी के चिह्न स्पष्ट (साफ) होते हैं

१–तात्पर्य यह है कि यह रोग सङ्क्रामक है, इस लिये संसर्ग मात्र से ही एक से दूसरे में जाता है ॥

२–अर्थात् यह रोग गर्भ में भी पहुँच कर बालक की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाता है ॥

३–तात्पर्य यह है कि उक्त व्यभिचार आदि तीन कारण इस रोग की उत्पत्ति के हैं ॥

४–निर्विवाद अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा अनुभव से सिद्ध ॥

५–अर्थात् इस तीसरे प्रकार की चाँदी में दोनों प्रकार की चाँदी के चिह्न मिले हुए होते हैं ॥

६–मृदु और कठिन अर्थात् उभयस्वरूप ॥

जलन होती है तथा चिनग भी होती है इस लिये इसे चिनगिया सुज़ाख़ कहते है, इस के साथ में शरीर में बुखार भी आ जाता है, इन्द्रिय भरी हुई तथा कठिन जेवड़ी (रस्सी) के समान हो जाती है तथा मन को अत्यन्त विकलता (वेचैनी) प्राप्त होती

शरीर के सम्पूर्ण बाँधों के बँध जाने के पहिले जो बालक इस कुटेव में पड़ जाता है उस का शरीर पूर्ण वृद्धि और विकाश को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इस कुटेव के कारण शरीर की वृद्धि और उस के विकाश में अवरोध (रुकावट) हो जाता है, उस की हड्डिया और नसें झलकने लगनी हैं, आँखें बैठ जाती हैं और उन के आस पास काला कुँडाला सा हो जाता है, आँख का तेज कम हो जाता है, दृष्टि निर्वल तथा कम हो जाती है, चेहरे पर फुसिया उठ कर फूटा करती है, बाल झर पड़ते हैं, माथे में टाल (टाट) पड जाती है तथा उस में दर्द होता रहता है, पृष्ठवंश (पीठका वास) तथा कमर में शूल (दर्द) होता है, सहारे के विना सीधा बैठा नहीं जाता है, प्रातःकाल विछौने पर से उठने को जी नहीं चाहता है तथा किसी काम में लगने की इच्छा नहीं होती है इत्यादि। सत्य तो यह है कि अस्वाभाविक रीति से ब्रह्मचर्य के भग करने रूप पाप की ये सब खरावियां नहीं किन्तु उस से बचने के लिये ये सब शिक्षायें है, क्योंकि सृष्टि के नियम से विरुद्ध होने से सृष्टि इस पाप की शिक्षाओं (सजाओं) को दिये विना नहीं रहती है, हम को विश्वास है कि दूसरे किसी शारीरिक पाप के लिये सृष्टि के नियम की आवश्यक शिक्षाओं मे ऐसी कठिन शिक्षाओं का उल्लेख नहीं किया गया होगा और चूकि इस पापाचरण के लिये इतनी शिक्षायें कहीं गई है, इस से निश्चय होता है कि–यह पाप बडा भारी है, इस महापाप को विचार कर यही कहना पड़ता है कि–इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) इतने से ही नहीं पर्याप्त (काफी) होती है, ऐसी दशा में सृष्टि के नियम को अति कठिन कहा जावे वा इस पाप को अति वडा कहा जावे किन्तु सृष्टि का नियम तो पुकार कर कह रहा है कि इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) पापाचरण करनेवाले को ही केवल नहीं मिलती है किन्तु पापाचरण करनेवाले के लडकों को भी थोडी बहुत भोगनी आवश्यक है, प्रथम तो प्रायः इस पाप का आचरण करने वालों के सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती हैं, यदि दैवयोग से उस नराधम को सन्तान प्राप्त होती हैं तो वह सन्तान भी थोडी बहुत मा बाप के इस पापाचरण की प्रसादी को लेकर ही उत्पन्न होती है, इस में सन्देह नहीं है, इस लेख से हमारा प्रयोजन तरुण वयवालों को भडकाने का नहीं है किन्तु इन सब सत्य बातों को दिखला कर उन को इस पापाचरण से रोकने का है तथा इस पापाचरण मे पड़े हुओं को उस से निकालने का है, इस के अतिरिक्त इस लेख से हमारा यह भी प्रयोजन है कि–योग्य माता पिता पहिले ही से इस पापाचरण से अपने बालकों को बचाने के लिये पूरा प्रयत्न करें और ऐसे पापाचरण वाले लोगों के भी जो सन्तान होवें तो उन को भी उन की अच्छी तरह से देख रेख और सम्भाल रखनी चाहिये क्योंकि मा बाप के रोगों की प्रसादी लेकर जो लडके उत्पन्न होते हैं उस प्रसादी की कुटेव भी उन में अवश्य होती है, इसी नियम से इस पापाचरण वालों के जो लडके होते है उन में भी इस (हाथ से वीर्यपात करनेरूप) कुटेव का सञ्चार रहता है, इस लिये जिन मा बापों ने अपनी अज्ञानावस्था मे जो २ भूलें की हैं तथा उन का जो २ फल पाया है उन सब बातों से विज्ञ होकर और उस विषय के अपने अनुभव को ध्यान में लाकर अपनी सन्तति को ऐसी कुटेव में न पड़ने देने के लिये प्रतिक्षण उस पर दृष्टि रखनी चाहिये और इस कुटेव की खरावियों को अपनी सन्तति को युक्ति के द्वारा बतला देना चाहिये।

है, कभी २ इन्द्रिय में से लोहू भी गिरता है, कभी २ इस रोग में रात्रि के समय इन्द्रिय जागृत (चैतन्य) होती है और उस समय बांकी (टेढी) होकर रहती है तथा उस के कारण रोगी के असह्य (न सहने योग्य अर्थात् बहुत ही) पीड़ा होती है, कभी २

प्रिय वाचक सज्जनो! आप ने देखा होगा कि जिस लड़के में नौ दश वर्ष की अवस्था में अति चञ्चलता थी, जो बुद्धिमान् था, जिस के कपोलों (गालों) पर सुर्खी थी, तथा चेहरे पर तेज और कांति थी वही लड़का विना विवाह आदि किसी हेतु के कुछ समय के बाद मलीन वदन तथा और का और हो गया है, इस का क्या कारण है? इस का कारण वही पापाचरण की विभूति है, क्योंकि वह पाप सृष्टि के नियम से ही गुप्त न रह कर उस के चेहरे आदि अङ्गों पर झलक जाता है।

बहुत से व्यभिचारी और दुराचारी जन संसार को दिखाने के लिये अनेक कपट वेप से रहकर अपने को ब्रह्मचारी प्रसिद्ध करते हैं तथा भोले और अज्ञान लोग भी उन के कपट वेप को न समझ कर उन्हें ब्रह्मचारी ही समझने लगते हैं, परन्तु पाठक वर्ग! आप इस बात का निश्चय रक्खें कि ब्रह्मचारी पुरुष का चेहरा ही उस के ब्रह्मचर्य की गवाही दे देता है, बस लोग जिन को उन के व्यवहार से ब्रह्मचारी समझते हैं, यदि उन का चेहरा ब्रह्मचर्य की गवाही न दे तो आप उन्हें ब्रह्मचारी कभी न समझें। (प्रश्न) आप ने अपने इस ग्रन्थ में इस प्रकार की ये बातें क्यों लिखी हैं, क्योंकि दूसरों के दोषों को प्रकट करना हम ठीक नहीं समझते हैं, इस के सिवाय एक यह भी बात है कि यह संसार विचित्र है, इस में सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं अर्थात् शिष्टाचारी (श्रेष्ठ आचार वाले) भी होते हैं तथा दुराचारी भी होते हैं, क्योंकि संसार की माया ही बड़ी विचित्र है, इस संसार में सब एक से नहीं हो सकते हैं और ऐसा होने से ही एक को हानि तथा दूसरे को लाभ पहुँचता है, जैसे देखो! इस कार्य (हाथ से वीर्यपात) के करनेवाले जो मनुष्य हैं उन को जब कुछ हानि पहुँचती है तब वैद्यों को लाभ पहुँचता है, भला सोचने की बात है कि—यदि सब ही सद्वर्त्ताव के द्वारा धर्मात्मा और नीरोग बन जावें तो बेचारे विद्वान् किस को उपदेश दें तथा वैद्य वा डाक्टर किस की चिकित्सा करें, तात्पर्य यह है कि इस संसारचक्र में सदा से ही विचित्रता चली आई है और ऐसी ही चली जावेगी, इस लिये विद्वान् को किसी के छिद्रों (दोषों) को प्रकाशित (ज़ाहिर) नहीं करना चाहिये। (उत्तर) वाह जी वाह! यह तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे अन्तःकरण की विज्ञता का ठीक परिचय देता है, बड़े शोक और आश्चर्य की बात है कि तुम को ऐसा प्रश्न करने में तनिक भी लज्जा नहीं आई और तुम ने ज़रा भी मानुषी बुद्धि का आश्रय नहीं लिया! हमने इस ग्रन्थ में जो इस प्रकार की बातें लिखी हैं उन से हमारा प्रयोजन दूसरे के दोषों के प्रकट करने का नहीं है किन्तु सर्व साधारण को दुर्गुणों के दोष और हानियों को दिखाकर उन से बचाने और चेताने का है, देखो! इस कुटेव के कारण हज़ारों का सत्यानाश हो गया है तथा होता जाता है, अतः हमने इस के स्वरूप को दिखाकर जो इस की हानियों का वर्णन कर इस से बचने के लिये उपदेश किया तो इस में क्या बुरा किया, देखो! प्राणियों को भूल और दोप से बचाना हमारा क्या किन्तु मनुष्यमात्र का यही कर्त्तव्य है, रही संसार की विचित्रता की बात, कि यह संसार विचित्र है—इस में सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं अर्थात् शिष्टाचारी भी होते हैं और दुराचारी भी होते हैं इत्यादि, सो बेशक यह ठीक है, परन्तु तुम ने कभी इस बात का भी विचार किया है कि मनुष्य दुराचारी क्यों होते हैं, इस के कारण को यदि विचार कर देखोगे तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि मनुष्यों के दुराचारी होने में कारण केवल कुसंस्कार ही है, बस उसी कुसंस्कार

वृषण (अण्डकोष) सूज कर मोटे हो जाते हैं और उन में अत्यन्त पीड़ा होती है, पेशाब के बाहर आने का जो लम्बा मार्ग है उस के किसी भाग में सुजाख होता है, जब अगले भाग ही में यह रोग होता है तब रसी थोड़ी आती है तथा ज्यों २ अन्दर के

को हटाना तथा भावी सन्तान को उस से बचाना हमारा अभीष्ट है, हमारा ही क्या, किन्तु सर्व सज्जनों और महात्माओं का यही अभीष्ट है और होना ही चाहिये, क्योंकि विज्ञान पाकर जो अपने भूले हुए भाई को कुमार्ग से नहीं हटाता है वह मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् पशु है, अब जो तुम ने हानि लाभ की बात कही कि एक की हानि से दूसरे का लाभ होता है इत्यादि, सो तुम्हारा यह कथन बिलकुल अज्ञानता और बालकपन का है, देखो ! सज्जन वे है जो कि दूसरे की हानि के विना अपना लाभ चाहते हैं, किन्तु जो परहानि के द्वारा अपना लाभ चाहते है वे नराधम (नीच मनुष्य) है, देखो ! जो योग्य वैद्य और डाक्टर हैं वे पात्रापात्र (योग्यायोग्य) का विचार कर रोगी से द्रव्य का ग्रहण करते हैं, किन्तु जो (वैद्य और डाक्टर) यह चाहते हैं कि मनुष्यगण बुरी आदतों में पड कर खूब दु ख भोगें और हम खूब उन का घर लूटे, उन्हें साक्षात् राक्षस कहना चाहिये, देखो ! संसार का यह व्यवहार है कि–एक का काम करके दूसरा अपना निर्वाह करता है, बस इस प्रथा के अनुकूल वर्त्ताव करनेवाले को दोषास्पद (दोष का स्थान) नहीं कहा जा सकता है, अतः वैद्य रोगी का काम करके अर्थात् रोग से मुक्त करके उस की योग्यतानुसार द्रव्य लेवे तो इस मे कोई अन्यथा (अनुचित) बात नहीं है, परन्तु उन की मानसिक वृत्ति स्वार्थतत्पर और निकृष्ट नहीं होनी चाहिये, क्योंकि मानसिक वृत्ति को स्वार्थ मे तत्पर तथा निकृष्ट कर दूसरों को हानि पहुँचा कर जो स्वार्थसिद्धि चाहते हैं वे नराधम और परापकारी समझे जाते हैं और उन का उक्त व्यवहार सृष्टिनियम के विरुद्ध माना जाता है तथा उस का रोकना अत्यावश्यक समझा गया है, यदि उस का रोकना तुम आवश्यक नहीं समझते हो तथा निकृष्ट मानसिक वृत्ति से एक को हानि पहुँचा कर भी दूसरे के लाभ होने को उत्तम समझते हो तो अपने घर मे घुसते हुए चोर को क्यों ललकारते हो ? क्योंकि तुम्हारा धन ले जाने के द्वारा एक की हानि और एक का लाभ होना तुम्हारा अभीष्ट ही है, यदि तुम्हारा सिद्धान्त मान लिया जावे तब तो संसार मे चोरी जारी आदि अनेक कुत्सिताचार होने लगेंगे और राजशासन आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, महा खेद का विषय है कि–ब्याह शादियों मे रण्डियो का नचाना, उन को द्रव्य देना, उस द्रव्य को बुरे मार्ग मे लगवाना, बच्चो के सस्कारों का विगाडना, रण्डियों के साथ में (मुकाविले मे) घर की स्त्रियों से गालियॉ गवा कर उन के संस्कारों का विगाडना, आतिशबाजी और नाच तमाशों मे हजारों रुपयों को फूँक देना, बाल्यावस्था में सन्तानों का विवाह कर उन के अपक्क (कच्चे) वीर्य के नाश के लिये प्रेरणा करना तथा अनेक प्रकार के बुरे व्यसनो मे फॅसते हुए सन्तानों को न रोकना, इत्यादि महा हानिकारक वातों को तो तुम अच्छा और ठीक समझते हो और उन को करते हुए तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती है किन्तु हमने जो अपना कर्त्तव्य समझ कर लाभदायक (फायदेमन्द) शिक्षाप्रद (शिक्षा अर्थात् नसीहत देने वाली) तथा जगत् कल्याणकारी बातें लिखी है उन को तुम ठीक नहीं समझते हो, वाह जी वाह ! धन्य है तुम्हारी बुद्धि ! ऐसी २ बुद्धि और विचार रखने वाले तुम्हीं लोगों से तो इस पवित्र आर्यावर्त्त देश का सत्यानाश हो गया है और होता जाता है, देखो ! बुद्धिमानों का तो यही परम (मुख्य) कर्त्तव्य है कि जो बुद्धिमान् जन गृहस्थों को लाभ पहुँचाने वाले तथा शिक्षाप्रद उत्तम २

६—**जातीफलादि चूर्ण**—जायफल, बायविडंग, चित्रक, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लौंग, छोटी इलायची के वीज, भीमसेनी कपूर, हरड़, आमला, काली मिर्च, पीपल और वंशलोचन, ये प्रत्येक तीन २ तोले, चतुर्जा तक की चारों औषधियों के तीन तोले तथा भांग सात पल, इन सब का चूर्ण करके सब चूर्ण के समान मिश्री मिलानी चाहिये, इस के सेवन से क्षय, खांसी, श्वास, संग्रहणी, अरुचि, जुखाम और मन्दाग्नि, ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं ।

चन न होने के लक्षण—जिस को उत्तम प्रकार से विरेचन न हुआ हो उस की नाभि में पीड़ा युक्त कठोरता, कोख में दर्द, मल और अधोवायु का रुकना, देह में खुजली का चलना, चकत्तों का उठना, देह का गौरव, दाह, अरुचि, अफरा और वमन का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं, ऐसी दशा में पाचन औषधि दे कर स्नेहन करना चाहिये, जब मल पक जावे और स्निग्ध हो जावे तब पुनः जुलाब देना चाहिये, ऐसा करने से जुलाब न होने के उपद्रव मिट कर तथा अग्नि प्रदीप्त हो कर शरीर हलका हो जाता है । **अधिक विरेचन होने के उपद्रव**—अधिक विरेचन होने से मूर्च्छा, गुदभ्रंश (काछ का निकलना), पेट में दर्द, आम का अधिक गिरना तथा दस्त में रुधिर और चर्बी आदि का निकलना, इत्यादि उपद्रव होते हैं, ऐसी दशा में रोगी के शरीर पर शीघ्र ही शीतल जल छिड़कना चाहिये, चावलों के धोवन में शहद डाल कर पिलाना चाहिये, हलका सा वमन कराना चाहिये, आमकी छालके कल्क को दही और जौं की कांजी में पीस कर नाभि पर लेप करने से दस्तो का घोर उपद्रव भी मिट जाता है, जौओं का सौवीर, शालि चावल, साठी चावल, बकरी का दूध, शीतल पदार्थ तथा ग्राही पदार्थ, इत्यादि पदार्थ अधिक दस्तों के होने को बंद कर देते है । **उत्तम विरेचन होने के लक्षण**—शरीर का हलका पन, मन में प्रसन्नता तथा अधोवायु का अनुकूल चलना, ये सब उत्तम विरेचन के लक्षण हैं । **विरेचन के गुण**—इन्द्रियों में बल का होना, बुद्धि में स्वच्छता, जठराग्नि का दीपन तथा रसादि धातु और अवस्था का स्थिर होना, ये सब विरेचन के गुण हैं । **विरेचन में पथ्यापथ्य**—अलत हवा में बैठना, शीतल जल का स्पर्श, तेल की मालिश, अजीर्ण कारी भोजन, व्यायामादि परिश्रम और मैथुन, ये सब विरेचन में अपथ्य हैं तथा शालि और साठी चावल, मूग आदि का यवागू, ये सब पदार्थ विरेचन में पथ्य अर्थात् हितकारक हैं ॥

तीसरा कर्म अनुवासन है—यह वस्ति (गुदा में पिचकारी लगाने) का प्रथम भेद है, तात्पर्य यह है कि तैल आदि स्नेहों से जो पिचकारी लगाते हैं उस को अनुवासन वस्ति कहते हैं, इसी का एक भेद मात्रा वस्ति है, मात्रा वस्ति में घृत आदि की मात्रा आठ तोले की अथवा चार तोले की ली जाती है । **अनुवासन वस्ति के अधिकारी**—रूक्ष देह वाला, तीक्ष्णाग्नि वाला तथा केवल वातरोग वाला, ये सब इस वस्ति के अधिकारी हैं । **अनुवासन वस्ति के अनधिकारी**—कुष्ठरोगी, प्रमेहरोगी, अत्यन्त स्थूल शरीर वाला तथा उदररोगी, ये सब इस वस्ति के अनधिकारी हैं, इन के सिवाय अजीर्णरोगी, उन्माद वाला, तृषा से व्याकुल, शोथरोगी, मूर्छित, अरुचि युक्त, भयभीत, श्वासरोगी तथा कास और क्षयरोग से युक्त, इन को न तो यह (अनुवासन) वस्ति देनी चाहिये और न निरूहण वस्ति (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) देनी चाहिये । **वस्ति का विधान**—वस्ति देने को नेत्र (नली) सुवर्ण आदि धातु की, वृक्ष की, बास की, नरसल की, हाथीदाँत की, सींग के अग्रभाग की, अथवा स्फटिक आदि मणियों की बनानी

७–अडूसे का रस एक सेर, सफेद चीनी आधसेर, पीपल आठ तोले और घी आठ तोले, इन सब को मन्दाग्नि से पका कर अवलेह (चटनी) बना लेना चाहिये, इस के शीतल हो जाने पर ३२ तोले शहद मिलाना चाहिये, इस का सेवन करने से राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, पसवाड़े का शूल, हृदय का शूल, रक्तपित्त और ज्वर, ये सब रोग शीघ्र ही मिट जाते है ।

८–बकरी का घी चार सेर, बकरी की मेंगनियों का रस चार सेर, बकरी का मूत्र चार सेर, बकरी का दूध चार सेर तथा बकरी का दही चार सेर, इन सब को एकत्र पका

चाहिये, एक वर्ष से लेकर छ वर्ष तक के वालक के लिये छः अगुल के, छः वर्ष से लेकर वारह वर्ष तक के लिये आठ अगुल के तथा वारह वर्ष से अधिक अवस्था वाले के लिये वारह अगुल के लम्बे वस्ति के नेत्र बनाने चाहियें, छ अगुल की नली में मूग के दाने के समान, आठ अगुल की नली में मटर के समान तथा वारह अगुल की नली में बेर की गुठली के समान छिद्र रक्खे, नली चिकनी तथा गाय की पूॅछ के समान (जड़ मे मोटी और आगे क्रम २ से पतली) होनी चाहिये, नली मूल मे रोगी के अगूठे के समान मोटी होनी चाहिये और कनिष्ठिका के समान स्थूल होनी चाहिये तथा गोल मुख की होनी चाहिये, नली के तीन भागों को छोड कर चतुर्थ भाग रूप मूल मे गाय के कान के समान दो कर्णिकाये बनानी चाहियें तथा उन्हीं कर्णिकाओं में चर्म की कोथली (थैली) को दो बन्धनों से खूब मजबूत बांध देना चाहिये, वह वस्ति लाल वा कषैले रग से रंगी हुई, चिकनी और दृढ होनी चाहिये, यदि घाव मे पिचकारी मारनी हो तो उस की नली आठ अगुल की मूग के समान छिद्र वाली और गीध के पाख की नली के समान मोटी होनी चाहिये । **वस्ती के गुण**—वस्ति का उत्तम प्रकार से सेवन करने से शरीर की पुष्टि, वर्ण की उत्तमता, वल की वृद्धि, आरोग्यता और आयु की वृद्धि होती है । **ऋतु के अनुसार वस्ति**—शीत काल और वसन्त ऋतु मे दिन मे स्नेह वस्ति देना चाहिये तथा ग्रीष्म वर्षा और शरद ऋतु मे स्नेह वस्ति रात्रि मे देना चाहिये । **वस्ति विधि**—रोगी को बहुत चिकना न हो ऐसा भोजन करा के यह वस्ति देनी चाहिये किन्तु बहुत चिकना भोजन कराके वस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दो प्रकार से (भोजन मे और वस्ति मे) स्नेह का उपयोग होने से मद और मूर्छा रोग उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रूक्ष पदार्थ खिला कर वस्ति के देने से वल और वर्ण का नाश होता है, अतः अल्पस्निग्ध पदार्थों को खिला कर वस्ति करनी चाहिये । **वस्ति की मात्रा**—यदि वस्ति हीन मात्रा से दी जावे तो यथोचित कार्य को नहीं करती है, यदि अधिक मात्रा से दी जावे तो अफरा, क्लम और अतीसार को उत्पन्न करती है इस लिये वस्ति न्यूनाधिक मात्रा से नहीं देनी चाहिये, अनुवासन वस्ति में स्नेह की छ. पल की मात्रा उत्तम, तीन पल की मध्यम और डेढ पल की मात्रा अधम मानी गई है, स्नेह में जो सौंफ और सेंधे नमक का चूर्ण डाला जावे उस की मात्रा छः मासे की उत्तम, चार मासे की मध्यम और दो मासे की हीन है । **वस्ति का समय**—विरेचन देने के बाद ७ दिन के पीछे जब देह में वल आ जावे तब अनुवासन वस्ति देनी चाहिये । **वस्ति देने की रीति**—रोगी के खूब तेल की मालिश कराके धीरे २ गर्म जल से बफारा दिला कर तथा भोजन कराके कुछ इधर उधर घुमा कर तथा मल मूत्र और अधोवायु का त्याग करा के स्नेह वस्ति देनी चाहिये, इस की रीति यह है कि–रोगी को बायें करवट सुला के बाईं

कर उस में एक सेर जवाखार का चूर्ण डालना चाहिये, इस घृत के सेवन से राजयक्ष्मा, खांसी और श्वास, ये रोग नष्ट हो जाते हैं ।

९—वासा के जड़ की छाल १२॥ सेर तथा जल ६४ सेर, इन को औटावे, जब १६ सेर जल शेष रहे तब इस में १२॥ सेर मिश्री मिला कर पाक करे, जब गाढ़ा हो जावे तब उस में त्रिकुटा, दालचीनी, पत्रज, इलायची, कायफल, मोथा, कुष्ठ (कूठ), जीरा, पीपरामूल, कवीला, चव्य, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपल, तालीसपत्र और धनियां, ये सब दो २ तोले मिलावे, सब के एक जीव हो जाने पर उतार ले तथा शीतल होने पर

जांघ को फैला कर और दाहिनी जांघ को सकोड़ कर चिकनी गुदा में पिचकारी की नली को रक्खे, उस नली में वस्ति के मुख को सूत से बाँध कर बायें हाथ में ले कर दाहिने हाथ से मध्यम वेग से धीर चित्त होकर दवावे, जिस समय वस्ति की जावे उस समय रोगी जमाई खांसी तथा छींकना आदि न करे; पिचकारी के दावने का काल तीस मात्रा पर्यन्त है, जब स्नेह सब शरीर में पहुँच जावे तब सौ वाक् पर्यन्त चित्त लेटा रहे (वाक् और मात्रा का परिमाण अपने घोंटू पर हाथ को फेर कर चुटकी बजाने जितना माना गया है, अथवा आँख बन्द कर फिर खोलना जितना है, अथवा गुरु अक्षर के उच्चारण काल के समान है) फिर सब देह को फैला देना चाहिये कि जिस से स्नेह का असर सब शरीर में फैल जावे, फिर रोगी के पैर के तलवों को तीन वार ठोंकना चाहिये, फिर इस की शय्या को उठा कर कूले और कमर को तीन वार ठोंकना चाहिये, फिर पैरों की तरफ से शय्या को तीन २ वार ऊँची करना चाहिये, इस प्रकार सब विधि के होने के पश्चात् रोगी को यथेष्ट सोना चाहिये, जिस रोगी के पिचकारी का तेल विना किसी उपद्रव के अधोवायु और मल के साथ गुदा से निकले उस के वस्ति का ठीक लगना जानना चाहिये, फिर पहिले का भोजन पच जाने पर और तेल के निकल आने पर दीप्ताग्नि वाले रोगी को सायंकाल में हलका अन्न भोजन के लिये देना चाहिये, दूसरे दिन स्नेह के विकार के दूर करने के लिये गर्म जल पिलाना चाहिये, अथवा धनिया और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिये इस, प्रकार से छः सात आठ अथवा नौ अनुवासन वस्तियां देनी चाहिये, (इन के वाद अन्त में निरूहण वस्ति देनी चाहिये) । वस्ति के गुण—पहिली वस्ति से मूत्राशय और पेडू चिकने होते हैं, दूसरी वस्ति से मस्तक का पवन शान्त होता है, तीसरी वस्ति से बल और वर्ण की वृद्धि होती है, चौथी और पाँचवीं वस्ति से रस और रुधिर स्निग्ध होते हैं, छठी वस्ति से मांस स्निग्ध होता है, सातवीं वस्ति से मेद स्निग्ध होता है, आठवीं और नवीं वस्ति से क्रम से मांस और मज्जा स्निग्ध होते हैं, इस प्रकार अठारह वस्तियों तक लगाने से शुक्र तक के यावन्मात्र विकार दूर होते हैं, जो पुरुष अठारह दिन तक अठारह वस्तियों का सेवन कर लेवे वह हाथी के समान बलवान्, घोड़े के समान वेगवान् और देवों के समान कान्ति वाला हो जाता है, रूक्ष तथा अधिक वायु वाले मनुष्य को तो प्रति दिन ही वस्ति का सेवन करना चाहिये तथा अन्य मनुष्यों को जठराग्नि में बाधा न पहुँचे इस लिये तीसरे २ दिन वस्ति का सेवन करना चाहिये, रूक्ष शरीर वाले मनुष्यों को अल्प मात्रा भी अनुवासन वस्ति दी जावे तो बहुत दिनों तक भी कुछ हर्ज नहीं है किन्तु स्निग्ध मनुष्यों को थोड़ी मात्रा की निरूहण वस्ति दी जावे तो वह उन के अनुकूल होती है, अथवा जिस मनुष्य के वस्ति

यह खैंचतान निद्रावस्था (नींद की हालत) और एकाकी (अकेले) होने के समय में नही होती है किन्तु जब रोगी के पास दूसरे लोग होते है तब ही होती है तथा एकाएक (अचानक) न होकर धीरे २ होती हुई मालूम पड़ती है, रोगी पहिले हँसता है, बकता है, पीछे इसके भरता है और उस समय उस के गोला भी ऊपर को चढ जाता है, खैंचतान के समय यद्यपि असावधानता मालूम होती है परन्तु वह प्रायः अन्त में मिट जाती है।

महात्मा, परोपकारी (दूसरों का उपकार करनेवाले) और सत्यवादी (सत्य बोलनेवाले) थे तथा उन का वचन इस भव (लोक) और पर भव (दूसरा लोक) दोनों में हितकारी (भलाई करनेवाला) है, इसी लिये हम ने भी इस ग्रन्थ में उन्हीं महात्माओं के वचनों को अनेक शास्त्रों से लेकर सग्रहीत (इकट्ठा) किया है, किन्तु जिन लोगों ने उक्त महात्माओं के वचनों को नहीं माना, वे अविद्या के उपासक समझे गये और उसी के प्रसाद से वे धर्म को अधर्म, सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, शुद्ध को अशुद्ध, अशुद्ध को शुद्ध, जड को चेतन, चेतन को जड तथा अधर्म को धर्म समझने लगे, बस उन्हीं लोगों के प्रताप से आज इस पवित्र गृहस्थाश्रम की यह दुर्दशा हो रही है और होती जाती है तथा इस आश्रम की यह दुर्दशा होने से इस के आश्रयीभूत (सहारा लेनेवाले) शेष तीनों आश्रमों की दुर्दशा होने में आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि–"जैसा आहार, वैसा उद्गार" बस–हमारे इस पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) वचन पर थोड़ा सा ध्यान दो तो हमारे कथन का आशय (मतलब) तुम्हें अच्छे प्रकार से मालूम हो जावेगा। (प्रश्न) आपने भूत प्रेत आदि का केवल वहम बतलाया है, सो क्या भूत प्रेत आदि है ही नहीं? (उत्तर) हमारा यह कथन नहीं है कि–भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि हम सब ही लोग शास्त्रानुसार स्वर्ग और नरक आदि सब व्यवहारो के माननेवाले है अत- हम भूत प्रेत आदि भी सब कुछ मानते हैं, क्योंकि जीवविचार आदि ग्रन्थों में व्यन्तर के आठ भेद कहे हैं–पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व, इस लिये हम उन सब को यथावत् (ज्यों का त्यों) मानते है, इस लिये हमारा कथन यह नहीं है कि भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ नहीं है किन्तु हमारे कहने का मतलब यह है कि–गृहस्थ लोग रोग के समय में जो भूत प्रेत आदि के वहम में फँस जाते है सो यह उन की मूर्खता है, क्योंकि–देखो! ऊपर लिखे हुए जो पिशाच आदि देव है वे प्रत्येक मनुष्य के शरीर में नहीं आते हैं, हां यह दूसरी बात है कि–पूर्व भव (पूर्व जन्म) का कोई वैरानुबन्ध (वैर का सम्बन्ध) हो जाने से ऐसा हो जावे (किसी के शरीर मे पिशाचादि प्रवेश करे) परन्तु इस बात की तो परीक्षा भी हो सकती है अर्थात् शरीर में पिशाचादि का प्रवेश है वा नहीं है इस बात की परीक्षा को तुम सहज मे थोडी देर में ही कर सकते हो, देखो! जब किसी के शरीर मे तुम को भूत प्रेत आदि की सम्भावना हो तो तुम किसी छोटी सी चीज को हाथ की मुट्ठी मे बन्द करके उस से पूछो कि हमारी मुट्ठी मे क्या चीज है? यदि वह उस चीज को ठीक २ बतला दे तो पुन भी दो तीन वार दूसरी २ चीजो को लेकर पूँछो, जब कई वार ठीक २ सब वस्तुओं को बतला दे तो वेशक शरीर मे भूत प्रेत आदि का प्रवेश समझना चाहिये, यही परीक्षा भैरूं जी तथा मावड्यों जी आदि के भोपों पर (जिन पर भैरूं जी आदि की छाया का आना माना जाता है) भी हो सकती है, अर्थात् वे (भोपे) भी यदि वस्तु को ठीक २ बतला देवे तो अलबत्तह उक्त देवों की छाया उन के शरीर मे समझनी चाहिये, परन्तु यदि मुट्ठी की चीज को न बतला सके तो

कभी २ खैंचतान थोड़ी और कभी २ अधिक होती है, रोगी अपने हाथ पैरों को फैंकता है तथा पछाड़ें मारता है, रोगी के दाँत बँध जाते हैं परन्तु प्रायः जीभ नहीं अकड़ती है और न मुख से फेन गिरता है, रोगी का दम घुटता है, वह अपने बालों को तोड़ता है, कपड़ों को फाड़ता है तथा लड़ना प्रारम्भ करता है।

ऊपर कहे हुए दोनों को झूठा समझना चाहिये। (प्रश्न) महाशय! हम ने आप की बतलाई हुई परीक्षा को तो कभी नहीं किया, क्योंकि यह बात आजतक हम को मालूम ही नहीं थी, परन्तु हम ने भूतनी को निकालते तो अपनी आँखो से (प्रत्यक्ष) देखा है, वह आप से कहता हूँ, सुनिये—मेरी स्त्री के शरीर में महीने में दो तीन बार भूतनी आया करती थी, मैं ने बहुत से झाड़ा झपाटा करने वालो से झाड़े झपाटे आदि करवाये तथा उन के कहने के अनुसार बहुत सा द्रव्य भी खर्च किया, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ, आखिरकार झाड़ा देनेवाला एक उस्ताद मिला, उस ने मुझ से कहा कि-"मैं तुम को आँखों से भूतिनी को दिखला दूँगा तथा उसे निकाल दूँगा परन्तु तुम से एक सौ एक रुपये लूगा" मैं ने उस की बात को स्वीकार कर लिया, पीछे मगलवार के दिन शाम को वह मेरे पास आया और मुझ से फुलस्केप कागज़ का आधा शीट (तख्ता) मंगवाया और उस (कागज़) को मन्त्र कर मेरी स्त्री के हाथ में उसे दिया और लोबान की धूप देता रहा, पीछे मन्त्र पढ कर सात ककर्डी उस ने मारी और मेरी स्त्री से कहा कि-"देखो! इस में तुम्हें कुछ दीखता है" मेरी स्त्री ने लज्जा के कारण जब कुछ नहीं कहा तब मैं ने उस कागज़ को देखा तो उस मे साक्षात् भूतनी का चेहरा मुझ को दीख पडा, तब मुझ को विश्वास हो गया और भूतनी निकल गई, पीछे उस के कहने के अनुसार मैं ने उसे एक सौ एक रुपये दे दिये, जाते समय उस ने एक यन्त्र भी बना कर मेरी स्त्री के बँधवा दिया और वह चला गया, उस के चले जाने के बाद एक महीने तक मेरी स्त्री अच्छी रही परन्तु फिर पूर्ववत् (पहिले के समान) हो गई, यह मैं ने अपनी आँखों से देखा है, अब यदि कोई इस को झूठ कहे तो भला मैं कैसे मानूं? (उत्तर) तुम ने जो आँखों से देखा है उस को झूठ कौन कह सकता है, परन्तु तुम को मालूम नहीं है कि-ठगनेवाले लोग ऐसी २ चालाकिया किया करते है जो कि साधारण लोगों की समझ में कभी नहीं आ सकती हैं और उन की वैसी ही चालाकियों से तुम्हारे जैसे भोले लोग ठगे जाते हैं, देखो! तुम लोगों से यदि कोई विद्योन्नति (विद्या की वृद्धि) आदि उत्तम काम के लिये पांच रुपये भी मांगे तो तुम कभी नही दे सकते हो, परन्तु उन धूर्त पाखण्डियों को खुशी के साथ सैकडो रुपये दे देते हो, बस इसी का नाम अविद्या का प्रसाद (अज्ञान की कृपा) है, तुम कहते हो कि उस झाड़ा देनेवाले उस्ताद ने हम को कागज में भूतनी का चेहरा साक्षात् दिखला दिया, सो प्रथम तो हम तुम से यही पूँछते है कि-तुम ने उस कागज मे लिखे हुए चेहरे को देखकर यह कैसे निश्चय कर लिया कि यह भूतनी का चेहरा है, क्योंकि तुम ने पहिले तो कभी भूतनी को देखा ही नहीं था, (यह नियम की बात है कि पहिले साक्षात् देखे हुए मूर्तिमान् पदार्थ के चित्र को देखकर भी वह पदार्थ जाना जाता है) बस विना भूतिनी को देखे कागज में लिखे हुए चित्र को देख कर भूतिनी के चेहरे का निश्चय कर लेना तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? (प्रश्न) हम ने माना कि-कागज मे भूतनी का चेहरा भले ही न हो परन्तु विना लिखे वह चेहरा उस कागज़ में आ गया, यह उस की पूरी उस्तादी नही तो और क्या है? जब कि विना लिखे उस की विद्या के बल से वह चेहरा

जब खैंचतान बन्द होने को होती है उस समय जृम्भा (जँभाइयाँ वा उबासियाँ) अथवा डकारें आती है, इस समय भी रोगी रोता है, हँसता है अथवा पागलपन को प्रकट (जाहिर) करता है तथा वारंवार पेशाब करने के लिये जाता है और पेशाब उतरती भी बहुत है।

कागज मे आ गया इस से यह ठीक निश्चय होता है कि वह विद्या में पूरा उस्ताद था और जब उस की उस्तादी का निश्चय हो गया तो उस के कथनानुसार कागज में भूतनी के चेहरे का भी विश्वास करना ही पडता है। (उत्तर) उस ने जो तुम को कागज़ में साक्षात् चेहरा दिखला दिया वह उस का विद्या का बल नहीं किन्तु केवल उस की चालाकी थी, तुम उस चालाकी को जो विद्या का बल समझते हो यह तुम्हारी बिलकुल अज्ञानता तथा पदार्थविद्यानभिज्ञता (पदार्थविद्या को न जानना) है, देखो! विना लिखे कागज में चित्र का दिखला देना यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि पदार्थविद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अद्भुत (विचित्र) कार्य दिखलाये जा सकते हैं, उन के यथार्थ तत्त्व को न समझ कर भूत प्रेत आदि का निश्चय कर लेना अत्यन्त मूर्खता है, इन के सिवाय इस बात का जान लेना भी आवश्यक (जरूरी) है कि उन्माद आदि कई रोगों का विशेष सम्बध मन के साथ है, इस लिये कभी २ वे महीने दो महीने तक नहीं भी होते है तथा कभी २ जब मन और तरफ को झुक जाता है अथवा मन की आशा पूर्ण हो जाती है तब बिलकुल ही देखने में नहीं आते हैं।

उन्माद रोग मे रोना बकना आदि लक्षण मन के सम्बन्ध से होते हैं परन्तु मूर्ख जन उन्हें देख कर भूत और भूतनी को समझ लेते हैं, यह भ्रम वर्तमान में प्राय. देखा जाता है, इस का हेतु केवल कुसंस्कार (बुरा सस्कार) ही है, देखो! जब कोई छोटा बालक रोता है तब उस की माता कहती है कि–"हौआ आया" इस को सुन कर बालक चुप हो जाता है, बस उस बालक के हृदय मे उसी हौए का सस्कार जम जाता है और वह आजन्म (जन्मभर) नहीं निकलता है, प्रिय वाचकवृन्द! विचारो तो सही कि वह हौआ क्या चीज है, कुछ भी नहीं, परन्तु उस अभावरूप हौए का भी बुरा असर बालक के कोमल हृदय पर कैसा पड़ता है कि वह जन्मभर नहीं जाता है, देखो! हमारे देशी भाइयो मे से बहुत से लोग रात्रि के समय मे दूसरे ग्राम में वा किसी दूसरी जगह अकेले जाने मे डरते हैं, इस का क्या कारण है, केवल यही कारण है कि–अज्ञान माता ने बालकपन मे उन के हृदय मे हौआ का भय और उस का बुरा सस्कार स्थापित कर दिया है।

यह कुसस्कार विद्या से रहित मारवाड आदि अनेक देशों में तो अधिक देखा ही जाता है परन्तु गुजरात आदि जो कि पठित देश कहलाते हैं वे भी इस के भी दो पैर आगे बढे हुए हैं, इस का कारण स्त्रीवर्ग की अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है।

यद्यपि इस विषय मे यहा पर हम को अनेक अद्भुत बातें भी लिखनी थीं कि जिन से गृहस्थों और भोले लोगो का सब भ्रम दूर हो जाता तथा पदार्थविज्ञानसम्बधी कुछ चमत्कार भी उन्हें विदित हो जाते परन्तु ग्रन्थ के अधिक बढ जाने के भय से उन सब बातों को यहा नहीं लिख सकते हैं, किन्तु सूचना मात्र प्रसगवशात् यहा पर बतला देना आवश्यक (जरूरी) था, इस लिये कुछ बतला दिया गया, उन सब अद्भुत बातों का वर्णन अन्यत्र प्रसगानुसार किया जाकर पाठकों की सेवा मे उपस्थित किया जावेगा, आशा है कि समझदार पुरुष हमारे इतने ही लेख से तत्त्व का विचार कर मिथ्या भ्रम (झूठे वहम) को दूर कर धूर्त और पाखण्डी लोगों के पंजे मे न फँस कर लाभ उठावेंगे॥

द्वितीय संख्या—बरडिया (वरदिया) गोत्र ॥

धारा नगरी में वहाँ के राजा भोज के परलोक हो जाने के बाद उक्त नगरी का राज्य जिस समय तँवरों को उन की बहादुरी के कारण प्राप्त हुआ उस समय भोजवंशज (भोज की औलाद वाले) लोग इस प्रकार थेः—

योग्य था) उसे भी सुन कर हमें अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ, तीसरे–रात्रि के समय देवदर्शन करके श्रीमान् श्री फूलचन्द जी गोलच्छा के साथ "श्री फलोधी तीर्थोन्नति सभा" के उत्सव में गये, उस समय जो आनन्द हम को प्राप्त हुआ वह अद्यापि (अब भी) नहीं भूला जाता है, उस समय सभा में जयपुरनिवासी श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा एम. ए. विद्योन्नति के विषय में अपना भाषणामृत वर्षा कर लोगों के हृदयाब्जों (हृदयकमलों) को विकसित कर रहे थे, हम ने पहिले पहिल उक्त महाशय का भाषण यहीं सुना था, दशमी के दिन प्रातःकाल हमारी उक्त महोदय (श्रीमान् श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा) से मुलाकात हुई और उन के साथ अनेक विषयों में बहुत देर तक वार्त्तालाप होता रहा, उन की गम्भीरता और सौजन्य को देख कर हमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, अन्त में उक्त महाशय ने हम से कहा कि–"आज रात्रि को जीर्णपुस्तकोद्धार आदि विषयों में भाषण होंगे, अतः आप भी किसी विषय में अवश्य भाषण करें" अस्तु हम ने भी उक्त महोदय के अनुरोध से जीर्णपुस्तकोद्धार विषय में भाषण करना स्वीकार कर लिया, निदान रात्रि में करीब नौ बजे पर उक्त विषय में हम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मेज के समीप खड़े हो कर उक्त सभा मे वर्तमान प्रचलित रीति आदि का उद्बोध कर भाषण किया, दूसरे दिन जब उक्त महोदय से हमारी बातचीत हुई उस समय उन्हों ने हम से कहा कि–"यदि आप कान्फ्रेंस की तरफ से राजपूताने में उपदेश करें तो उम्मेद है कि बहुत सी बातों का सुधार हो अर्थात् राजपूताने के लोग भी कुछ सचेत होकर कर्तव्य में तत्पर हों" इस के उत्तर में हम ने कहा कि–"ऐसे उत्तम कार्यों के करने में तो हम स्वयं तत्पर रहते हैं अर्थात् यथाशक्य कुछ न कुछ उपदेश करते ही हैं, क्योंकि हम लोगों का कर्तव्य ही यही है परन्तु सभा की तरफ से अभी इस कार्य के करने में हमें लाचारी है, क्योंकि इस में कई एक कारण हैं–प्रथम तो–हमारा शरीर कुछ अस्वस्थ रहता है, दूसरे–वर्त्तमान में ओसवालवंशोत्पत्ति के इतिहास के लिखने में समस्त कालयापन होता है, इत्यादि कई कारणों से इस शुभ कार्य की अस्वीकृति की क्षमा ही प्रदान करावें" इत्यादि बातें होती रहीं, इस के पश्चात् हम एकादशी को बीकानेर चले गये, वहां पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों मे अजमेर से श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस की तरफ से पुनः एक पत्र हमें प्राप्त हुआ, जिस की नकल ज्यों की त्यों निम्नलिखित है.—

॥ श्री जैन (श्वेताम्बर) कोन्फरन्स—

अजमेर—

ता० १५ अक्टूबर……१९०६.

॥ गुरां जी महाराज श्री १००८ श्री श्रीपालचंद जी की सेवा में—धनराज कांस्टिया–लि–वंदना मालूम होवे–आप को सुखसाता को पत्र नहीं सो दिरावें–और फलोधी में आप को भाषण बडो मनोरंजन हुवो राजपूताना मारवाड़ में आप जैसे गुणवान पुरुष विद्यमान हैं जिस्की हम को बडी खुशी है—आप देशाटन करके जगह ब जगह धर्म की बहुत उन्नति की—अठी की तरफ भी आप जैसे महात्माओं को

१–निहंगपाल । २–तालणपाल ३–तेजपाल । ४–तिहुअणपाल (त्रिभुवनपाल) । ५–अनंगपाल । ६–पोतपाल । ७–गोपाल । ८–लक्ष्मणपाल । ९–मदनपाल । १०–कुमारपाल । ११–कीर्त्तिपाल । १२–जयतपाल, इत्यादि ।

वे सब राजकुमार उक्त नगरी को छोड़ कर जब से मथुरा में आ रहे तब से वे माथुर कहलाये, कुछ वर्षों के वीतने के बाद गोपाल और लक्ष्मणपाल, ये दोनों भाई केकेई ग्राम में जा बसे, संवत् १०३७ (एक हजार सैंतीस) में जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज मथुरा की यात्रा करके विहार करते हुए उक्त (केकेई) ग्राम में पधारे, उस समय लक्ष्मणपाल ने आचार्य महाराज की बहुत ही भक्ति की और उन के धर्मोपदेश को सुनकर दयामूल धर्म का अङ्गीकार किया, एक दिन व्याख्यान में शेत्रुञ्जय तीर्थ का माहात्म्य आया उस को सुन कर लक्ष्मणपाल के मन में संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय की यात्रा करने की इच्छा हुई और थोड़े ही दिनों में संघ निकाल कर उन्होंने उक्त तीर्थयात्रा की तथा कई आवश्यक स्थानों में लाखों रुपये धर्मकार्य में लगाये, जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज ने लक्ष्मणपाल के सद्भाव को देख उन्हें संघपति का पद दिया, यात्रा करके जब केकेई ग्राम में वापिस आ गये तब एक दिन लक्ष्मणपाल ने गुरु महाराज से यह प्रार्थना की कि–"हे परम गुरो ! धर्म की तथा आप की सत्कृपा (बदौलत) से मुझे सब प्रकार का आनन्द है परन्तु मेरे कोई सन्तति नहीं है, इस लिये मेरा हृदय सदा शून्यवत् रहता है" इस बात को सुन कर गुरुजी ने स्वरोदय (योगविद्या) के ज्ञानबल से कहा कि–"तुम इस बात की चिन्ता मत करो, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे और उन से तुम्हारे कुल की वृद्धि होगी" कुछ दिनों के बाद आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये

विचरबो बहुत जरूरी है—बडा २ शहरा मे तथा प्रतिष्ठा होवे तथा मेला होवे जठे–कानफ्रेन्स सूं आप को जावणों हो सके या किस तरह जिस्का समाचार लिखावें–क्योंकि उपदेशक गुजराती आये जिन्की जबान इस तरफ के लोगों के कम समझ मे आती है–आप की जबान मे इच्छी तरह समझ सकते हैं–और आप इस तरफ के देश काल से वाकिफकार हैं–सो आप का फिरना हो सके तो पीछा कृपा कर जवाब लिखें–और खर्च क्या महावार होगा–और आप की शरीर की तदुरुस्ती तो ठीक होगी समाचार लिखावे–बीकानेर मे भी जैनक्लब कायम हुवा है–सारा हालात वहां का शिवबक्श जी साहब कोचर आप को वाकिफ करेंगे–बीकानेर मे भी बहुत सी बातो का सुधारा की जरूरत है सो वणे तो कोशीश करसी–कृपादृष्टी है वैसी बनी रहै—

आप का सेवक,
धनराज कांसटिया–
–सुपर वाईझर–

यद्यपि हमारे पास उक्त पत्र आया तथापि पूर्वोक्त कारणो से हम उक्त कार्य को स्वीकार नहीं कर सके ॥

१–एक स्थान में श्रीवर्द्धमान सूरि के बदले मे श्रीनेमचन्द्र सूरि का नाम देखा गया है ॥

और उन के कथनानुकूल लक्ष्मणपाल के क्रम से (एक के पीछे एक) तीन लड़के उत्पन्न हुए, जिन का नाम लक्ष्मणपाल ने यशोधर, नारायण और महीचन्द रक्खा, जब ये तीनों पुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुए तब लक्ष्मणपाल ने इन सब का विवाह कर दिया, उन में से नारायण की स्त्री के जब गर्भस्थिति हुई तब प्रथम जापा (प्रसूत) कराने के लिये नारायण की स्त्री को उस के पीहरवाले ले गये, वहाँ जाने के बाद यथासमय उस के एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जिस में एक तो लड़की थी और दूसरा सर्पाकृति (साँप की शकलवाला) लड़का उत्पन्न हुआ था, कुछ महीनों के बाद जब नारायण की स्त्री पीहर से सुसराल में आई तब उस जोड़े को देखकर लक्ष्मणपाल आदि सब लोग अत्यन्त चकित हुए तथा लक्ष्मणपाल ने अनेक लोगों से उस सर्पाकृति बालक के उत्पन्न होने का कारण पूछा परन्तु किसी ने ठीक २ उस का उत्तर नहीं दिया (अर्थात् किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ कहा), इस लिये लक्ष्मणपाल के मन में किसी के कहने का ठीक तौर से विश्वास नहीं हुआ, निदान वह बात उस समय यों ही रही, अब सर्पाकृति बालक का हाल सुनिये कि—वह शीत ऋतु के कारण सदा चूल्हे के पास आकर सोने लगा, एक दिन भवितव्यता के वश क्या हुआ कि वह सर्पाकृति बालक तो चूल्हे की राख में सो रहा था और उस की बहिन ने चार घड़ी के तड़के उठ कर उसी चूल्हे में अग्नि जला दी, उस अग्नि से जलकर वह सर्पाकृति बालक मर गया और मर कर व्यन्तर हुआ, तब वह व्यन्तर नाग के रूप में वहाँ आकर अपनी बहिन को बहुत धिक्कारने लगा तथा कहने लगा कि—"जब तक मैं इस व्यन्तरपन में रहूंगा तब तक लक्ष्मणपाल के वंश में लड़कियां कभी सुखी नहीं रहेंगी अर्थात् शरीर में कुछ न कुछ तकलीफ सदा ही बनी रहा करेगी" इस प्रसंग को सुनकर वहाँ बहुत से लोग एकत्रित (जमा) हो गये और परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे, थोड़ी देर के बाद उन में से एक मनुष्य ने जिस की कमर में दर्द हो गया था इस व्यन्तर से कहा कि—"यदि तू देवता है तो मेरी कमर के दर्द को दूर कर दे" तब उस नागरूप व्यन्तर ने उस मनुष्य से कहा कि—"इस लक्ष्मणपाल के घर की दीवाल (भीत) का तू स्पर्श कर, तेरी पीड़ा चली जावेगी" निदान उस रोगी ने लक्ष्मणपाल के मकान की दीवाल का स्पर्श किया और दीवाल का स्पर्श करते ही उस की पीड़ा चली गई, इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देख कर लक्ष्मणपाल ने विचारा कि यह नागरूप में कब तक रहेगा अर्थात् यह तो वास्तव में व्यन्तर है, अभी अदृश्य हो जावेगा, इस लिये इस से वह वचन ले लेना चाहिये कि जिस से लोगों का उपकार हो, यह विचार कर लक्ष्मणपाल ने उस नागरूप व्यन्तर से कहा कि—"हे नागदेव! हमारी सन्तति (औलाद) को कुछ वर देओ कि जिस से तुम्हारी कीर्त्ति इस संसार में बनी रहे" लक्ष्मणपाल की बात को सुन कर नागदेव ने उन से कहा कि—"वर दिया" "वह वर यही है कि—तुम्हारी

वील्हा जी के कडूवा और धरण नामक दो पुत्र हुए, वील्हा जी ने भी अपने पिता (तेजपाल) के समान अनेक धर्मकृत्य किये ।

वील्हा जी की मृत्यु के पश्चात् उन के पाट पर उन का बड़ा पुत्र कडूवा बैठा, इस का नाम तो अलवत्ता कडूवा था परन्तु वास्तव में यह परिणाम में अमृत के समान मीठा निकला।

किसी समय का प्रसंग है कि–यह मेवाड़देशस्थ चित्तौड़गढ को देखने के लिये गया, उस का आगमन सुन कर चित्तौड़ के राना जी ने उस का बहुत सम्मान किया, थोड़े दिनों के बाद मॉंडवगढ का बादशाह किसी कारण से फौज लेकर चित्तौड़गढ पर चढ़ आया, इस बात को जान कर सब लोग अत्यन्त व्याकुल होने लगे, उस समय राना जी ने कडूवा जी से कहा कि–"पहिले भी तुम्हारे पुरुषाओं ने हमारे पुरुषाओं के अनेक बड़े २ काम सुधारे है इस लिये अपने पूर्वजों का अनुकरण कर आप भी इस समय हमारे इस काम को सुधारो" यह सुन कर कडूवा जी ने बादशाह के पास जा कर अपनी बुद्धिमत्ता से उसे समझा कर परस्पर में मेल करा दिया और बादशाह की सेना को वापिस लौटा दिया, इस बात से नगरवासी जन बहुत प्रसन्न हुए और राना जी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बहुत से घोड़े आदि ईनाम में देकर कडूवा जी को अपना मन्त्रीश्वर (प्रधान मन्त्री) बना दिया, उक्त पद को पाकर कडूवा जी ने अपने सद्वर्त्ताव से वहाँ उत्तम यश प्राप्त किया, कुछ दिनों के बाद कडूवा जी राना जी की आज्ञा लेकर अणहिल पत्तन में गये, वहां भी गुजरात के राजा ने इन का बड़ा सम्मान किया तथा इन के गुणों से तुष्ट होकर पाटन इन्हें सौंप दिया, कडूवा जी ने अपने कर्त्तव्य को विचार सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य लगाया, गुजरात देश में जीवहिंसा को बन्द करवा दिया तथा विक्रम संवत् १४३२ (एक हजार चार सौ बत्तीस) के फागुन वदि छठ के दिन खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनराज सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव सवा लाख रुपये लगा कर किया, इस के सिवाय इन्हों ने शेत्रुञ्जय का संघ भी निकाला और मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन का घर दीठ लावण अपने साधर्मी भाइयों को बाँटा, ऐसा करने से गुजरात भर में उन की अत्यन्त कीर्ति फैल गई, सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया, तात्पर्य यह है कि इन्हों ने यथाशक्ति जिनशासन का अच्छा उद्योत किया, अन्त में अनशन आराधन कर ये स्वर्गवास को प्राप्त हुए।

कडूवा जी से चौथी पीढ़ी में जेसल जी हुए, उन के बच्छराज, देवराज और हंस-

---

१–श्री शेत्रुञ्जय गिरनार का संघ निकाला तथा मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन की लावण प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को बाँटी तथा सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया ॥

राज नामक तीन पुत्र हुए, इन में से ज्येष्ठ पुत्र बच्छराज जी अपने भाइयों को साथ लेकर मण्डोवर नगर में राव श्री रिड़मल जी के पास जा रहे और राव रिड़मल जी ने बच्छराज जी की बुद्धि के अद्भुत चमत्कार को देख कर उन्हें अपना मन्त्री नियत कर लिया, बस बच्छराज जी भी मन्त्री बन कर उसी दिन से राजकार्य के सब व्यवहार को यथोचित रीति से करने लगे।

कुछ समय के बाद चित्तौड़ के राना कुम्भकरण में तथा राव रिड़मल जी के पुत्र जोधा जी में किसी कारण से आपस में वैर बँध गया, उस के पीछे राव रिड़मल जी और मन्त्री बच्छराज जी राना कुम्भकरण के पास चित्तौड़ में मिलने के लिये गये, यद्यपि वहां जाने से इन दोनों से राना जी मिले झुले तो सही परन्तु उन (राना जी) के मन में कपट था इस लिये उन्हों ने छल कर के राव रिड़मल जी को धोखा देकर मार डाला, मन्त्री बच्छराज इस सर्व व्यवहार को जान कर छलबल से वहाँ से निकल कर मण्डोर में आ गये।

राव रिड़मल जी की मृत्यु हो जाने से उन के पुत्र जोधा जी उन के पाटनसीन हुए और उन्हों ने मन्त्री बच्छराज को सम्मान देकर पूर्ववत् ही उन्हें मन्त्री रख कर राजकाज सौंप दिया, जोधा जी ने अपनी वीरता के कारण पूर्व वैर के हेतु राना के देश को उजाड़ कर दिया और अन्त में राना को भी अपने वश में कर लिया, राव जोधा जी के जो नवरंग दे रानी थी उस रत्नगर्भा की कोख से विक्रम (बीका जी) और बीदा नामक दो पुत्ररत्न हुए तथा दूसरी रानी जसमादे नामक हाड़ी थी, उस के नीवा, सूजा और सातल नामक तीन पुत्र हुए, बीका जी छोटी अवस्था में ही बड़े चञ्चल और बुद्धिमान् थे इस लिये उन के पराक्रम तेज और बुद्धि को देख कर हाड़ी रानी ने मन में यह विचार कर कि बीका की विद्यमानता में हमारे पुत्र को राज नही मिलेगा, अनेक युक्तियों से राव जोधा जी को वश में कर उन के कान भर दिये, राव जोधा जी बड़े बुद्धिमान् थे अतः उन्हों ने थोड़े ही में रानी के अभिप्राय को अच्छे प्रकार से मन में समझ लिया, एक दिन दर्बार में भाई बेटे और सर्दार उपस्थित थे, इतने ही में कुँवर बीका जी भी अन्दर से आ गये और मुजरा कर अपने काका कान्धल जी के पास बैठ गये, दर्बार में राज्यनीति के विषय में अनेक बातें होने लगीं, उस समय अवसर पाकर राव जोधा जी ने यह कहा

१-बच्छावतों के कुल के इतिहास का एक रास बना हुआ है जो कि बीकानेर के बड़े उपाश्रय (उपासरे) में महिमाभक्ति ज्ञानभण्डार मे विद्यमान है, उसी के अनुसार यह लेख लिखा गया है, इस के सिवाय-मारवाडी भाषा मे लिखा हुआ एक लेख भी इसी विषय का बीकानेरनिवासी उपाध्याय श्री पण्डित मोहनलाल जी गणी ने बम्बई में हम को प्रदान किया था, वह लेख भी पूर्वोक्त रास से प्रायः मिलता हुआ ही है, इस लेख के प्राप्त होने से हम को उक्त विषय की और भी दृढता हो गई, अतः हम उक्त महोदय को इस कृपा का अन्त.करण से धन्यवाद देते है ॥

२-यह जांगलू के सांखलों की पुत्री थी ॥

रहते थे, इसी से इन को सब लोग डेलड़िया बोहरा कहने लगे थे, इन में सोनपाल नामक एक बोहरा बड़ा आदमी था, उस को दैववश सर्प ने काट खाया था तथा एक जती (यति) ने उसे अच्छा किया था इसी लिये उस ने दयामूल जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस के बहुत काल के पीछे उस ने शत्रुञ्जय की यात्रा करने के लिये अपने खर्च से संघ निकाला था तथा यात्रा में ही उस के पुत्र उत्पन्न हुआ था, संघ ने मिल कर उसे संघवी (संघपति) का पद दिया था अतः उस की औलादवाले लोग सिंगी कहलाये, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि–संघवी का अपभ्रंस सिंगी हो गया है, इन (सिंगियों) के भी–महेवावत, गढावत, भीमराजोत और मूलचन्दोत आदि कई फिरके हैं ॥

ओसवाल जाति का गौरव ॥

प्रिय पाठकगण! इस जाति के विषय में आप से विशेष क्या कहें! यह वही जाति है जो कि–कुछ समय पूर्व अपने धर्म, विद्या, एकता और परस्पर प्रीतिभाव आदि सद्-गुणों के बल से उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, इस जाति का विशेष प्रशंसनीय गुण यह था कि–जैसे यह धर्मकार्यों में कटिबद्ध थी वैसे ही सांसारिक धनोपार्जन आदि कामों में भी कटिबद्ध थी, तात्पर्य यह है कि–जिस प्रकार यह पारमार्थिक कामों में संलग्न थी उसी प्रकार लौकिक कार्यों में भी कुछ कम न थी अर्थात् अपने–'अहिंसा

१–"डेलड़िया" अर्थात् डेलड़ी के निवासी ॥

२–गुजरात और कच्छ आदि देशों में संघवी गोत्र अन्य प्रकार से भी अनेकविध (कई तरह का) माना जाता है ॥

३–ये सिंगी (संघवी) जोधपुर आदि मारवाड़ वाले समझने चाहियें ॥

४–प्रीति के तीन भेद हैं–भक्ति, आदर और स्नेह, इन में से भक्ति उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अपनी अपेक्षा पद में श्रेष्ठ हो, सद्गुणों के द्वारा मान्य हो और विद्या तथा जाति में बड़ा हो, उस की सेवा करनी चाहिये तथा उस पर श्रद्धाभाव रखना चाहिये, क्योंकि वही भक्ति का पात्र है, सत्य पूछो तो यह गुण सब गुणों से उत्कृष्ट है, क्योंकि–यही सब गुणों की प्राप्ति का मूल कारण है अर्थात् इस के होने से ही मनुष्य को सब गुण प्राप्त हो सकते हैं, इस की गति ऊर्ध्वगामिनी है, प्रीति का दूसरा भेद आदर है–आदर उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था, द्रव्य, विद्या और जाति आदि गुणों में अपने समान हो उस के साथ योग्य प्रतिष्ठापूर्वक वर्त्ताव करना चाहिये, इस (आदर) की गति समतलवाहिनी है तथा प्रीति का तीसरा भेद स्नेह है–स्नेह उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था, द्रव्य, विद्या और बुद्धि के सम्बंध में अपने से छोटा हो उस के हित को विचार कर उस की वृद्धि का उपाय करना चाहिये, इस (स्नेह) का प्रवाह जलस्रोत के समान अधोगामी है, बस प्रीति के ये ही तीनों प्रकार हैं, क्योंकि उक्त तीनों बातों के ज्ञान के बिना वास्तव में प्रीति नहीं हो सकती है–इस लिये इन तीनों भेदों के स्वरूप को जान कर यथायोग्य इन के वर्त्ताव का ध्यान रखना आवश्यक है ॥

परमो धर्मः, रूप सदुपदेश के अनुसार यह सत्यतापूर्वक व्यापार कर अगणित द्रव्य को प्राप्त करती थी और अपनी सत्यता के कारण ही इस ने 'शाह, इन दो अक्षरों की अनुपम उपाधि को प्राप्त किया था जो कि अब तक मारवाड़ तथा राजपूताना आदि प्रान्तों में इस के नाम को देदीप्यमान कर रही है, सच तो यह है कि–या तो शाह या बादशाह, ये दो ही नाम गौरवान्वित मालूम होते है।

इस के अतिरिक्त–इतिहासों के देखने से विदित होता है कि–राजपूताना आदि के प्रायः सब ही रजवाड़ों में राजों और महाराजों के समक्ष में इसी जाति के लोग देश-दीवान रह चुके हैं और उन्हों ने अनेक धर्म और देशहित के कार्य करके अतुलित यश को प्राप्त किया है, कहाँ तक लिखें–इतना ही लिखना काफी समझते है कि–यह जाति पूर्व समय में सर्वगुणागार, विद्या आदि में नागर तथा द्रव्यादि का भण्डार थी, परन्तु शोक का विषय है कि–वर्त्तमान में इस जाति में उक्त बातें केवल नाममात्र ही दीख पड़ती है, इस का मुख्य कारण यही है कि–इस जाति में अविद्या इस प्रकार घुस गई है कि–जिस के निकृष्ट प्रभाव से यह जाति कृत्य को अकृत्य, शुभ को अशुभ, बुद्धि को निर्बुद्धि तथा सत्य को असत्य आदि समझने लगी है, इस विषय में यदि विस्तार-पूर्वक लिखा जावे तो निस्संदेह एक बड़ा ग्रन्थ बन जावे, इस लिये इस विषय में यहाँ विशेष न लिख कर इतना ही लिखना काफी समझते है कि–वर्त्तमान में यह जाति अपने कर्त्तव्य को सर्वथा भूल गई है इसलिये यह अधोदशा को प्राप्त हो गई है तथा होती जाती है, यद्यपि वर्त्तमान में भी इस जाति में समयानुसार श्रीमान् जन कुछ कम नहीं हैं अर्थात् अब भी श्रीमान् जन बहुत है और उन की तारीफ–घोर निद्रा में पड़े हुए सब आर्यावर्त्त के भार को उठानेवाले भूतपूर्व बड़े लाट श्रीमान् कर्जन स्वयं कर चुके हैं परन्तु केवल द्रव्य के ही होने से क्या हो सकता है जब तक कि उस का बुद्धिपूर्वक सदुपयोग न किया जावे, देखिये! हमारे मारवाड़ी ओसवाल भ्राता अपनी अज्ञानता के कारण अनेक अच्छे २ व्यापारों की तरफ कुछ भी ध्यान न दे कर सट्टे नामक जुए में रात दिन जुटे (संलग्न) रहते हैं और अपने भोलेपन से वा यों कहिये कि–स्वार्थ में अन्धे हो कर जुए को ही अपना व्यापार समझ रहे है, तब कहिये कि–इस जाति की उन्नति की क्या आशा हो सकती है ? क्योंकि सब शास्त्रकारों ने जुए को सात महाव्यसनों का राजा कहा है तथा पर भव में इस से नरकादि दुःख का प्राप्त होना बतलाया है, अब सोचने की बात है कि–जब यह जुआ पर भव के भी सुख का नाशक है तो इस भव में भी इस से सुख और कीर्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, क्योंकि सत्कर्त्तव्य वही माना गया है जो कि उभय लोक के सुख का साधक है।

इस दुर्व्यसन में हमारे ओसवाल भ्राता ही पड़े है यह बात नहीं है, किन्तु वर्त्तमान में

प्रायः मारवाड़ी वैश्य (महेश्वरी और अगरवाल आदि) भी सब ही इस दुर्व्यसन में निमग्न हैं, हा! विचार कर देखने से यह कितने शोक का विषय प्रतीत होता है इसी लिये तो कहा जाता है कि–वर्तमान में वैश्य जाति में अविद्या पूर्णरूप से घुस रही है, देखिये! पास में द्रव्य के होते हुए भी इन (वैश्य जनों) को अपने पूर्वजों के प्राचीन व्यवहार (व्यापारादि) तथा वर्तमान काल के अनेक व्यापार बुद्धि को निर्बुद्धिरूप में करने वाली अविद्या के निकृष्ट प्रभाव से नहीं सूझ पड़ते हैं, अर्थात् सट्टे के सिवाय इन्हें और कोई व्यापार ही नहीं सूझता है। भला सोचने की बात है कि–सट्टे का करने वाला पुरुष साहूकार वा शाह कभी कहला सकता है? कभी नहीं, उन को निश्चयपूर्वक यह समझ लेना चाहिये कि इस दुर्व्यसन से उन्हें हानि के सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, यद्यपि यह बात भी क्वचित् देखने में आती है कि–किन्हीं लोगों के पास इस से भी द्रव्य आ जाता है परन्तु उस से क्या हुआ? क्योंकि वह द्रव्य तो उन के पास से शीघ्र ही चला जाता है (जुए से द्रव्यपात्र हुआ आज तक कहीं कोई भी सुना वा देखा नहीं गया है), इस के सिवाय यह भी विचारने की बात है कि–इस काम से एक को घाटा लग कर (हानि पहुँच कर) दूसरे को द्रव्य प्राप्त होता है अतः वह द्रव्य विशुद्ध (निष्पाप वा दोषरहित) नहीं हो सकता है, इसी लिये तो (दोषयुक्त होने ही से तो) वह द्रव्य जिन के पास ठहरता भी है वह कालान्तर में औसर आदि व्यर्थ कामों में ही खर्च होता है, इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही देख लीजिये कि–आज तक सट्टे से पाया हुआ किसी का भी द्रव्य विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला और सदाव्रत आदि शुभ कर्मों में लगा हुआ नहीं दीखता है, सत्य है कि–पाप का पैसा शुभ कार्य में कैसे लग सकता है, क्योंकि उस के तो पास आने से ही मनुष्य की बुद्धि मलीन हो जाती है, बस बुद्धि के मलीन हो जाने से वह पैसा शुभ कार्यों में व्यय न हो कर बुरे मार्ग से ही जाता है।

अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि–ता. ८ जनवरी बुधवार सन् १९०८ ई. को संयुक्त प्रान्त (यूनाइटेड प्राविन्सेज्) के छोटे लाट साहब आगरे में फ्रीगंज का बुनियादी पत्थर रखने के महोत्सव में पधारे थे तथा वहाँ आगरे के तमाम व्यापारी सज्जन भी उपस्थित थे, उस समय श्रीमान् छोटे लाट साहब ने अपनी सुयोग्य वक्तृता में फ्रीगंज बनने के और यमुना जी के नये पुल के लाभों को दिखला कर आगरे के व्यापारियों को वहाँ के व्यापार के बढ़ाने के लिये कहा था, उक्त महोदय की वक्तृता को अविकल न लिख कर पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस का सारमात्र लिखते हैं, पाठकगण उसे देख कर समझ सकेंगे कि–उक्त साहब बहादुर ने अपनी वक्तृता में व्यापारियों को कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, वक्तृता का सारांश यही था कि "ईमानदारी और सच्चा लेन देन

करना ही व्यापार में सफलता का देने वाला है, आगरे के निवासी तीन प्रकार के जुए में लगे हुए है, यह अच्छी बात नहीं है–क्योंकि यह आगरे के व्यापार की उन्नति का बाधक है, इस लिये नाज का जुआ, चाँदी का जुआ और अफीम का सट्टा तुम लोगों को छोड़ना चाहिये, इन जुओं से जितनी जल्दी जितना धन आता है वह उतनी ही जल्दी उन्हीं से नष्ट भी हो जाता है, इस लिये इस बुराई को छोड़ देना चाहिये, यदि ऐसा न किया जावेगा तो सर्कार को इन के रोकने का कानून बनाना पड़ेगा, इस लिये अच्छा हो कि लोग अपने आप ही अपने भले के लिये इन जुओं को छोड़ दें, स्मरण रहे कि–सर्कार को इन की रोक का कानून बनाना कुछ कठिन है परन्तु असम्भव नहीं है, फ्रीगंज की भविष्यत् उन्नति व्यापारियों को ऐसे दोषो को छोड़ कर सच्चे व्यापार में मन लगाने पर ही निर्भर है" इत्यादि, इस प्रकार अति सुन्दर उपदेश देकर श्रीमान् लाट साहब ने चमचमाती (चमकती) हुई कन्नी और बसूली से चूना लगाया और पत्थर रखने की रीति पूरी की गई, अब सेठ साहूकारों और व्यापारियों को इस विषय पर ध्यान देना चाहिये कि–श्रीमान् लाट साहब ने जुआ न खेलने के लिये जो उपदेश किया है वह वास्तव में कितना हितकारी है, सत्य तो यह है कि–यह उपदेश न केवल व्यापारियों और मारवाड़ियों के लिये ही हितकारक है वरन सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये यह उन्नति का परम मूल है, इस लिये हम भी प्रसंगवश अपने जुआ खेलने वाले भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि–अँग्रेज़ जातिरत्न श्रीमान् छोटे लाट साहब के उक्त सदुपदेश को अपनी हृदयपटरी पर लिख लो, नही तो पीछे अवश्य पछताना पडेगा, देखो! लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि–"जो न माने बड़ो की सीख, वह ठिकरा ले मांगे भीख" देखो! सब ही को विदित है कि–तुम ने अपने गुरु, शास्त्रों तथा पूर्वजों के उपदेश की ओर से अपना ध्यान पृथक् कर लिया है, इसी लिये तुम्हारी जाति का वर्तमान में उपहास हो रहा है परन्तु निश्चय रक्खो कि–यदि तुम अब भी न चेतोगे तो तुम्हें राज्यनियम इस विषय से लाचार कर पृथक् करेगा, इस लिये समस्त मारवाड़ी और व्यापारी सज्जनों को उचित है कि–इस दुर्व्यसन का त्याग कर सच्चे व्यापार को करें, हे प्यारे मारवाड़ियो और व्यापारियो! आप लोग व्यापार में उन्नति करना चाहें तो आप लोगों के लिये कुछ भी कठिन बात नही है, क्योंकि यह तो आप लोगों का परम्परा का ही व्यवहार है, देखो! यदि आप लोग एक एक हजार का भी शेयर नियत कर आपस में बेंचे (ले लेवें) तो आप लोग बात की बात में दो चार करोड़ रुपये इकट्ठे कर सकते हैं और इतने धन से एक ऐसा उत्तम कार्यालय (कारखाना) खुल सकता है कि जिस से देश के अनेक कष्ट दूर हो सकते है, यदि आप लोग इस बात से डरें और कहें कि–हम लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं,

तो यह आप लोगों का भय और कथन व्यर्थ है, क्योंकि भर्तृहरि जी ने कहा है कि-"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" अर्थात् सब गुण कञ्चन (सोने) का आश्रय लेते हैं, इसी प्रकार नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि-"न हि तद्विद्यते किञ्चित्, यदर्थेन न सिध्यति" अर्थात् संसार में ऐसा कोई काम नहीं है जो कि धन से सिद्ध न हो सकता हो, तात्पर्य यही है कि-धन से प्रत्येक पुरुष सब ही कुछ कर सकता है, देखो! यदि आप लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं तो द्रव्य का व्यय करके अनेक देशों के उत्तमोत्तम कारीगरों को बुला कर तथा उन्हें स्वाधीन रख कर आप कारखानों का काम अच्छे प्रकार से चला सकते हैं।

अब अन्त में पुनः एक वार आप लोगों से यही कहना है कि-हे प्रिय मित्रो! अब शीघ्र ही चेतो, अज्ञान निद्रा को छोड़ कर स्वजाति के सद्गुणों की वृद्धि करो और देश के कल्याणरूप श्रेष्ठ व्यापार की उन्नति कर उभय लोक के सुख को प्राप्त करो ॥

यह पञ्चम अध्याय का ओसवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

द्वितीय प्रकरण—पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन ॥

पोरवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास ॥

पद्मावती नगरी (जो कि आबू के नीचे वसी थी) में जैनाचार्य ने प्रतिबोध देकर लोगों को जैनधर्मी बना कर उन का पोरवाल वंश स्थापित किया था[1] ।

दो एक लेख हमारे देखने में ऐसे भी आये हैं जिन में पोरवालों को प्रतिबोध देनेवाला जैनाचार्य श्रीहरिभद्र सूरि जी महाराज को लिखा है, परन्तु यह बात बिलकुल

१-ये (पोरवाल) जन दक्षिण मारवाड़ (गोढवाड़) और गुजरात में अधिक हैं, इन लोगों का ओसवालो के साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं होता है, किन्तु केवल भोजनव्यवहार होता है, इन का एक फिरका जाँघडानामक है, उस में २४ गोत्र हैं तथा उस मे जैनी और वैष्णव दोनों धर्मों के वाले हैं, इन का रहना बहुत करके चम्बल नदी की छाया में रामपुरा, मन्दसौर, मालवा तथा हुल्कर सिंधिया के राज्य में है अर्थात् उक्त स्थानों में वैष्णव पोरवालों के करीब तीन हजार घर बसते हैं, इन के सिवाय बाकी के जैनधर्मधारी पोरवाल जाँघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन आदि में निवास करते हैं, ऊपर कह चुके हैं कि-जाँघड़ा फिरके वाले पोरवालों के २४ गोत्र हैं, उन २४ गोत्रों के नाम ये हैं—१-चौधरी। २-काला। ३-धनघड। ४-रतनावत। ५-धन्यौत्य। ६-मजावर्या। ७-डबकरा। ८-भादल्या। ९-कामल्या। १०-सेठ्या। ११-ऊधिया। १२-वेखण्ड। १३-भूत। १४-फरक्या। १५-लमेपर्या। १६-मडावर्या। १७-मुनियां। १८-चौध्या। १९-गलिया। २०-मेसौटा। २१-नवेपर्या। २२-दानगड। २३-महता। २४-खरड्या ॥

गलत सिद्ध होती है, क्योंकि श्री हरिभद्र सूरि जी महाराज का स्वर्गवास विक्रम संवत् ५८५ (पाँच सौ पचासी) में हुआ था और यह बात बहुत से ग्रन्थों से निर्भ्रम सिद्ध हो चुकी है, इस के अतिरिक्त–उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी महाराजकृत शेत्रुञ्जय रास में तथा श्री वीरविजय जी महाराज कृत ९९ प्रकार की पूजा में सोलह उद्धार शेत्रुञ्जय का वर्णन किया है, उस में विक्रम संवत् १०८ में तेरहवाँ उद्धार जावड़ नामक पोरवाल का लिखा है, इस से सिद्ध होता है कि–विक्रम संवत् १०८ से पहिले ही किसी जैनाचार्य ने पोरवालों को प्रतिबोध देकर उक्त नगरी में उन्हें जैनी बनाया था।

सूचना–इस पोरवाल वंश में–विमलशाह, धन्नाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल आदि अनेक पुरुष धर्मज्ञ और अनर्गल लक्ष्मीवान् हो गये हैं, जिन का नाम इस संसार में स्वर्णाक्षरों (सुनहरी अक्षरों) में इतिहासों में संलिखित है, इन्ही का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहाँ लिखते हैं:—

पोरवाल ज्ञातिभूषण विमलशाह मन्त्री का वर्णन ॥

गुर्जरात के महाराज भीमदेव ने विमलशाह को अपनी तरफ से अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था, यहाँ पर उक्त मन्त्री जी ने अपनी

१–इन्हों ने मुल्क गोडवाड में श्री आदिनाथ स्वामी का एक मनोहर मन्दिर बनवाया था (जो कि सादरी से तीन कोश पर अभी राणकपुर नाम से प्रसिद्ध है), इस मन्दिर की उत्तमता यहाँ तक प्रसिद्ध है कि–रचना में इस के समान दूसरा मन्दिर नहीं माना जाता है, कहते हैं कि–इस के बनवाने में ९९ लाख स्वर्ण मोहर का खर्च हुआ था, यह बात श्री समयसुन्दर जी उपाध्याय ने लिखी है ॥

२–आबू और चन्द्रावती के राजकुटुम्बजन अणहिलवाडा पट्टन के महाराज के माण्डलिक थे, इन का इतिहास इस प्रकार है कि–यह वंश चालुक्य वंश का था, इस वंश में नीचे लिखे हुए लोगों ने इस प्रकार राज्य किया था कि–मूलराज ने ईस्वी सन् ९४२ से ९९६ पर्यन्त, चामुण्ड ने ईस्वी सन् ९९६ से १०१० तक, वल्लभ ने ६ महीने तक, दुर्लभ ने ईस्वी सन् १०१० से १०२२ तक (यह जैनधर्मी था), भीमदेव ने ईस्वी सन् १०२२ से १०६२ तक, इस की बरकरारी में धनराज आबू पर राज्य करता था तथा भीमदेव गुजरात देश पर राज्यशासन करता था, उस समय मालवे में धारा नगर में भोजराज गद्दी पर था, आबू के राजा धनराजने अणहिल पट्टन के राजवंश का पक्ष छोड कर राजा भोज का पक्ष किया था, इसी लिये भीमदेव ने अपनी तरफ से विमलशाह को अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था और उसी समय में विमलशाह ने श्री आदिनाथ का देवालय बनवाया था, भीमदेव ने धार पर भी आक्रमण किया था और इन्हीं की बरकरारी में गज़नी के महमूद ने सोमनाथ (महादेव) का मन्दिर लूटा था, इस के पीछे गुजरात का राज्य कर्ण ने ईस्वी सन् १०६३ से १०९३ तक किया, जयसिंह अथवा सिद्धराज ने ईस्वी सन् १०९३ से ११४३ तक राज्य किया (यह जयसिंह चालुक्य वंश में एक बडा तेजस्वी और धुरन्धर पुरुष हो गया है), इस के पीछे कुमारपाल ने ईस्वी सन् ११४४ से ११७३ तक राज्य किया (इस ने जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी सूरि से जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस

योग्यतानुसार राज्यसत्ता का अच्छा प्रबंध किया था कि जिस से सब लोग उन से प्रसन्न थे, इस के अतिरिक्त उन के सद्व्यवहार से श्री अम्बादेवी भी साक्षात् होकर उन पर प्रसन्न हुई थी और उसी के प्रभाव से मन्त्री जी ने आबू पर श्री आदिनाथ स्वामी के मन्दिर को बनवाना विचारा परन्तु ऐसा करने में उन्हें जगह के लिये कुछ दिक्कत उठानी पड़ी, तब मन्त्री जी ने कुछ सोच समझ कर प्रथम तो अपनी सामर्थ्य को दिखला कर ज़मीन को कब्जे में किया, पीछे अपनी उदारता को दिखलाने के लिये उस ज़मीन पर रुपये बिछा दिये और वे रुपये ज़मीन के मालिक को दे दिये; इस के पश्चात् देशान्तरों से नामी कारीगरों को बुलवा कर संगमरमर पत्थर (श्वेत पाषाण) से अपनी इच्छा के अनुसार एक अति सुन्दर अनुपम कारीगरी से युक्त मन्दिर बनवाया, जब वह मन्दिर बन कर तैयार हो गया तब उक्त मन्त्री जी ने अपने गुरु बृहत्खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री वर्द्धमान सूरि जी महाराज के हाथ से विक्रम संवत् १०८८ में उस की प्रतिष्ठा करवाई।

इस के अतिरिक्त–अनेक धर्मकार्यों में मन्त्री विमलशाह ने बहुत सा द्रव्य लगाया, जिस की गणना (गिनती) करना अति कठिन है, धन्य है ऐसे धर्मज्ञ श्रावकों को जो कि लक्ष्मी को पाकर उस का सदुपयोग कर अपने नाम को अचल करते है ॥

समय चन्द्रावती और आबू पर यशोधवल परमार राज्य करता था), इस के पीछे अजयपाल ने ईस्वी सन् ११७३ से ११७६ तक राज्य किया, इस के पीछे दूसरे मूलराज ने ईस्वी सन् ११७६ से ११७८ तक राज्य किया, इस के पीछे भोला भीमदेव ने ईस्वी सन् १२१७ से १२४१ तक राज्य किया (इस की अमलदारी में आबू पर कोटपाल और धारावल राज्य करते थे, कोटपाल के सुलोब नामक एक पुत्र और इच्छिनी कुमारी नामक एक कन्या थी अर्थात् दो सन्तान थे, इच्छिनी कुमारी अत्यन्त सुन्दरी थी अतः भीमदेव ने कोटपाल से उस कुमारी के देने के लिये कहला भेजा परन्तु कोटपाल ने इच्छिनी कुमारी को अजमेर के चौहान राजा बेसुलदेव को देने का पहिले ही से ठहराव कर लिया था इस लिये कोटपाल ने भीमदेव से कुमारी के देने के लिये इनकार किया, उस इनकार को सुनते ही भीमदेव ने एक बड़े सैन्य को साथ मे लेकर कोटपाल पर चढाई की और आबूगढ के आगे दोनों में खूब ही युद्ध हुआ, आखिर कार उस युद्ध मे कोटपाल हार गया परन्तु उस के पीछे भीमदेव को शहाबुद्दीन गोरी का सामना करना पड़ा और उसी में उस का नाश हो गया), इस के पीछे त्रिभुवन ने ईस्वी सन् १२४१ से १२४४ तक राज्य किया (यह ही चालुक्य वंश में आखिरी पुरुष था), इस के पीछे दूसरे भीमदेव के अधिकारी वीर धवल ने वाघेला वंश को आकर जमाया, इस ने गुजरात का राज्य किया और अपनी राजधानी को अणहिल वाड़ा पट्टन मे न करके धोलेरे मे की, इस वंश के विशालदेव, अर्जुन और सारंग, इन तीनों ने राज्य किया और इसी की वरकरारी में आबू पर प्रसिद्ध देवालय के निर्मापक (बनवाने वाले) पोरवाल ज्ञातिभूषण वस्तुपाल और तेजपाल का पड़ाव हुआ ॥

१–इस मन्दिर की सुन्दरता का वर्णन हम यहाँ पर क्या करें, क्योंकि इस का पूरा स्वरूप तो वहाँ जा कर देखने से ही मालूम हो सकता है ॥

पोरवाल ज्ञातिभूषण नररत्न वस्तुपाल और तेजपाल का वर्णन ॥

वीर धवल वाघेला के राज्यसमय में वस्तुपाल और तेजपाल, इन दोनों भाइयों का बड़ा मान था, वस्तुपाल की पत्नी का नाम ललिता देवी था और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था ।

वस्तुपाल ने गिरनार पर्वत पर जो श्री नेमिनाथ भगवान् का देवालय बनवाया था वह ललिता देवी का स्मारकरूप (स्मरण का चिह्नरूप) बनवाया था ।

किसी समय तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि—अपने पास में अपार सम्पत्ति है उस का क्या करना चाहिये, इस बात पर खूब विचार कर उस ने यह निश्चय किया कि—आबूराज पर सब सम्पत्ति को रख देना ठीक है, यह निश्चय कर उस ने सब सम्पत्ति को रख कर उस का अचल नाम रखने के लिये अपने पति और जेठ से अपना विचार प्रकट किया, उन्हों ने भी इस कार्य को श्रेष्ठ समझ कर उस के विचार का अनुमोदन किया और उस के विचार के अनुसार आबूराज

१—इन्हीं के समय में दशा और वीसा, ये दो तड़ पड़े हैं, जिन का वर्णन लेख के बढ़ जाने के भय से यहाँ पर नहीं कर सकते हैं ॥

२—इन की वंशावलि का क्रम इस प्रकार है कि:—

चण्डप
|
चन्द्रप्रसाद
|
अश्वराज (आसकरण), इस की स्त्री कमला देवी

लुंग	मदनदेव	वस्तुपाल	तेजपाल
		जेतसिंह	लावण्यसिंह

३—बम्बई इलाके के उत्तर में आखिरी टॉचपर सिरोही संस्थान में अरवली के पश्चिम में करीब सात माइल पर अरवली की घाटी के सामने यह पर्वत है, इस का आकार बहुत लम्बा और चौड़ा है अर्थात् इस की लम्बाई तलहटी से २० माइल है, ऊपर का घाटमाथा १४ माइल है, शिखा २ माइल है, इस की दिशा ईशान और नैर्ऋत्य है, यह पहाड बहुत ही प्राचीन है, यह बात इस के स्वरूप के देखने से ही जान ली जाती है, इस के पत्थर वर्तुलाकार (गोलाकार) हो कर सुंवाले (चिकने) हो गये हैं, इस स्थिति का हेतु यही है कि—इस के ऊपर बहुत कालपर्यन्त वायु और वर्षा आदि पञ्च महाभूतों के परमाणुओं का परिणमन हुआ है, यह भूगर्भशास्त्रवेत्ताओं का मत है, यह पहाड समुद्र की सपाटी से घाटमाथा तक ४००० फुट है और पाया से ३००० फुट है तथा इस के सर्वान्तिम ऊँचे शिखर ५६५३ फुट हैं उन्हीं को गुरु शिखर कहते हैं, ईस्वी सन् १८२२ में—राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक कर्नल टाड साहब यहाँ (आबूराज) पर आये थे तथा यहाँ के मन्दिरों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन की बहुत

पर प्रथम से ही विमलशाह के बनवाये हुए श्री आदिनाथ स्वामी के भव्य देवालय के समीप में ही संगमरमर पत्थर का एक सुन्दर देवालय बनवाया तथा उस में श्री नेमिनाथ भगवान् की मूर्ति स्थापित की ।

उक्त दोनों देवालय केवल संगमरमर पाषाण के बने हुए हैं और उन में प्राचीन आर्य लोगों की शिल्पकला के रूप में रत्न भरे हुए हैं, इस शिल्पकला के रत्नभण्डार को देखने से यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि–हिन्दुस्थान में किसी समय में शिल्पकला कैसी पूर्णावस्था को पहुँची हुई थी ।

इन मन्दिरों के बनने से वहाँ की शोभा अकथनीय हो गई है, क्योंकि–प्रथम तो आबू ही एक रमणीक पर्वत है, दूसरे–ये सुन्दर देवालय उस पर बन गये हैं, फिर भला शोभा की क्या सीमा हो सकती है? सच है–"सोना और सुगन्ध" इसी का नाम है।

तारीफ की थी, देखिये ! यहाँ के जैन मन्दिरों के विषय में उन के कथन का सार यह है—"यह बात निर्विवाद है कि–इस भारतवर्ष के सर्व देवालयों मे ये आबू पर के देवालय विशेष भव्य हैं और ताजमहल के सिवाय इन के साथ मुकाबिला करने वाली दूसरी कोई भी इमारत नहीं है, धनाढ्य भक्तों में से एक के खड़े किये हुए आनन्ददर्शक तथा अभिमान योग्य इस कीर्तिस्तम्भ की अनहद सुन्दरता का वर्णन करने में कलम अशक्त है" इत्यादि, पाठकगण जानते ही हैं कि–कर्नल टाड साहब ने राजपूताने का इतिहास बहुत सुयोग्य रीति से लिखा है तथा उन का लेख प्रायः सब को मान्य है, क्योंकि–जो कुछ उन्हों ने लिखा है वह सब प्रमाणसहित लिखा है, इसी लिये एक कवि ने उन के विषय मे यह दोहा कहा है—"**टाड समा साहिब विना, क्षत्रिय यश क्षय थात ॥ फार्वस सम साहिब विना, नहिँ उधरत गुजरात**" ॥ १ ॥ अर्थात् यदि टाड साहब न लिखते तो क्षत्रियों के यश का नाश हो जाता तथा फार्वस साहब न लिखते तो गुजरात का उद्धार नहीं होता ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि–राजपूताने के इतिहास को कर्नल टाड साहब ने और गुजरात के राजाओं के इतिहास को मि० फार्वस साहब ने बहुत परिश्रम करके लिखा है ॥

१–इस पवित्र और रमणीक स्थान की यात्रा हम ने संवत् १९५८ के कार्तिक कृष्ण ७ को की थी तथा दीपमालिका (दिवाली) तक यहाँ ठहरे थे, इस यात्रा में मकसूदाबादनिवासी राय बहादुर श्रीमान् श्री मेघराज जी कोठारी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रखाल बाबू स्वर्गवासी की धर्मपत्नी श्राविका सुनु कुमारी और उन के मामा बच्छावत श्री गोविन्दचन्द जी तथा नौकर चाकरों सहित कुल सात आदमी थे, (इन की अधिक विनती होने से हमें भी यात्रासंगम करना पड़ा था), इस यात्रा के करने में आबू, शेत्रुञ्जय, गिरनार, भोयणी और राणपुर आदि पञ्चतीर्थी की यात्रा भी बड़े आनन्द के साथ हुई थी, इस यात्रा में जो इस (आबू) स्थान की अनेक बातों का अनुभव हमें हुआ उन में से कुछ बातों का वर्णन हम पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ लिखते हैं:—

आबू पर वर्त्तमान बस्ती—आबू पर वर्तमान में बस्ती अच्छी है, यहाँ पर सिरोही महाराज का एक अधिकारी रहता है और वह देलवाड़ा (जिस जगह पर उक्त मन्दिर बना हुआ है उस को इसी 'देलवाड़ा' नाम से कहते हैं) को जाते हुए यात्रियों से कर (महसूल) वसूल करता है, परन्तु साधु, यती;

उक्त देवालय के बनवाने में द्रव्य के व्यय के विषय में एक ऐसी दन्तकथा है कि–शिल्पकार अपने हथियार (औज़ार) से जितने पत्थर कोरणी को खोद कर रोज़ निकालते थे उन्हीं (पत्थरों) के बराबर तौल कर उन को रोज़ मजूरी के रुपये दिये जाते थे, यह क्रम बराबर देवालय के बन चुकने तक होता रहा था ।

दूसरी एक कथा यह भी है कि–दुष्काल (दुर्भिक्ष वा अकाल) के कारण आबू पर बहुत से मजदूर लोग इकट्ठे हो गये थे, बस उन्हीं को सहायता पहुँचाने के लिये यह देवालय बनवाया गया था ।

और ब्राह्मण आदि को कर नहीं देना पड़ता है, यहाँ की और यहाँ के अधिकार में आये हुए ऊरिया आदि ग्रामों की उत्पत्ति की सर्व व्यवस्था उक्त अधिकारी ही करता है, इस के सिवाय–यहाँ पर बहुत से सर्कारी नौकरों, व्यापारियों और दूसरे भी कुछ रहवासियों (रईसों) की बस्ती है, यहाँ का बाज़ार भी नामी है, वर्त्तमान में राजपूताना आदि के एजेंट गवर्नर जनरल के निवास का यह मुख्य स्थान है इस लिये यहाँ पर राजपूताना के राजो महाराजों ने भी अपने २ बँगले बनवा लिये हैं और वहाँ वे लोग प्रायः उष्ण ऋतु में हवा खाने के लिये जाकर ठहरते हैं, इस के अतिरिक्त उन (राजों महाराजों) के दर्बारी वकील लोग वहाँ रहते हैं, अर्वाचीन सुधार के अनुकूल सर्व साधन राज्य की ओर से प्रजा के ऐश आराम के लिये वहाँ उपस्थित किये गये हैं जैसे–म्यूनीसिपालिटी, प्रशस्त मार्ग और रोशनी का सुप्रबन्ध आदि, यूरोपियन लोगों का भोजनालय (होटल), पोष्ट आफिस और सरत का मैदान, इत्यादि इमारतें इस स्थल की शोभारूप हैं ।

आबू पर जाने की सुगमता—खरैडी नामक स्टेशन पर उतरने के बाद उस के पास में ही मुर्शिदाबादनिवासी श्रीमान् श्रीबुध सिंह जी रायबहादुर दुधेडिया के बनवाये हुए जैन मन्दिर और धर्मशाला हैं, इस लिये यदि आवश्यकता हो तो धर्मशाला में ठहर जाना चाहिये नहीं तो सवारी कर आबू पर चले जाना चाहिये, आबू पर डाक के पहुँचाने के लिये और वहाँ पहुँचाने को सवारी का प्रबंध करने के लिये एक भाड़ेदार रहता है उस के पास ताँगे आदि भाडे पर मिल सकते हैं, आबू पर जाने का मार्ग उत्तम है तथा उस की लम्बाई सत्रह माइल की है, ताँगे मे तीन मनुष्य बैठ सकते हैं और प्रति मनुष्य ४) रुपये भाडा लगता है अर्थात् पूरे ताँगे का किराया १२) रुपये लगते हैं, अन्य सवारी की अपेक्षा ताँगे मे जाने से आराम भी रहता है, आबू पर पहुँचने में ढाई तीन घण्टे लगते हैं, वहाँ भाडेदार (ठेके वाले) का आफिस है और घोडा गाडी का तवेला भी है, आबू पर सब से उत्तम और प्रेक्षणीय (देखने के योग्य) पदार्थ जैन देवालय है, वह भाडेदार के स्थान से डेढ़ माइल की दूरी पर है, वहाँ तक जाने के लिये बैल की और घोडे की गाडी मिलती है, देलवाडे मे देवालय के बाहर यात्रियों के उतरने के लिये स्थान बने हुए हैं, यहाँ पर बनिये की एक दूकान भी है जिस में आटा दाल आदि सब सामान मूल्य से मिल सकता है, देलवाडा से थोडी दूर परमार जाति के गरीब लोग रहते है जो कि मजदूरी आदि काम काज करते हैं और दही दूध आदि भी बेंचते हैं, देवालय के पास एक बावडी है उस का पानी अच्छा है, यहाँ पर भी एक भाडेदार घोडों को रखता है इस लिये कहीं जाने के लिये घोडा भाडे पर मिल सकता है, इस से अचलेश्वर, गोमुख, नखी तालाव और पर्वत के प्रेक्षणीय दूसरे स्थानों पर जाने के लिये तथा सैर करने को जाने के लिये बहुत आराम है, उष्ण ऋतु में आबू पर बडी बहार रहती है इसी लिये बडे लोग प्रायः उष्ण ऋतु को वहीं व्यतीत करते हैं ॥

इसी रीति से इस के विषय में बहुत सी बातें प्रचलित हैं जिन का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं, खैर—देवालय के बनने का कारण चाहे कोई ही क्यों न हो किन्तु असल में सारांश तो यही है कि—इस देवालय के बनवाने में अनुपमा और लीलावती की धर्मबुद्धि ही मुख्य कारणभूत समझनी चाहिये, क्योंकि—निस्सीम धर्मबुद्धि और निष्काम भक्ति के विना ऐसे महत् कार्य का कराना अति कठिन है, देखो! आबू सरीखे दुर्गम मार्ग पर तीन हज़ार फुट ऊँची संगमरमर पत्थर की ऐसी मनोहर इमारत का उठवाना क्या असामान्य औदार्य का दर्शक नहीं है? सब ही जानते हैं कि—आबू के पहाड़ में संगमरमर पत्थर की खान नहीं है किन्तु मन्दिर में लगा हुआ सब ही पत्थर आबू के नीचे से करीब पच्चीस माइल की दूरी से जरीवा की खान में से लाया गया था (यह पत्थर अम्बा भवानी के डूँगर के समीप वखर प्रान्त में मिलता है) परन्तु कैसे लाया गया, कौन से मार्ग से लाया गया, लाने के समय क्या २ परिश्रम उठाना पड़ा और कितने द्रव्य का खर्च हुआ, इस की तर्कना करना अति कठिन ही नहीं किन्तु अशक्यवत् प्रतीत होती है, देखो! वर्तमान में तो आबू पर गाड़ी आदि के जाने के लिये एक प्रशस्त मार्ग बना दिया गया है परन्तु पहिले (देवालय के बनने के समय) तो आबू पर चढ़ने का मार्ग अति दुर्गम था अर्थात् पूर्व समय में मार्ग में गहन झाड़ी थी तथा अघोरी जैसी क्रूर जाति का सञ्चार आदि था, भला सोचने की बात है कि—इन सब कठिनाइयों के उपस्थित होने के समय में इस देवालय की स्थापना जिन पुरुषों ने करवाई थी उन में धर्म के दृढ निश्चय और उस में स्थिर भक्ति के होने में सन्देह ही क्या है।

वस्तुपाल और तेजपाल ने इस देवालय के अतिरिक्त भी देवालय, प्रतिमा, शिवालय उपाश्रय (उपासरे), विद्याशाला, स्तूप, मस्जिद, कुआ, तालाब, बावड़ी, सदाव्रत और पुस्तकालय की स्थापना आदि अनेक शुभ कार्य किये थे, जिन का वर्णन हम कहाँ तक करें बुद्धिमान् पुरुष ऊपर के ही कुछ वर्णन से उन की धर्मबुद्धि और लक्ष्मीपात्रता का अनुमान कर सकते हैं।

इन (वस्तुपाल और तेजपाल) को उदाहरणरूप में आगे रखने से यह बात भी स्पष्ट मालूम हो सकती है कि—पूर्व काल में इस आर्यावर्त्त देश में बड़े २ परोपकारी धर्मात्मा तथा कुबेर के समान धनाढ्य गृहस्थ जन हो चुके हैं, आहा! ऐसे ही पुरुषरत्नों से यह रत्नगर्भा वसुन्धरा शोभायमान होती है और ऐसे ही नररत्नों की सत्कीर्ति और नाम सदा कायम रहता है, देखो! शुभ कार्यों के करने वाले वे वस्तुपाल और तेजपाल इस संसार से चले जा चुके हैं, उन के गृहस्थान आदि के भी कोई चिह्न इस समय ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते है, परन्तु उक्त महोदयों के नामाङ्कित कार्यों से इस भारतभूमि

पाँचवाँ प्रकरण—बारह न्यात वर्णन ॥

बारह न्यातों का वर्ताव ॥

बारह न्यातों में जो परस्पर में वर्त्ताव है वह पाठकों को इन नीचे लिखे हुए दो दोहों से अच्छे प्रकार विदित हो सकता है:—

दोहा-खण्ड खँडेला में मिली, सब ही बारह न्यात ॥
खण्ड प्रस्थ नृप के समय, जीम्या दालरु भात ॥ १ ॥
बेटी अपनी जाति में, रोटी शामिल होय ॥
काची पाकी दूध की, भिन्न भाव नहिँ कोय॑ ॥ २ ॥

सम्पूर्ण बारह न्यातों का स्थानसहित॑ विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमाल	भीनमाल से	७	खंडेलवाल	खंडेला से
२	ओसवाल	ओसियाँ से	८	महेश्वरी डीडू	डीडवाणा से
३	मेड़तवाल	मेड़ता से	९	पौकरा	पौकर जी से
४	जायलवाल	जायल से	१०	टींटोड़ा	टींटोड़गढ़ से
५	वघेरवाल	वघेरा से	११	कठाड़ा	खाटू गढ़ से
६	पल्लीवाल	पाली से	१२	राजपुरा	राजपुर से

मध्यप्रदेश (मालवा) की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्री श्रीमाल	४	ओसवाल	७	पल्लीवाल	१०	महेश्वरी डीडू
२	श्रीमाल	५	खँडेलवाल	८	पोरवाल	११	हूमड़
३	अग्रवाल	६	वघेरवाल	९	जेसवाल	१२	चौरंडियाँ

१-इन दोहों का अर्थ सुगम ही है, इस लिये नहीं लिखा है ॥

२-सब से प्रथम समस्त बारह न्यातें खँडेला नगर में एकत्रित हुई थी, उस समय जिन २ नगरो से जो २ वैश्य आये थे वह सब विषय कोष्ठ मे लिख दिया गया है, इस कोष्ठ के आगे के दो कोष्ठों में देशप्रथा के अनुसार बारह न्यातों का निदर्शन किया गया है अर्थात् जहाँ अग्रवाल नहीं आये वहाँ चित्रवाल शामिल गिने गये, इस प्रकार पीछे से जैसा २ मौका जिस २ देशवालों ने देखा वैसा ही वे करते गये, इस में असली तात्पर्य उन का यही था कि-सब वैश्यों मे एकता रहे और उन्नति होती रहे किन्तु केवल पेट को भर २ कर चले जाने का उन का तात्पर्य नहीं था ॥

३-'स्थान सहित, अर्थात् जिन २ स्थानो से आ २ कर वे सब एकत्रित हुए थे (देखो संख्या २ का नोट) ॥

४-इन मे श्री श्रीमाल हस्तिनापुर से, अग्रवाल अगरोहा से, पोरवाल पारेवा से, जेसवाल जेसलगढ से, हूमड सादवाडा से तथा चौरडिया चावडिया से आये थे, शेष का स्थान प्रथम लिख ही चुके है ॥

गौढवाड़, गुजरात तथा काठियावाड़ की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्रीमाल	४	चित्रवाल	७	पोरवाल	१०	महेश्वरी
२	श्रीश्रीमाल	५	पल्लीवाल	८	खँडेलवाल	११	ठंठवाल
३	ओसवाल	६	बघेरवाल	९	मेड़तवाल	१२	हरसौरा[1]

यह पञ्चम अध्याय का बारह न्यातवर्णन नामक पाँचवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

छठा प्रकरण—चौरासी न्यातवर्णन ॥

चौरासी न्यातों तथा उन के स्थानों[2] के नामों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमाल	भीनमाल से	१४	ककस्थन	वालकूँडा से
२	श्रीश्रीमाल	हस्तिनापुर से	१५	कपोला	नम्रकोट से
३	श्रीखण्ड	श्रीनगर से	१६	काँकरिया	करौली से
४	श्रीगुरु	आभूला डौलाइ से	१७	खरवा	खेरवा से
५	श्रीगौड़	सिद्धपुर से	१८	खडायता	खँडवा से
६	अगरवाल	अगरोहा से	१९	खेमवाल	खेमानगर से
७	अजमेरा	अजमेर से	२०	खँडेलवाल	खँडेलानगर से
८	अजोधिया	अयोध्या से	२१	गँगराड़ा	गँगराड़ से
९	अडालिया	आडणपुर से	२२	गाहिलवाल	गौहिलगढ़ से
१०	अवकथवाल	आँबेर आभानगर से	२३	गौलवाल	गौलगढ़ से
११	ओसवाल	ओसियाँ नगर से	२४	गोगवार	गोगा से
१२	कठाड़ा	खाडू से	२५	गीँदोड़िया	गीँदोड़ देवगढ से
१३	कटनेरा	कटनेर से	२६	चकौड़	रणथंभचकावा गढ् मल्हारी से

१—इन में से चित्रवाल चित्तोड़गढ़ से, ठंठवाल..............से तथा हरसौरा हरसौर से आये थे, शेष का स्थान प्रथम लिख ही चुके हैं ॥

२—'स्थानों के, अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर एकत्रित हुए थे उन २ स्थानों के ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
२७	चतुरथ	चरणपुर से	५६	वदनौरा	वदनौर से
२८	चीतौड़ा	चित्तौड़गढ़ से	५७	वरमाका	ब्रह्मपुर से
२९	चोरंडिया	चावंडिया से	५८	विदियादा	विदियाद से
३०	जायलवाल	जावल से	५९	वैगार	विलास पुरी से
३१	जालोरा	सौवनगढ जालौर से	६०	भवनगे	भावनगर से
३२	जैसवाल	जैसलगढ से	६१	मूँगडवार	मूरपुर से
३३	जम्बूसरा	जम्बू नगर से	६२	महेश्वरी	डीडवाणे से
३४	टींटौड़ा	टींटौड़ से	६३	मेडतवाल	मेडता से
३५	टंटौरिया	टंटेरा नगर से	६४	माथुरिया	मथुरा से
३६	ढूँसर	ढाकलपुर से	६५	मौड	सिद्धपुर पाटन से
३७	दसौरा	दसौर से	६६	मांडलिया	माँडलगढ़ से
३८	धवलकौष्टी	धौलपुर से	६७	राजपुरा	राजपुर से
३९	धाकड़	धाकगढ़ से	६८	राजिया	राजगढ़ से
४०	नारनगरेसा	नराणपुर से	६९	लवेचू	लावा नगर से
४१	नागर	नागरचाल से	७०	लाड	लाँवागढ़ से
४२	नेमा	हरिश्चन्द्र पुरी से	७१	हरसौरा	हरसौर से
४३	नरसिंघपुरा	नरसिंघपुर से	७२	हूमड़	सादवाड़ा से
४४	नवाँमरा	नवसरपुर से	७३	हलद	हलदा नगर से
४५	नागिन्द्रा	नागिन्द्र नगर से	७४	हाकरिया	हाकगढ नलवर से
४६	नाथचल्ला	सिरोही से	७५	साँभरा	साँभर से
४७	नाछेला	नाडोलाइ से	७६	सडोइया	हिंगलादगढ़ से
४८	नौटिया	नौसलगढ से	७७	सरेडवाल	सादड़ी से
४९	पल्लीवाल	पाली से	७८	सौरठवाल	गिरनार से
५०	परवार	पारा नगर से	७९	सेतवाल	सीतपुर से
५१	पञ्चम	पञ्चम नगर से	८०	सौहितवाल	सौहित से
५२	पौकरा	पोकरजी से	८१	सुरन्द्रा	सुरन्द्रपुर अवन्ती से
५३	पौरवार	पारेवा से	८२	सौनैया	सौनगढ से
५४	पौसरा	पौसर नगर से	८३	सौरंडिया	शिवगिराणा से
५५	वघेरवाल	वघेरा से	८४	....	....

आगे चल कर हम ज्योतिष् की कुछ आवश्यक बातों को लिखेंगे उन में सूर्य का उदय और अस्त तथा लग्न को स्पष्ट जानने की रीति, ये दो विषय मुख्यतया गृहस्थों के लाभ के लिये लिखे जावेंगे, क्योंकि गृहस्थ लोग पुत्रादि के जन्मसमय में साधारण (कुछ पढ़े हुए) ज्योतिषियों के द्वारा जन्मसमय को बतला कर जन्मकुंडली बनवाते हैं, इस के पीछे अन्य देश के वा उसी देश के किसी विद्वान् ज्योतिषी से जन्मपत्री बनवाते हैं, इस दशा में प्रायः यह देखा जाता है कि बहुत से लोगों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल नहीं मिलता है तब वे लोग जन्मपत्री के बनाने वाले विद्वान् को तथा ज्योतिष् विद्या को दोष देते हैं अर्थात् इस विद्या को असत्य (झूठा) बतलाते हैं, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इस विषय में न तो जन्मपत्र के बनाने वाले विद्वान् का दोष है और न ज्योतिष् विद्या का ही दोष है किन्तु दोष केवल जन्मसमय में ठीक लग्न न लेने का है, तात्पर्य यह है कि–यदि जन्मसमय में ठीक रीति से लग्न ले लिया जावे तथा उसी के अनुसार जन्मपत्री बनाई जावे तो उस का शुभाशुभ फल अवश्य मिल सकता है, इस में कोई भी सन्देह नहीं है, परन्तु शोक का विषय तो यह है कि–नाममात्र के ज्योतिषी लोग लग्न बनाने की क्रिया को भी तो ठीक रीति से नहीं जानते हैं फिर उन की बनाई हुई जन्मकुण्डली (टेवे) से शुभाशुभ फल कैसे विदित हो सकता है, इस लिये हम लग्न के बनाने की क्रिया का वर्णन अति सरल रीति से करेंगे ॥

सोलह तिथियों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम
१	प्रतिपद्	पड़िवा	९	नवमी	नौमी
२	द्वितीया	दूज	१०	दशमी	दशवीं
३	तृतीया	तीज	११	एकादशी	ग्यारस
४	चतुर्थी	चौथ	१२	द्वादशी	बारस
५	पञ्चमी	पाँचम	१३	त्रयोदशी	तेरस
६	षष्ठी	छठ	१४	चतुर्दशी	चौदस
७	सप्तमी	सातम	१५	पूर्णिमा वा पूर्णमासी	पूनम वा पूरनमासी
८	अष्टमी	आठम	१६	अमावास्या	अमावस

सूचना—कृष्ण पक्ष (वदि) में पन्द्रहवीं तिथि अमावास्या कहलाती है तथा शुक्ल पक्ष (सुदि) में पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा वा पूर्णमासी कहलाती है ॥

सात वारों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	मुसलमानी नाम	अंग्रेज़ी नाम
१	सूर्यवार	इतवार	आइतवार	सन्डे
२	चन्द्रवार	सोमवार	पीर	मन्डे
३	भौमवार	मंगलवार	मंगल	ट्यूज़डे
४	बुधवार	बुधवार	बुध	वेड्नेस्डे
५	गुरुवार	बृहस्पतिवार	जुमेरात	थर्सडे
६	शुक्रवार	शुक्रवार	जुमा	फ्राइडे
७	शनिवार	शनिश्चर	शनीवार	सटर्डे

सूचना-सूर्यवार को आदित्यवार, सोमवार को चन्द्रवार, बृहस्पतिवार को बिहफै तथा शनिवार को शनैश्चर वा शनीचर भी कहते है ॥

सत्ताईस नक्षत्रों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	अश्विनी	८	पुष्य	१५	स्वाति	२२	श्रवण
२	भरणी	९	आश्लेषा	१६	विशाखा	२३	धनिष्ठा
३	कृत्तिका	१०	मघा	१७	अनुराधा	२४	शतभिषा
४	रोहिणी	११	पूर्वाफाल्गुनी	१८	ज्येष्ठा	२५	पूर्वाभाद्रपद
५	मृगशीर्ष	१२	उत्तराफाल्गुनी	१९	मूल	२६	उत्तराभाद्रपद
६	आर्द्रा	१३	हस्त	२०	पूर्वाषाढ़ा	२७	रेवती
७	पुनर्वसु	१४	चित्रा	२१	उत्तराषाढ़ा		

सत्ताईस योगों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	विष्कुम्भ	८	धृति	१५	वज्र	२२	साध्य
२	प्रीति	९	शूल	१६	सिद्धि	२३	शुभ
३	आयुष्मान्	१०	गण्ड	१७	व्यतीपात	२४	शुक्ल
४	सौभाग्य	११	वृद्ध	१८	वरीयान	२५	ब्रह्मा
५	शोभन	१२	ध्रुव	१९	परिघ	२६	ऐन्द्र
६	अतिगण्ड	१३	व्याघात	२०	शिव	२७	वैधृति
७	सुकर्मा	१४	हर्षण	२१	सिद्ध		

सात करणों के नाम ॥

१–बव । २–बालव । ३–कौलव । ४–तैतिल । ५–गर । ६–वणिज । और ७–विष्टि ॥

सूचना—तिथि की सम्पूर्ण घड़ियों में दो करण भोगते हैं अर्थात् यदि तिथि साठ घड़ी की हो तो एक करण दिन में तथा दूसरा करण रात्रि में बीतता है, परन्तु शुक्ल पक्ष की पड़िवा की तमाम घड़ियों के दूसरे आधे भाग से बव और बालव आदि आते हैं तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घड़ियों के दूसरे आधे भाग से सदा स्थिर करण आते हैं, जैसे देखो ! चतुर्दशी के दूसरे भाग में शकुनि, अमावास्या के पहिले भाग में चतुष्पद, दूसरे भाग में नाग और पड़िवा के पहिले भाग में किंस्तुघ्न, ये ही चार स्थिर करण कहलाते हैं ॥

करणों के बीतने का स्पष्ट विवरण ॥

शुक्ल पक्ष (सुदि) के करण ॥			कृष्ण पक्ष (वदि) के करण ॥		
तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग
१	किंस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५ पूर्णिमा	विष्टि	बव	३० अमावस	चतुष्पद	नाग

शुभ कार्यों में निषिद्ध तिथि आदि का वर्णन ॥

जिस तिथि की वृद्धि हो वह तिथि, जिस तिथि का क्षय हो वह तिथि,

का पहिला आधा भाग, विष्टि, वैधृति, व्यतीपात, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (तेरस) से प्रतिपद् (पड़िवा) तक चार दिवस, दिन और रात्रि के बारह बजने के समय पूर्व और पीछे के दश पल, माता के ऋतुधर्म संबंधी चार दिन, पहिले गोद लिये हुए लड़के वा लड़की के विवाह आदि में उस के जन्मकाल का मास; दिवस और नक्षत्र, जेठ का मास, अधिक मास, क्षय मास, सत्ताईस योगों में विष्कुम्भ योग की पहिली तीन घड़ियाँ, व्याघात योग की पहिली नौ घड़ियाँ, शूल योग की पहिली पाँच घड़ियाँ, वज्र योग की पहिली नौ घड़ियाँ, गण्ड योग की पहिली छः घड़ियाँ, अतिगण्ड योग की पहिली छः घड़ियाँ, चौथा चन्द्रमा, आठवाँ चन्द्रमा, बारहवाँ चन्द्रमा, कालचन्द्र, गुरु तथा शुक्र का अस्त, जन्म तथा मृत्यु का सूतक[1], मनोभङ्ग तथा सिंह राशि का बृहस्पति (सिंहस्थ वर्ष), इन सब तिथि आदि का शुभ कार्य में ग्रहण नही करना चाहिये॥

१-सूतक विचार तथा उस में कर्त्तव्य-पुत्र का जन्म होने से दश दिन तक, पुत्री का जन्म होने से बारह दिन तक, जिस स्त्री के पुत्र हो उस (स्त्री) के लिये एक मास तक, पुत्र होते ही मर जावे तो एक दिन तक, परदेश में मृत्यु होने से एक दिन तक, घर मे गाय; भैंस; घोड़ी और ऊँटिनी के ब्याने से एक दिन तक, घर में इन (गाय आदि) का मरण होने से जब तक इन का मृत शरीर घर से बाहर न निकला जावे तब तक, दास दासी के पुत्र तथा पुत्री आदि का जन्म वा मरण होने से तीन दिन तक तथा गर्भ के गिरने पर जितने महीने का गर्भ गिरे उतने दिनों तक सूतक रहता है।

जिस के गृह मे जन्म वा मरण का सूतक हो वह बारह दिन तक देवपूजा को न करे, उस में भी मृतकसम्बधी सूतक मे घर का मूल स्कध (मूल काँधिया) दश दिन तक देवपूजा को न करे, इस के सिवाय शेष घर वाले तीन दिन तक देवपूजा को न करें, यदि मृतक को छुआ हो तो चौबीस प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, यदि सदा का भी अखण्ड नियम हो तो समता भाव रख कर शम्वरपने में रहे परन्तु मुख से नवकार मन्त्र का भी उच्चारण न करे, स्थापना जी के हाथ न लगावे; परन्तु यदि मृतक को न छुआ हो तो केवल आठ प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, भैंस के बच्चा होने पर पन्द्रह दिन के पीछे उस का दूध पीना कल्पता है, गाय के बच्चा होने पर भी पन्द्रह दिन के पीछे ही उस का भी दूध पीना कल्पता है तथा बकरी के बच्चा होने पर उस समय से आठ दिन के पीछे दूध पीना कल्पता है।

ऋतुमती स्त्री चार दिन तक पात्र आदि का स्पर्श न करे, चार दिन तक प्रतिक्रमण न करे तथा पाँच दिन तक देवपूजा न करे, यदि रोगादि किसी कारण से तीन दिन के उपरान्त भी किसी स्त्री के रक्त चलता हुआ दीखे तो उस का विशेष दोष नहीं माना गया है, ऋतु के पश्चात् स्त्री को उचित है कि-शुद्ध विवेक से पवित्र हो कर पाँच दिन के पीछे स्थापना पुस्तक का स्पर्श करे तथा साधु को प्रतिलाभ देवे, ऋतुमती स्त्री जो तपस्या (उपवासादि) करती है वह तो सफल होती ही है परन्तु उसे प्रतिक्रमण आदि का करना योग्य नही है (जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं), यह चर्चरी ग्रन्थ मे कहा है, जिस घर मे जन्म वा मरण का सूतक हो वहाँ बारह दिन तक साधु आहार तथा पानी को न वहरै (ले), क्योंकि-निशीथसूत्र के सोलहवें उद्देश्य मे जन्म मरण के सूतक से युक्त घर दुगंछनीक कहा है॥

दिन का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि—जिस दिन जो वार हो उस दिन उसी वार के नीचे लिखा हुआ चौघड़िया सूर्योदय के समय में बैठता है वह पहिला समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है वह दूसरा समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस (छठे) वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है, यही क्रम आगे भी समझना चाहिये, जैसे देखो! रविवार के दिन पहिला उद्वेग नामक चौघड़िया है उस के उतरने के पीछे रवि से छठे शुक्र का चल नामक चौघड़िया बैठता है, इसी अनुक्रम से प्रत्येक वार के दिन भर का चौघड़िया जान लेना चाहिये, एक चौघड़िया डेढ़ घण्टे तक रहता है अर्थात् सबेरे के छः बजे से ले कर शाम के छः बजे तक बारह घण्टे में आठ चौघड़िये व्यतीत होते हैं, इन में से—अमृत; शुभ; लाभ और चल; ये चार चौघड़िये उत्तम तथा उद्वेग; रोग और काल; ये तीन चौघड़िये निकृष्ट हैं, इस लिये अच्छे चौघड़ियों में शुभ काम को करना चाहिये ॥

रात्रि का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

विज्ञान—इस कोष्ठ में ऊपर से केवल इतना ही अन्तर है कि–एक वार के पहिले चौघड़िये के उतरने के पीछे उस वार से पाँचवें वार का दूसरा चौघड़िया बैठता है, शेष सब विषय ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

छोटी बड़ी पनोती तथा उस के पाये का वर्णन ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपनी जन्मराशि से जिस समय चौथा वा आठवां शनि हो उस समय से २॥ वर्ष तक की छोटी पनोती जाननी चाहिये, बारहवाँ शनि बैठे (लगे) तब से लेकर दूसरे शनि के उतरने तक बराबर ७॥ वर्ष की बड़ी पनोती होती है, उस में से बारहवें शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती मस्तक पर समझनी चाहिये, पहिले शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती छाती पर जाननी चाहिये तथा दूसरे शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती पैरों पर जाननी चाहिये।

जिस दिन पनोती बैठे उस दिन यदि जन्मराशि से पहिला; छठा तथा ग्यारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को सोने के पाये जानना चाहिये, यदि दूसरा; पाँचवाँ तथा नवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को रूपे के पाये जावना चाहिये, यदि तीसरा; सातवाँ तथा दशवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को ताँबे के पाये जानना चाहिये तथा यदि चौथा आठवाँ और बारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को लोहे के पाये जानना चाहिये ॥

पनोती के फल तथा वर्ष और मास के पाये का वर्णन ॥

यदि पनोती सोने के पाये बैठी हो तो चिन्ता को उत्पन्न करे, यदि पनोती रूपे के पाये बैठी हो तो धन मिले; यदि पनोती ताँबे के पाये बैठी हो तो सुख और सम्पत्ति मिले तथा यदि पनोती लोहे के पाये बैठी हो तो कष्ट प्राप्त हो, इसी प्रकार जिस दिन वर्ष तथा मास बैठे उस दिन जिस राशि का चन्द्र हो उस के द्वारा ऊपर लिखे अनुसार सोने के; रूपे के तथा ताँबे के पाये पर बैठने वाले वर्ष अथवा मास का विचार कर सम्पूर्ण वर्ष का अथवा मास का फल जान लेना चाहिये, जैसे–देखो! कल्पना करो कि–संवत् १९६४ के प्रथम चैत्र शुक्ल पड़िवा के दिन मीन राशि का चन्द्र है वह (चन्द्र) मेषराशि वाले पुरुष को बारहवा होता है इस लिये ऊपर कही हुई रीति से लोहे के पाये पर वर्ष तथा मास बैठा अत उसे कष्ट देने वाला जान लेना चाहिये, इसी रीति से दूसरी राशिवालों के लिये भी समझ लेना चाहिये ॥

चोरी गई अथवा खोई हुई वस्तु की प्राप्ति वा अप्राप्ति का वर्णन ॥

पूर्व दिशा में	दक्षिण दिशा में	पश्चिम दिशा में	उत्तर दिशा में
शीघ्र मिलेगी	तीन दिन में मिलेगी	एक मास में मिलेगी	नहीं मिलेगी
रोहिणी	मृगशीर्ष	आर्द्रा	पुनर्वसु
पुष्य	आश्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी
उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति
विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	अभिजित्	श्रवण
धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद
रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि–जिस दिन वस्तु खोई गई हो अथवा चुराई गई हो (वह दिन यदि मालूम हो तो) उस दिन का नक्षत्र देखना चाहिये, यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो ऊपर लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये कि वह वस्तु पूर्व दिशा में गई है तथा वह शीघ्र ही मिलेगी, यदि वह दिन मालूम न हो तो जिस दिन अपने को उस वस्तु का चोरी जाना वा खोया जाना मालूम हो उस दिन का नक्षत्र देख कर ऊपर लिखे अनुसार निर्णय करना चाहिये, यदि उस दिन मृगशीर्ष नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि वस्तु दक्षिण दिशा में गई है तथा वह तीन दिन में मिलेगी, यदि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र हो तो जानना चाहिये कि–वह वस्तु पश्चिम दिशा में गई है तथा एक महीने में मिलेगी और यदि उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि–वह वस्तु उत्तर दिशा में गई है तथा वह नहीं मिलेगी, इसी प्रकार कोष्ठ में लिखे हुए सब नक्षत्रों के अनुसार वस्तु के विषय में निश्चय कर लेना चाहिये ॥

नाम रखने के नक्षत्रों का वर्णन ॥

संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर	संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर
१	अश्विनी चू, चे, चो, ला,	७	पुनर्वसु के, को, हा, ही,
२	भरणी ली, लू, ले, लो	८	पुष्य हू, हे, हो, डा,
३	कृत्तिका अ, ई, ऊ, ए,	९	आश्लेषा डी, डु, डे, डो,
४	रोहिणी ओ, वा, वी, वू,	१०	मघा म, मी, मू, मे,
५	मृगशिर वे, वो, का, की,	११	पूर्वाफाल्गुनी मो, टा, टी, टू,
६	आर्द्रा कू, घ, ङ, छ,	१२	उत्तराफाल्गुनी टे, टो, प, पी,

संख्या	नाम नक्षत्र	अक्षर	संख्या	नाम नक्षत्र	अक्षर
१३	हस्त	पु, ष, ण, ठ,	२१	उत्तराषाढ़ा	भे, भो, ज, जी,
१४	चित्रा	पे, पो, रा, री,	२२	अभिजित्[1]	जू, जे, जो, खा,
१५	स्वाती	रू, रे, रो, ता,	२३	श्रवण	खी, खु, खे, खो,
१६	विशाखा	ती, तू, ते, तो,	२४	धनिष्ठा	ग, गी, गू, गे,
१७	अनुराधा	ना, नि, नू, ने,	२५	शतभिषा	गो, सा, सी, सू,
१८	ज्येष्ठा	नो या, यी, यू,	२६	पूर्वाभाद्रपद	से, सो, द, दी,
१९	मूल	ये, यो, भ, भी,	२७	उत्तराभाद्रपद	दु, ञ, झ, थ,
२०	पूर्वाषाढ़ा	भू, ध, फ, ढ,	२८	रेवती	दे, दो, च, ची,

चन्द्रराशि का वर्णन ॥

राशि ।	नक्षत्र तथा उस के पाद[2] ।	राशि ।	नक्षत्र तथा उस के पाद ।
मेष	अश्विनी, भरणी, कृत्तिका का प्रथम पाद ।	तुल	चित्रा के दो पाद, स्वाति, विशाखा के तीन पाद ।
वृष	कृत्तिका के तीन पाद, रोहिणी, मृगशिर के दो पाद ।	वृश्चिक	विशाखा का एक पाद, अनुराधा, ज्येष्ठा।
मिथुन	मृगशिर के दो पाद, आर्द्रा, पुनर्वसु के तीन पाद ।	धन	मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा का प्रथम पाद ।
कर्क	पुनर्वसु का एक पाद, पुष्य, आश्लेषा ।	मकर	उत्तराषाढ़ा के तीन पाद, श्रवण, धनिष्ठा के दो पाद ।
सिंह	मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी का प्रथम पाद ।	कुम्भ	धनिष्ठा के दो पाद, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद के तीन पाद ।
कन्या	उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, हस्त, चित्रा के दो पाद ।	मीन	पूर्वाभाद्रपद का एक पाद, उत्तराभाद्रपद, रेवती ॥

तिथियों के भेदों का वर्णन ॥

पहिले जिन तिथियों का वर्णन कर चुके है उन के कुल पाँच भेद है–नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, अब कौन २ सी तिथियाँ किस २ भेदवाली है यह बात नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकती है:–

१–उत्तराषाढा के चौथे भाग से लेकर श्रवण की पहिली चार घडी पर्यन्त अभिजित् नक्षत्र गिना जाता है, इतने समय में जिस का जन्म हुआ हो उस का अभिजित् नक्षत्र मे जन्म हुआ समझना चाहिये ॥

२–स्मरण रहे कि–एक नक्षत्र के चार चरण (पाद वा पाये) होते हैं तथा चन्द्रमा दो नक्षत्र और एक पाये तक अर्थात् नौ पायों तक एक राशि मे रहता है, चन्द्रमा के राशि मे स्थित होने का यही क्रम बराबर जानना चाहिये ॥

संख्या।	भेद।	तिथियाँ।	संख्या।	भेद।	तिथियाँ।
१	नन्दा	पड़िवा, छठ और एकादशी।	४	रिक्ता	चौथ, नौमी और चौदश।
२	भद्रा	द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी।	५	पूर्णा	पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा।
३	जया	तृतीया, अष्टमी और तेरस।			

सूचना—यदि नन्दा तिथि को शुक्रवार हो, भद्रा तिथि को बुधवार हो, जया तिथि को मङ्गलवार हो, रिक्ता तिथि को शनिवार हो तथा पूर्णा तिथि को गुरुवार (बृहस्पतिवार) हो तो उस दिन सिद्धि योग होता है, यह (योग) सब शुभ कामों में अच्छा होता है ॥

दिशाशूल के जानने का कोष्ठ ॥

नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।
सोम और शनिवार को।	पूर्व दिशामें।	बुध तथा मङ्गलवार को।	उत्तर दिशा में।
गुरुवार को।	दक्षिण दिशा में।	रवि तथा शुक्रवार को।	पश्चिम दिशा में।

योगिनी के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

नाम तिथि।	दिशा में।	नाम तिथि।	दिशा में।
पड़िवा और नौमी।	पूर्व दिशा में।	षष्ठी और चतुर्दशी।	पश्चिम दिशा में।
तृतीया और एकादशी।	अग्नि कोण में।	सप्तमी और पूर्णमासी।	वायव्य कोण में।
पञ्चमी और त्रयोदशी।	दक्षिण दिशा में।	द्वितीया और दशमी।	उत्तर दिशा में।
चतुर्थी और द्वादशी।	नैर्ऋत्य कोण में।	अष्टमी और अमावास्या।	ईशान कोण में।

योगिनी का फल ॥

संख्या।	तरफ।	फल।	संख्या।	तरफ।	फल।
१	दाहिनी तरफ।	धन की हानि करने वाली।	३	पीठ की तरफ।	वाँछित फल को देने वाली।
२	बाईं तरफ।	सुख देने वाली।	४	सम्मुख होने पर।	मरण तथा तकलीफ को देने वाली।

चन्द्रमा के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

राशि।	दिशा में।	राशि।	दिशा में।
मेष और सिंह।	पूर्व दिशा में।	मिथुन, तुल और कुम्भ।	पश्चिम दिशा में।
वृष, कन्या और मकर।	दक्षिण दिशा में।	वृश्चिक, कर्क और मीन।	उत्तर दिशा में।

चन्द्रमा का फल ॥

संख्या।	तरफ।	फल।	संख्या।	तरफ।	फल।
१	सम्मुख होने पर।	अर्थ का लाभ करता है।	३	पीठ की तरफ होने पर।	प्राणों का नाश करता है।
२	दाहिनी तरफ होने पर।	सुख तथा सम्पत्ति करता है।	४	बाइँ तरफ होने पर।	धन का क्षय करता है।

कालराहु के निवास के जानने का कोष्ठ[1] ॥

नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।
शनिवार।	पूर्व दिशा में।	गुरुवार।	दक्षिण दिशा में।	मंगलवार।	पश्चिम दिशा में।	रविवार।	उत्तर दिशा में।
शुक्रवार।	अग्निकोण में।	बुधवार।	नैर्ऋत्य कोण में।	सोमवार।	वायव्य कोण में।		

अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों का वर्णन[2] ॥

अर्कदग्धा तिथियाँ ॥ — चन्द्रदग्धा तिथियाँ ॥

सङ्क्रान्ति।	तिथि।	चन्द्रराशि।	तिथि।
धन तथा मीन की।	द्वितीया।	वृष और कर्क राशि के चन्द्र में।	दशमी।
वृष तथा कुम्भ की।	चतुर्थी।	धन और कुम्भ राशि के चन्द्र में।	द्वितीया।
मेष तथा कर्क की।	षष्ठी।	वृश्चिक और कन्या राशि के चन्द्र में।	द्वादशी।
कन्या तथा मिथुन की।	अष्टमी।	मीन और मकर राशि के चन्द्र में।	अष्टमी।
वृश्चिक तथा सिंह की।	दशमी।	तुल और सिंह राशि के चन्द्र में।	षष्ठी।
मकर तथा तुल की।	द्वादशी।	मेष और मिथुन राशि के चन्द्र में।	चतुर्थी।

इष्ट काल साधन ॥

पहिले कह चुके है कि–जन्मकुंडली वा जन्मपत्री के बनाने के लिये इष्टकाल का साधन करना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि–इस (इष्टकाल) के शुद्ध किये विना जन्म-

---

१–परदेशादि में गमन करने के समय उक्त सब बातों (दिशाशूल आदि) का देखना आवश्यक होता है, इन बातों के ज्ञानार्थ इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये कि–"दिशाशूल ले जावे बायें, राहु योगिनी पूठ ॥ सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावै लक्ष्मी लूट" ॥ १ ॥ इस के सिवाय जन्म के चन्द्रमा में परदेशगमन, तीर्थयात्रा, युद्ध, विवाह, क्षौरकर्म अर्थात् मुण्डन तथा नये घर मे निवास, ये पाँच कार्य नहीं करने चाहियें ॥

२–अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों में शुभ तथा माङ्गलिक कार्य का करना अत्यन्त निषिद्ध है ॥

पत्री का फल कभी ठीक नहीं मिल सकता है, इस लिये अब इस विषय का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

घण्टा बनाने की विधि—एक घटी (घड़ी) के २४ मिनट होते हैं, इस लिये ढाई दण्ड (घड़ी) का एक घण्टा (अर्थात् ६० मिनट) होता है, इस रीति से अहोरात्र (रात दिन) साठ घटी का अर्थात् चौवीस घण्टे का होता है, अब घण्टा आदि बनाने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि—जितनी घटी और पल हों उन को २॥ से भाग देना चाहिये, क्योंकि—इस से घण्टा; मिनट तथा सेकिण्ड तक मालूम हो सकते हैं, जैसे—देखो! १४ घटी, २० पल तथा ४५ विपल के घण्टे बनाने हैं—तो पाँच दाम साढ़े बारह को निकाला तो शेष (बाकी) रहीं—१।५०।४५, अब एक घटी के २४ मिनट हुए तथा ५० पल के—२० दाम ५० अर्थात् २० मिनट हुए, इन में पूर्व के २४ मिनट मिलाये तो ४४ मिनट हुए तथा ४५ विपल के—१८ दाम ४५ अर्थात् १८ सेकिण्ड हुए, इस लिये—१४ घटी २० पल तथा ४५ विपल के पूरे ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए ॥

दूसरी विधि—घटी; पल तथा विपल को द्विगुण (दूना) करके ६० से चढ़ा कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे घण्टा समझो, शेष को ६० से गुणा कर के तथा पल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे मिनट समझो और शेष को साठ (६०) से गुणा कर के तथा विपल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे सेकिण्ड समझो, उदाहरण—१४।२०।४५ को द्विगुण (दूना) किया तो २८।४०।९० हुए, इन में से अन्तिम अङ्क ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को पल में जोड़ा तो २८।४१।३० हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ५ आया, ये ही पाँच घण्टे हुए, शेष ३ को ६० से गुणा करके उन में ४१ जोड़े तो २२१ हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ४४ हुए, इन्हीं को मिनट समझो, शेष एक को ६० से गुणा करके उन में ३० जोड़े तो ९०

१—स्मरण रहे कि सवाये का निशान इस प्रकार से लिखा जावेगा—१।१५, ढाई का निशान—२।३०, पौने दो का १।४५। पूरी राशि ६० है, इसी का अंश १।२।३ या हिस्सा १५।३०।४५ समझना चाहिये ॥

२—दण्ड, नाड़ी और कला आदि संज्ञायें घटी (घड़ी) की ही हैं और पल, लिप्ता तथा विकला इत्यादि विपल ही की संज्ञायें हैं ॥

३—१४।२०।४५
बाकी १२।३० अब २० में से ३० नहीं घट सकता है, इस लिये बची हुई दो घटिकाओं में से एक घटिका को ले कर उस के पल बनाये तो ६० पल हुए, इन को २० में जोड़ा तो ८० पल हुए, इन में से ३० को घटाया तो ५० बचे, इस लिये १।५०।४५ हुए, इसी प्रकार सब जगह जानना चाहिये ॥

हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध १८ हुए, इन्हीं को सेकिण्ड समझो, बस १४ घड़ी, २० पल तथा ४५ विपल के ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए।

इसी प्रकार यदि घण्टा; मिनट और सेकिण्ड के घटी; पल और विपल बनाने हों तो घण्टा; मिनट और सेकिण्ड को ५ से गुणा कर तथा ६० से चढा कर २ का भाग दो अर्थात् आधा कर दो तो घण्टा मिनट और सेकिण्ड के घटी; पल और विपल बन जावेंगे, जैसे—देखो! इन्हीं ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड को ५ से गुणा किया तो २५।२२०।९० हुए, इन को ६० से चढ़ाया तो २८।४१।३० हुए, इन में दो का भाग दिया (आधा किया) तो १४।२०।४५ रहे अर्थात् ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड की १४ घटी; २० पल तथा ४५ विपल हुए, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—दो का भाग देने पर जब आधा बचता है तब उस की जगह ३० माना जाता है, जैसे कि—४१ का आधा २०॥ होगा, इस लिये वहाँ आधे के स्थान में ३० समझा जावेगा, इसी प्रकार ढाई गुणा करने में भी उक्त बात का स्मरण रखना चाहिये।

इस का एक अति सुलभ उपाय यह भी है कि—घण्टे; मिनट और सेकिण्ड की जब घटी आदि बनाना हो तो घण्टे आदि को दूना कर उस में उसी का आधा जोड़ दो, जैसे—५।४४।१८ को दूना किया तो १०।८८।३६ हुए, उन में उन्हीं का आधा २। ५२।९ जोड़े तो १२।१४०।४५ हुए, इन में ६० का भाग दिया तो १४।२०।४० हुए अर्थात् उक्त घण्टे आदि के उक्त दण्ड और पल आदि हो गये॥

सूर्यास्त काल साधन ॥

पञ्चाङ्ग में लिखे हुए प्रतिदिन के दिनमान के प्रथम ऊपर लिखी हुई क्रिया से घण्टे; मिनट और सेकिण्ड बना लेने चाहियें, पीछे उन्हें आधा कर देना चाहिये, ऐसा करने से सूर्यास्तकाल हो जावेगा, **उदाहरण**—कल्पना करो कि—दिनमान ३१।३५ है, इन के घण्टे बनाये तो १२ घण्टे तथा ३८ मिनट हुए, इन का आधा किया तो ६।१९ हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् सूर्य के अस्त होने का समय ६ बज कर १९ मिनट पर सिद्ध हुआ, इसी प्रकार आवश्यकता हो तो सूर्यास्तकाल के घंटे आदि को दूना करके घटी तथा पल बन सकते है अर्थात् दिनमान निकल सकता है॥

१—पहिले ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को २२० में जोड़ा तो २२१ हुए, शेष बचे हुए ३० को वैसा ही रहने दिया, अब २२१ में ६० का भाग दिया तो लब्ध ३ आये, इन ३ को २५ में जोड़ा तो २८ हुए, शेष बचे हुए ४१ को वैसा ही रहने दिया, बस २८।४१।३० हो गये॥

सूर्योदय काल के जानने की विधि ॥

१२ में से सूर्यास्तकाल के घण्टों और मिनटों को घटा देने से सूर्योदयकाल बन जाता है, जैसे—१२ में से ६।१९ को घटाया तो ५।४१ शेष रहे अर्थात् ५ बजे के ४१ मिनट पर सूर्योदयकाल ठहरा, एवं सूर्योदयकाल के घण्टों और मिनटों को दूना कर घटी और पल बनाये तो २८।२५ हुए, बस यही रात्रिमान है, दिनमान का आधा दिनार्ध और रात्रिमान का आधा रात्रिमानार्ध (राव्यर्ध) होता है तथा दिनमान में रात्रिमानार्ध को जोड़ने से राव्यर्ध अर्थात् निशीथसमय होता है, जैसे—१५।४७।३० दिनार्ध है तथा १४।१२। ३० रात्रिमानार्ध है, इस रात्रिमानार्ध को (१४।१२।३० को) दिनमान में जोड़ा तो राव्यर्ध अर्थात् निशीथकाल ४५।४७।३० हुआ ॥

दूसरी क्रिया—६० में से दिनमान को घटा देने से रात्रिमान बनता है, दिनमान में ५ का भाग देने से सूर्यास्तकाल के घण्टे और मिनट निकलते हैं तथा रात्रिमान में ५ का भाग देने से सूर्योदयकाल बनता है, जैसे—३१।३५ में ५ का भाग दिया तो ६ लब्ध हुए, शेष बचे हुए एक को ६० से गुणा कर उस में ३५ जोड़े तथा ५ का भाग दिया तो १९ लब्ध हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् ६।१९ सूर्यास्तकाल ठहरा, ६० में से दिनमान ३१।३५ को घटायाँ[1] तो २८।२५ रात्रिमान रहा, उस में ५ का भाग दिया तो ५।४१ हुए, बस यही सूर्योदयकाल बन गया ॥

इष्टकाल विरचन ॥

यदि सूर्योदयकाल से दो पहर के भीतर तक इष्टकाल बनाना हो तो सूर्योदयकाल को इष्टसमय के घण्टों और मिनटों में से घटा कर दण्ड और पल कर लो तो मध्याह्न के भीतर तक का इष्टकाल बन जावेगा, जैसे—कल्पना करो कि—सूर्योदय काल ६ बज के ७ मिनट तथा ४९ सेकिण्ड पर है तो इष्टसमय १० बज के ११ मिनट तथा ३७ सेकिण्ड पर हुआ, क्योंकि—अन्तर करने से ४।३।४८ के घटी और पल आदि १०।८ ३० हुए, बस यही इष्टकाल हुआ, इसी प्रकार मध्याह्न के ऊपर जितने घण्टे आदि हुए हों उन की घटी आदि को दिनार्ध में जोड़ देने से दो पहर के ऊपर का इष्टकाल सूर्योदय से बन जावेगा ॥

सूर्यास्त के घण्टे और मिनट के उपरान्त जितने घण्टे आदि व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल आदि को दिनमान में जोड़ देने से राव्यर्ध तक का इष्टकाल बन जावेगा।

१—स्मरण रहे कि—२४ घण्टे का अर्थात् ६० घटी का अहोरात्र (दिनरात) होता है, घटाने की रीति इस प्रकार समझनी चाहिये—$\begin{array}{r} ६०।० \\ ३१।३५ \\ \hline २८।२५ \end{array}$ देखो! ६० में से ३१ को घटाया तो २९ रहे, अब ३५ को घटाना है परन्तु ३५ के ऊपर शून्य है अर्थात् शून्य में से ३५ घट नहीं सकता है तो २९ में से एक निकाला अर्थात् २९ की जगह २८ रक्खा तथा उस निकाले हुए एक के पल बनाये तो ६० हुए, इन में से ३५ को निकाला (घटाया) तो २५ बचे अर्थात् ६० में से ३१।३५ को घटाने से २८।२५ रहे॥

रात्र्यर्ध के उपरान्त जितने घण्टे और मिनट हुए हों उन के दण्ड और पलों को रात्र्यर्ध में जोड़ देने से सूर्योदय तक का इष्ट बन जावेगा ॥

दूसरी विधि—सूर्योदय के उपरान्त तथा दो प्रहर के भीतर की घटी और पलों को दिनार्ध में घटा देने से इष्ट बन जाता है, अथवा सूर्योदय से लेकर जितना समय व्यतीत हुआ हो उस की घटी और पल बना कर मध्याह्नोत्तर तथा अर्ध रात्रि के भीतर तक का जितना समय हो उसे दिनार्ध में जोड़ देने से मध्य रात्रि तक का इष्ट बन जावेगा, अथवा सूर्योदय के अनन्तर जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें ६० में से घटा देने से इष्ट बन जाता है, दिनार्ध के ऊपर के जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें रात्र्यर्ध में घटा देने से रात्र्यर्ध के भीतर का इष्टकाल बन जाता है ॥

लग्न जानने की रीति ॥

जिस समय का लग्न बनाना हो उस समय का प्रथम तो ऊपर लिखी हुई क्रिया से इष्ट बनाओ, फिर—उस दिन की वर्त्तमान संक्रान्ति के जितने अंश गये हों उन को पञ्चाङ्ग में देख कर लग्नसारणी में उन्हीं अंशों की पङ्क्ति में उस सङ्क्रान्ति वाले कोष्ठ की पङ्क्ति के बराबर (सामने) जो कोष्ठ हो उस कोष्ठ के अङ्कों को इष्ट में जोड़ दो और उस सारणी में फिर देखो जहाँ तुम्हारे जोड़े हुए अंक मिलें वही लग्न उस समय का जानो, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि—यदि तुम्हारे जोड़े हुए अङ्क साठ से ऊपर (अधिक) हों तो ऊपर के अङ्कों को (साठ को निकाल कर शेष अङ्कों को) कायम रक्खो अर्थात् उन अङ्कों में से साठ को निकाल डालो फिर ऊपर के जो अङ्क हों उन को सारणी में देखो, जिस राशि की पङ्क्ति में वे अङ्क मिलें उतने ही अंश पर उसी लग्न को समझो ॥

कतिपय महज्जनों की जन्मकुंडलियाँ

अब कतिपय महज्जनों की जन्मकुण्डलियाँ लिखी जाती है—जिन की ग्रहविशेषस्थिति को देख कर विद्वज्जन ग्रहविशेषजन्य फल का अनुभव कर सकेंगेः—

तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी की जन्मकुण्डली ॥

श्री रामचंद्र जी महाराज की जन्मकुण्डली ॥

श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जन्मकुण्डली ॥

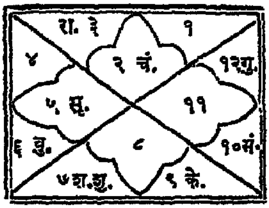

कैसरेहिन्द महाराणी स्वर्गवासिनी श्री विक्टोरियाँ की जन्मकुण्डली ॥

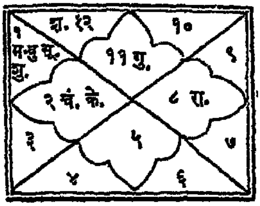

श्री हुलकर महाराज श्री सियाजीराव बहादुर इन्दोर की जन्मकुण्डली द।१७ ॥

स्वर्गवासी महाराज श्री यशवन्त सिंह जी बहादुर जोधपुर की जन्मकुण्डली ॥

महाराज श्री प्रतापसिंह जी बहादुर ईडर की जन्मकुण्डली ॥

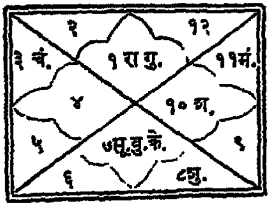

महाराज श्री सिरदारसिंह जी बहादुर जोधपुर की जन्म कुण्डली ॥

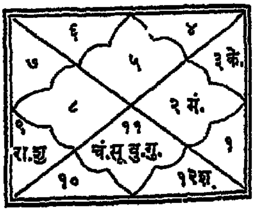

सूचना—बहुत से पुरुषों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल प्रायः नहीं मिलता है जिस का कारण प्रथम लिख चुके हैं कि—उन में इष्टकाल ठीक रीति से नहीं लिया जाता है, इस लिये जिन जन्मपत्रियों का फल न मिलता हो उन में इष्टकाल का गड़बड़ समझना चाहिये तथा किसी विद्वान् से उसे ठीक कराना चाहिये, किन्तु ज्योतिःशास्त्र

१–इस शाहजादी का जन्म केन्सिंगटन के राजमहल में सन् १८१९ ई. के मई मास की २४ ता. को सबेरे ४ बज के ६ मिनट तथा १६ सेकिण्ड के समय हुआ था ॥

२–संवत् १९१६ मिति कार्तिक कृष्णा १, इष्ट ५८।५ पर जन्म हुआ ॥

३–संवत् १८९४ आश्विन सुदि ९, इष्ट ५७।५८ पर जन्म हुआ ॥

४–संवत् १९०१ मिति मिगशिर वदि ५, इष्ट ३०।३१ के समय जन्म हुआ ॥

५–संवत् १९३६ मिति माघ सुदि १, बुधवार, इष्ट ३३।१० के समय जन्म हुआ ॥

पर से श्रद्धा को नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि–ज्योतिःशास्त्र (निमित्तज्ञान) कभी मिथ्या नहीं हो सकता है, देखो! ऊपर जिन प्रसिद्ध महोदयों की जन्मकुण्डलियाँ यहाँ उद्धृत (दर्ज) की हैं उन के लग्नसमय में फर्क का होना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता विद्वानों से इष्टकाल का संशोधन करा के उक्त कुण्डलियाँ बनावाई गई प्रतीत होती हैं और यह बात कुण्डलियों के ग्रहों वा उन के फल से ही विदित होती है, देखो! इन कुण्डलियों में जो उच्च ग्रह तथा राज्ययोग आदि पड़े हैं उन का फल सब के प्रत्यक्ष ही है, बस यह बात ज्योतिष् शास्त्र की सत्यता को स्पष्ट ही बतला रही है।

जन्मपत्रिका के फलादेश के देखने की इच्छा रखने वाले जनों को भद्रबाहुसंहिता[1], जन्माम्भोधि, त्रैलोक्यप्रकाश तथा भुवनप्रदीप आदि ग्रन्थ एवं बृहज्जातक[2], भावकुतूहल तथा लघुपाराशरी आदि ज्योतिष्शास्त्र के ग्रन्थों को देखना चाहिये, क्योंकि–उक्त ग्रन्थों में सर्व योगों तथा ग्रहों के फल का वर्णन बहुत उत्तम रीति से किया गया है।

यहाँ पर विस्तार के भय से ग्रहों के फलादेश आदि का वर्णन नहीं किया जाता है किन्तु गृहस्थों के लिये लाभदायक इस विद्या का जो अत्यावश्यक विषय था उस का संक्षेप से कथन कर दिया गया है, आशा है कि–गृहस्थ जन उस का अभ्यास कर उस से अवश्य लाभ उठावेंगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का ज्योतिर्विषय वर्णन नामक नवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दशवाँ प्रकरण—स्वरोदयवर्णन ॥

स्वरोदय विद्या का ज्ञान ॥

विचार कर देखने से विदित होता है कि–स्वरोदय की विद्या एक बड़ी ही पवित्र तथा आत्मा का कल्याण करने वाली विद्या है, क्योंकि–इसी के अभ्यास से पूर्वकालीन महानुभाव अपने आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद को प्राप्त हो चुके है, देखो! श्री जिनेन्द्र देव और श्री गणधर महाराज इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) थे अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायाम आदि सब अङ्गों और उपाङ्गों को भले प्रकार से जानते थे, देखिये! जैनागम में लिखा है कि–"श्री महावीर अरिहन्त के पश्चात् चौदह पूर्व के पाठी श्री भद्रबाहु स्वामी जब हुए थे तथा उन्हों ने सूक्ष्म प्राणायाम के ध्यान का परावर्त्तन किया था उस समय समस्त सङ्घ ने मिल कर उन को विज्ञप्ति की थी" इत्यादि।

१–भद्रबाहुसंहिता आदि ग्रन्थ जैनाचार्यों के बनाये हुए हैं ॥

२–बृहज्जातक आदि ग्रन्थ अन्य (जैनाचार्यों से भिन्न) आचार्यों के बनाये हुए है ॥

इतिहासों के अवलोकन से विदित होता है कि–जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी तथा दादा साहिब श्री जिनदत्त सूरि जी आदि अनेक जैनाचार्य इस विद्या के पूरे अभ्यासी थे, इस के अतिरिक्त–थोड़ी शताब्दी के पूर्व आनन्दघन जी महाराज, चिदानन्द (कपूरचन्द) जी महाराज तथा ज्ञानसार (नारायण)जी महाराज आदि बड़े २ अध्यात्म पुरुष हो गये हैं जिन के बनाये हुए ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि–आत्मा के कल्याण के लिये पूर्व काल में साधु लोग योगाभ्यास का खूब बर्त्ताव करते थे, परन्तु अब तो कई कारणों से वह व्यवहार नहीं देखा जाता है, क्योंकि–प्रथम तो–अनेक कारणों से शरीर की शक्ति कम हो गई है, दूसरे–धर्म तथा श्रद्धा घटने लगी है, तीसरे–साधु लोग पुस्तकादि परिग्रह के इकट्ठे करने में और अपनी मानमहिमा में ही साधुत्व (साधुपन) समझने लगे हैं, चौथे–लोभ ने भी कुछ २ उन पर अपना पञ्जा फैला दिया है, कहिये अब स्वरोदयज्ञान का झगड़ा किसे अच्छा लगे! क्योंकि यह कार्य तो लोभरहित तथा आत्मज्ञानियों का है किन्तु यह कह देने में भी अत्युक्ति न होगी कि मुनियों के आत्मकल्याण का मुख्य मार्ग यही है, अब यह दूसरी बात है कि–वे (मुनि) अपने आत्मकल्याण का मार्ग छोड़ कर अज्ञान सांसारिक जनों पर अपने ढोंग के द्वारा ही अपने साधुत्व को प्रकट करें ।

प्राणायाम योग की दश भूमि हैं, जिन में से पहिली भूमि (मञ्जल) स्वरोदयज्ञान ही है, इस के अभ्यास के द्वारा बड़े २ गुप्त भेदों[२] को मनुष्य सुगमतापूर्वक[३] ही जान सकते हैं तथा बहुत से रोगों की ओषधि भी कर सकते हैं ।

स्वरोदय पद का शब्दार्थ श्वास का निकालना है, इसी लिये इस में केवल श्वास की पहिचान की जाती है और नाकपर हाथ के रखते ही गुप्त बातों का रहस्य चित्रवत्[४] सामने आ जाता है तथा अनेक सिद्धियां उत्पन्न होती हैं परन्तु यह दृढ निश्चय है कि–इस विद्या का अभ्यास ठीक रीति से गृहस्थों से नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रथम तो–यह विषय अति कठिन है अर्थात् इस में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, दूसरे इस विद्या के जो ग्रन्थ हैं उन में इस विषय का अति कठिनता के साथ तथा अति संक्षेप से वर्णन किया गया है जो सर्व साधारण की समझ में नहीं आ सकता है, तीसरे–इस विद्या के ठीक रीति से जानने वाले तथा दूसरों को सुगमता[५] के साथ अभ्यास करा सकने वाले पुरुष विरले ही स्थानों में देखे जाते हैं, केवल यही कारण है कि–वर्त्तमान में इस विद्या के अभ्यास करने की इच्छा वाले पुरुष उस में प्रवृत्त[६] हो कर लाभ होने के

१–योगाभ्यास का विशेष वर्णन देखना हो तो 'विवेकमार्त्तण्ड' 'योग रहस्य' तथा 'योगशास्त्र' आदि ग्रन्थों को देखना चाहिये ॥ २–छिपे हुए रहस्यों ॥ ३–आसानी से ॥ ४–तस्वीर के समान ॥ ५–आसानी ॥ ६–तत्पर वा लगा हुआ ॥

बदले अनेक हानियाँ कर बैठते हैं, अस्तु,—इन्हीं सब बातों को विचार कर तथा गृहस्थ जनों को भी इस विद्या का कुछ अभ्यास होना आवश्यक समझ कर उन (गृहस्थों) से सिद्ध हो सकने योग्य इस विद्या का कुछ विज्ञान हम इस प्रकरण में लिखते हैं, आशा है कि—गृहस्थ जन इस के अवलम्बन से इस विद्या के अभ्यास के द्वारा लाभ उठावेंगे, क्योंकि—इस विद्या का अभ्यास इस भव और पर भव के सुख को निःसन्देह प्राप्त करा सकता है॥

स्वरोदय का स्वरूप तथा आवश्यक नियम ॥

१—नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उस का नाम स्वर है, उस को स्थिर चित्त के द्वारा पहिचान कर शुभाशुभ कार्यों का विचार करना चाहिये।

२—स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है, यद्यपि शरीर में नाड़ियाँ बहुत हैं परन्तु उन में से २४ नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा उन २४ नाड़ियों में से नौ नाड़ियाँ अति प्रधान हैं तथा उन नौ नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ अतिशय प्रधान मानी गई हैं, जिन के नाम—इड़ला, पिङ्गला और सुषुम्ना (सुखमना) हैं, इन का वर्णन आगे किया जावेगा।

३—स्मरण रखना चाहिये कि—भौंओं (भँवारों) के बीच में जो चक्र है वहाँ से श्वास का प्रकाश होता है और पिछली बङ्क नाल में हो कर नाभि में जा कर ठहरता है।

४—दक्षिण अर्थात् दाहिने (जीमणे) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को इड़ला नाड़ी वा सूर्य स्वर कहते हैं, वाम अर्थात् बायें (डावी) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को पिङ्गला नाड़ी वा चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों तरफ (दाहिने और बायें तरफ अर्थात् उक्त दोनों नाड़ियों (दोनों स्वरों) के बीच में अर्थात् दोनों नाड़ियों के द्वारा जो स्वर चलता है उस को सुखमना नाड़ी (स्वर) कहते है, इन में से जब बायाँ स्वर चलता हो तब चन्द्र का उदय जानना चाहिये तथा जब दाहिना स्वर चलता हो तब सूर्य का उदय जानना चाहिये।

१—जरूरी ॥ २—सफल वा पूरा ॥

३—प्रत्येक मनुष्य जब श्वास लेता है तब उस की नासिका के दोनों छेदों में से किसी एक छेद से प्रचण्डतया (तेजी के साथ) श्वास निकलता है तथा दूसरे छेद से मन्दतया (धीरे २) श्वास निकलता है अर्थात् दोनों छेदों में से समान श्वास नहीं निकलता है, इन मे से जिस तरफ का श्वास तेजी के साथ अर्थात् अधिक निकलता हो उसी स्वर को चलता हुआ स्वर समझना चाहिये, दाहिने छेद में से जो वेग से श्वास निकले उसे सूर्य स्वर कहते हैं, बायें छेद मे से जो अधिक श्वास निकले उसे चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों छेदों में से जो समान श्वास निकले अथवा कभी एक में से अधिक निकले और कभी दूसरे मे से अधिक निकले उसे सुखमना स्वर कहते हैं, परन्तु यह (सुखमना) स्वर प्रायः उस समय मे चलता है जब कि स्वर बदलना चाहता है, अच्छे नीरोग मनुष्य के दिन रात में घण्टे घण्टे भर तक चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर अदल बदल होते हुए चलते रहते हैं परन्तु रोगी मनुष्य के यह नियम नहीं रहता है अर्थात् उस के स्वर में समय की न्यूनाधिकता (कमी ज्यादती) भी हो जाती है ॥

५–शीतल और स्थिर कार्यों को चन्द्र स्वर में करना चाहिये, जैसे–नये मन्दिर का बनवाना, मन्दिर की नीवँ का खुदाना, मूर्ति की प्रतिष्ठा करना, मूल नायक की मूर्ति को स्थापित करना, मन्दिर पर दण्ड तथा कलश का चढ़ाना, उपाश्रय (उपासरा); धर्मशाला; दानशाला; विद्याशाला; पुस्तकालय; घर (मकान); हाट; महल; गढ़ और कोट का बनवाना, सङ्घ की माला का पहिराना, दान देना, दीक्षा देना, यज्ञोपवीत देना, नगर में प्रवेश करना, नये मकान में प्रवेश करना, कपड़ों और आभूषणों (गहनों) का कराना अथवा मोल लेना, नये गहने और कपड़े का पहरना, अधिकार का लेना, ओषधि का बनाना, खेती करना, बाग बगीचे का लगाना, राजा आदि बड़े पुरुषों से मित्रता करना, राज्यसिंहासन पर बैठना तथा योगाभ्यास करना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहियें क्योंकि चन्द्र स्वर में किये हुए उक्त कार्य कल्याणकारी होते हैं ।

६–क्रूर और चर कार्यों को सूर्य स्वर में करना चाहिये, जैसे–विद्या के सीखने का प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मन्त्र तथा देव की आराधना करना, राजा वा हाकिम को अर्ज़ी देना, वकालत वा मुखत्यारी लेना, वैरी से मुकावला करना, सर्प के विष तथा भूत का उतारना, रोगी को दवा देना, विघ्न का शान्त करना, कष्टी स्त्री का उपाय करना, हाथी; घोड़ा तथा सवारी (बग्घी रथ आदि) का लेना, भोजन करना, स्नान करना, स्त्री को ऋतुदान देना, नई वही को लिखना, व्यापार करना, राजा का शत्रु से लड़ाई करने को जाना, जहाज वा अग्नि बोट को दर्याव में चलाना, वैरी के मकान में पैर रखना, नदी आदि के जल में तैरना तथा किसी को रुपये उधार देना वा लेना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने चाहियें, क्योंकि सूर्य स्वर में किये हुए उक्त कार्य सफल होते हैं ।

७–जिस समय चलता २ एक स्वर रुक कर दूसरा स्वर बदलने को होता है अर्थात् जब चन्द्र स्वर बदल कर सूर्य स्वर होने को होता है अथवा सूर्य स्वर बदल कर चन्द्र स्वर होने को होता है उस समय पाँच सात मिनट तक दोनों स्वर चलने लगते हैं, उसी को सुखमना स्वर कहते हैं, इस (सुखमना) स्वर में कोई काम नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस स्वर में किसी काम के करने से वह निष्फल होता है तथा उस से क्लेश भी उत्पन्न होता है ।

१–इस में भी जल तत्त्व और पृथिवी तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

२–हाट अर्थात् दूकान ॥

३–इस मे भी पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

८–कृष्ण पक्ष (अँधेरे पक्ष) का स्वामी (मालिक) सूर्य है और शुक्ल पक्ष (उजेले पक्ष) का स्वामी चन्द्र है ।

९–कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् (पड़िवा) को यदि प्रातःकाल सूर्य स्वर चले तो वह पक्ष बहुत आनन्द से बीतता है ।

१०–शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से बीतता है ।

११–यदि चन्द्र की तिथि में (शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) सूर्य स्वर चले तो क्लेश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है ।

१२–सूर्य की तिथि में (कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) यदि चन्द्र स्वर चले तो पीड़ा; कलह तथा राजा से किसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चञ्चलता उत्पन्न होती है ।

१३–यदि कदाचित् उक्त दोनों पक्षों (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष) की पड़िवा के दिन प्रातःकाल सुखमना स्वर चले तो उस मास में हानि और लाभ समान (बराबर) ही रहते हैं ।

१४–कृष्ण पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ सूर्य और चन्द्र की होती हैं, जैसे–पड़िवा, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है, इसी प्रकार अमावास्या तक शेष तिथियों में भी समझना चाहिये, इन में जब अपनी २ तिथियों में दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वर चलते है तब वे कल्याणकारी होते है ।

१५–शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ चन्द्र और सूर्य की होती है अर्थात् प्रतिपद्, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है तथा चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियॉ सूर्य की हैं, इसी प्रकार पूर्णमासी तक शेप तिथियों में भी समझना चाहिये इन में भी इन दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों का अपनी २ तिथियों में प्रातःकाल चलना शुभकारी होता है ।

१६–वृश्चिक, सिंह, वृष और कुम्भ, ये चार राशियाँ चन्द्र स्वर की हैं तथा ये (राशियॉ) स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ हैं ।

१७–कर्क, मकर, तुल और मेष, ये चार राशियॉ सूर्य स्वर की है तथा ये (राशियाँ) चर कार्यों में श्रेष्ठ है ।

१८–मीन, मिथुन, धन और कन्या, ये सुखमना के द्विस्वभाव लग्न हैं, इन में कार्य के करने से हानि होती है ।

१९–उक्त बारह राशियों से बारह महीने भी जान लेने चाहियें अर्थात् ऊपर लिखी जो सङ्क्रान्ति लगे वही सूर्य; चन्द्र और सुखमना के महीने समझने चाहियें।

२०–यदि कोई मनुष्य अपने किसी कार्य के लिये प्रश्न करने को आवे तथा अपने सामने; बायें तरफ अथवा ऊपर (ऊँचा) ठहर कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२१–यदि अपने नीचे, अपने पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो भी कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२२–यदि कोई दाहिने तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा लग्न; वार और तिथि का भी सब योग मिल जावे तो कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

२३–यदि प्रश्न करने वाला दाहिनी तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के विना वह शून्य (खाली) दिशा का प्रश्न सिद्ध नहीं हो सकता है।

२४–यदि कोई पीछे खड़ा हो कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–कार्य सिद्ध नहीं होगा।

२५–यदि कोई बाईं तरफ खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र योग स्वर के विना वह कार्यसिद्ध नहीं होगा।

२६–इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा अपने से ऊपर (ऊँचा) खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र स्वर के सब योगों के मिले विना वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होगा॥

स्वरों में पाँचों तत्वों की पहिचान॥

उक्त दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों में पाँच तत्त्व चलते हैं तथा उन (तत्त्वों) का रंग, परिमाण, आकार और काल भी विशेष होता है, इस लिये स्वरोदयज्ञान में इस विषय का भी जान लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि जो पुरुष इन के विज्ञान को अच्छे प्रकार से समझ लेता है उस की कही हुई बात अवश्य मिलती है, इस लिये अब इन के विषय में आवश्यक वर्णन करते हैं:—

१–मङ्गल, शनि और रवि, इन वारों का स्वामी सूर्य स्वर है तथा सोम, बुध, गुरु और शुक्र, इन वारों का स्वामी चन्द्र स्वर है॥ २–बहुत जरूरी॥

१–पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व हैं, इन में से प्रथम दो का अर्थात् पृथिवी और जल का स्वामी चन्द्र है और शेष तीनों का अर्थात् अग्नि, वायु और आकाश का स्वामी सूर्य है।

२–पीला, सफेद, लाल, हरा और काला, ये पाँच वर्ण (रंग) क्रम से पाँचों तत्त्वों के जानने चाहियें अर्थात् पृथिवी तत्त्व का वर्ण पीला, जल तत्त्व का वर्ण सफेद, अग्नि तत्त्व का वर्ण लाल, वायु तत्त्व का वर्ण हरा और आकाश तत्त्व का वर्ण काला है।

३–पृथिवी तत्त्व सामने चलता है तथा नासिका (नाक) से बारह अङ्गुल तक दूर जाता है[1] और उस के स्वर के साथ समचौरस आकार होता है।

४–जल तत्त्व नीचे की तरफ चलता है तथा नासिका से सोलह अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का चन्द्रमा के समान गोल आकार है।

५–अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का त्रिकोण आकार है।

६–वायु तत्त्व टेढा (तिरछा) चलता है तथा नासिका से आठ अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का ध्वजा के समान आकार है।

७–आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चलता है अर्थात् दोनों स्वरों में (सुखमना) स्वर में) चलता है तथा इस का आकार कोई नहीं है[2]।

८–एक एक (प्रत्येक) स्वर ढाई घड़ी तक अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उस में उक्त पाँचों तत्त्व इस रीति से रात दिन चलते है कि–पृथिवी तत्त्व पचास पल, जल तत्त्व चालीस पल, अग्नि तत्त्व तीस पल, वायु तत्त्व बीस पल और आकाश तत्त्व दश पल[3], इस प्रकार से तीनों नाड़ियाँ (तीनों स्वर) उक्त पाँचों तत्त्वों के साथ दिन रात (सदा) प्रकाशमान[4] रहती है ॥

पाँचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियाँ ॥

१–पांच रंगों[5] की पाँच गोलियाँ तथा एक गोली विचित्र रंग की बना कर इन छवों गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और जब बुद्धि में किसी तत्त्व का विचार

१–नाक पर अगुलि के रखने से यदि श्वास बारह अगुल तक दूर जाता हुआ ज्ञात हो तो पृथिवी तत्त्व समझना चाहिये, इसी प्रकार शेष तत्त्वों के परिमाण के विषय मे समझना चाहिये ॥

२–क्योंकि आकाश शून्य पदार्थ है ॥

३–सब मिला कर १५० पल हुए, सो ही ढाई घडी वा एक घण्टे के १५० पल होते हैं ॥

४–'प्रकाशमान' अर्थात् प्रकाशित ॥

५–पॉच रंग वे ही समझने चाहियें जो कि–पहिले पृथिवी आदि के लिख चुके है अर्थात् पीला, सफेद, लाल, हरा और काला ॥

करना हो उस समय उन छःवों गोलियों में से किसी एक गोली को आँख मीच कर उठा लेना चाहिये, यदि बुद्धि में विचारा हुआ तथा गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि–तत्त्व मिलने लगा है ।

२–अथवा–किसी दूसरे पुरुष से कहना चाहिये कि–तुम किसी रंग का विचार करो, जब वह पुरुष अपने मन में किसी रंग का विचार कर ले उस समय अपने नाक के स्वर में तत्त्व को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचारे हुए रंग को बतलाना चाहिये कि–तुमने अमुक फलाने) रंग का विचार किया था, यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि–तत्त्व ठीक मिलता है ।

३–अथवा–काच अर्थात् दर्पण को अपने ओष्ठों (होठों) के पास लगा कर उस के ऊपर बलपूर्वक नाक का श्वास छोड़ना चाहिये, ऐसा करने से उस दर्पण पर जैसे आकार का चिह्न हो जावे उसी आकार को पहिले लिखे हुए तत्त्वों के आकार से मिलाना चाहिये, जिस तत्त्व के आकार से वह आकार मिल जावे उस समय वही तत्त्व समझना चाहिये ।

४–अथवा–दोनों अङ्गूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनी अङ्गुलियों से दोनों आँखों को और दोनों मध्यमा अङ्गुलियों से नासिका के दोनों छिद्रों को बन्द कर ले और दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियों से (चारों अङ्गुलियों से) ओठों को ऊपर नीचे से खूब दाब ले, यह कार्य करके एकाग्र चित्त से गुरु की बताई हुई रीति से मन को भ्रुकुटी में ले जावे, उस जगह जैसा और जिस रंग का बिन्दु मालूम पड़े वही तत्त्व जानना चाहिये ।

५–ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिन तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये, क्योंकि कुछ दिन के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने लगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुभाशुभ आदि होने वाले कार्यों को शीघ्र ही जान सकता है ॥

स्वरों में उदित हुए तत्त्वों के द्वारा वर्षफल जानने की रीति ॥

अभी कह चुके हैं कि–पाँचों तत्त्वों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य होने वाले शुभाशुभ आदि सब कार्यों को जान सकता है, इसी नियम के अनुसार वह उक्त पाँचों तत्त्वों के द्वारा वर्ष में होने वाले शुभाशुभ फल को भी जान सकता है, उस के जानने की निम्नलिखित रीतियाँ हैः–

१–जिस समय मेष की संक्रान्ति लगे उस समय श्वास को ठहरा कर स्वर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान

लेना चाहिये कि—ज़माना बहुत ही श्रेष्ठ होगा अर्थात् राजा और प्रजाजन सुखी रहेंगे पशुओं के लिये घास आदि बहुत उत्पन्न होगी तथा रोग और भय आदि की शान्ति रहेगी, इत्यादि।

२—यदि उस समय (चन्द्र स्वर में) जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि बर्सात बहुत होगी, पृथिवी पर अपरिमित अन्न होगा, प्रजा सुखी होगी, राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे, पुण्य; दान और धर्म की वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से सुख और सम्पत्ति बढ़ेगी, इत्यादि।

३—यदि उस समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—कुछ कम फल होगा।

४—यदि उक्त समय में दोनों स्वरों में से चाहे जिस स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—बर्सात कम होगी, रोगपीड़ा अधिक होगी, दुर्भिक्ष होगा, देश उजाड़ होगा तथा प्रजा दुःखी होगी, इत्यादि।

५—यदि उक्त समय में चाहे जिस स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—राज्य में कुछ विग्रह होगा, बर्सात थोड़ी होगी, ज़माना साधारण होगा तथा पशुओं के लिये घास और चारा भी थोड़ा होगा, इत्यादि।

६—यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा पशुओं के लिये घास आदि भी कुछ नहीं होगा, इत्यादि।

वर्षफल के जानने की अन्य रीति ॥

१—यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि—वर्षा बहुत होगी, ज़माना श्रेष्ठ होगा, राजा और प्रजा में सुख का सञ्चार होगा तथा किसी प्रकार का इस वर्ष में भय और उत्पात नहीं होगा, इत्यादि।

२—यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में जल तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि—यह वर्ष अति श्रेष्ठ है अर्थात् इस वर्ष में वर्सात; अन्न और धर्म की अतिशय वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से आनन्द रहेगा, इत्यादि।

३—यदि उस दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी अथवा जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम अर्थात् साधारण फल समझना चाहिये।

४—यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में वा सूर्य स्वर में शेष (अग्नि; वायु और आकाश) तीन तत्त्व चलते हों तो उन का वही फल समझना चाहिये जो कि पूर्व मेष सङ्क्रान्ति के विषय में लिख चुके है, जैसे—देखो! यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो

तो जानना चाहिये कि–प्रजा में रोग और शोक होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा राजा के चित्त में चैन नहीं रहेगा इत्यादि, यदि सूर्य स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो समझना चाहिये कि–राज्य में कुछ विग्रह होगा और वृष्टि थोड़ी होगी तथा यदि सूर्य स्वर में सुखमना चलता हो तो जानना चाहिये कि–अपनी ही मृत्यु होगी और छत्रभङ्ग होगा तथा कहीं २ थोड़े अन्न व घास आदि की उत्पत्ति होगी और कहीं २ बिलकुल नहीं होगी, इत्यादि ॥

वर्षफल जानने की तीसरी रीति ॥

१–यदि माघ सुदि सप्तमी को अथवा अक्षयतृतीया को प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ।

२–यदि उक्त दिन प्रातःकाल अग्नि आदि तीन तत्त्व चलते हों तो पूर्व कहे अनुसार निकृष्ट फल समझना चाहिये ।

३–यदि उक्त दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम फल अर्थात् साधारण फल जानना चाहिये ।

४–यदि उक्त दिन प्रातःकाल शेष तीन तत्त्व चलते हों तो उन का फल भी पूर्व कहे अनुसार जान लेना चाहिये ॥

अपने शरीर; कुटुम्ब और धन आदि के विचार की रीति ॥

१–यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–तीन महीने में हृदय में बहुत चिन्ता और क्लेश उत्पन्न होगा ।

२–यदि चैत्र सुदि द्वितीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–परदेश में जाना पड़ेगा और वहाँ अधिक दुःख भोगना पड़ेगा ।

३–यदि चैत्र सुदि तृतीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–शरीर में गर्मी; पित्तज्वर तथा रक्तविकार आदि का रोग होगा ।

४–यदि चैत्र सुदि चतुर्थी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–नौ महीने में मृत्यु होगी ।

५–यदि चैत्र सुदि पञ्चमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–राज्य से किसी प्रकार की तकलीफ तथा दण्ड की प्राप्ति होगी ।

६–यदि चैत्र सुदि षष्ठी (छठ) के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष के अन्दर ही भाई की मृत्यु होगी ।

७–यदि चैत्र सुदि सप्तमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जावेगी ।

८–यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में कष्ट तथा पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्ययोग से ही सुख की प्राप्ति हो सकती है, इत्यादि ।

९–इन के सिवाय–यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व आदि शुभ तत्त्व चलते हों तो और भी श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ॥

पाँच तत्वों में प्रश्न का विचार ॥

१–यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–अवश्य कार्य सिद्ध होगा ।

२–यदि चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व वा वायु तत्व चलता हो अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–कार्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होगा ।

३–स्मरण रखना चाहिये कि–चन्द्र स्वर में जल तत्त्व और पृथिवी तत्व स्थिर कार्य के लिये अच्छे होते है परन्तु चर कार्य के लिये अच्छे नहीं होते है और वायु तत्त्व; अग्नि तत्त्व और आकाश तत्त्व; ये तीनों चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं; परन्तु ये भी सूर्य स्वर में अच्छे होते हैं किन्तु चन्द्र स्वर में नहीं ।

४–यदि कोई पुरुष रोगिविषयक प्रश्न को आकर पूछे तथा उस समय चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और प्रश्न करने वाला भी उसी चन्द्र स्वर की तरफ ही (बाईं तरफ ही) बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं मरेगा ।

५–यदि चन्द्र स्वर बन्द हो अर्थात् सूर्य स्वर चलता हो और प्रश्न करने वाला बाईं तरफ बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी किसी प्रकार भी नहीं जी सकता है ।

६–यदि कोई पुरुष खाली दिशा में आ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं बचेगा, परन्तु यदि खाली दिशा से आ कर भरी दिशा में बैठ कर (जिधर का स्वर चलता हो उधर बैठ कर) प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी अच्छा हो जावेगा ।

७–यदि प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर में जल तत्त्व वा पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है तथा यदि प्रश्न करने के समय चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व आदि कोई तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई रोग मिश्रित (मिले हुए) हैं ।

१–चर और स्थिर कार्यों का वर्णन संक्षेप से पहिले कर चुके हैं ॥

२–रोगी के विषय में ॥

३–जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा को छोड़ कर सर्व दिशायें खाली मानी गई हैं ॥

८–यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में अग्नि, वायु अथवा आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है परन्तु यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई मिश्रित (मिले हुए) रोग हैं ।

९–स्मरण रखना चाहिये कि–वायु और पित्त का स्वामी सूर्य है, कफ का स्वामी चन्द्र है तथा सन्निपात का स्वामी सुखमना है ।

१०–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर उसी (चलते हुए) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा काम अवश्य सिद्ध होगा ।

११–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर उसी (खाली) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा ।

१२–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर चलते स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य निस्सन्देह सिद्ध होगा ।

१३–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर खाली स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा ।

१४–यदि गुरुवार को वायु तत्त्व, शनिवार को आकाश तत्त्व, बुधवार को पृथिवी तत्त्व सोमवार को जल तत्त्व तथा शुक्रवार को अग्नि तत्त्व प्रातःकाल में चले तो जान लेना चाहिये कि–शरीर में जो कोई पहिले का रोग है वह अवश्य मिट जावेगा ॥

१–इस शरीर में उदान, प्राण, व्यान, समान और अपान नामक पाँच वायु हैं, ये वायु विपरीत खान पान, ऊपरी कुपथ्य तथा विपरीत व्यवहार से कुपित होकर अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं (जिन का वर्णन चौथे अध्याय में कर चुके हैं) तथा शरीर में पाचक, भ्राजक, रञ्जक, आलोचक और साधक नामक पाँच पित्त हैं, ये पित्त चरपरे, तीखे, लवण, खटाई, मिर्च आदि गर्म चीज़ों के खाने से तथा धूप, अग्नि और मैथुन आदि विपरीत व्यवहार से कुपित हो कर चालीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, एवं शरीर में अवलम्बन, क्लेद, रसन स्नेहन और श्लेषण नामक पाँच कफ हैं, ये कफ बहुत मीठे, बहुत चिकने, बासे तथा ठण्ढे अन्न आदि के खान पान से, दिन में सोना, परिश्रम न करना तथा सेज और बिछौनों पर सदा बैठे रहना आदि विपरीत व्यवहार से कुपित होकर बीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, परन्तु जब विरुद्ध आहार और विहार से ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं तब सन्निपात रोग होकर प्राणियों की मृत्यु हो जाती है ॥

२–पूर्ण वा सफल ॥ ३–बिना सन्देह के वा बेशक ॥ ४–वृहस्पतिवार ॥

स्वरों के द्वारा परदेशगमन का विचार ॥

१–जो पुरुष चन्द्र स्वर में दक्षिण और पश्चिम दिशा में परदेश[1] को जावेगा वह परदेश से आ कर अपने घर में सुख का भोग करेगा ।

२–सूर्य स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना शुभकारी[2] है ।

३–चन्द्र स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना अच्छा नहीं है ।

४–सूर्य स्वर में दक्षिण और पश्चिम की तरफ परदेश के जाना अच्छा नहीं है ।

५–ऊर्ध्व (ऊँची) दिशा चन्द्र स्वर की है इस लिये चन्द्र स्वर में पर्वत आदि ऊर्ध्व दिशा में जाना अच्छा है ।

६–पृथिवी के तल भाग का स्वामी सूर्य है, इस लिये सूर्य स्वर में पृथिवी के तल भाग में (नीचे की तरफ) जाना अच्छा है, परन्तु सुखमना स्वर में पृथिवी के तल भाग में जाना अच्छा नही है ॥

परदेश में स्थित[3] मनुष्य के विषय में प्रश्नविचार ॥

१–प्रश्न करने के समय यदि स्वर[4] में जल तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–सब कामों को सिद्ध कर के वह (परदेशी) शीघ्र ही आ जावेगा ।

२–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष ठिकाने पर बैठा है और उसे किसी बात की तकलीफ नहीं है ।

३–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष उस स्थान से दूसरे स्थान को गया है तथा उस के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हो रही है ।

४–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–उस के शरीर में रोग है ।

५–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष मर गया ॥

अन्य आवश्यक विषयों का विचार ॥

१–कहीं जाने के समय अथवा नींद से उठ कर (जाग कर) बिछौने से नीचे पैर रखने के समय यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा चन्द्रमा का ही चार हो तो पहिले चार पैर (कदम) बायें पैर से चलना चाहिये ।

१–दूसरे देश में जाना ॥ २–कल्याणकारी ॥ ३–ठहरे हुए ॥ ४–"स्वर में, अर्थात् चाहे जिस स्वर में ॥

२–यदि सूर्य का वार हो तथा सूर्य स्वर चलता हो तो चलते समय पहिले तीन पैर (क़दम) दाहिने पैर से चलना चाहिये ।

३–जो मनुष्य तत्त्व को पहिचान कर अपने सब कामों को करेगा उस के सब काम अवश्य सिद्ध होंगे ।

४–पश्चिम दिशा जल तत्त्वरूप है, दक्षिण दिशा पृथिवी तत्त्वरूप है, उत्तर दिशा अग्नि तत्त्वरूप है, पूर्व दिशा वायु तत्त्व रूप है तथा आकाश की स्थिर दिशा है ।

५–जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद और हास्य, ये छः अवस्थायें चन्द्र स्वर की हैं ।

६–ज्वर, निद्रा, परिश्रम और कम्पन, ये चार अवस्थायें जब चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय शरीर में होती हैं ।

७–जब चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय तथा मृत्यु होती है ।

८–पाँचों तत्त्वों के मिलने से चन्द्र स्वर की उक्त बारह अवस्थायें होती हैं ।

९–यदि पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है ।

१०–यदि जल तत्त्व और वायु तत्त्व चलते हों तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में जीवसम्बन्धी चिन्ता है ।

११–अग्नि तत्त्व में धातु की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१२–आकाश तत्त्व में शुभ कार्य की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१३–पृथिवी तत्त्व में बहुत पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१४–जल और वायु तत्त्व में दो पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१५–अग्नि तत्त्व में चार पैर वालों (चौपायों) की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१६–आकाश तत्त्व में विना पैर के पदार्थ की चिन्ता जाननी चाहिये ।

१७–रवि, राहु, मङ्गल और शनि, ये चार सूर्य स्वर के पाँचों तत्त्वों के स्वामी हैं ।

१८–चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व का स्वामी बुध, जल तत्त्व का स्वामी चन्द्र, अग्नि तत्त्व का स्वामी शुक्र और वायु तत्त्व का स्वामी गुरु है, इस लिये अपने २ तत्त्वों में ये ग्रह अथवा वार शुभफलदायक होते है ।

१९–पृथिवी आदि चारों तत्त्वों के क्रम से मीठा, कसैला, खारा और खट्टा, ये चार रस हैं, इस लिये जिस समय जिस रस के खाने की इच्छा हो उस समय उसी तत्त्व का चलना समझ लेना चाहिये ।

२०–अग्नि तत्त्व में क्रोध, वायु तत्त्व में इच्छा तथा जल और पृथिवी तत्त्व में क्षमा और नम्रता आदि यतिधर्मरूप दश गुण उत्पन्न होते हैं ।

२१–श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, ज्येष्ठा और अनुराधा, ये सात नक्षत्र पृथिवी तत्त्व के हैं तथा शुभफलदायी है।

२२–मूल, उत्तराभाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढा, शतभिषा और आश्लेषा, ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के हैं।

२३–ये (उक्त) चौदह नक्षत्र स्थिर कार्यों में अपने २ तत्त्वों के चलने के समय में जानने चाहियें।

२४–मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती, कृत्तिका, भरणी और पुष्य, ये सात नक्षत्र अग्नि के है।

२५–हस्त, विशाखा, मृगशिर, पुनर्वसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी और अश्विनी, ये सात नक्षत्र वायु के हैं।

२६–पहिले आकाश, उस के पीछे वायु, उस के पीछे अग्नि, उस के पीछे पानी और उस के पीछे पृथिवी, इस क्रम से एक एक तत्त्व एक एक के पीछे चलता है।

२७–पृथिवी तत्त्व का आधार गुदा, जल तत्त्व का आधार लिङ्ग, अग्नि तत्त्व का आधार नेत्र, वायु तत्त्व का आधार नासिका (नाक) तथा आकाश तत्त्व का आधार कर्ण (कान) है।

२८–यदि सूर्य स्वर में भोजन करे तथा चन्द्र स्वर में जल पीवे और बाईं करवट सोवे तो उस के शरीर में रोग कभी नही होगा।

२९–यदि चन्द्र स्वर में भोजन करे तथा सूर्य स्वर में जल पीवे तो उस के शरीर में रोग अवश्य होगा[1]।

३०–चन्द्र स्वर में शौच के लिये (दिशा मैदान के लिये) जाना चाहिये, सूर्यस्वर में मूत्रोत्सर्ग (पेशाब) करना चाहिये तथा शयन करना चाहिये।

३१–यदि कोई पुरुष स्वरों का ऐसा अभ्यास रक्खे कि–उस के चन्द्र स्वर में दिन का उदय हो (दिन निकले) तथा सूर्य स्वर में रात्रि का उदय हो तो वह पूरी अवस्था को प्राप्त होगा, परन्तु यदि इस से विपरीत[2] हो तो जानना चाहिये कि–मौत समीप ही है।

३२–ढाई २ घड़ी तक दोनों (सूर्य और चन्द्र) स्वर चलते है और तेरह श्वास तक सुखमना स्वर चलता है।

३३–यदि अष्ट प्रहर तक (२४ घण्टे अर्थात् रात दिन) सूर्य स्वर में वायु तत्त्व ही चलता रहे तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिये।

१–यदि कोई पुरुष पाँच सात दिन तक बराबर इस व्यवहार को करे तो वह अवश्य रुग्ण (रोगी) हो जावेगा, यदि किसी को इस विषय में संशय (शक) हो तो वह इस का वर्त्ताव कर के निश्चय कर ले॥

२–विपरीत हो, अर्थात् सूर्य स्वर मे दिन का उदय हो तथा चन्द्र स्वर में रात्रि का उदय हो॥

३४—यदि सोलह प्रहर तक सूर्य स्वर ही चलता रहे (चन्द्र स्वर आवे ही नहीं) तो दो वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३५—यदि तीन दिन तक एक सा सूर्य स्वर ही चलता रहे तो एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३६—यदि सोलह दिन तक बराबर सूर्यस्वर ही चलता रहे तो एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३७—यदि एक महीने तक सूर्य स्वर निरन्तर चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिये ।

३८—यदि सूर्य; चन्द्र और सुखमना; ये तीनों ही स्वर न चलें अर्थात् मुख से श्वास लेना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३९—यदि दिन में (सब दिन) चन्द्र स्वर चले तथा रात में (रात भर) सूर्य स्वर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिये ।

४०—यदि दिन में (दिन भर) सूर्य स्वर और रात में (रात भर) बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये ।

४१—यदि चार आठ, बारह, सोलह अथवा बीस दिन रात बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो बड़ी आयु जाननी चाहिये ।

४२—यदि तीन रात दिन तक सुखमना स्वर चलता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिये ।

४३—यदि चार दिन तक बराबर सुखमना स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये[1] ॥

स्वरों के द्वारा गर्भसम्बन्धी प्रश्न—विचार ॥

१—यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि—गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि—पुत्री होगी ।

२—यदि सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि—पुत्र होगा ।

३—यदि सुखमना स्वर के चलते समय कोई आ कर प्रश्न करे कि—गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि—नपुंसक होगा ।

४—यदि अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई गर्भविषयक प्रश्न

१—इन के सिवाय—वैद्यक कालज्ञान के अनुसार तथा अनुभवसिद्ध कुछ बातें चौथे अध्याय में लिख चुके हैं, वहाँ देख लेना चाहिये ॥

करे परन्तु प्रश्नकर्त्ता (पूछने वाले) का चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु वह जीवेगा नहीं ।

५–यदि दोनों का (अपना तथा पूछने वाले का) सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–पुत्र होगा तथा वह चिरञ्जीवी होगा ।

६–यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो तथा पूछने वाले का सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–पुत्री होगी परन्तु वह जीवेगी नहीं ।

७–यदि दोनों का (अपना और पूछने वाले का) चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–पुत्री होगी तथा वह दीर्घायु होगी ।

८–यदि सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व में तथा उसी दिन के लिये किसी का गर्भसम्बन्धी प्रश्न हो तो कह देना चाहिये कि–पुत्र होगा तथा वह रूपवान्; राज्यवान् और सुखी होगा ।

९–यदि सूर्य स्वर में जल तत्त्व चलता हो और उस में कोई गर्भसम्बन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–पुत्र होगा तथा वह सुखी; धनवान् और छः रसों का भोगी होगा ।

१०–यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर में उक्त दोनों तत्त्व (पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व) चलते हों तो कह देना चाहिये कि–पुत्री होगी तथा वह ऊपर लिखे अनुसार लक्षणों वाली होगी ।

११–यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि–गर्भ गिर जावेगा तथा यदि सन्तति भी होगी तो वह जीवेगी नहीं ।

१२–यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि–या तो छोड़ (पिण्डाकृति) बँधेगी वा गर्भ गल जावेगा ।

१३–यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो नपुंसक की तथा चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो वॉझ लड़की की उत्पत्ति कह देनी चाहिये ।

१४–यदि कोई सुखमना स्वर में गर्भ का प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–दो लड़कियाँ होंगी ।

१५–यदि कोई दोनों स्वरों के चलने के समय में गर्भविषयक प्रश्न करे तथा उस समय यदि चन्द्र स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिये कि–दो कन्यायें होंगी तथा यदि सूर्य स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिये कि–दो पुत्र होंगे ॥

गृहस्थों के लिये आवश्यक विज्ञप्ति ॥

स्वरोदय ज्ञान की जो २ बातें गृहस्थों के लिये उपयोगी थीं उन का हम ने ऊपर कथन कर दिया है, इन सब बातों को अभ्यस्त (अभ्यास में) रखने से गृहस्थों को

अवश्य आनन्द की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि स्वरोदय के ज्ञान में मन और इन्द्रियों का रोकना आवश्यक होता है।

यद्यपि प्रथम अभ्यास करने में गृहस्थों को कुछ कठिनता अवश्य मालूम होगी परन्तु थोड़ा बहुत अभ्यास हो जाने पर वह कठिनता आप ही मिट जावेगी, इस लिये आरम्भ में उस की कठिनता से भय नहीं करना चाहिये किन्तु उस का अभ्यास अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि–यह विद्या अति लाभकारिणी है, देखो! वर्त्तमान समय में इस देश के निवासी श्रीमान् तथा दूसरे लोग अन्यदेशवासी जनों की बनाई हुई जागरण-घटिका (जगाने की घड़ी) आदि वस्तुओं को निद्रा से जगाने आदि कार्य के लिये द्रव्य का व्यय कर के लेते है तथा रात्रि में जितने बजे पर उठना हो उसी समय की जगाने की चावी लगा कर घड़ी को रख देते है और ठीक समय पर घड़ी की आवाज़ को सुन कर उठ बैठते हैं, परन्तु हमारे प्राचीन आर्यावर्त्तनिवासी जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे, जिस में उन की एक पाई भी खर्च नहीं होती थी। (प्रश्न) आप इस बात को क्या हमें प्रत्यक्ष कर बतला सकते है कि–आर्यावर्त्तनिवासी प्राचीन जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे? (उत्तर) हाँ, हम अवश्य बतला सकते है, क्योंकि–गृहस्थों के लिये हितकारी इस प्रकार की बातों का प्रकट करना हम अत्यावश्यक समझते हैं, यद्यपि बहुत से लोगों का यह मन्तव्य होता है कि–इस प्रकार की गोप्य बातों को प्रकट नहीं करना चाहिये परन्तु हम ऐसे विचार को बहुत तुच्छ तथा सङ्कीर्णहृदयता का चिह्न समझते है, देखो! इसी विचार से तो इस पवित्र देश की सब विद्यायें नष्ट हो गईं।

पाठकवृन्द! तुम को रात्रि में जितने बजे पर उठने की आवश्यकता हो उस के लिये ऐसा करो कि–सोने के समय प्रथम दो चार मिनट तक चित्त को स्थिर करो, फिर विछौने पर लेट कर तीन वा सात वार ईश्वर का नाम लो अर्थात् नमस्कारमन्त्र को पढो, फिर अपना नाम ले कर मुख से यह कहो कि–हम को इतने बजे पर (जितने बजे पर तुम्हारी उठने की इच्छा हो) उठा देना, ऐसा कह कर सो जाओ, यदि तुम को उक्त कार्य के बाद दश पाँच मिनट तक निद्रा न आवे तो पुनः नमस्कारमन्त्र को निद्रा आने तक मन में ही (होठों को न हिला कर) पढते रहो[1], ऐसा करने से तुम रात्रि में अभीष्ट समय पर जाग कर उठ सकते हो, इस में सन्देह नही है[2] ॥

१ निद्रा के आने तक पुन मन मे मन्त्र पढ़ने का तात्पर्य्य यह है कि–ईश्वरनमस्कार के पीछे मन को अनेक बातों में नहीं ले जाना चाहिये अर्थात् अन्य किसी बात का स्मरण नहीं करना चाहिये ॥

२–हाथकङ्कन के लिये आरसी की क्या आवश्यकता है अर्थात् इस बात की जो परीक्षा करना चाहे वह कर सकता है ॥

योगसम्बन्धिनी मेस्मेरिजम विद्या का संक्षिप्त वर्णन[1] ॥

वर्त्तमान समय में इस विद्या की चर्चा भी चारों ओर अधिक फैल रही है अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए मनुष्य इस विद्या पर तन मन से मोहित हो रहे है, इस का यहाँ तक प्रचार बढ़ रहा है कि–पाठशालाओं (स्कूलों) के सब विद्यार्थी भी इस का नाम जानते है तथा इस पर यहाँ तक श्रद्धा बढ रही है कि–हमारे जैन्टिलमैन भाई भी (जो कि सब बातों को व्यर्थ बतलाया करते हैं) इस विद्या का सच्चे भाव से स्वीकार कर रहे है, इस का कारण केवल यही है कि–इस पर श्रद्धा रखने वाले जनों को बालकपन से ही इस प्रकार की शिक्षा मिली है और इस में सन्देह भी नहीं है कि–यह विद्या बहुत सच्ची और अत्यन्त लाभदायक है, परन्तु बात केवल इतनी है कि–यदि इस विद्या में सिद्धता को प्राप्त कर उसे यथोचित रीति से काम में लाया जावे तो वह बहुत लाभदायक हो सकती है।

इस विद्या का विशेष वर्णन हम यहां पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु केवल इस का स्वरूपमात्र पाठक जनों के ज्ञान के लिये लिखते है[2]।

निस्सन्देह यह विद्या बहुत प्राचीन है तथा योगाभ्यास की एक शाखा है, पूर्व समय में भारतवर्षीय सम्पूर्ण आचार्य और मुनि महात्मा जन योगाभ्यासी हुआ करते थे जिस का वृत्तान्त प्राचीन ग्रन्थों से तथा इतिहासों से विदित हो सकता है॥

आवश्यक सूचना—संसार में यह एक साधारण नियम देखा जाता है कि–जब कभी कोई पुरुष किन्ही नूतन (नये) विचारों को सर्व साधारण के समक्ष में प्रचरित करने का प्रारम्भ करता है तब लोग पहिले उस का उपहास किया करते है, तात्पर्य यह है कि–जब कोई पुरुष (चाहे वह कैसा ही विद्वान् क्यों न हो) किन्हीं नये विचारों को (संसार के लिये लाभदायक होने पर भी) प्रकट करता है तब एक बार लोग उस का उपहास अवश्य ही करते है तथा उस के उन विचारों को बाललीला समझते है, परन्तु विचारप्रकटकर्त्ता (विचारों को प्रकट करने वाला) गम्भीर पुरुष जब लोगों के उपहास का कुछ भी विचार न कर अपने कर्त्तव्य में सोद्योग (उद्योगयुक्त) ही रहता है तब उस का परिणाम यह होता है कि–उन विचारो में जो कुछ सत्यता विद्यमान होती है वह शनैः २ (धीरे २) कालान्तर में (कुछ काल के पश्चात्) प्रचार को प्राप्त होती है अर्थात् उन विचारों की सत्यता और असलियत को लोग समझ कर मानने लगते है,

---

१–यह विद्या भी स्वरोदयविद्या से विषयसाम्य से सम्बध रखती है, अत. यहाँ पर थोडा सा इस का भी स्वरूप दिखलाया जाता है॥

२–इतने ही आवश्यक विषयों के वर्णन से ग्रन्थ अब तक बढ चुका है तथा आगे भी कुछ आवश्यक विषय का वर्णन करना अवशिष्ट है, अतः इस (मेस्मेरिजम) विद्या के स्वरूपमात्र का वर्णन किया है॥

विचार करने पर पाठकों को इस के अनेक प्राचीन उदाहरण मिल सकते हैं अतः हम उन (प्राचीन उदाहरणों) का कुछ भी उल्लेख करना नहीं चाहते हैं किन्तु इस विषय के पश्चिमीय विद्वानों के दो एक उदाहरण पाठकों की सेवा में अवश्य उपस्थित करते हैं, देखिये—अठारहवीं शताब्दी (सदी) में मेसरे "एनीमल मेगनेतीज़म" (जिस ने अपने ही नाम से अपने आविष्कार का नाम "मेस्मेरिज़म" रक्खा तथा जिस ने अपने आविष्कार की सहायता से अनेक रोगियों को अच्छा किया) का अपने नूतन विचार के प्रकट करने के प्रारम्भ में कैसा उपहास हो चुका है; यहाँ तक कि—विद्वान् डाक्तरों तथा दूसरे लोगों ने भी उस के विचारों को हँसी में उड़ा दिया और इस विद्या को प्रकट करने वाले डाक्तर मेसर को लोग ठग बतलाने लगे, परन्तु "सत्यमेव विजयते" इस वाक्य के अनुसार उस ने अपनी सत्यता पर दृढ़ निश्चय रक्खा, जिस का परिणाम यह हुआ कि—उस की उक्त विद्या की तरफ़ कुछ लोगों का ध्यान हुआ तथा उस का आन्दोलन होने लगा, कुछ काल के पश्चात् अमेरिका वालों ने इस विद्या में विशेष अन्वेषण किया जिस से इस विद्या की सारता प्रकट हो गई, फिर क्या था इस विद्या का खूब ही प्रचार होने लगा और थियासोफिकल सुसाइटी के द्वारा यह विद्या समस्त देशों में प्रचरित हो गई तथा बड़े २ प्रोफेसर विद्वान् जन इस का अभ्यास करने लगे।

दूसरा उदाहरण देखिये—ईस्वी सन् १८२८ में सब से प्रथम जब सात पुरुषों ने मद्य (दारू वा शराब) के न पीने का नियम ग्रहण कर मद्य का प्रचार लोगों में कम करने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया था उस समय उन का बड़ा ही उपहास हुआ था, विशेषता यह थी कि—उस उपहास में विना विचारे बड़े २ सुयोग्य और नामी शाह भी सम्मीलित (शामिल) हो गये थे, परन्तु इतना उपहास होने पर भी उक्त (मद्य न पीने का नियम लेने वाले) लोगों ने अपने नियम को नहीं छोड़ा तथा उस के लिये चेष्टा करते ही गये, परिणाम यह हुआ कि—दूसरे भी अनेक जन उन के अनुगामी हो गये, आज उसी का यह कितना बड़ा फल प्रत्यक्ष है कि—इँगलेंड में (यद्यपि वहाँ मद्य का अब भी बहुत कुछ खर्च होता है तथापि) मद्यपान के विरुद्ध सैकड़ों मंडलियाँ स्थापित हो चुकी हैं तथा इस समय ग्रेट ब्रिटन में साठ लाख मनुष्य मद्य से बिलकुल परहेज़ करते हैं इस से अनुमान किया जा सकता है कि—जैसे गत शताब्दी में सुधरे हुए मुल्कों में गुलामी का व्यापार बन्द किया जा चुका है उसी प्रकार वर्तमान शताब्दी के अन्त तक मद्य का व्यापार भी अत्यन्त बन्द कर दिया जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

इसी प्रकार तीसरा उदाहरण देखिये—यूरोप में वनस्पति की खुराक का समर्थन और मांस की खुराक का असमर्थन करने वाली मण्डली सन् १८४७ में मेनचेष्टर में थोड़े से पुरुषों ने मिल कर जब स्थापित की थी उस समय भी उस (मण्डली) के सभासदों का

उपहास किया गया था परन्तु उक्त खुराक के समर्थन में सत्यता विद्यमान थी इस कारण आज इँग्लेंड, यूरोप तथा अमेरिका में वनस्पति की खुराक के समर्थन में अनेक मण्डलियां स्थापित हो गई हैं तथा उन में हज़ारों विद्वान्, यूनीवर्सिटी की बड़ी २ डिग्रियों को प्राप्त करने वाले, डाक्टर, वकील और बड़े २ इञ्जीनियर आदि अनेक उच्चाधिकारी जन सभासद्रूप में प्रविष्ट हुए हैं, तात्पर्य यह है कि–चाहें नये विचार वा आविष्कार हों, चाहें प्राचीन हों यदि वे सत्यता से युक्त होते है तथा उन में नेकनियती और इमानदारी से सदुद्यम किया जाता है तो उस का फल अवश्य मिलता है तथा सदुद्यम वाले का ही अन्त में विजय होता है ॥

यह पञ्चम अध्याय का स्वरोदयवर्णन नामक दशवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवाँ प्रकरण—शकुनावलिवर्णन ॥

शकुनविद्या का स्वरूप ॥

इस विद्या के अति उपयोगी होने के कारण पूर्व समय में इस का बहुत ही प्रचार था अर्थात् पूर्व जन इस विद्या के द्वारा कार्यसिद्धि का (कार्य के पूर्ण होने का) शकुन (सगुन) ले कर प्रत्येक (हर एक) कार्य का आरम्भ करते थे, केवल यही कारण था कि–उन के सब कार्य प्रायः सफल और शुभकारी होते थे, परन्तु अन्य विद्याओं के समान धीरे २ इस विद्या का भी प्रचार घटता गया तथा कम बुद्धि वाले पुरुष इसे बच्चों का खेल समझने लगे और विशेष कर अंग्रेज़ी पढ़े हुए लोगों का तो विश्वास इस पर नाममात्र को भी नहीं रहा, सत्य है कि–"न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति" अर्थात् जो जिस के गुण को नही जानता है वह उस की निरन्तर निन्दा किया करता है, अस्तु–इस के विषय में किसी का विचार चाहे कैसा ही क्यों न हो परन्तु पूर्वीय सिद्धान्त से यह तो मुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है कि–यह विद्या प्राचीन समय में अति आदर पा चुकी है तथा पूर्वीय विद्वानों ने इस विद्या का अपने बनाये हुए ग्रन्थों में बहुत कुछ उल्लेख किया है ।

पूर्व काल में इस विद्या का प्रचार यद्यपि प्रायः सब ही देशों में था तथापि मारवाड़ देश में तो यह विद्या अति उत्कृष्ट रूप से प्रचलित थी, देखो! मारवाड़ देश में पूर्व समय में (थोड़े ही समय पहिले) परदेश आदि को गमन करने वालों के सहायक (चोर आदि से रक्षा करने वाले) वन कर भाटी आदि राजपूत जाया करते थे वे लोग जानवरों की भाषा आदि के शुभाशुभ शकुनों को भली भाँति जानते थे, हड़बूकी नामक

सांखला राजपूत हुए हैं; जिन्हों ने प्रदेशगमनादि के शुभाशुभ शकुनों के विषय में सैकड़ों दोहे बनाये हैं, वर्त्तमान में रेल आदि के द्वारा यात्रा करने का प्रचार हो गया है इस कारण उक्त (मारवाड़) देश में भी शकुनों का प्रचार घट गया है और घटता चला जाता है ।

हमारे देशवासी बहुत से जन यह भी नहीं जानते हैं कि–शुभ शकुन कौन से होते है तथा अशुभ शकुन कौन से होते हैं, यह बहुत ही लज्जास्पद विषय है, क्योंकि शुभाशुभ शकुनों का जानना और यात्रा के समय उन का देखना अत्यावश्यक है, देखो ! शकुन ही आगामी शुभाशुभ के (भले वा बुरे के) अथवा यों समझो कि–कार्य की सिद्धि वा असिद्धि तथा सुख वा दुःख के सूचक होते हैं ।

शकुन दो प्रकार से लिये (देखे) जाते हैं–एक तो रमल के द्वारा वा पाशा आदि के द्वारा कार्य के विषय में लिये (देखे) जाते हैं और दूसरे प्रदेशादि को गमन करने के समय शुभाशुभ फल के विषय में लिये (देखे) जाते हैं, इन्हीं दोनों प्रकार के शकुनों के विषय में संक्षेप से इस प्रकरण में लिखेंगे, इन में से प्रथम वर्ग के शकुनों के विषय में गर्गाचार्य मुनि[1] की संस्कृत में बनाई हुई पाशशकुनावलि का भाषा में अनुवाद कर वर्णन करेंगे, उस के पश्चात् प्रदेशादिगमनविषयक शुभाशुभ शकुनों का संक्षेप से वर्णन करेंगे, आशा है कि–गृहस्थ जन शकुनों का विज्ञान कर इस से लाभ उठावेंगे ।

जो कुछ कार्य करना हो उस का प्रथम स्थिर मन से विचार करना चाहिये, फिर थोड़े चाँवल, एक सुपारी और दुअन्नी वा चाँदी की अगूठी आदि को पुस्तक पर भेंट-रूप रख कर पौसे को हाथ में ले कर इस निम्नलिखित मन्त्र को सात वार पढ़ना चाहिये, फिर तीन वार पासे को डालना चाहिये तथा तीनों वार के जितने अङ्क हों उन का

१–तीनों लोकों के पूज्य श्री गर्गाचार्य महात्मा ने सत्यपासा केवली राजा अग्रसेन के सामने प्रजा-हितकारिणी इस (शकुनावली) का वर्णन संस्कृत गद्य में किया था उसी का भाषानुवाद कर के यहां पर हम ने लिखा है ॥

२–इस सम्बन्ध का जो द्रव्य इकट्ठा हो जावे उस को ज्ञानखाते में लगा देना योग्य होता है, इस लिये जो लोग देश देशान्तरों में रहते हैं उन को उचित है कि–काम काज से छुट्टी पा कर अवकाश के समय में व्यर्थ गप्पें मार कर समय को न गमावें किन्तु अपने वर्ग में से जो पुरुष कुछ पठित हो उस के यहाँ यथा-योग्य पाँच सात अच्छे २ ग्रन्थों को मँगवा कर रक्खें और उन को सुना करें तथा स्वयं भी बाँचा करें और जो ज्ञानखाते का द्रव्य हो उस से उपयोगी पुस्तको को मँगा लिया करें तथा उपयोगी साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्र भी दो चार मँगाते रहें, ऐसा करने से मनुष्य को बहुत लाभ होता है ॥

३–चौपड के पासे के समान काष्ठ; पीतल वा दाँत का चौकोना पासा होना चाहिये, जिस में एक, दो, तीन और चार, ये अंक लिखे होने चाहियें ॥

फल देख लेना चाहिये, (इस शकुनावलि का फल ठीक २ मिलता है) परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि–एक वार शकुन के लेनेपर (उस का फल चाहे बुरा आवे चाहे अच्छा आवे) फिर दूसरी वार शकुन नहीं लेना चाहिये ।

मन्त्र—ओं नमो भगवति कूष्मांडनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि एह्येहि २ वरं देहि २ हलि २ मातङ्गिनि सत्यं ब्रूहि २ स्वाहा ।

इस मन्त्र को सात वार पढ़ कर "सत्य भाषे असत्य का परिहार करे" इस प्रकार मुख से कह कर पासे को डालना चाहिये, यदि पासा उपस्थित न हो तो नीचे जो पासावलि का यन्त्र लिखा है उस पर तीन वार अङ्गुलि को फेर कर चाहे जिस कोठे पर रख दे तथा आगे जो उस का फल लिखा है उसे देख ले ॥

पासावलिका यन्त्र ॥

१११	११२	११३	११४	१२१	१२२	१२३	१२४
१३१	१३२	१३३	१३४	१४१	१४२	१४३	१४४
२११	२१२	२१३	२१४	२२१	२२२	२२३	२२४
२३१	२३२	२३३	२३४	२४१	२४२	२४३	२४४
३११	३१२	३१३	३१४	३२१	३२२	३२३	३२४
३३१	३३२	३३३	३३४	३४१	३४२	३४३	३४४
४११	४१२	४१३	४१४	४२१	४२२	४२३	४२४
४३१	४३२	४३३	४३४	४४१	४४२	४४३	४४४

पासावलिका का क्रमानुसार फल ॥

१११–हे पूछने वाले ! यह पासा बहुत शुभ है, तेरे दिन अच्छे है, तू ने विलक्षण बात विचार रक्खी है, वह सब सिद्ध होगी, व्यापार में लाभ होगा और युद्ध में जीत होगी ।

११२–हे पासा लेने वाले ! तेरा काम सिद्ध नहीं होगा, इस लिये विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरा काम कर तथा देवाधिदेव का ध्यान रख, इस शकुन का यह प्रमाण (पुरावा) है कि–तू रात को स्वप्न में काक (कौआ), घुग्घू, गीध, मक्खियाँ, मच्छर, मानो अपने शरीर में तेल लगाया हो अथवा काला साँप देखा हो, ऐसा देखेगा ।

११३–हे पूछने वाले ! तू ने जो विचार किया है उस का फल सुन, तू किसी स्थान (ठिकाने) को वा धन के लाभ को अथवा किसी सज्जन की मुलाकात को चाहता है, यह सब तुझे मिलेगा, तेरे क्लेश और चिन्ता के दिन बहुत से वीत गये, अब तेरे अच्छे दिन आ गये है, इस बात की सत्यता (सचाई) का प्रमाण यह है कि–तेरी कोख पर तिल वा मसा अथवा कोई घाव का चिह्न है ।

११४–हे पूछने वाले! यह पासा बहुत कल्याणकारी है, कुल की वृद्धि होगी, ज़मीन का लाभ होगा, धन का लाभ होगा, पुत्र का भी लाभ दीखता है और प्यारे मित्र का दर्शन होगा, किसी से सम्बंध होगा तथा तीन महीने के भीतर विचारे हुए काम का लाभ होगा, गुरु की भक्ति और कुलदेवी का पूजन कर, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे शरीर के ऊपर दोनों तरफ़ मसा; तिल वा घाव का चिह्न है।

१२१–हे पूछने वाले! तूने ठिकाने का लाभ तथा सजन की मुलाकात विचारी है, धातु; धन; सम्पत्ति और भाई बन्धु की वृद्धि तथा पहिले जैसे सम्मान का मिलना विचारा है, यह सब बात निर्विघ्न (विना किसी विघ्न के) तेरे लिये सुखदायी होगी, इस का निश्चय तुझे इस प्रकार हो सकता है कि–तू स्वप्न में अपने बड़े लोगों को देखेगा।

१२२–हे पूछने वाले! तुझे वित्त (धन) और यश का लाभ होगा, ठिकाना और सम्मान मिलेगा तथा तेरी मनोऽभीष्ट (मनचाही) वस्तु मिलेगी, इस में शङ्का मत कर, अब तेरा पाप और दुःख क्षीण हो गया, इस लिये तुझे कल्याण की प्राप्ति होगी, इस का पुरावा यह है कि–तू रात को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में लड़ाई का करना देखेगा।

१२३–हे पूछने वाले! तेरे कार्य और धन की सिद्धि होगी, तेरे विचारे हुए सब मामले सिद्ध होंगे, कुटुम्ब की वृद्धि, स्त्री का लाभ तथा स्वजन की मुलाकात होगी, तेरे मन में जो बहुत दिनों से विचार है वह अब जल्दी पूर्ण होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में लड़ाई तथा स्त्रीसम्बंधी चिन्ता आज से पाँचवें दिन के भीतर हुई होगी।

१२४–हे पूछने वाले! तेरी भाइयों से जल्दी मुलाकात होगी, तेरा सुकृत अच्छा है, ग्रह का बल भी अच्छा है, इस लिये तेरे सब काम हो जावेंगे, तू अपनी कुलदेवी का पूजन कर।

१३१–हे पूछने वाले! तुझे ठिकाने का लाभ, धन का लाभ तथा चित्त में चैन होगा, जो कुछ काम तेरा बिगड़ गया है वह भी सुधर जावेगा तथा जो कुछ चीज़ चोरी में गई है वह भी मिल जावेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में वृक्ष को देखा है अथवा देखेगा।

१३२–हे पूछने वाले! जो काम तू ने विचारा है वह सब हो जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरी स्त्री के साथ तेरी बहुत प्रीति है।

१३३–हे पूछने वाले! इस शकुन से तेरे धन के नाश का तथा शरीर में रोग होने का सम्भव है तथा तेरे किसी प्रकार का बन्धन है, जान के धोखे का खतरा है, तू ने भारी काम विचारा है वह बड़ी तकलीफ़ से पूरा होगा।

१३४–हे पूछने वाले! तुझे राजकाज की तरफ़ की वा सर्कार की तरफ़ की अथवा सोना चाँदी की और परदेश की चिन्ता है, तू किसी दुशमन से जीतना चाहता है, यह

सब बात धीरे २ तुझे प्राप्त होगी, जैसी कि तू ने विचारी है, अब हानि नहीं होगी, तेरे पाप कट गये, तू वीतराग देव का ध्यान धर, तेरे सब कार्य सिद्ध होंगे।

१४१–हे पूछने वाले! तेरा विचार किसी व्यापार का है तथा तुझे दूसरी भी कोई चिन्ता है, इस सब कष्ट से छूट कर तेरा मङ्गल होगा, आज के सातवें दिन था तो तुझे कुछ लाभ होगा वा अच्छी बुद्धि उत्पन्न होगी।

१४२–हे पूछने वाले! तेरे मन में धन और धान्य की अथवा घर के विषय की चिन्ता है, वह सब चिन्ता दूर होगी, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, सज्जनों से मुलाकात होगी तथा गई हुई वस्तु भी मिलेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में अथवा बाहर लड़ाई हुई है वा होगी।

१४३–हे पूछने वाले! तेरे विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे, कल्याण होगा तथा लड़की का लाभ होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में किसी ग्राम में जाना देखेगा।

१४४–हे पूछने वाले! तेरे सब कामों की सिद्धि होगी और तुझे सम्पत्ति मिलेगी इस बात का यह पुरावा है कि–तू अपने विचारे हुए काम को स्वप्न में देखेगा वा देव-मन्दिर को वा मूर्ति को अथवा चन्द्रमा को देखेगा।

२११–हे पूछने वाले! तू ने अपने मन में एक बड़ा कार्य विचारा है तथा तुझे धनविषयक चिन्ता है, सो तेरे लिये सब अच्छा होगा तथा प्यारे भाइयों की मुलाकात होगी, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तू ने स्वप्न में ऊँचे मकान पर पहाड़ पर चढ़ना देखा है अथवा देखेगा।

२१२–हे पूछने वाले! तेरे सब बातों की वृद्धि होगी, मित्रों से मुलाकात होगी, संसार से लाभ होगा, विवाह करने पर कुल की वृद्धि होगी तथा सोना चाँदी आदि सब सम्पत्ति होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में गाय वा बैल को देखा है अथवा देखेगा, तू परदेश में भी जाने का विचार करता है, तू कुलदेवी को मना, तेरे लिये अच्छा होगा।

२१३–हे पूछने वाले! तेरे मन में द्विपद अर्थात् दो पैर वाले की चिन्ता है और तू ने अच्छा काम विचारा है उस का लाभ तुझे एक महीने में होगा, भाई तथा सज्जन मिलेंगे, शरीर में प्रसन्नता होगी और तेरे मनोऽभीष्ट (मनचाहे) कार्य होंगे परन्तु जो तेरा गोत्रदेव है उस की आराधना तथा सम्मान कर, तू माता; पिता; भाई और पुत्र आदि से जो कुछ प्रयोजन चाहता है वह तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने रात्रि में प्रत्यक्ष में अथवा स्वप्न में स्त्री से समागम किया है।

२१४–हे पूछने वाले! जो कुछ तेरा काम बिगड़ गया है अर्थात् जो कुछ नुकसान आदि हुआ है अथवा किसी से जो कुछ तुझे लेना है वा जिस किसी ने तुझ से दगाबाज़ी की है उस को तू भूल जा, यहाँ से कुछ दूर जाने से तुझे लाभ होगा, आज तू ने स्वप्न में देव को वा देवी को वा कुल के बड़े जनों को वा नदी आदि को देखा है, अथवा सज्जनों से तेरी मुलाकात हुई है।

२२१–हे पूछने वाले! इतने दिनों तक जो कुछ कार्य तू ने किया उस में तुझे बराबर क्लेश हुआ अर्थात् तू ने सुख नहीं पाया, अब तू अपने मन में कुछ कल्याण को चाहता है तथा धन की इच्छा रखता है, तुझे बड़े स्थान (ठिकाने) की चिन्ता है तथा तेरा चित्त चञ्चल है सो अब तेरे दुःख का नाश हुआ और कल्याण की प्राप्ति हुई समझ ले, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है–कि तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा।

२२२–हे पूछने वाले! तेरा सज्जनों के साथ विरोध है और तेरी कुमित्र से मित्रता है, जो तेरे मन में चिन्ता है तथा जिस बड़े काम को तू ने उठा रक्खा है उस काम की सिद्धि बहुत दिनों में होगी तथा तेरा कुछ पाप बाकी है सो उस का नाश हो जाने से तुझे स्थान (ठिकाने) का लाभ होगा।

२२३–हे पूछने वाले! इस समय तू ने बुरे काम का मनोरथ किया है तथा तू दूसरे के धन के सहारे से व्यापार कर अपना मतलब निकालना चाहता है, सो उस सम्पत्ति का मिलना कठिन है, तू व्यापार कर, तुझे लाभ होगा; परन्तु तू ने जो मन में बुरा विचार किया है उस को छोड़ कर दूसरे प्रयोजन को विचार, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि तू स्वप्न में अपने खोटे दिन देखेगा।

२२४–हे पूछने वाले! तेरे मन में परस्त्री की चिन्ता है, तू बहुत दिनों से तकलीफ को देख रहा है, तू इधर उधर भटक रहा है तथा तेरे साथ यहाँ पर लड़ाई आदि बहुत दिनों से चल रही है, यह सब विरोध शान्त हो जावेगा, अब तेरी तकलीफ गई, कल्याण होगा तथा पाप और दुःख सब मिट गये, तू गुरुदेव की भक्ति कर तथा कुलदेव की पूजा कर, ऐसा करने से तेरे मन के विचारे हुए सब काम ठीक हो जावेंगे।

२३१–हे पूछने वाले! तुझे दोषों के विना विचारे ही धन का लाभ होगा, एक महीने में तेरा विचारा हुआ मनोरथ सिद्ध होगा और तुझे बड़ा फल मिलेगा, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि–तू ने स्त्रियों की कथा की है अथवा तू स्वप्न में वृक्षों को; सूने घरों को; अथवा सूने देश को; वा सूखे तालाब को देखेगा।

२३२–हे पूछने वाले! तू ने बहुत कठिन काम विचारा है, तुझे फायदा नहीं होगा, तेरा काम सिद्ध नहीं होगा तथा तुझे सुख मिलना कठिन है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में भैंस को देखेगा।

२३३–हे पूछने वाले! तेरे मन में अचानक (एकाएक) काम उत्पन्न हो गया है, तू दूसरे के काम के लिये चिन्ता करता है, तेरे मन में विलक्षण तथा कठिन चिन्ता है, तू ने अनर्थ करना विचारा है, इस लिये कार्य की चिन्ता को छोड़ कर तू दूसरा काम कर तथा गोत्रदेवी की आराधना कर, उस से तेरा भला होगा, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे घर में कलह है; अथवा तू बाहर फिरता है ऐसा देखेगा, अथवा तुझे स्वप्न में देवतों का दर्शन होगा।

२३४–हे पूछने वाले! तेरे काम बहुत है, तुझे धन का लाभ होगा, तू कुटुम्ब की चिन्ता में वार २ मुर्झाता है, तुझे ठिकाने और जमीन जगह की भी चिन्ता है, तेरे मन में पाप नहीं है; इस लिये जल्दी तेरी चिन्ता मिटेगी, तू स्वप्न में गाय को; भैंस को तथा जल में तैरने को देखेगा, तेरे दुःख का अन्त आ गया, तेरी बुद्धि अच्छी है इस लिये शुद्ध भक्ति से तू कुलदेवता का ध्यान कर।

२४१–हे पूछने वाले! तुझे विवाहसम्बन्धी चिन्ता है तथा तू कहीं लाभ के लिये जाना चाहता है, तेरा विचारा हुआ कार्य जल्दी सिद्ध होगा तथा तेरे पद की वृद्धि होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–मैथुन के लिये तू ने बात की है।

२४२–हे पूछने वाले! तुझे बहुत दिनों से परदेश में गये हुए मनुष्य की चिन्ता है, तू उस को बुलाना चाहता है तथा तू ने जो काम विचारा है वह अच्छा है, परन्तु भावी बलवान् है इस लिये यह बात इस समय सिद्ध होती नही माळूम देती हैं।

२४३–हे पूछने वाले! तेरा रोग और दुःख मिट गया, तेरे सुख के दिन आ गये, तुझे मनोवाञ्छित (मनचाहा) फल मिलेगा, तेरे सब उपद्रव मिट गये तथा इस समय जाने से तुझे लाभ होगा।

२४४–हे पूछने वाले! तेरे चित्त में जो चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, कल्याण होगा तथा तेरा सब काम सिद्ध होगा, इस बात का पुरावा यह है कि–तेरे गुप्त अङ्ग पर तिल है।

३११–हे पूछने वाले! तू इस बात को विचारता है कि–मै देशान्तर (दूसरे देश) को जाऊँ मुझे ठिकाना मिलेगा वा नहीं, सो तू कुलदेवी को वा गुरुदेव को याद कर, तेरे सब विघ्न मिट जावेंगे तथा तुझे अच्छा लाभ होगा और कार्य में सिद्धि होगी, इस बात की सत्यता में यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में पहाड़ वा किसी ऊँचे स्थल को देखेगा।

३१२–हे पूछने वाले! तेरे मनोरथ पूर्ण होवेंगे, तेरे लिये धन का लाभ दीखता है, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि तथा शरीर में सुख धीरे २ होगा, देवतों की तथा ग्रहों की जो पूर्व की पीड़ा है उस की शान्ति के लिये देवता की आराधना कर, ऐसा करने से तू जिस

४१२—हे पूछने वाले ! तेरे मन में स्त्रीविषयक चिन्ता है, तेरी कुछ रकम भी लोगों में फँस रही है और जब तू माँगता है तब केवल हाँ, नाँ होती है, धन के विषय में तकरार होने पर भी तुझे लाभ होता नहीं दीखता है, यद्यपि तू अपने मन में शुभ समय (खुशवख्ती) समझ रहा है परन्तु उस में कुछ दिनों की ढील है अर्थात् कुछ दिन पीछे तेरा मतलब सिद्ध होगा।

४१३—हे पूछने वाले ! तेरे मन में धनलाभ की चिन्ता है और तू किसी प्यारे मित्र की मुलाकात को चाहता है, सो तेरी जीत होगी, अचल ठिकाना मिलेगा, पुत्र का लाभ होगा, परदेश जाने पर कुशल क्षेम रहेगा तथा कुछ दिनों के बाद तेरी बहुत वृद्धि होगी, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि—तू स्वप्न में काच (दर्पण) को देखेगा।

४१४—हे पूछने वाले ! यह बहुत अच्छा शकुन है, तुझे द्विपद अर्थात् किसी आदमी की चिन्ता है, सो महीने भर में मिट जावेगी, धन का लाभ होगा, मित्र से मुलाकात होगी तथा मन के विचारे हुए सब काम शीघ्र ही सिद्ध होंगे।

४२१—हे पूछने वाले ! तू धन को चाहता है, तेरी संसार में प्रतिष्ठा होगी, परदेश में जाने से मनोवाञ्छित (मनचाहा) लाभ होगा तथा सज्जन की मुलाकात होगी, तू ने स्वप्न में धन को देखा है, वा स्त्री की बात की है; इस अनुमान से सब कुछ अच्छा होगा, तू माता की शरण में जा; ऐसा करने से कोई भी विघ्न नहीं होगा।

४२२—हे पूछने वाले ! तेरे मन में ठकुराई की चिन्ता है; परन्तु तेरे पीछे तो दरिद्रता पड़ रही है, तू पराये (दूसरे के) काम में लगा रहा है, मन में बड़ी तकलीफ पा रहा है तथा तीन वर्ष से तुझे क्लेश हो रहा है अर्थात् सुख नहीं है, इस लिये तू अपने मन के विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरे काम को कर, वह सफल होगा, तू कठिन स्वप्न को देखता है तथा उस का तुझे ज्ञान नहीं होता है, इस लिये जो तेरा कुलधर्म है उसे कर, गुरु की सेवा कर तथा कुलदेव का ध्यान कर, ऐसा करने से सिद्धि होगी।

४२३—हे पूछने वाले ! तेरा विजय होगा, शत्रु का क्षय होगा, धन सम्पत्ति का लाभ होगा, सज्जनों से प्रीति होगी, कुशल क्षेम होगा तथा ओषधि करने आदि से लाभ होगा, अब तेरे पाप क्षय (नाश) को प्राप्त हुए; इस लिये जिस काम को तू विचारता है वह सब सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि—तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा।

४२४—हे पूछने वाले ! तेरे मन में बड़ी भारी चिन्ता है, तुझे अर्थ का लाभ होगा, तेरी जीत होगी, सज्जन की मुलाक़ात होगी, सब काम सफल होंगे तथा चित्त में आनन्द होगा।

४३१—हे पूछने वाले ! यह शकुन दीर्घायुकारक (बड़ी उम्र का करने वाला) है, तुझे दूसरे ठिकाने की चिन्ता है, तू भाई बन्धुओं के आगमन को चाहता है, तू अपने मन में

१४–यदि मैना सामने बोले तो कलह, दाहिनी तरफ बोले तो लाभ और सुख, बाईं तरफ बोलें तो अशुभ तथा पीठ पीछे बोले तो मित्रसमागम होता है।

१५–ग्राम को चलते समय यदि बगुला बायें पैर को ऊँचा (ऊपर को) उठाये हुए तथा दाहिने पैर के सहारे खड़ा हुआ दीख पड़े तो लक्ष्मी का लाभ होता है।

१६–यदि प्रसन्न हुआ बगुला बोलता हुआ दीखे, अथवा ऊँचा (ऊपर को) उड़ता हुआ दीखे तो कन्या और द्रव्य का लाभ तथा सन्तोष होता है और यदि वह भयभीत होकर उड़ता हुआ दीखे तो भय उत्पन्न होता है।

१७–ग्राम को जाते समय यदि बहुत से चकवे मिले हुए बैठे दीखें तो बड़ा लाभ और सन्तोष होता है तथा यदि भयभीत हो कर उड़ते हुए दीखें तो भय उत्पन्न होता है।

१८–यदि सारस बाईं तरफ दीखे तो महासुख, लाभ और सन्तोष होता है, यदि एक एक बैठा हुआ दीखे तो मित्रसमागम होता है, यदि सामने बोलता हुआ दीखे तो राजा की कृपा होती है तथा यदि जोड़े के सहित बोलता हुआ दीखे तो स्त्री का लाभ होता है परन्तु दाहिनी तरफ सारस का मिलना निषिद्ध होता है।

१९–ग्राम को जाते समय यदि टिट्टिभी (टिंटोड़ी) सामने बोले तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि बाईं तरफ बोले तो निकृष्ट फल होता है।

२०–जाते समय यदि जलकुक्कुटी (जलमुर्गाबी) जल में बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि जल के बाहर बोलती हो तो निकृष्ट फल होता है।

२१–ग्राम को चलते समय यदि मोर एक शब्द बोले तो लाभ, दो वार बोले तो स्त्री का लाभ, तीन वार बोले तो द्रव्य का लाभ, चार वार बोले तो राजा की कृपा तथा पाँच वार बोले तो कल्याण होता है, यदि नाचता हुआ मोर दीखे तो उत्साह उत्पन्न होता है तथा यह मंगलकारी और अधिक लाभदायक होता है।

२२–गमन के समय यदि समली आहार के सहित वृक्ष के ऊपर बैठी हुई दीखे तो बड़ा लाभ होता है, यदि आहार के विना बैठी हो तो गमन निष्फल होता है, यदि बाईं तरफ बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि दाहिनी तरफ बोलती हो तो उत्तम फल नहीं होता है।

२३–ग्राम को चलते समय यदि घुग्घू बाईं तरफ बोलता हो तो उत्तम फल होता है, यदि दाहिनी तरफ बोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि पीठ पीछे बोलता हो तो वैरी वश में होता है, यदि सामने बोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि अधिक शब्द

१–बुरा अर्थात् अशुभ फल का सूचक।

२–'एक शब्द,' अर्थात् एक वार।

करता हो तो अधिक वैरी उत्पन्न होते है, यदि घर के ऊपर बोले तो स्त्री की मृत्यु होती है अथवा अन्य किसी गृहजन की मृत्यु होती है तथा यदि तीन दिन तक बोलता रहे तो चोरी का सूचक होता है ।

२४–चलते समय कबूतर का दाहिनी तरफ होना लाभकारी होता है, बाईं तरफ होने से भाई और परिजन को कष्ट उत्पन्न होता है तथा पीछे चुगता हुआ होने से उत्तम फल होता है ।

२५–यदि मुर्गा स्थिरता के साथ बाईं तरफ शब्द करता हो तो लाभ और सुख होता है तथा यदि भय से भ्रान्त हो कर बाईं तरफ बोलता हो तो भय और क्लेश उत्पन्न होता है ।

२६–यदि नीलकण्ठ पक्षी सामने वा दाहिनी तरफ क्षीर वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ बोले तो सुख और लाभ होता है, यदि वह दाहिनी तरफ हो कर तोरण पर आवे तो अत्यन्त लाभ और कार्य की सिद्धि होती है, यदि वह बाईं तरफ और स्थिर चित्त से बोलता हुआ दीखे तो उत्तम फल होता है तथा यदि चुप बैठा हुआ दीखे तो उत्तम फल नहीं होता है ।

२७–नीलकण्ठ और नीलिया पक्षी का दर्शन भी शुभकारी होता है, क्योंकि चलते समय इन का दर्शन होने से सर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।

२८–ग्राम को चलते समय अथवा किसी शुभ कार्य के करते समय यदि भौंरा बाईं तरफ फूल पर बैठा हुआ दीखे तो हर्ष और कल्याण का करने वाला होता है, यदि सामने फूल के ऊपर बैठा हुआ दीखे तो भी शुभकारक होता है तथा यदि लड़ते हुए दो भौंरे शरीर पर आ गिरें तो अशुभ होता है, इस लिये ऐसी दशा में वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिये और काले पदार्थ का दान करना चाहिये, ऐसा करने से सर्व दोष निवृत्त हो जाता है ।

२९–ग्राम को चलते समय यदि मकड़ी बाईं तरफ से दाहिनी तरफ को उतरे तो उस दिन नहीं चलना चाहिये, यदि बाईं तरफ जाल को डालती हुई दीख पड़े तो कार्य की सिद्धि; लाभ और कुशल होता है, यदि दाहिनी तरफ से बाईं तरफ को उतरे तो भी शुभ होता है, यदि पैर की तरफ से ऊपर जाँघ पर चढ़े तो घोड़े की प्राप्ति होती है, यदि कण्ठ तक चढ़े तो वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है, यदि मस्तक पर्यन्त चढ़े तो राजमान प्राप्त होता है तथा यदि शरीर पर चढ़े तो वस्त्र की प्राप्ति होती है, मकड़ी का ऊपर को चढ़ना शुभकारी और नीचे को उतरना अशुभकारी होता है ।

३०–ग्राम को चलते समय कानखजूरे का बाईं तरफ को उतरना शुभ होता है तथा दाहिनी तरफ को उतरना एवं मस्तक और शरीर पर चढ़ना बुरा होता है ।

३१–ग्राम को चलते समय यदि हाथी दाहिने दाँत के ऊपर सूँड को रक्खे हुए अथवा सूँड़ को उछालता हुआ सामने आता दीख पड़े तो सुख; लाभ और सन्तोष होता है तथा बाईं तरफ वा अन्य किसी तरफ सूँड़ को किये हुए दीखे तो सामान्य फल होता है, इस के अतिरिक्त हाथी का सामने मिलना अच्छा होता है।

३२–यदि घोड़ा अगले दाहिने पैर से पृथिवी को खोदता हुआ वा दाँत से दाहिने अंग को खुजलाता हुआ दीखे तो सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, यदि बायें पैर को पसारे हुए दीख पड़े तो क्लेश होता है तथा यदि सामने मिल जावे तो शुभकारी होता है।

३३–ऊँट का बाईं तरफ बोलना अच्छा होता है, दाहिनी तरफ बोलना क्लेशकारी होता है, यदि साँड़नी सामने मिले तो शुभ होती है।

३४–यदि चलते समय बैल बाँयें सींग से वा बाँयें पैर से धरती को खोदता हुआ दीख पड़े तो अच्छा होता है अर्थात् इस से सुख और लाभ होता है, यदि दाहिने अंग से पृथिवी को खोदता हुआ दीख पड़े तो बुरा होता है, यदि बैल और भैंसा इकट्ठे खड़े हुए दीख पड़ें तो अशुभ होता है, ऐसी दशा में ग्राम को नहीं जाना चाहिये, यदि जावेगा तो प्राणों का सन्देह होगा, यदि डकराता (दड़ूकता) हुआ साँड़ सामने दीख पड़े तो अच्छा होता है।

३५–यदि गाय बाईं तरफ शब्द करती हुई अथवा बछड़े को दूध पिलाती हुई दीख पड़े तो लाभ; सुख और सन्तोष होता है तथा यदि पिछली रात को गाय बोले तो क्लेश उत्पन्न होता है।

३६–यदि गधा बाईं तरफ को जावे तो सुख और सन्तोष होता है, पीछे की तरफ वा दाहिनी तरफ को जावे तो क्लेश होता है, यदि दो गधे परस्पर में कन्धे को खुजलावें, वा दाँतों को दिखावें, वा इन्द्रिय को तेज करें, वा बाईं तरफ को जावें तो बहुत लाभ और सुख होता है, यदि गधा शिर को धुने वा राख में लोटे अथवा परस्पर में लड़ता हुआ दीख पड़े तो अशुभ और क्लेशकारी होता है तथा यदि चलते समय गधा बाईं तरफ बोले और घुसते समय दाहिनी तरफ बोले तो शुभकारी होता है।

३७–ग्राम को चलते समय बन्दर का दाहिनी तरफ मिलना अच्छा होता है तथा मध्याह्न के पश्चात् बाईं तरफ मिलना अच्छा होता है।

३८–यदि कुत्ता दाहिनी कोख को चाटता हुआ दीख पड़े अथवा मुख में किसी भक्ष्य पदार्थ को लिये हुए सामने मिले तो सुख; कार्य की सिद्धि और बहुत लाभ होता है, फले और फूले हुए वृक्ष के नीचे बाड़ी में; नीली क्यारियों में; नीले तिनकों पर; द्वार की ईंट पर तथा धान्य की राशि पर यदि कुत्ता पेशाब करता हुआ दीख पड़े तो बड़ा लाभ और सुख होता है, यदि बाईं तरफ को उतरे वा जाँघ; पेट और हृदय को दाहिने पिछले